भगवद्गीता

ब्राह्मणवंश विद्वज्जनवन्दित श्रीवैष्णवसम्प्रदायचन्द्रिका
परमोदार जानकीदेवीजी के मनोरंजनार्थ, रचित ।

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक—आनन्दगिरिकृत

भाषा टीका सहित ।

प्रकाशक—

किशनलाल द्वारकाप्रसाद
बम्बई भूषण प्रेस,

सन् १९४०

MUTTRA. मू० २॥)

Printed by D. P. Bhartiya at the
Bombay Bhushan Press, Muttra.

श्रीमद्भगवद्गीता ।

आनंदगिरिकृतभाषाटीकासंहिता ।

मंगलाचरणम् ।

ॐतत्सत् १ ॐतत्सत् २ ॐतत्सत् ३ ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः । ॐ श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप परम अनूप श्रीमहाराजाधिराज श्रीस्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजीमहाराजके चरणकमलों को बारंबार साष्टाङ्गदंडवत नमस्कार करके श्रीमहाराजजीकी कृपाऔर आज्ञासे परमानन्दकी प्राप्तिके लिये अपनी बुद्धिके अनुसार ब्रह्मविद्या योगशास्त्र श्रीभगवद्गीता उपनिषदोंका तात्पर्यार्थ हरिद्वार मथुराजी के मध्यस्थनगर निवासियोंके प्राकृत देशभाषामें निरूपणकरताहूं। कैसे हैं श्रीकृष्णचंद्रमहाराजकिनित्यमुक्त पूर्णब्रह्म सनातन उत्तमपुरुष शुद्ध आत्मा स्वयंप्रकाश एकरस स्वतंत्र श्रेष्ठ परात्हर परमपुरुष परमधाम परमगति परमपदपरमपवित्र परमात्मा निराकार निर्विकार निरवयव निरंजन निर्गुण अद्वैत अरूपअखंड अजअमर अचल अच्युत अक्षर अव्यक्त अगोचर अप्रमेयअचिंत्य अनंत ऐसेहैं और भी विष्णु शिव शक्ति चिति देवादि अनंतविशेषण हैं, फिर कैसे हैं श्रीमहाराज कि चरणहस्तनेत्राद्यवयव अनुपम महासुन्दर मनोहर हैं जिनके पीतांबरादिवस्त्र धनुषादिशस्त्रवंशी चकडोर मुकुट पंखमोर मकरवत् आकृतिवाले कलकुंडल और रविवत् आकृतिवाले, बाल श्वेतरक्तहरितमोतियोंके सहित जडितपंचरंगी मणि मोतियोंकी मालाऔर अनेक रङ्गवाले फूलोंकी मालाकडे पैंजनीजड़ाऊ तगडी पहुँची अँगूठी छल्ले अङ्गदादि आभूषणधारण कररखे हैं जिन्होंने, बालोंमें अतर मस्तकपर केशरका

प्रातिपदिक चन्द्रवत् तिलक जिसके बीचमें सूर्यवत् बिंदा चन्दन लगा रक्खा है जिन्होंने, किसीसमय धूल और भस्म भी अखंड धारणकरते हैं, पान इलायची चाबते रहते हैं। बाल किशोर तरुण अवस्था है जिनकी,अकेले वा युगलरूप होकर वा स्वामीसखा बनकरबनोंमेंऔर चित्रविचित्र मन्दिरोंमें लीलाविहार करते रहतेहैं, मंदमुसुकान सहित वोलना है जिनका, इस प्रकार अचिंत्य अलौकिक आश्चर्य अगोचर अतर्क्य अप्रमेय अनंत प्रभाव प्रभुताशक्ति बल वीर्य विद्यावान् हैं जैसे अपने बलके अनुसार आकाशमें पक्षीकीगतिहै इसी प्रकार वेद शास्त्र ऋषीश्वर मुनीश्वर शेष शारदा संत महंत महात्मा साधुभक्त पंडित असंख्यातकल्पोंसे अब तक परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र महाराज मेरे स्वामी के गुणोंको पूर्वोक्तरीतिकरके वर्णनकरते चले आते हैं तो भी पार नहीं पाते,परमाननंदस्वरूप होनेसे श्रीमहाराज सबको प्यारे लगते हैं,आनंदस्वरूपसे किसीका वैर नहीं किसीको आनंदकी असूया करता हुआ सुना भीन होगा औरजो आनंदपदार्थ कोपरमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र महाराजसे पृथक् एक गुण विलक्षण पदार्थ समझते हैं और श्रीमहाराजको आनन्दजनक और आनंद गुणके रूपादिमान् पदार्थवत समझते हैं तो भी परमानंद स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र महाराजसे सिवायश्रेष्ठ और कोई पदार्थ आनंद गुणक और आनंदजनक नहीं, श्रीकीर्ति सत्य संतोष समताशमदम इत्यादि यह सब उसी भगवत्की विभूति हैं, जो कदाचित् वेदशास्त्र मूर्तिमान् होकरऔरशेष शारदा और ऋषीश्वर मुनीश्वर और वर्तमान काल में जो संत महंत पंडित हैं ये सब मुझसे ऐसा कहें कि परमानंद स्वरूप श्रीकृष्णचंद्र महाराज से पृथक् श्रेष्ठ स्थावर वा जंगम सावयव वा निरवयव प्रमेय वा अप्रमेय कोई और पदार्थ है, प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभव

भी करादे तो भी मुझको उस पदार्थकी चाह नहीं और न मैं जिज्ञासा करताहूँ और न कुछ इसबातके निर्णयकरनेमें मेरा किसीसेवाक्यवाद है और जो श्रीमहाराजभी यही कहें तो उनका कहना मेरे शिरमाथेपर है परन्तु मुझमें तो यह सामर्थ्य नहीं कि परमानंदस्वरूप श्रीमहाराजसे मैं पृथक् होजाऊं जो श्रीमहाराजमें यह जाने कि किसीप्रकार हमसे पृथक् होसक्ताहै तो श्रीमहाराजमें अनंत अचिंत्य शक्ति है, श्रीमहाराजही मुझको आपसे पृथक् करदें यह मेरे प्रीति नाता संबंध ऐसा है कि जो श्रीमहाराज भी इसको कदाचित् पृथक् कियाचाहें तो भी नहीं होसक्ता फिर औरोंका तो क्या सामर्थ्य हैं ? क्योंकि यह संबंध लौकिक वैदिक नहीं कि जो शाब्दअनुमानादिप्रमाणों से जाता रहे यह अनादि तादात्म्यसंबंध है, जो श्रीमहाराजमें सद्गुण समझकर मेरी प्रीति हुई हो तो असद्गुण जानकर जाती रहे, मेरी प्रीति स्वाभाविक सनातन है प्रमाणजन्य नहीं और जो भगवद्भक्त श्रीमहाराजको भक्तवत्सलादि सद्-गुणाकार लौकिक वैदिकविद्यामें नागर राजराश्वेर सुरेश्वरईश्वर परमेश्वर महेश्वर परात्पर दुःखदरिद्रहर श्रीमान् सामर्थ्यवान् शोभासुन्दरकी खान सुकुमारपरमउदरदाताजगत्का कर्त्ताभर्त्ता अन्तर्यामी जगत्स्वामी हिरण्यगर्भ विराट्विश्वरूपादि कहकर प्रत्यक्ष शाब्दअनुमानादिप्रमाणों करके सिद्धकरतेहैं, ऋषीश्वर मुनीश्वर शेषशारदादिकी साक्षी देते हैं, सो वे कहो समझो इसी प्रकार प्रीति करो उनको इतना सावकाश है मुझ को तो चर्चा करनेका वा आपसे पृथक् पदार्थमें मन लगानेका न साव-काश है न सामर्थ्य है, मेरी प्रार्थना तो श्रीमहाराजसे यहहै कि जो कुछ अबतक मुझसे मूर्खताहुई सो तो हुई और मेरे भलेके लिये मेरे निमित्त अबतकजो कुछ आपकूँ मेरी जानमें विक्षेप हुआ सोभी हुआ परन्तु अब श्रीमहाराजको मेरे निमित्तकिंचिन्मात्र भी विक्षेप नहो, मुझको यह

बड़ा आश्चर्यहै किवे कैसे आपके भक्तथे, जिन्होंने आपसे सहायता चाही,द्रौपदी गजेंद्रादिकी ऐसी क्या क्षति होतीथी जो अपने प्यारेको विक्षेप दिया,श्रीरामचन्द्रअवतारमें आपने हनुमान्‌जीसे यह कहा कि हे वीर ! जो कुछ तुमने हमारी सहाय भक्ति करी सो लोकोंमें प्रसिद्ध है, उसके प्रत्युपकारमें यह वरदान देता हूँ कि ऐसा कोई काल न हो जो मैं तुम्हारी सहाय न करूं,हे भगवन् ! यही मैं भी चाहता हूँ और लिखे देता हूंकि ऐसाही आपका चिंतवन और निश्चय मेरे लिये हो, अबतक जो जो अनुग्रहआपने मुझपर किये कहांतक कहूं, अनन्त हैं, जो कुछ आपने मेरा उपकार और उद्धार अपनीतरफ देखकर कया उसकी तो अवधि होचुकी और जो कुछ मुझको करना चाहिये था उसक प्रारंभ भी न होनेपाया केवल मनोराज्य करते हुए ही आपने सफल करके मुझको सनाथ और कृतार्थ कर दिया,जबकि यह आपकी महिमाहैं तो मैं सिवाय आपके और किसको श्रेष्ठ उत्तम ब्रह्म परमेश्वर मानूं ? और इस जगह कैमुतिकन्यायहै कि प्रथममैं सकाम संसारके दुःखोंमें दुःखी अनेक जंजाल झगड़ों में फँसा हुआ था एक समय विषयानंदमें मनको बहलाने के लिये आपके लीलानुकरण और स्वरूपानुकरणको देखा मैंने सो वो अनुकरण आपके स्वरूप और लीलाके सामने लेशमात्रभी नहींथा और प्राकृतभाषामें आपके गुणों को सुना, अब तक सिवाय आपकी कृपाके नहीं जानता हूंकि इसमें क्या कारण था जो अपने आप बिना यत्नके आपके गुण स्वरूपमें प्रीति होने लगी और दुःखोंकि निवृत्तिऔर आनंदका आविर्भाव होने लगा,तब तो मैंने केवल आपके चरित्र और गुणोंके श्रवणेकोहीदुःखों को दूर करनेवाला और परमानंदको प्राप्त करनेवाला समझा,फिर ऐसा हुआकि वेदशास्त्रोंमें और बडे२महात्मासन्त महंत पंडितोंकेमुखसे आप की बडाईसुनी आपकाबड़ाप्रभाव सुनाफिरवेदगीतादिशास्त्र और सुपात्र

सज्जन आपके भक्तोंको प्राणोंसेभी प्यारा मैंनेजानकर उनमें मनलगाया शास्त्र और सद्गुरुवोंकी कृपा और आपके प्रथम अनुग्रह से यह ज्ञान प्राप्तहुआ कि आपही साक्षात परमानंदज्ञानस्वरूप हैं, जिसके वास्ते सब लोक नानाप्रकार के यत्न करते हैं, आपके जानने में कुछ भी यत्न नहीं और न किसी साधन की इच्छा है, क्योंकि आप स्वयं प्रकाश ज्ञानस्वरूप हैं, आपको बुद्धयादि जड़ पदार्थ कैसे प्रकाश कर सकते हैं, इस प्रकार अपने आप साक्षात् आप मुझको अनुभव अपरोक्ष हुए अब मैं आपसे भला कैसे पृथक् हो सक्ता हूँ? तात्पर्य यह है कि जब गृहस्थाश्रम में संसार के अनेक झगड़ोंमें और शास्त्रार्थ जानने के लिये मतमतांतर के झगडोंमें लगा हुआ था तब तो सबका त्यागकर आपके सन्मख हुआ फिर अब आपसे कैसे जुदा हो सक्ता हूँ?

उपोद्घात।

वक्तव्य अर्थ को मनमें रखकर उसकी संगति के लिये प्रथम और कथा कहना उसको उपोद्घात कथा कहते हैं,तात्पर्य गीता और गीता पर टीका जैसी और जिसवास्ते बनी सो कथालिखतेहैं,बिना उपोद्घात कथा सुने गीताका तात्पर्यार्थ समझमें न आवेगा सोई सुनो,श्रीमत्परम परमहंसपरिव्राजश्रीस्वामीमलूकगिरिजीमहाराज मुझ आनंदगिरि इस सज्जनमनोरंजनी टीकाकारकेगुरुदेवहैं,उनके चरणकमलोंकापूजनेवाला मैं अनुचर शिष्य हूं और श्री पंडितराज पंडितजी श्री मोहनलालजी महाराज रहने वाले कुरुक्षेत्रांतर्गत कपिस्थलनगरके मेरे विद्यागुरु हैं सुयश(कीर्ति)और माहात्म्य इन दोनों महामुनीश्वरों का वर्तमानकाल के महात्मा सज्जनलोक सबही जानते है मैं क्या लिखूं?ये दोनों महाराज वर्तमानकालमें साक्षात श्रीवेदव्यास भगवान् और श्रीभगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य महाराज है,इनदोनों महाराजके और श्रीकृष्णचन्द्र

महाराजऔरश्रीस्वामीआत्मगिरिजी महाराजके कृपासहायसेऔरअन्य महापुरुषोंके भी सहायसे मुख्य बीबीबीराब्राह्मणी प्रसिद्ध बीबी झुनियां देवीके निमित्त यहभाषाटीका बनाई है,जिसबीबीबीराने श्रीवीरबिहारीजी महाराज और श्रीवीरेश्वरमहादेवजीमहाराजका मंदिर सिकन्दरा-वादमेंबनाकर और विधिवत् सं० १६२७में प्रतिष्ठा करके जो कुछ द्रव्य उसके पास था, जिस जगह उसका सत्त्व था, जो उसको आश्रय था समस्त महाराज को समर्पणकरके उसी दिन विधिवत [सर्वस्वदान का संकल्प कर दिया,एक पुरानी धोती अपनेपास रक्खी और कुछ अपने पास नहीं रक्खा, फिर श्रीबृन्द्रावन में जाकर बास किया, पहिले भी पुष्करादि बहुततीर्थों का सेवनकिया,श्रीजगन्नाथस्वामी श्रीकेदारनाथ बदरीनारायण स्वामी और श्रीनाथजी इनका दर्शन किया ऐसे ऐसे पुण्य करनेसे उनकाअन्तःकरण शुद्धहुआ और भगवत्तत्त्व जानने की उनको इच्छा हुई सुख पूर्वक उनको ब्रह्मतत्त्व जाननेके लिये मुख्य बीबी बीरा ब्राह्मणीके निमित्त यह टीका बनाई गई है, विशेष करके शंकर-भाष्य और आनन्दगिरिजीके टीकानुसार मैंने अर्थ लिखा है और किसी किसी जगह मैंने श्रीधरी टीकानुसार और किसी किसी जगह महापुरुषोंके मुखारविंदका श्रवण किया हुआ अर्थ और किसी किसी जगह अपनी बुद्धिके अनुसार भी लिखा है श्रीकृष्णचन्द्रका अर्जुन से जैसा संवाद हुआ प्रथम सो सुनना अवश्य है, इस वास्ते वो प्रसंग लिखते हैं, श्रीकृष्णचन्द्र महाराजजीके अर्जुन परमभक्त थे, अर्जुन को बिना ब्रह्मज्ञान युद्धके प्रारम्भ समय शोक मोह होगयाश्रीमहाराज उस समय अर्जुनकेपास थे जान गये कि अज्ञानसे इसको यह शोक मोह हुआ है, ब्रह्मज्ञान सुनाने से दूर होगा यह विचार कर परम-करुणा की खान श्रीभगवान् के समस्त वेदों का सार ब्रह्मज्ञान

साधनोंके सहित उपदेश कर स्वधर्ममें स्थित कर दिया, क्योंकि बिना स्वधर्मका अनुष्ठान किये और बिना अंतरंग उपासना कियेब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति नही, ऐसे विक्षेप समय श्रीमहाराजने जो यह ब्रह्मज्ञान अर्जुन को उपदेश किया इसका तात्पर्य यह है, कि कोई वक्ता तो ऐसी रीति से कथा कहते हैं कि जो श्रोताका चित्त भलेप्रकार एकाग्र हो.तब वक्ता का तात्पर्य समझ में आता है और किसी वक्ताकी कथा विक्षिप्त चित्त कूं भी एकाग्र करदेती है.सिवाय इसके महत्पुरुषों के वाक्यमें सामर्थ्य होताहै. श्रीमहाराजने अर्जुनको ऐसी रीतिसे उपदेश किया कि विक्षिप्तचित्तभी एकाग्र होजावे. महात्मा सर्वज्ञजन देशकालवस्तु के सहित अधिकार समझकर कहते हैं. वेदोंमें जो विस्तारपूर्वक ब्रह्मविद्या का निरूपण है वहां देशकालवस्तुके सहित अधिकार देखना चाहिये और गीतामें संक्षेप करके जो ब्रह्मज्ञान निरूपण किया है यहांभी देश कालवस्तु के सहित अधिकार देखना योग्य है. सत्ययुग द्वापर त्रेता कालमें ब्राह्मण और राजा वनमें वास करके तपसे पापोंका नाशकर ब्रह्मविद्याका विचार करते थे अवस्था उनकी बहुत होती थी. रोगी कम होते थे. उनके वास्ते वेदोंमें विस्तारके सहित ब्रह्मविद्याका उपदेश युक्त है. दूसरा यह कि उपदेश समष्टि के वास्ते है किसी एक अपने प्यारेके वास्ते नहीं कि वो जोविचार२ अर्थ लिखा जावे और यह उपदेश एक अपने प्यारे सखा परम भक्तके वास्ते है इस हेतु से श्री महाराजने बहुत विचारके सहित यह गीताग्रंथ कहा है सिवाय इसके श्रीमहाराजने यह भी समझा कि अर्जुनसे ऐसी रीतिके साथ कहना चाहिये कि जो शीघ्र अर्जुनके समझमे आजावे नहीं तो प्रथम हँसी हमारीहै. क्योंकि, "वक्तुरेव हि तज्जाड्यं यत्र श्रोता न बुद्ध्यते ॥" तात्पर्य कहने- वालेकी भाषा अच्छी नहीं कि जो श्रोता नहीं समझता है. अब भलेप्रकार विचार करना योग्य है कि, यह गीताग्रंथ कैसा

उत्तमहै कि जिसके वक्ता श्रीकृष्णचंद्रमहाराज पूर्णब्रह्म और श्रोता अर्जुन और वेदव्यासजी कर्ता हैं इन तीनोंकी महिमा जगत्में प्रसिद्ध है. परमकरुणाकर श्रीदेवव्यास नागरने यह विचारकर कि विशेषकरके कलियुगमें लोग मन्दबुद्धि आलसी कुतर्की मन्दभाग्य कम अवस्था वाले और रोगी ऐसे होंगे और खेती बनिज नौकरी और भिक्षा इन चारप्रकारकी आजीविकाहीमें दिनरात्रि खोवेंगे उनके उद्धारके वास्ते भी यत्नकरदेना योग्य है.क्योंकि कलियुगमें वेदोंका का पढना सुनना तो पृथक् रहा.वेदोंकी पोथियां भी वास्ते प्रमाण देनेके मिलनी कठिन होंगी. जो अर्थ जिसके मनमें आवेगा संस्कृतकी भाषाकीपोथी बना कर कह दिया करेगा कि यहग्रंथ अनादि है वा वेदोंके अनुसारहै। उसी रास्तेपर मूर्ख(अनजान) चलने लगेंगे, वो समय अब वर्तमान होरहा हैं.कैसे कि असंख्यत नाममात्रके पंडितोंने वेदकी पोथीभी नहीं देखी और बात तो वेदोंका प्रमाण देकर बोलते हैं. प्रत्युत बहुत लोग वेदों से भी परेकी बात कहते हैं और जो जो झगडे (उपाधि जल्प वितंडा) जीवोंके आपसमें परमार्थका निर्णय करनेके लिये फैल रहे हैं सो प्रसिद्ध हैं, एकजीवका एकजानी शत्रु होरहा है और अनेक पुरुषोंकी इस झगड़ोंमें जान जाती रही और परमार्थकेजगे परमानर्थ फैल गया तात्पर्य ऐसी २ व्यवस्थासमझकर व्यासजीने श्रद्धावानों के लिये उसी अर्थको कि जो श्रीभगवान् ने युद्धके प्रारंभसमय अर्जुन कूं उपदेश किया था उसीको सबसे श्रेष्ठ समझकर युक्तिके साथ सात सो ७०० श्लोकों में लिखकर श्रीभगवद्गीताउपनिषद् उन भगवद्गीता मंत्रों का नाम रक्खा और उसके अठारह अध्याय किये हर एक अध्याय के अंत में श्रीभगवद्गीता उपनिषद्ब्रह्मविद्या योग शास्त्र उसे ग्रंथ कूं लिखा. तात्पर्य यह ग्रंथ योग शास्त्र

भोग शास्त्र नहीं और इसमें ब्रह्मविद्या का निरूपण है कर्म उपासना और योग इनको इस ब्रह्मज्ञानका साधन कहाहै और यह श्रीभगवान्के कहे हुए उपनिषद्हैं सब श्लोक इसग्रंथके मंत्रहैं और रचा के लिये इस ग्रंथकूँ महाभारतमें जमाया.उन सातसो मंत्रोंमें बहुत मंत्र तो साचात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीके मुखारविंदसे प्रगट हुए हैं और श्लोक व्यासजीके बनायेहुएहैं . इस गीताके श्लोकका चौथाभाग अर्द्ध-भागभी मंत्रहै इस हेतुसे मंत्र शास्त्रवाले इस गीताकूं मालामंत्र कहतेहैं और मंत्रशास्त्रके ज्ञाता विधिपूर्वक पाठ करते हैं,जो सकाम पाठ करते हैं उनकूं तो मनोवांछितफल प्राप्त होताहै और जो निष्काम पाठ करते हैं उनका अन्तःकरण शुद्धहोकर ब्रह्मज्ञानद्वारा उनकूं परमानंदकी प्राप्ति होती है,गीतामाहात्म्यके ग्रंथ बहुतहैं उनमें एक एक अध्यायके श्रवण और पाठ करनेका महात्म्य और अर्द्ध अर्द्धार्द्ध श्लोकोंके पढ़ने सुन-नेका माहात्म्य जुदा २ इतिहासोंके सहित लिखाहै, उन ग्रन्थोंसे प्रतीत होता हैकि असंख्यातपापी अंत्यज और दुराचारी प्रत्युत पशुपची भूत प्रेत और राचासादि गीताजीके एक २ अध्याय आधे आधे श्लोककूं पची राचासोंके मुखसे अनजानमें अश्रद्धापूर्वक श्रवणकरके और गीता पाठीके चिताके धूमका और उसके देहके भस्मका स्पर्श करके और उसके अस्थिसंबंधी जलका स्पर्श करके अन्तकालमें परमपदको प्राप्त हुए, यहां कैमुतिकन्याय है कि जो अधिकारी विधि श्रद्धासहित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंसे पढ़ते सुनते हैं वे मुक्तहो जावें तो इसमें क्याकहनाहै जिसको इतिहासोंके सहित गीता माहात्म्यके श्रवण करने की इच्छा होवेतो पद्मपुराणमें पृथक्२अठारह अध्यायोंके अठारह माहात्म्यहैं उनमें लचमीनारायणका और सदाशिवपार्वतीजीका संवादहै और स्कन्दादि पुराणोंमें भी बहुतहै सिवाय इसके प्रत्यचप्रमाणमें किसी और प्रमाण की कुछ इच्छा नहीं होती बहुत महात्मा वर्तमानकालमें प्रत्यच देखलो

किजो केवलगीताजीके प्रतापसे महात्मा संत साधु सज्जन होगयेहैं,इस गीतापर बावन टीका प्रसिद्धहैं और दो भाष्यहैं एक तो हनूमानजीका बनायाहुआ और दूसरा श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकराचार्यजीका बनायाहुआ जिसपर श्रीस्वामी आनन्दगिरजीका टीका है और हनूमानभाष्यपर श्रीमहाराजपंडितराज मोहनलालजीका टीका है और श्रीसंप्रदाय और माधवीसंप्रदाय और निंबार्कसंप्रदायवालेभी अपने आचार्योंके किये हुये भाष्य गीतापर कहते हैं सो उन भाष्यकूँ उनके संप्रदायवाले पढ़ते सुनते हैं, इसीप्रकार बावनटीका से सिवायभी टीका हैं,कम नहीं, और देशीभाषामें और यामिनी भाषामें भी बहुतहैं और इस ग्रन्थमें किसी प्रकारका संशय नहीं,जैसे कोई मनुष्यकृत श्लोककूं श्रुति स्मृति बता देताहै और कोई श्रुतिस्मृतिको मनुष्यकृत बता देता है जैसे श्रीमद्भागवतकूं कोई कहते हैंकि यही व्यासकृत है और कहते हैं कि भगवतीभागवत व्यासकृत है, यह मनुष्यकृत है, तात्पर्य गीता ऐसा ग्रंथ नहीं,इस ग्रन्थकूं अन्यद्वीपोंके निवासी भी सब ग्रंथोंसे श्रेष्ठ बताते हैं, सिवाय इसके बड़े बड़े पंडित साधु विरक्त षट्शास्त्रोंके पढ़े हुए कि जो राजालक्ष्मीपुत्रादि पदार्थोंका त्याग करके ब्रह्मलोकादिकूं तृणके बराबर समझकर वनवास करतेहैं,बेभी एक पुस्तक गीताजीका अवश्य अपने पास रखते हैं सदा पाठ करते रहतेहैं, तात्पर्य जितनी स्तुति महिमा श्रीभगवद्गीताजीका लिखा जावे बो कमसेभी कमहै जिसकूं परमानंदकी इच्छा हो वह श्रद्धाविधिसहित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंसे गीता पढ़ेसुनेमें नित्य पाठ करे,'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'इस श्लोकसे पूर्व जो नव श्लोक अङ्ग-करन्यासादिके मंत्रहैं, वे सातसौ श्लोकोंकी संख्यासे पृथक् (सिवाय) हैं उनके सहित पाठ करना योग्यहै,धर्मक्षेत्रे यहांसे लेकर दूसरे अध्यायके दश श्लोकतक सत्तावन श्लोक कृष्णार्जुन संवादकी संगतिके लिये हैं, फिर समस्तगीता में मुक्तिका साक्षात्का-

रण जो केवल ज्ञाननिष्ठा उसका वर्णन हैं और ज्ञाननिष्ठाका उपाय जो कर्मनिष्ठा उसका निरूपण है. समस्तगीताशास्त्रमें ये दो निष्ठा हैं. उपासनाका कर्मनिष्ठाहीमें अंतर्भाव है. प्रथमकेछः अध्यायोंमें कर्मकांड का वर्णन हैं, और सातवें अध्यायसे बारहतक उपासनाका बर्णन है, और तेरहसे अठारहतक ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है. जैसे वेदों में कर्म उपासना ज्ञान तीन कांड हैं. ऐसेही गीताजीमें तीन कांड है. ये तीनों परस्पर सापेक्ष है. अर्थात् स्वतंत्र ये तीनों मुक्तिके कारण नहीं. कर्म तो उपासना ज्ञान की अपेक्षा रखता है और उपासना प्रथम कर्म और फिर ज्ञानकी अपेक्षा रखती है और ज्ञान प्रथम कर्मकी और उपासना इन दोनोंकी अपेक्षा रखता है. कर्म करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है. उपासनासे चित्त एकाग्र होताहै. फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है इस प्रकार ये तीनों कांड परस्पर सापेक्ष हैं. इसको क्रमसमुच्चय कह ते हैं. समसमुच्चय इसको समझना न चाहिये क्योंकि एककालमें. एक पुरुषसे कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा इन दोनोंका अनुष्ठान नहीं हो सक्ता. इनका स्थितिगतिवत् विरोध है.कर्ता और अकर्ताभी एककालमें कैसा समझा जावै ? तात्पर्य यह है कि प्रथम कर्मनिष्ठा मुख्यरहती हैं ज्ञान निष्ठा गौण जब कर्मनिष्ठा परिपाक होजाती है तब ज्ञाननिष्ठा मुख्य होजाती है और कर्मनिष्ठा गौण फिर ज्ञाननिष्ठापरिपाक होकर समस्त दुःखोंकूं मलके सहित नाश करके परमानंद को प्राप्तकर देती है. सब संत महंत महात्मा वेदशास्त्रोंका यही सिद्धांत है, यह नियम है कि महावाक्यार्थज्ञानके बिना मुक्ति कभी नही होती और महावाक्यार्थ का ज्ञान तब होता है जब प्रथम पदार्थका ज्ञान हो जावे. महा वाक्यमें तीन पद हैं 'तत् १ त्वम् २ असि ३ तत् और त्वम् इन दो पदोंका अर्थ वाच्य और लक्ष्य भेदसे दोदो प्रकारका है, श्रीभगव-द्गीतामें बिचारना चाहिये कि महावाक्यार्थ किसप्रकार और कहां

निरूपण हुआ सो सुनो,समस्तगीता में महावाक्यार्थही श्रीमहाराजने निरूपण किया है,तत्र तु प्रथमे कांडे कर्मतत्त्यागवर्त्मना ॥ त्वंपदार्थो विशुद्धात्मा सोपपत्तिर्निरूप्यते॥१॥अ०प्रथम कांडमें कर्मकरना उसके फलको न चाहना, संगरहित अर्थात् आसक्ति रहित कर्म करना इस मार्ग करके त्वंपद का अर्थ दो प्रकार का (वाच्यऔर लक्ष) निरूपण किया है,शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप जीव त्वंपद का लक्ष्यार्थ है और अविद्या में कार्य गुणकर्मफल में जो सक्त सो त्वंपदका वाच्यार्थ है ।१। द्वितीयेभगवद्भक्तिनिष्ठावर्णनवर्त्मना भगवानपरमानंदस्तत्पदार्थो बिधीयते ॥२॥ अ०दूसरे कांडमें भक्तिनिष्ठामार्गकरके तत्पदका अर्थनिरूपण किया अर्थात् श्रीभगवान्को परमानंद स्वरूपादिमान् जो कहा सो तो तत्पद का लक्ष्यार्थ है, और सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् कर्त्ता हर्त्तादिस्वरूप भगवतका तत्पदका वाच्यार्थहै ।२॥ तृतीये तुतयोरैक्यं वाकवाक्यार्थो बर्णितः स्फुटः ॥ एवमप्यत्रकांडानांसंबंधोस्ति परस्परम् ॥३॥ अ० तीसरे कांडमें दोनों पदोंकी एकता लक्ष्यार्थ निरूपण की सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञको ही जान तू इत्यादि श्लोकों करके स्पष्ट महावाक्यार्थनिरूपण किया इस प्रकार तीनों कांडों का परस्पर संबन्ध है ॥ ३ ॥

अथ संकेतबर्णन ।

इस टीकामेंजो संकेत हैं उनको प्रथम कण्ठ करलेना योग्य है, क्योंकि हरएक जगह काम पड़ेगा सोई लिखतेहैं मू० यह मूलका संकेत है अ० यह अर्थकासंकेतहै, सि० यह सिवाय संकेत है जो अर्थ मूलपदसे सिवाय श्लोकार्थके बीचमें लिखा है वो ❀ इस फूल के संकेतपर्यंत होगा टी०यह टीकाका संकेतहै, जिस जगह पदका अर्थ भलेप्रकार नहीं लिखा गया उसको फिर टीका में विस्तार सहित लिखा है, पु० यह संकेत पूरण का है पदके पूर्ण करनेके लिये

चकारएवकारादि श्लोकमें प्रायशः लिखे होतेहैं, किसी जगह अर्थ भी देते हैं,जिस जगह पदपूरणार्थ चकरादि होंगे वहां अर्थमें पू० यह संकेत लिखा होगा.उ०यह संकेत उत्थानिका और उपोद्धातकाहै ॥ यह संकेत श्लोकके अंकका है और जिस जगह वाक्य पूर्ण हुआ वहां यह चिह्न. पर्याय शब्द ( ) इसके बीचमें लिखा जायेगा. पाठ करने के समय सि० मू० टी० इन संकेतों को मनमें ही समझ लेना उच्चारण नहीं करना. तात्पर्य इन संकेतोंको छोड़कर शेषका उच्चारण करना योग्यहै. अर्थतो सब पदोंका लिखा जावेगा परन्तु टीका सब पदोंकी न होगी।

देशभाषाकी स्तुति।

प्रथम देशभाषा सुनकर मुझको बोधहुआ है इस हेतुसे मुझको देशभाषा प्रिय लगतीहै, मनुष्य लोकमें देवभाषा तो कोई कोई बोलते समझते हैं, प्रायशः सब प्राकृत (देशभाषा) बोलते समझते हैं, और इस लोकमें यह चाल है कि, जो देवभाषाके ग्रथोंकूं पढाते सुनाते हैं तो अर्थ उनका देशभाषाही में समझाते है और प्रसिद्ध है कि असंख्यात संत महात्मा साधु देशभाषा हीमें भगवतके गुणानुवाद सुनकर भगवत्को प्राप्त हुए और असंख्यातजन वर्त्तमानकाल में भगवत्के सन्मुख हैं, मैं नहीं जानता कि कोई कोई मूर्ख भाषाकी निंदा क्यों करताहै और अपनी हँसी कराकर क्यों पापका भागी होता है ? हँसी तो उसकी ऐसी है कि एक आदमी देशभाषामें कथा बांचता हुआ देशभाषामें अर्थ समझताथा,वोवक्ता देशभाषामें बोला कि देशभाषाका प्रमाण नहीं उसका पढ़ना सुनना निष्फल है, यह सुनकर समझवाले श्रोता सब उठ खडे हुए और देशभाषामें कहने लगेकि वक्ता तो बड़ाही मूर्ख है, यह सुनकर वक्ताको क्रोध आगया, सुनने वालों को नास्तिक मूर्खशूद्र वर्णसंकर ऐसा कहकर देशभाषामें गाली देने लगा,

सुनने वालोंने वक्तासे कहा कि सुनो महाराज ! हमको तो देशभाषा प्रमाण सफल है. गालियोंका फल (दुःख) हमको होता है और तुमको तो देशभाषा प्रमाण नहीं,निष्फलहै,तुमने हमारे कहनेकाक्याबुरा माना? और हमतो तुम्हारे कहनेमें वदतोव्याघात दोष समझ कर और तुमकूं कृतघ्न समझकर उठ खडे हुए जो बोलता है उसीकी बुराई करता है जिस देशभाषाकी कृपासे तुम्हारे अनेक व्यवहार सिद्ध होते हैं उसके उपकारको नहीं मानते हो प्रत्युत असूया करतेहो यह सुनकर वो वक्ता चुप हुआ फिर सब श्रोता उसकी हँसी करते हुए चले गये, अकेले वक्ताजी वक्के रहे और पापका भागी ऐसा होताहै कि जिसे देवभाषा समझनेकी तो सामर्थ्य नहीं उसको देशभाषासे भी हटा देना यह कितना बडा अनर्थहै. इसमें संदेह नहींकि देवभाषा मुमुक्षुके लिये अत्यंत हितकारी है, परंतु मंदमति क्याकरे प्रायशः चारों वर्ण जो अपने परम इष्टदेवमतसे अनजान होरहे हैं और अन्यद्वीप निवासियोंके पंजेमें फँसे चलेजाते हैं इसमें यही हेतु है कि वे लोग तो सब अपनी देशभाषा में इष्ट उपासनाकूं सुनपढ कर शीघ्र समझ लेते हैं, और यह वर्णाश्रमी देशभाषाको निष्फल अप्रमाणहै ऐसा मूर्खोंसे सुनकर पशुवत् बने रहते हैं, तात्पर्य मेरायह है कि जिसको देवभाषाके पढने सुनने समझनेका सामर्थ्यहै वोतो भूलकर भी देशभाषा की पोथियों को न पढ़े न सुने और जोअसमर्थ हैं वे देशभाषाको परम हितकारी समझें, देशभाषामें निंदास्तुति सुनी हुई तो फलदात्री है और भगवत् के गुण सुने हुए सफल क्यों न होंगे ? तात्पर्य देशभाषा बे संदेह प्रमाण (सफल) हैं, अब देश भाषामें परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र महाराजजीके गुणोंको सावधान होकर सुनो, जो पुरुष ब्रह्म विद्याकी प्रक्रियाको न जानता हो वो प्रथम ब्रह्मविद्याकी प्रक्रियाको याद करे जब गीताका तात्पर्य

(सिद्धांत)समझ में आवेगा क्योंकि ब्रह्मवेत्ता वेदांतशास्त्रमें गीतासिद्धांत ग्रंथ है प्रक्रिया के प्रकरण पृथक् है,सज्जनमनोरंजनी इस देश भाषाके टीका से पृथक् ब्रह्मविद्या की प्रक्रिया देश भाषा मेंमेंने भी वर्णनकी है जिसका नाम "आनन्दामृतवर्षिणी" प्रसिद्ध हैउसको इस टीका का अंग और एकदेश (पूर्वभाग) समझना योग्य है जब कि आनंदामृतवर्षिणी प्रक्रिया इस टीका का पूर्वभाग है इसी हेतु से वेदांतसंज्ञा का इस टीका में मैंने निरूपण नहीं किया केवल सिद्धांत पदार्थों का निरूपण कियाहै और इसी हेतुसे सज्जन विद्वान् साधु महात्मा पंडितों से कुछ इसमें प्रार्थना नहीं करी न संबन्धअधिकारी इत्यादिकों का लक्षण लिखचुका हूँ सज्जन साधु अपनी सज्जनता साधुता की तरफ देखकर बिगडी अशुद्ध कविता को भी शुद्ध कर देते हैं और दुष्ट शुद्ध में भी दोष निकाला करते हैं, इन दोनों का यह स्वभाव अनादि और अभङ्ग है, सज्जन तो यहसमझते हैं कि एक पुरुष से जो कुछ प्रयत्न हो सका वो उसने किया हमको सुधार देना चाहिये निर्दोष कविता सर्वज्ञजनों की होती है असर्वज्ञ के कहने में जो दोष प्रतीत होने से उसके समस्त पुरुषार्थ को क्यों नाश करना चाहिये सिवाय इसके यह भी समझना चाहिये कि, मुझको जो यह दोष प्रतीत होता है तो मैं सर्वज्ञ हूं वा अल्पज्ञ हूँ?जो सर्वज्ञ गुण दोषों का निर्णय करे तब तो सबको प्रमाण होता है, नहीं तो निंदक दुष्ट कहलाता है, क्योंकि गुण को गुण और दोष को दोष सर्वज्ञ ही नियम करके कह सक्ता है, जो अल्पज्ञ दोष निकालता है उसके बकने को मूर्ख मानता है, सज्जन हंस के सदृश सारग्राही होते हैं इसी हेतु से निंदक दुष्टों से भी प्रार्थना करना व्यर्थहै, सज्जनों के चरणों को नमस्कार करके सज्जन मनोरंजनी यह श्रीभगवगीता उपनिषदों की टीका अर्थात् श्रेष्ठ-जनों के मन को रञ्जन करने वाली और आनन्द देनेवाली है अब इस टीका का प्रारम्भ करता हूं।

ॐ
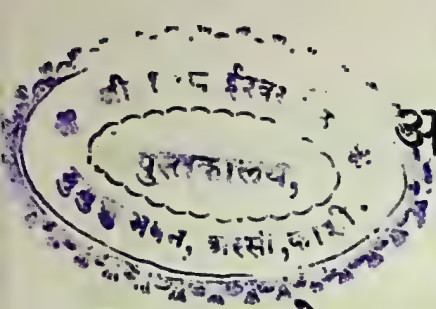
अथ श्रीभगवद्गीता।

भाषाटीकासहिता।

मू०-१ ओम् अस्य श्रीभगवद्गीतामालामंत्रस्य २ श्रीभगवान् वेदव्यासऋषिः ३-अनुष्टुम् छन्दः ४ श्रीकृष्णः परमात्मा देवता ५

अ०-यह ओम् नाम परमात्मा का है वास्ते मङ्गलाचरण के प्रथम इसका उच्चारण करते हैं १इस श्रीभगवदगीतामालामंत्रको २श्रीभगवान् वेदव्यासऋषि३सि०हैं, और इसमालामंत्रका ✻ अनुष्टुपछंद५ सि० हैं, और इस मंत्र कें ✻ श्रीकृष्ण परमात्मा देवता५ सि० हैं ✻

मू०-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥ इति बीजम् ॥ १ ॥

अ०-यह मन्त्र है अर्थ इसका आगे लिखा जावेगा यह बीज १ सि०- है, इस मालमन्त्रका ✻

मू०-सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥ इतिशक्तिः ॥ १ ॥

अ०- यह शक्ति, १ सि०-है, इसकी ✻

मू०- अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः इति कीलकम् १

अ० यह कीलक १सि०- है इसका ✻

अ०-नैनं छिन्दन्तिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकः १ अंगुष्ठाभ्यांनमः १

अ०-यह मंत्र पढकर दोनोंहाथके तर्जनीअंगुलीसेदोनों हाथ के

अगूंठोंका स्पर्श करते हैं, अंगूठेके पास जो उंगली है उसका नाम तर्जनी है । १

मू०-नचैनंक्लेदयन्त्यापोनशोषयतिमारुतः ॥
इतितर्जनीभ्यांनमः १

अ०-यह मंत्र पढ़कर दोनो अंगूठोंसे दोनों तर्जनी उंगलियों का स्पर्श करते हैं. १

मू०-अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योशोष्यएवच ॥
इतिमध्याभ्यांनमः १

अ०-दोनों अंगूठोंसे दोनों मध्यमाका स्पर्श करते हैं । १

मू०-नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयंसनातन ॥
इत्यनामिकाभ्यांनमः १

अ० दोनों अंगूठोंसे दोनों अनामिकाका स्पर्श करते हैं । १

मू०-पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोथसहस्रशः ॥
इतिकनिष्ठिकाभ्यां: १

अ०-दोनों अंगूठोंसे दोनों अनामिका स्पर्श करते हैं । १

मू०-नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिचः ॥
इतिकरतलकरपृष्ठाभ्यांनमः १

अ०-यह मंत्र पढ़कर प्रथम दाहिने हाथके नीचे वाम हाथ रखते हैं फिर बाम हाथके नीचे दाहिना हाथ रखते हैं, यह सब बिधि गुरुके बतलानेसे अच्छी तरह आजाती है ।

यहांतक करन्यास हुआ ।

अब अंगन्यासके मन्त्र लिखते हैं ।

मू०-नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणीतिहृदयायनमः ॥१॥

अ०–यह मंत्रपढ़कर पांचों उंगलियोंसे हृदयका स्पर्श कते हैं। १

मू०–नचैनंक्लेदयन्त्यापइतिशिरसेस्वाहा १

अ०-यह मंत्रपढ़कर पांचों उंगलियोंसे शिरका स्पर्श करते हैं।१

मू०–अच्छेद्योयमदाह्योयमितिशिखायैवषट् १

अ०–यह मंत्र पढकर पांचों उंगलियोंसे चोटीका स्पर्श करते हैं १

मू०–नित्यःसर्वगतःस्थाणुरितिकवचायहुम् १

अ०–यह मंत्रपढ़कर दाहिने हाथसे वामे खवेका और वामे हाथसे दाहिने खवेका स्पर्श करते हैं। १

मू०-पश्यमेपार्थरूपाणीतिनेत्रत्रयायवौषट् १

अ०–दाहिने हाथसे दोनों नेत्रोंको छूते हैं। १

मू० नानाविधानिदिव्यानीत्यस्त्रायफट् १

अ०–यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमा ये दो उंगली वामें हाथकी हथेली पर मारते हैं। १

यहांतक अगंन्यास हुआ।

मू०-श्रीकृष्णप्रीत्यर्थंजपेविनियोगःइतिसंकल्पः १

अ०–यह संकल्प पढ़कर यह चिंतवन करे कि यह पाठ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीके प्रसन्न होनेके लिये करता हूं। १

अथ ध्यानम्।

संकल्पसे पीछे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीका ध्यान करना योग्य है ध्यान–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत ज्योतीश्वर तीर्थ पर दोनों सेनाके बीच में रथपर सवार इस स्वरूपसे श्रीकृष्णचन्द्रभगवान् अर्जुनको ब्रह्मज्ञान सुना रहें हैं, चरणकमलके अंगूठोंमें सोनेके छल्ले पहरे हुये चरणों में कड़े सोनेके पेंजनी चांदी सोनेकी जिसमें पंचरंगी मणि जड़ी हुई, पीली धोती जिसमें रक्त किनारी लगी हुई जिस पर अनेक प्रकार

नानारङ्गोंके बेलबूंटे बनेहुए जिसके चमकसे चंद्रमासूर्यकी ज्योति फीकी प्रतीत होती है, पहर रहे हैं, पंचरंगी बेलदार अङ्गरखा.जिसमें कलाबत्तू और गोटा ठप्पा जगेजगे लगा हुआ है. नीचे उसके रक्त कुरता पहरे गलेमें पंचरंगी मणि मोतियोंकी माला और नानारङ्गके फूलोंकी माला पहर रहे हैं. हाथोंमें सोने चांदीके छल्ले अंगूठी कड़े पहुँची बाजूबंद जड़ाऊ पहर रहे हैं. गुलनारी दुपट्टेसे कमर कसीहुई. घूँगरूवाले बालोंमें अतर फुलेल पड़ा हुआ. शिरसे बसंती दुपट्टा किनारीदार बंधा हुआ. कानोंमें तीन तीन बाले रक्त श्वेत हरित मोतियोंके सहित लटक रहे हैं. एक हाथमें तो छड़ी शोभित दूसरेमें ज्ञानमुद्राबनाये हुए१४-१५ वर्षकीसीअवस्था प्रतीतहोती है.मंदमुसकानसहित अर्जुनको समझाते हैं. बिजलीकी तरह दांतोकी चमक प्रातःकालके सूर्यवत् होठोंपर लाली.कमलवत् बड़े बड़े नेत्रहैं जिनके. जिनमें सुरमा लगाहुवा रक्त डोरे खींचेहुए हैं भराहुआ चेहरा चौडी उभरी हुई छाती है जिनकी. नीलकमल नीलनीरधर नीलमणिवत् रङ्ग है जिनका. जिनमें उत्कट लाली झलक रही है. प्रसन्नमुख मस्तकपर प्रातिपदिक चंद्रवत् तिलक धारण कर रक्खा है जिन्होंने. ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे मनमें वास करो.

मू०-पार्थायप्रतिबोधितांभगवतानारायणेनस्वयं
व्यासेनग्रथितांपुराणमुनिनामध्येमहाभारते॥
अद्वैतामृतवर्षिणींभगवतीमष्टादशाध्यायिनी-
मम्बत्वामनसादधामिभगवद्गीतेभवद्वेषिणीम्॥

अ० अम्ब १ भगवद्गीते२ त्वा ३ मनसा ४ दधामि ५ नारायणेन ६ भगवता ७ स्वयम् ८ पार्थाय ९ प्रतिबोधिताम् १० महाभारते ११ मध्ये १२ पुराणमुनिना १३ व्यासेन १४ ग्रथिताम् १५ अद्वैतामृतवर्षिणीम्

१६ भगवतीम् १७ अष्टादशाध्यायिनीम् १८ भवद्वेषिणीम् १९॥१॥ अ० हे माता १ हे भगवद्गीते २ तुमको ३ मनकरके अर्थात् मनसे ४ धारण करताहूं५ सि०हृदयमें, कैसी हो तुमको कि जो❀ नारायण भगवान्ने ६।७ आप८ अर्जुन९से कही १० सि० और ❀महाभारतके मध्यमें ११।१२ प्राचीन मुनि व्याससे १३।१४गूंदी १५ तात्पर्य व्यासजीने महाभारतके छटे भीष्मपर्वमें श्रीभगवद्गीता ब्रह्मविद्या कहीहैं १५ सि० कैसी हो तुम. हे भगवद्गीते ❀ अद्वैत अमृत वर्षता है जिसमें १६ सि० पुनः ❀ भगवती १७ सि० पुनः ❀ अठारहअध्याय हैं जिसमें १८ सि० पुनः ❀ संसारसे द्वेष है जिसका. १९ सि०ऐसी तुम हो ❀ टी० भगवान्ने जो कहे उपनिषद् उनको भगवद्गीता उपनिषद् कहते हैं. व्याकरणकी रीतिसे संबोधनमें ऐसा बोलतेहैं कि हे भगवद्गीते ! बहुत जगह इसी प्रकार अक्षरोंका बदल हो जाता है. जैसे माताका हे माता ! १।२ पूर्णब्रह्मका नाम नारायणहै.भगवान्का विशेषण है.छः ऐश्वर्य वीर्य यश लक्ष्मी ज्ञान वैराग्य इन छहोंका नाम भग है. जिसमें ये पूर्ण हों सो भगवान् और स्त्री हो तो भगवती अथवा उत्पत्ति नाश गति अगति विद्या अविद्या इन छहोंको जो जानता है सो भगवान् या भगवती यह ग्रंथ पूर्णब्रह्म भगवान्का कहा हुआहै इस हेतुसे बहुत प्रमाणहैं ७ भेदवादी जीवब्रह्मके भेदको सिद्धांत कहते हैं उसका खंडन करनेके लिये यह विशेषणहै १९ उन्नीसवें पदका यह अर्थ प्रतीत होता है कि गीता और संसारका वैर है परन्तु यह नहीं प्रतीत होता था कि दोनोंमें बलवान् कौनहै? इसबास्ते यह विशेषणहै१७तात्पर्य इस श्लोकका यहहै कि गीताजीका पढ़नेवाला पाठ करनेवाला प्रथम गीताजीका ध्यान और स्तुति करताहै हे गीते! तुमको साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनसे कहीऔर व्यासजीने महाभारतके बीचमें लिखी तुम मातासे भी सिवाय हित चाहनेवाली दुखरूप संसारका नाश करनेवाली ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादि करके युक्त

हो अठारह विद्यामें जो अर्थ है सोई तुम्हारे अठारह अध्यायोंमें है उस अर्थके विचारने से सब वेदों का सिद्धांत अद्वैत (जीवब्रह्मकी एकता) है उसका अपरोक्षज्ञान होजाता है, इसवास्ते हे माता! तुमको मैं मनसे अपने हृदयमें धारण करता हूं ॥१॥

मू०-नमोस्तुतेव्यासविशालबुद्धेफुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र
येनत्वयाभारततैलपूर्णःप्रज्वालितोज्ञानमयःप्रदीपः॥२॥

व्यास १ बिशालबुद्धे २ फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ३ ते ४ नमः ५ अस्तु ६ येन ७ त्वया ८ भारततैलपूर्णः ९ ज्ञानमयः १० प्रदीपः ११ प्रज्वालितः १२ ॥ २ ॥ अ० हे व्यास १ हे विशालबुद्धे २ हे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ३ आपके अर्थ ४नमस्कार ५ हो ६ जिन ७ आपने ८ भारततैल करके पूर्ण ९ ज्ञानरूप १० दीपक ११ प्रज्वलित किया (जलाया) १२ ॥ टी० बडी बुद्धि है जिनकी २ फूले कमलके लम्बे पत्रवत् नेत्र हैं जिनके ३ इन दो बिशेषणों का तात्पर्य यह है कि भूत भविष्यत् वर्तमान काल की व्यवस्था व्यासजी सर्व देखते समझते हैं क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं ॥ २ ॥

मू०—प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ॥
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥३॥

कृष्णाय १ नमः २ प्रपन्नपारिजाताय ३ तोत्रवेत्रैकपाणये ४ ज्ञानमुद्राय ५ गीतामृतदुहे ६ ॥ ३ ॥ अ०—श्रीकृष्णचंद्रमहाराज जीको नमस्कार २ सि०—है. कैसे हैं श्रीमहाराज ❀ भक्तों के लिये कल्पवृक्ष ३ सि० हैं. :पुन ❀ छड़ी वेत की एकहाथ में है जिनके ४ सि० पुनः ❀ ज्ञानमुद्रा है जिनकी. अर्थात् तर्जनी उंगली से अँगूठा मिलाये हुये अर्जुन को समझाते हैं ५ गीतारूप अमृत दुहा है जिन्होंने ६ ॥ ३ ॥

मू०—सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ॥
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धंगीतामृतंमहत ॥४॥

सर्वोपनिषदः १ गावः २ दोग्धा ३ गोपालनंदनः ४ पार्थः ५ वत्सः ६ सुधीः ७ भोक्ता ८ दुग्धं ९ गीतामृतम् १० महत ११ ॥४॥ अ० सब उपनिषद् १ गौः २ अर्थात् गौके सदृश हैं. २ दोहने वाले ३ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी ४ अर्जुन ५ बच्छा ६ सुन्दर बुद्धिवाला ७ पीनेवाला ८ दूध ९ गीतारूप अमृत १० सि० कैसा है यह. ❀ बड़ा ११. तात्पर्य श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजी ने सब उपनिषदों का सारासार अर्थ अर्जुन को निमित्त करके शुद्धान्तः करणवालोंके लिये कहा है. गीताजी का अर्थ जानकर फिर संदेह नहीं रहता इस वास्ते महत् विशेषण है और फिर गीता पाठी शरीर धारण नहीं करता, इस वास्ते अमृत विशेषण है ॥ ४ ॥

मू०—वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ॥
देवकीपरमानंदं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥५॥

कृष्णम् १ वंदे २ जगद्गुरुम् ३ वसुदेवसुतम् ४ देवम् ५ कंसचाणूरमर्दनम् ६ देवकीपरमानंदम् ७॥५॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीको १ नमस्कार करता हूँ मैं. २ सि० कैसे हैं श्रीमहाराज ❀ जगत्के गुरु ३ वसुदेवजीके पुत्र ४ ज्ञानस्वरूप अथवा दीप्तिमान् मूर्तिवाले ५ कंसचाणूरके मारनेवाले ६ देवकीजीको परमानंदके देनेवाले ७ इस श्लोकमें किशोर अवस्थाका ध्यान हैं ॥५॥

मू०—भीष्मद्रोणतटाजयद्रथजलागान्धारनीलोत्पला
शल्यग्राहवती कृपेणवहनी कर्णेन वेलाकुला ॥
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी
सोत्तीर्णाखलुपांडवैःकुरुनदी कैवर्तकेकेशवे ॥६॥

केशवे १ कैवर्तके २ खलु ३ पांडवैः ४ सा ५ कुरुनदी६ उत्तीर्णा ७ भीष्मद्रोणतटा ८ जयद्रथजला ९ गांधारनीलोत्पला १० शल्य ग्राहवती ११ कृपेण १२ वहनी १३ कर्णेन १४ वेलाकुला १५ अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा १६ दुर्योधनावर्तिनी १७ ॥ ६ ॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी मल्लाह हुयेसंते २ अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र मल्लाह होनेसेही १ । २ निश्चय ३ पांडवनने ४ सो ५ करुनदी उतरी ६ । ७ अर्थात् पांडवनने कुरुवंशी दुर्योधनादिको जीता ७ सि० कैसी है वो नदी ?❀भीष्म और द्रोणाचार्य किनारे हैं जिसके ८ जयद्रथ है जल जिसमें. ९ गांधारीके पुत्र नीले कमल हैं जिसमें. १० शल्य ग्राह है जिसमें. ११ कृपाचार्यकरके १२ वहनेवाली १३ कर्णकरके १४ वेलाव्याप्त होरही है जिसमें १५ अश्वत्थामा और विकर्ण घोर मकर हैं जिसमें १६. दुर्योधन चक्र है जिसमें १७ तात्पर्य श्रीकृष्णचंद्र महाराजजी पांडवोंके सहायकरने वाले थे तब पांडवनने कौरवो को जीता ॥ ६ ॥

मू०-पाराशर्य्यवचःसरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं
नानाख्यानककेसरंहिकथासम्बोधनाबोधितम् ॥
लोकेसज्जनषट्पदैरहरहःपेपीयमानं मुदा भूया-
द्भारतपंकजंकलिमलप्रध्वंसिनःश्रेयसे ॥७॥

भारतपंकजम् १ नः २ श्रेयसे ३ भूयात् ४ कलिमलप्रध्वंसि ६ पाराशर्य्यवचःसरोजम् ६ अमलम् ७ गीतार्थगन्धोत्कटम् ८ नाना ९ आख्यानककेसरम् १० हरिकथासंबोधनाबोधितम् ११ लोके १२ सज्जनषट्पदैः १३ अहरहः १४ मुदा १५ पेपीयमानम् १६ ॥ ७ ॥ अ०भारतरूप कमल १ हमारे २ कल्लाणके अर्थ ३ हो ४ अर्थात् हमारा भला करो २। ३ ।४ सि० कैसाहै सो भारत कमल. ❀ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला ५ व्यासजी के वचनरूपरस में

जैसा है,६सि० पुनः❀निर्मल७गीताका जो अर्थ सोई उत्कट तीव्र गं
है जिसमें ८ नाना भांतिकी (तरह तरहकी ६ कथा(केसर) हैं जिस
१० हरिकथा संबोधनों करके जागरहा है, ११ अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र
महाराजके कथाका जो ज्ञान समझना उस करके खिला हुआ है, १
जगत्में१२ सज्जनरूप भ्रमर१३ आनन्द पूर्वक १४ दिनदिन प्रति
(नित्य) १५ सि० उस कमलके रसको❀पीते १६ तात्पर्य जिस महा
भारतमें भगवत्संबंधी कथा है और जिसके बीचमें श्रीभगवद्गीत
विराजमान है जिसको श्रेष्ठलोग पढ़ते सुनते है आनन्दसहित ऐस
निर्दोष महाभारत हमारा भला करै ॥ ७ ॥

मू०-मूकंकरोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ॥
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ ८ ॥

अहम् १ तम्२ परमानन्दमाधवम् ३ वंदे ४ यत्कृपा५ मूकम् ६
वाचा७ अलम्८ करोति६पंगुम् १० गिरिम् ११ लंघयते १२ ॥८॥
अ० मैं १ तिन परमानंदस्वरूपलक्ष्मीजीके पतिको ३ नमस्कार करत
हूँ ४ जिनकी कृपा ५ गूंगेको-६ वाणीकरके ७ पूर्ण ८ करदेती
६ अर्थात जिनकी कृपासे गूंगा तरहतरहके शब्द बोलने लगता
६ सि० और ❀ पंगु १० पहाड़ ११ उलंघ जाता है १२ अर्था
जिनकी कृपा लंगडेको पर्वतका उल्लंघन करा देती है १२ ॥८॥

मू०-यंब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतःस्तुन्वान्तिदिव्यैःस्त
वैर्वेदैःसांगपदक्रमोपानिषदैर्गायान्तियंसामगाः ॥
ध्यानवास्थिततद्गतेनमनसापश्यन्तियंयोगिन
यस्यान्तंनविदुःसुरासुरगणादेवायतस्मैनमः॥९

ब्रह्मवरुणेन्द्ररुद्रमरुतः १ दिव्यैः २ स्तवैः३ यम् ४ स्तुन्वन्ति
५ सामगाः ६ साङ्गपदक्रमोपनिषदैः ७ वेदैः ८ यम्६ गायन्ति १

योगिनः ११ ध्यानावस्थिततद्गतेन १२ मनसा १३ यम् १४ पश्यन्ति १५ सुरासुरगणाः १६ यस्य १७ अन्तम्१८न१९विदुः२० तस्मै २१ देवाय२२ नमः२३॥९॥अ० ब्रह्मा वरुण इन्द्र रुद्र मरुतदेवता १ दिव्य २ स्तोत्रोंकरके ३ जिसकी ४ स्तुति करते हैं ५ सामवेदके गानेवाले ६ अङ्ग पद, क्रम और उपनिषद इनसहित ७ सि० जो वेद हैं तिन ❀ वेदोंकरके ८ जिसको ९ गाते हैं १० योगी ११ ध्यानमें मनको ठहरायकर तद्गत १२ मनकरके १३ अर्थात् १३ परमेश्वरमें मनप्राप्तकरके अर्थात् लगाकर १३ जिसको १४देखते हैं१५ देवता और असुरोंके गण १६ जिसके १७अन्तको१८नहीं१९जानते २०तिस २१ देवताके अर्थ २२ नमस्कार २३ सि० है ❀ ॥९॥

इति ध्यानम्।

यह अध्याय समाप्त हुआ।

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

मू०-धृतराष्ट्रउवाच॥धर्मक्षेत्रेकुरुक्षेत्रेसमवेतायुयुत्सवः॥ मामकाःपांडवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रः १ उवाच २ अ० धृतराष्ट्र१बोलताभया२अर्थात् राजाधृतराष्ट्र संजयसे यह बोला १ । २ संजय १मामकाः२ च ३पांडवाः४ एव ५ धर्मक्षेत्रे ६ कुरुक्षेत्रे७समवेताः८ युयुत्सवः ९ किम् १० अकुर्वत ११ ॥१॥अ० हे संजय १मेरे पुत्रादि (दुर्योधनादि) २ और ३ पांडुके पुत्रादि पांडव (युधिष्ठिरादि)४पू०।५ (पादपूरणार्थ यह एवपदहै५) धर्मभूमि६ कुरुक्षेत्रमें७ इकट्ठे होकर८युद्धकी इच्छा करनेवाले ९ क्या १० करतेहुए११अर्थात् लड़ाई हुई वा एकता होगई१०॥११। तात्पर्य राजाधृतराष्ट्र नेत्रहीन था इस वास्ते लड़ाई में नहीं गया था संजय

राजाका सारथी राजाके पास रहा, उसको व्यासजीने यह वरदान दे दिया था कि जो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें होगी उसको तुम इसी जगह बैठे हुये साक्षात् देखोगे जो जो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें हुई वो सब संजयने धृतराष्ट्र से कही इस हेतुसे गीतामें राजाधृतराष्ट्र और संजयका भी संवाद हैं,ये दोनों हस्तिनापुरमें रहे अर्थात् श्रीकृष्णार्जुन के संवाद को संजयने धृतराष्ट्रसे निरूपण किया है ॥ ॥

मू०-संजयउवाच ॥ दृष्ट्वातुपांडवानीकंव्यूढंदुर्योधन स्तदा ॥ आचार्यमुपसंगम्यराजावचनमब्रवीत्॥२॥

संजयः १ उवाच २ अ० संजय१बोला२अर्थात् धृतराष्ट्रसे । तदा१ राजा२दुर्योधनः३व्यूढम् ४ पांडवानीकम्५दृष्ट्वा६तु ७आचार्यम् ८ उप संगम्य९वचनम्१०अब्रवीत॥११॥२॥ अ० सि० जिस कालमें दोनों सेना सजकर युद्धके लिये अपने सामने खडी हुई*तिसकालमें१राजा दुर्योधन३सि० चक्रकमलाकारादि*रची हुई४ पांडवोंकी सेनाको ५ देखकर ६ फिर७गुरुको ८पास जाकर ९ सि०यह*वचन१०बोला११ सि० कि जो आगे नवश्लोकोंमें अर्थहै*टी०द्रोणाचार्य शस्त्रविद्याके गुरु हैं ८ तात्पर्य दुर्योधन पांडवनके सेनाको भले प्रकार सजी हुई देखकर मनमें डरा और यह जानाकि जहां यह रचनाहै तो फिर कैसे जीते जावेंगे? जो हमारे गुरु इससे सिवाय रचना रचें तब भला की बात है इस वास्ते राजाके पास जाकर बोला ॥ २ ॥

मू०-पश्यैतांपांडुपुत्राणामाचार्यमहतींचमूम् । व्यूढांद्रुपदपुत्रेणतवशिष्येणधीमता ॥ ३ ॥

आचार्य१पांडुपुत्राणाम् २एताम् ३महतीम् ४चमूम्५पश्य ६ धीमता ७ तव ८ शिष्येण ९ द्रुपदपुत्रेण १० व्यूढाम् ११ ॥ ३ ॥

अ०हे गुरो! १ पांडवनकी २ इस ३ बड़ी ४ सेनाको ५ देखो ६ बुद्धिमान् ७ आपके ८ शिष्य ९ द्रुपदके पुत्रने १० रची है ११. तात्पर्य-आपका शिष्य होकर आपका सामना करता है यह देखिये। ३ ॥ उ० और इस सेनामें जो शूरवीर हैं उनको भी देखलीजिये, क्योंकि यथायोग्य जोड़िके साथ लड़ना चाहिये।

मू०–अत्रशूरामहेष्वासाभीमार्जुनसमायुधि ॥
युयुधानोविराटश्चद्रुपदश्चमहारथः ॥ ४ ॥

अत्र १ शूराः २ महेष्वासाः ३ युधि ४ भीमार्जुनसमाः ५ युयुधानः ६ विराटः ७ च ८ द्रुपदः ९ च १० महारथः ११ ॥ ४ ॥ अ० इसमें अर्थात् इस सेनामें १ सि० जो ❀ शूर २ सि० हैं ❀ बडे बडे धनुष हैं जिनके ३ युद्धमें ४ भीमार्जुनके बराबर ५ सि० नाम उनके ये हैं ❀ युयुधान ६ और विराट ७।८ और द्रुपद ९।१० सि० महारथ यह सबका बिशेषण है,कैसेहै ये महारथ ११ सि० असंख्यात शस्त्रधारियों से जो युद्ध करे और अस्त्रशस्त्रविद्यामें चतुरहो उसकोअतिरथ कहते हैं, और दश सहस्रसेजो अकेला युद्ध करे उसको महारथ कहते हैं, और जो एकसे एक लड़े उसको रथी कहते हैं, इससे कमको अर्द्धरथी कहते हैं ११। ४॥

मू०धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥५॥

धृष्टकेतुः १ चेकितान :२ काशिराजः ३ च ४ वीर्यवान् ५ पुरुजित् ६ कुन्तिभोजः ७ च ८ शैब्यः ९ च १० नरपुंगवः ११ । ५ । अ० धृष्टकेतुः १ चेकितान २ और काशीका राजा ३।४ सि०कैसेहै ये ❀ बलवान् ५ सि० यह सबका विशेषण है ❀ पुरुजित् ६ और कुन्तिभोज ७।८ और शैब्य ९।१० सि० कैसे हैं ये ❀ पुरुषोंमें उत्तम ११ सि० यह तीनों का विशेषण है ❀ ११।५

मू०-युधामन्युश्चविक्रांत उत्तमौजाश्चवीर्यवान् ॥
सौभद्रोद्रौपदेयाश्चसर्वएवमहारथाः ॥६॥

युधामन्युः १ च २ विक्रांतः ३ उत्तमौजाः ४ च ५ वीर्यवान् ६ सौभद्रः ७ द्रौपदेयाः ८ च ९ सर्वे १० एव ११ महारथाः १२ ॥६॥ अ०युधामन्यु १ (पू०२) सि० कैसाहै यह ❀ तेजस्वीसुन्दर ३ और उत्तमौजा ४।५ बलवान् ६ अभिमन्यु ७ और द्रौपदी के पांचों पुत्र ८।९ सि० ये सब १०ही ११महारथ १२ सि० हैं ❀ ॥६॥

मू०अस्माकंतुविशिष्टायेतान्निबोधद्विजोत्तम ॥
नायकाममसैन्यस्यसंज्ञार्थंतान्ब्रवीमिते ।७।

द्विजोत्तम १ अस्माकम् २ ये ३ विशिष्टाः ४ मम ५ सैन्यस्य ६ नायकाः ७ तान् ८ तु ९ निबोध १० ते ११ संज्ञार्थम् १२ तान् १३ ब्रवीमि १४॥७॥ अ०हे ब्राह्मणोंमें उत्तम ! १ हमारे २ सि०सेना में❀जो ३ श्रेष्ठ४ सि० हैं और ❀ मेरे ५ सेनाके ६सि० जो❀सरदार अग्रणी ७ तिनको ८ भी ९ देखिये १० आपसे ११ भलेप्रकार जाननेके लिये लिये १२ तिनको १३ अर्थात् तिनके नाम कहता हूं मैं. टी० अगले श्लोकमें❀१४ तात्पर्य, युद्धसे प्रथमही भलेप्रकार इनको समझलेना चाहिये वास्ते युद्ध करनेके ॥७॥

मू०भवान्भीष्मश्चकर्णकृपश्चसमितिंजयः ॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौदत्तिस्तथैवच ।।८।

भवान् १ भीष्मः २ च ३ कर्णः ४च ५ कृपः ६ च७समितिंजयः८ अश्वत्थामा ९ विकर्णः १० च ११सौमदत्तिः १२ तथा १३ एव १४ १५ ॥८॥ अ० आप १ और भीष्मजी २।३ और कर्ण ४।५ और कृपाचार्य ६।७ समितिंजय ८ अश्वत्थामा ९ और विकर्ण १०।११ सौमदत्ति १२ तैसे १३ ही सि० बहुत शूर वीर हैं ❀ ॥ ८ ॥

मू०—अन्येचबहवःशूरामदर्थेत्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाःसर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

अन्ये १ च २ बहवः ३ शूराः ४मदर्थे ५ त्यक्तजीविताः ६ नाना शस्त्रप्रहरणाः ७ सर्वे ८ युद्धविशारदाः ॥ ६ ॥ अ० सि० जिनके नाम पीछे कहे उन्होंसे सिवाय ❀ और १ भी २ बहुत ३ शूर ४ सि० हैं हमारे सेनामें जिन्होंने ❀ मेरे वास्ते ५ त्यागदी है आशा जीवनेकी६अनेक प्रकारसे शस्त्रचलानेवाले ७ सब युद्धमें चतुर ६सि० हैं❀॥६॥ उ० इसके कहनेसे राजादुर्योधनका जोआशयहै सो कहताहैं.

मू०—अपर्य्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्य्याप्तं त्विदमेतेषां बलंभीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

तत् १ अस्माकम् २ बलम् ३ अपर्याप्तम् ४ भीष्मभिरक्षितम् ५ इदम् ६ तु ७ एतेषाम् ८ बलम् ६ पर्याप्तम् १० भीमाभिरक्षितम् ११॥१०॥ अ० सि० पीछे जो कहा ❀ सो १ हमारा २ बल ३ सि० पांडवनके साथ लडनेको ❀ समर्थ हैं वा बहुत है. ४ सि०क्यों-कि भीष्मजी करके रक्षा किया गया है ५ अर्थात् भीष्मजी हमारे बलकी रक्षा करनेवाले हैं कैसे हैं भीष्मजी वृद्ध होनेसे सूक्ष्मबुद्धिवाले (चतुर)हैं ५ सि० और ❀ यह ६ पू० ७ इनका ८बल ६अर्थात् पीछे जो कहा पांडवनका बल ६ सि०सो ? हमारे साथ लड़नेको ❀ असमर्थ है वा थोडाहै १० सि० क्योंकि संख्या में भी कम हैं और चंचलबुद्धिवाले ❀ भीमकरके रक्षित हैं ११ अथवा हमारा बल पांडवनके साथ लडनेको असमर्थ प्रतीत होता हैं. क्योंकि भीष्मजी सेनापति वृद्ध हैं और वे उभयपक्षी हैं (दोनों तरफ मिले हुये हैं) भीष्मजी प्रत्यक्ष तो हमारे तरफ हैं और जय पांडवनकी चाहते हैं श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये.और पांडवनका बल हमको जीतने को

समर्थ प्रतीत होता है, क्योंकि भीम बलवान् जवान एकपक्षवाला सेनाका सरदार है. सिवाय इसके श्रीकृष्णचन्द्र उनको सहाय करने वाले हैं. टी० ४॥ १० ॥ इन दोनों पदोंका अर्थ बहुत और थोडा या समर्थ और असमर्थ ऐसा दोनों प्रकारका होसकताहै. जो पहले पदका अर्थ और थोडा वा असमर्थ किया जावेगा तो पिछले पदका अर्थ बहुत वा समर्थ किया जावेगा और जो पहले पदकाअर्थ बहुत वा समर्थ किया जावेगा तो पिछले पद का अर्थ थोडा वा असमर्थ किया जावेगा ॥ ४ ॥ १० ॥ १० ॥

मू०-अयनेषुचसर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षन्तुभवन्तः सर्वएवहि ॥११॥

भवन्तः १ सर्वं २ एव ३ हि ४ सर्वेषु ५ च ६ अयनेषु ७ यथाभागम् ८ अवस्थिताः ९ भीष्मम् १० एव ११ अभिरक्षन्तु १२ ॥ ११ अ० सि० मेरी प्रार्थना आपसे यहहै कि ❀ आप १ सब २ [पू० ३] हि ४ सब ५ (पू०) मूर्चोंमें ७ अपने २ ठिकाने पर ८ खडे हुये ९ भीष्मजीकी १० (पू० ११) सब तरफसे रक्षा करते रहिये १२ तात्पर्य ऐसा नहीं कोई भीष्मजीको धोखे से मारजावे. उनके जीते रहनेसे हमारा भलाहै, अथवा ऐसा न हो कि भीष्मजी पांडवन से मिलकर हमारी सेना मरवादें क्योंकि भीष्मजी दुपक्षी प्रतीत होते है. इस वास्ते नित्य उनकी रक्षा करते रहना. ॥११॥ उ० राजा दुर्योधनको द्रोणाचार्यजी से बात करता हुआ देख भीष्मजीने जाना कि राजा को हमारे तरफ से कुछ खटका प्रतीत होता है, इस वास्ते पांडवनसे लडनेके लिये भीष्मजी ने उठकर शंख बजाया.

मू०-तस्यसंजनयन्हर्षंकुरुवृद्धः पितामहः ॥
सिंहनादंविनद्योच्चैः शंखंदध्मौप्रतापवान् ॥१२॥

कुरुवृद्धः १ प्रतापवान २ पितामहः ३ उच्चैः ४ सिंहनादम् ५ विनद्य ६ तस्य ७ हर्षम् ८ संजनयन् ९ शंखम् १० दध्मौ ११ ॥ १२ ॥

अ०कुरूनमें बडेप्रतापवाले२ भीष्मजी ३ऊंचा४सिंहशब्दवत् ५ शब्द करके अर्थात् बहुत हँसकर६तिसको अर्थात् राजाको७ हर्ष ८ उत्पन्न करते हुई९अर्थात् राजाको प्रसन्न करनेके लिये १० शंख११ बजाते भए १२ ॥ १२ ।

मू०--ततःशंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यन्त सशब्दस्तुमुलोऽभवत् १३॥

ततः १ शंखा २ च ३ भेर्यः ४ च ५ पणवानकगोमुखाः ६ सहसा ७ एव ८ अभ्यहन्यन्त ९ सः १० शब्द ११ तुमुलः १२ अभवत् १३॥१३ ॥ अ० पीछे उसके १ शंख २ और ३ नगारे ४ और ५ ढोल आनक गोमुख६ एकवेर७ ही ८ सि०राजादुर्योधनकी सेनामें❀ सबतरफसेबजतेभये९सो१० शब्द११बड़ा१२ होता भया१३. तात्पर्य जिस समय प्रथम भीष्मजीने शंख बजाया पीछे उसके नानाप्रकारके बाजे बजने लगे टी० ये बाजोंके नाम हैं १३

मू०--ततःश्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ॥
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

ततः१ माधवः२ पांडवः ३ च ४ एव ५ दिव्यौ६ शंखौ७प्रदध्मतुः ८ महति ९ स्यन्दने १० स्थितौ ११ श्वेतैः १२ हयैः १३ युक्ते १४ । १४ ॥ अ० उ० जब राजा दुर्योधनके सेनामें शंखादि बाजे बजे, पीछे उसके १ सि०राजायुधिष्ठिरके सेनामें प्रथम ❀ श्रीकृष्ण-चन्द्र महाराज२और अर्जुन३।४भी५दिव्य (अलौकिक)६ शंखोंको ७ बजाते भये ८ सि० कैसा हैं अर्जुन और श्रीमहाराज कि एक ❀ बडे ९ रथमें १० सवार हैं ११ सि० कैसे है वो रथ ❀ श्वेत१२ घोड़ोंकरके १३ युक्त १४ सि० है, अर्थात् श्वेतघोडे उस रथमें जुड़े हुए हैं ❀ ॥ १४ ॥

मू०--पांचजन्यंहृषीकेशोदेवदत्तंधनंजयः ॥
पौंड्रंदध्मौमहाशंखंभीमकर्मावृकोदरः ॥ १५ ॥

हृषीकेशः १ पांचजन्यम् २ धनंजयः ३ देवदत्तम् ४ वृकोदरः ५ भीमकर्मा ६ पौंड्रम् ७ महाशंखम् ८ दध्मो ९ ॥ १५ अ० उ० जिन शंखोंको माधवादिने बजाया उनके नाम कहते हैं, इंद्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज १ पांचजन्यनामवाले २ सि० शंखको बजाते भये ❀ अर्जुन ३ देवदत्तनामवाले ४ सि० शंखको बजाते भये ❀ भीम भयंकरकर्म है जिसका ५--६ सि० सो ❀ पौंड्रनाम है जिसका जिसका ७ सि० उस ❀ महाशंख को बजाता भया ९ तात्पर्य श्रीमहाराजने पांचजन्य शंख बजाया अर्जुनने देवदत्त शंख बजाया भीमने पौंड्रशंख बजाया ॥ १५ ॥

मू०-अनन्तविजयंराजाकुन्तीपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥
नकुलःसहदेवश्चसुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

कुन्तीपुत्रः १ राजा २ युधिष्ठिरः ३ अनंतविजयं ४ नकुलः ५च६ सहदेवः७सुघोषमणिपुष्पकौ ८ ॥ १६ ॥ अ० कुन्तीके पुत्र १ राजा२ युधिष्ठिर ३ अनन्तविजयनामवाले ४ सि० शंखको बजाते भये ❀ नकुल ५ और ६ सहदेव७ सुघोष और मणिपुष्पशंखको सि०बजाते भये ❀ तात्पर्य राजाने अनन्तविजयशंखवजाया नकुलने सुघोषशंख बजाया सहदेवने मणि पुष्पक शंख बजाया ॥ १६ ॥

मू०-काश्यश्चपरमेष्वासःशिखण्डीचमहारथः ॥
धृष्टद्युम्नोविराटश्चसात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥

काश्यः१ च२ परमेष्वासः३ शिखंडी ४ च ५ महारथः ६धृष्टद्युम्न ७ विराटः ८ च ९ सात्यकिः १० च ११ अपराजितः १२॥१७॥ अ० काशीकाराजा १ [पू०२] श्रेष्ठ है धनुष जिसका ३ और शिखं

डी ४।५ महारथ ६ धृष्टद्युम्न ७ और विराट ८।६ और सात्यकि १०। ११ सि० कैसे ये हैं तीनों ❀ अपराजित १२ सि० हैं ❀ टी० न जीतसके दूसरा जिसको उसे अपराजित कहते हैं, १२ तात्पर्य ये सब पृथक् पृथक् (अपना अपना) शंख बजाते भये. इस श्लोकका अन्वय अगले श्लोकके साथ है ॥ १७ ॥

मू०-द्रुपदोद्रौपदेयाश्चसर्वशः पृथिवीपते ॥
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुःपृथक् पृथक् ॥१८॥

पृथिवीपते १ द्रुपदः २ द्रौपदेयाः ३ च४ सौभद्रः५च६महाबाहुः७ सर्वशः ८ पृथक् ६ पृथक् १० शंखान् ११ दध्मुः १२॥१८॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है. हे राजन् ! १ द्रुपद २ द्रौपदी के पांचों पुत्र ३।४ और अभिमन्यु ५।६ बडी हैं भुजा जिसकी७ सि० य सब और जो पीछे कहे ❀ सब तरफसे ८ पृथक् पृथक् ६ । १० सि० अपने अपने ❀ शंखोंको ११ बजाते भये १२ ॥ १८ ॥

मू०-सघोषोधार्त्तराष्ट्राणांहृदयानिव्यदारयत् ॥
नभश्चपृथिवींचैवतुमुलोऽव्यनुनादयन् ॥१९॥

सः १ घोष २ धार्तराष्ट्राणाम् ३ हृदयानि ४ व्यदारयत् ५ नभः ६ च ७ पृथिवीम् ८ च ६ एव १० तुमुलः ११ व्यनुनादयन् १२ ॥१६॥ अ० सो १घोष २दुर्योधनादि के ३ हृदयको ४ फाडताभया अर्थात् दुर्योधनादि उस शब्द को सुनकर डरे, मारे डरके उनका हृदयकांपने लगा, मानो फटने लगा ५. आकाश ६ और, पृथिवीको ८ व्याप्त करके अर्थात् आकाश और पृथिवीमें ६।७ व्याप्त होकर [पू० ६ । १०] बहुत ११ शब्दपर शब्द होता भया १२ सि० दुर्योधनादिके हृदय को फाडता भया ❀ तात्पर्य पृथिवीसे लेकर आकाशपर्यन्त वह शब्द व्याप्त होगया ॥ १६ ॥

मू०-अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वाधार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥

प्रवृत्तेशस्त्रसम्पातेधनुरुद्यम्यपांडवः ॥ २० ॥ हृषी-
केशंतदावाक्यमिदमाहमहीपते ॥ अर्जुन उवाच ॥
सेनयोरुभयोर्मध्येरथंस्थापयमेऽच्युत ॥२१॥

अथ १ कपिध्वजः २ धार्तराष्ट्रान् ३ व्यवस्थितान् ४ दृष्ट्वा ५ शस्त्रसम्पाते ६ प्रवृत्ते ७ पांडवः ८ धनु ९ उद्यम्य १० ॥ २० ॥ पृथिवीपते १ तदा २ हृषीकेशम् ३ इदम् ४ वाक्यम् ५ आह ६ अर्जुन उवाच—अच्युत ७ मे ८ रथम् ९ उभयोः १० सेनयोः ११ मध्ये १२ स्थापय १३ ॥२१ ॥ अ० उ० बीसवें श्लोक का इकीसवें श्लोकके साथ संबन्ध है. शंखादिका शब्द सुनकर जो व्यवस्था दुर्योधनादिकी हुई सो तो कही. और वही शब्द सुनकर अर्जुन ने जो किया सो संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै. जब दोनों तरफ बाजाबजने लगा. पीछे उसके १ अर्जुन २ दुर्योधनादि को ३ भले प्रकार खडे हुए ४ देखकर ५ शस्त्रों का चलना ६ प्रवृत्त हुआ चाहता था अर्थात् हथियार चलने ही चाहते थे. उस समय ७ अर्जुन ८ धनुष को ९ उठाकर १० अर्थात् तीर कमान दुरुस्त करके सँवारिके १० टी० हनुमानजी अर्जुनकी ध्वजामें रहते थे इस व्युत्पत्तिसे अर्जुनका नाम कपिध्वज है ॥ २० ॥ हे राजन् ! धृतराष्ट्र १ सि० जिस काल में हथियार चलनेवाले थे ❀ तिसकालमें २ श्रीकृष्णचंद्रमहाराजसे ३ यह वाक्य ५ बोला. ६ अर्जुन बोला हे अच्युत ! ७ मेरे रथ ८ को ९ दोनों १० सेनाके ११ बीचमें १२ खड़ा करो १३ टी० भक्ति का प्रताप देखना चाहिये कि भक्त भगवान् पर आज्ञा करते हैं और जो भक्त चाहते हैं वैसा ही श्रीभगवान् करते हैं १३॥ २१ ।

मू०—यावदेतान्निरीक्षेऽहंयोद्धुकामानवस्थितान् ॥
कैर्मयासहयोद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

निरीक्षे६ अस्मिन्७ रणसमुद्यमे८ मया ९ कैः १० सह ११ योद्धव्यम् १२ ॥२२॥उ० कबतक वहां रथ खडाकिया जावे यह शंका करके अर्जुन कहताहै कि, अ० ये जो युद्धकी कामनावाले खड़े हैं इनको१।२। ३ जबतक४ मैं ५देखूं अर्थात् यह मैं देखना चाहता हूंकि ६इस रणके प्रारम्भसमय ७।८ मुझको ९ तिनके १० साथ११युद्ध करना योग्य है १२ तात्पर्य अर्जुनका तमाशा देखनेमें नहीं है १२॥२२॥

मू०-योत्स्यमानानवेक्षेऽहंयएतेत्रसमागताः ॥
धार्तराष्ट्रस्यदुर्बुद्धेर्युद्धेप्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

योत्स्यमानान्१अहम्२अवेक्षे३एते४ये५अत्र६युद्धे७समागताः८ दुर्बुद्धेः९धार्तराष्ट्रस्य१० प्रियचिकीर्षवः११॥२३ अ० सि० इन ❀ युद्ध करनेवालोंको १ मैं २ देखूं सि० ३तो कि❀ये४जो५इस युद्धमें ६।७ आयेहैं ८ सि० कैसे हैं ये ❀ दुष्टबुद्धिवाले दुर्योधनकी ९। १० जय चाहते हैं। ११ ॥ २३ ॥

मू०-संजयउवाच॥एवमुक्तो हृषीकेशोगुडाकेशेनभारत॥
सेनयोरुभयोर्मध्येस्तथापयित्वारथोत्तमम् ॥२४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतःसर्वेषांचमहीक्षिताम् ॥
उवाच पार्थ पश्यैतान्सवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

भारत१गुडाकेशेन २ एवम् ३ उक्तः४हृषीकेशः५ उभयोः६सेनयोः७मध्ये ८ भीष्मद्रोणप्रमुखतः ९ सर्वेषाम् १० च ११ महीक्षिताम् १२रथोत्तमम्१३ स्थापयित्वा १४ इति१५ उवाच१६ पार्थ १७एतान् १८ समवेतान्१९ कुरून्२०पश्य२१ ॥२४।२५ ॥ अ० सि० इन दोनों श्लोकोंका अन्वय एक है ❀ संजय धृतराष्ट्र से कहता है हे

राजन् ! १ अर्जुनकरके२ इसप्रकार३कहेहुये ४ श्रीभगवान् ५अर्थात् अर्जुन ने भगवान से जब यह कहा कि मेरा रथ दोनों सेना के बीचमें खड़ा कीजिये यह सुनकर श्रीभगवान् ५ दोनों सेनाके६। ७बीचमें ८ भीष्म द्रोणाचार्यके औरसामने ९ और सब राजाओं के १०।११। १२ सि० सामने ❀ उत्तम रथको १३ खडा करके १४ यह १५ बोले१६ हे अर्जुन ! १७ इन मिलेहुये १९ कौरवोंको२० देख २१तात्पर्य येसबयोद्धाप्रत्यक्ष हैं इनको तू देख ॥ २४ । २५ ॥

मू०-तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथपितामहान् ॥ आचार्य्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा २६

अथ १ पार्थः२तत्र३पितॄन्४स्थितान्५अपश्यत् ६ पितामहान्७अचार्यन्८ मातुलान्९ भ्रातॄन्१०पुत्रान्११पौत्रान्१२सखीन१३ तथा १४।२६ ॥अ० सि० ढाई श्लोकतक एक अन्वय है❀जब श्रीभगवान्ने कहा कि हे अर्जुन ! देख इनको पीछे उसके १ अर्जुन २ तिस सेनामें ३ चाचा आदिको ४ सि० युद्ध के लिये ❀ खडे हुये ५ देखता भया तात्पर्य अर्जुनने चाचा आदिको देखा पितामहको ७ आचार्योंको८मामाओंको ९ भाइयोंको १०भतीजे आदिकोंको ११ पौत्रोंको १२ मित्रोंको १३सि० जैसे चाचा आदिकोंको देखा अर्जुन ने❀तैसेही १४ सि० आचार्यादिकोंको देखा❀छठे पदवाले क्रियाका सब कर्मों के साथ संबन्ध है ॥ २६ ॥

मू०-श्वशुरान्सुहृदश्चैवसेनयोरुभयोरपि ॥ तान्समीक्ष्यसकौंतेयःसर्वान्बंधूनवस्थितान् ।२७॥ कृपयापरयाविष्टोविषीदन्निदमब्रवीत् ॥ अर्जुनउवाच ॥ दृष्ट्वेमंस्वजनंकृष्णयुयुत्सुंसमुपस्थितम् ॥ २८ ॥ सीदंतिममगा-

त्राणिमुखंचपरिशुष्यति ॥ वेपथुश्चशरीरेमेरोम-
हर्षश्चजायते ॥ २९ ॥

श्वशुरान् १ सुहृदः २ च ३ एव ४ तान् ५ सर्वान् ६ बन्धून् ७ अवस्थितान् ८ समीक्ष्य ९ उभयोः १० अपि ११ सेनयोः १२ सः १३ कौंतेयः १४ ॥२७॥ परया १ कृपया २ आविष्टः ३ विषीदन् ४ इदम् ५ अब्रवीत् ६ अर्जुनः ७ उवाच ८ कृष्ण ९ इमम् १० स्वजनम् ११ युयुत्सुम् १२ समुपस्थितम् १३ दृष्ट्वा १४॥२८॥ मम १ गात्राणि २ सीदन्ति ३ मुखम् ४ च ५ परिशुष्यति ६ मे ७ शरीरे ८ वेपथुः ९ च १० रोमहर्षः ११ च १२ जायते १३ ॥ २९ ॥ अ० ससुरोंको १ और सुहृदोंको २।३ भी ४ सि० देखा अर्जुन ने ❀ तिन ५ सब ६ सम्बन्धियोंको ७ सि० युद्धमें मरने के लिये ❀ जमे हुए ८ देखकरके ९ सि० वे सब कोन हैं ? इस अपेक्षामें यह कहते हैं कि ❀ दोनों १० ही ११ सेनाके १२ सि० संबंधियोंको देखकरके ❀ सो १३ अर्जुन १४ ॥२७॥ परमकृपा करके १.२ युक्त ३ दुःखमें भरा हुआ ४ यह ५ बोला ६ सि० जो अध्याय के समाप्ति पर्यन्त कहना है ❀ अर्जुन ७ बोलता भया ८ हे कृष्ण ! ९ युद्धकी इच्छा करनेवाले अपने सम्बन्धी इनको १० ॥ ११ ॥ १२ सि० रण में मरनेकेलिये ❀ स्थित हुए १३ देखकर १४ ॥२८॥ मेरे १ हाथ पांव आदि अंग २ डीले हुए जाते हैं ३ और मुख ४ । ५ सूखता हैं ६ मेरे ७ शरीर में ८ कम्प ९ और १० रोमावली ११ भी १२ उत्पन्न होती है १३ ॥ २९ ॥

मू०—गांडीवंस्रंसतेहस्तात्त्वक्चैवपरिदह्यते ॥
नचशक्नोम्यवस्थातुंभ्रमतीवचमेमनः ॥३०॥

हस्तात १ गांडीवम् २ स्रंसते ३ त्वक् ४ च ५ एव ६ परिदह्यते ७ अवस्थातुम् ८ न ९ च १० शक्नोमि ११ मे १२ मनः १३ भ्रमति १४

इव १५ च १६॥३०॥अ०सि० मेरे॰हाथसे १गांडीवधनुष २ गिरत
है ३और त्वचा४।५भी६सि०मारे शोकके॰जलती है सि०इस युद्धमें
खड़ा रहनेको ८नहीं समर्थ हूँ मैं ६ । १०।११ मेरा १२मन १३ सि
हो रहा है ॰ भ्रमताहै १४ जैसे १५ है। १६ सि० कोई॰तात्पर्य मे
मनमें नानाप्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं ॥ ३० ॥

मू०-निमित्तानिचपश्यामिविपरीतानिकेशव ॥
नचश्रेयोऽनुपश्यामिहत्वास्वजनमाहवे ॥ ३१

केशव१विपरीतानि२ निमित्तानि३ च४पश्यामि आहवें६ स्वज
नम् ७ हत्वा८ न ६ च १० श्रेयः११अनुपश्यामि १२॥३१॥ अ०
केशव! १विपरीतशकुनोंको २।३ [पू०४] देखताहूँ मैं ५सि० इस
हेतुसे॰युद्धमें ६ अपने संबन्धियोंको ७ मारकर ८ पीछे कल्याण मैं
नहीं देखता हूं ६।१०।११। १२ तात्पर्य अपने संबंधियोंको मारकर
अपना भला प्राप्त नहीं प्रतीत होता ॥ ३१ ॥

मू०-नकांक्षेविजयकृष्णनचराज्यंसुखानिच।
किंनोराज्येनगाविन्दकिंभोगैर्जीवितनवा॥३२॥

कृष्ण १ विजयं २ न ३ कांक्षे ४ राज्यं ५ सुखानि ६ च ७
न ८ च६ गोविंद१० राज्येन ११ किं १२वा १३भोगैः१४जीवितेन१
नः १६किम् १७॥३२॥अ उ० इनको मारकर पीछे तेरी विजय होगी
तुझको राज मिलेगा, सुख होगा, यह भला होगा वा नहीं? यह शंका
करके कहता है, हे कृष्ण ! १ विजय २नही चाहता हूं मैं ४राज्य और
सुखको ५ । ६ भी ७ नहीं ८। ६ सि० चाहता हूँ मैं ॰ हे भगवन्!
१० राज्य करके ११ क्या १२ और १३ भोगों करके १४
जीवन करके १५ हमको १६ क्या ? १७ तात्पर्य न कुछ राज्य

करनेमें आनन्द है. केवल परमानन्दस्वरूप आत्माके यथार्थ जानने ही परमानन्द है ऐसे समझवालेको विवेकी कहते हैं ॥ ३२ ॥

मू०--येषामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगाः सुखानि च ॥
तइमेऽवस्थितायुद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच॥३३॥

नः १ येषाम् २ अर्थे ३ राज्यम् ४ भोगाः ५ सुखानि ६ च ७ कांक्षितम् ८ ते ९ इमे १० युद्धे ११ प्राणान् १२ धनानि १३ च १४ त्यक्त्वा १५ अवस्थिता १६ ॥ ३३ । अ० हमको १ जिनके २ वास्ते ३ राज्य ४ भोग ५ सुख भी ६।७ इच्छित है अर्थात् जिनके वास्ते राज्य भोग सुख हम चाहते हैं ८ वे ९ सि० ही ❀ ये १० युद्धमें ११ प्राणोंको १२ और धनको १३।१४ त्यागकर १५ खडेहैं १६ अर्थात् प्राण और धनकी आशा त्यागकर या प्राण और धन त्यागनेके लिये खड़े हैं । ३३ ॥

मू०–आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैवचापितामहाः॥
मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसम्बन्धिनस्तथा३४॥

आचार्याः १ पितरः २ पुत्राः ३ तथा ४ एव ५ च ६ पितामहा ७ मातुलाः ८ श्वशुराः ९ पौत्राः १० श्यालाः ११ तथा १२ संबंधिनः १३ अ० उ० वे ये हैं गुरु १ चाचा आदि २ भतीजे आदि ३ [पू०]४।५।६ पितामह ७ माम ८ श्वशुर ९ पौत्र १० साले ११ सि० जैसे ये हैं ❀ तैसे ही १२ सि० और ❀ संबंधी १३ सि० हैं ॥ ३४ ॥

मू०--एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥
अपित्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिंनुमहीकृते ॥३५॥

एतान् १ घ्नतः २ अपि ३ न हन्तुम् ५ इच्छामि ६ मधुसूदन ७ त्रैलोक्यराज्यस्य ८ हेतोः ९ अपि १० किम् ११ नु १२ महीकृते १३ ॥ ३५ ॥ अ० इन मारनेवालोंको भी १।२।३ नही ४ मारनेकी ५

इच्छा करता हूं मैं अर्थात् यह जानता हूँ कि दुर्योधनादिक हम
मारेंगे तो भी इनको मारनेकी इच्छा नहीं ६ हे कृष्णचन्द्र !
त्रैलोक्यराज्यके८ हेतुसे९ भी १० अर्थात् जो इनके मारनेमें मुझे
तीनों लोकोंका राज्य मिले तो भी इनको नहीं मरूंगा क्या ११
१२ पृथिवी प्राप्तिकेलिये १३ सि० मारूं ❀ । ३५ ॥

मू०-निहत्यधार्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः॥३६॥

जनार्दन १ धार्तराष्ट्रान् २ निहत्य ३ नः ४ का ५ प्रीतिः ६ स्या
एतान् ८ आततायिनः ९ हत्वा १० अस्मान् ११ पापम् १२ एव
आश्रयेत् १४ ॥ ३६ । अ०हे जनार्दन ! १ दुर्योधनादिको २ मार
३ हमको ४ क्या ५ सुख ६ होगा? अर्थात् किंचिन्मात्र भी सुख
होगा ७ सि० प्रत्युत ❀ इन आततायियोंको ८।९ मारकर
हमको ११ पापही १२।१३ आश्रय है अर्थात् उलटा हमको पा
लगेगा १४. टी० अग्निका देनेवाला, विष खिलानेवाला, शस्त्र हाथ
लेकर मारनेके वास्ते जो आवे, धनका हरनेवाला, खेत मकानादि
हरनेवाला,स्त्रीका हरनेवाला ये छः आततायी कहलाते हैं, दुर्योधन
में ये सब दोष थे. नीतिशास्त्रमें लिखा है कि जो आयतायी सा
आजावे तो सामर्थ्यवान् बिना विचार आततायीको मारडा
मारनेवालेको दोष नही, परंतु इस वाक्यसे विशेषवाक्य धर्मशास्त्र
यह है कि सदोषको भी नहीं मारना. प्रत्युत वाणीसे भी उसको दु
न देना मनमें उनका बुरा करनेका संकल्प करना यही आ
अर्जुनका है । ६ ॥ ३६ ॥

मू०-तस्मान्नार्हावयंहंतुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ॥
स्वजनांहिकथंहत्वासुखिनःस्याममाधव ॥३७॥

तस्मात् १ स्वबान्धवान् २ धार्तराष्ट्रान् ३ हन्तुम् ४ वयम् ५ न

अर्हाः७माधव८ स्वजनम् ९ हि १० हत्वा ११ कथम्१२ सुखिनः१३ स्याम १४॥३७ अ० उ० किसी जीवमात्रको भी मारना अयोग्य है और यह तो दुर्योधनादि हमारे संबंधी हैं.तिसकारणसे१ अपने संबंधी दुर्योधनादिकोंको२।३ मारनेके वास्ते४ हम ५ नहीं योग्य हैं ६अर्थात् इस योग्य हम नहीं कि अपनेही संबंधियोंको मारें ७ हे कृष्णचन्द्र ! ८ अपने संबंधियोंको ९ही १० मारकर ११ किस प्रकार १२ सुखी १३ होंगे ? अर्थात् अपने संबंधियोंको मारकर हमको किसी प्रकार भी सुख न होगा १४ ॥ ३७ ॥

मू०–यद्यप्येतेनपश्यन्तिलोभोपहतचेतसः ॥
कुलक्षयकृतंदोषं मित्रद्रोहेचपातकम् ॥ ३८ ॥
कथंनज्ञेयमस्माभिःपापादस्मान्निवर्तितुम् ॥
कुलक्षयकृतं दोषंप्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

यद्यपि १ एते २ कुलक्षयकृतम्३ दोषम्४मित्रद्रोहे ५ च ६ पातकम् ७ न ८ पश्यंति ९ लोभोपहतचेतसः १० ॥ ३८ ॥ जनार्दन १ कुलक्षयकृतम् २ दोषम्३ प्रपश्यद्भिः४ अस्माभिः५ अस्मात् ६ पापात् ७ निवर्तितुम् ८ कथम् ९ न १० ज्ञेयम् ११ ॥३९॥ अ०उ० जिस पापका तू विचार करता है यह ज्ञान दुर्योधनादिको भी है वा नहीं ? यह शंका करके कहता है . यद्यपि १ ये २ सि० दुर्योधनादि ❀ कुलके क्षय करनेमें (नाश करनेमें) जो दोष है उसको ३।४ और मित्रके द्रोहमें जो पातक हैं उसको ५।६।७नहीं ८ देखते हैं ९ सि० क्योंकि❀लोभ करके मैला होगयाहै अन्तःकरण जिनका१० तात्पर्य दुर्योधनादिका अन्त करण लोभ करके मैला होगया है. इस हेतुसे वे इन दोनों पातकोंको नही समझते हैं सो वे यद्यपि नहीं समझते हैं तो मत समझो ॥ ३८ ॥ सि० परन्तु ❀ हे कृष्णचन्द्र ! १ कुलक्षय-

कृतदोषके २।३ देखनेवाले हमने ४।५ इस पापसे६।७ निवृत्त होनेको ८किसप्रकार९ नहीं १० जाननेको योग्य हैं ? ११तात्पर्य--कुलके नाश करने और मित्रके द्रोहमें जो दोष है उसको हम आपकी कृपासे ज्ञानचक्षु करके देखते समझते हैं हे भगवान्! पापसे निवृत्त होना चाहिये यह हमको जानना योग्य है ॥ ३९ ॥

मू०--कुलक्षयेप्रणश्यन्तिकुलधर्माःसनातनाः ॥
धर्मेनष्टेकुलंकृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

कुलक्षये १ सनातनाः२ कुलधर्माः ३ प्रणश्यंति ४ धर्मे ५ नष्टे६ कृत्स्नम् ७ कुलम् ८ अधर्मः९ अभिभवति १० उत ११ ॥ ४० ॥ अ० कुलके नाश होनेमें १ सनातन कुलके धर्म २।३ नाश होजाते हैं ४ धर्मनाश होनेमें ५।६ समस्त कुल ७ । ८ अधर्मी ९ होजाता है १० [पू० ११] ॥ ४० ॥

मू०-अधर्माभिभवात्कृष्णप्रदुष्यंतिकुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषुदुष्टासुवार्ष्णेयजायतेवर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

कृष्ण १ अधर्माभिभवात् २ कुलस्त्रियः३ प्रदुष्यन्ति ४ वार्ष्णेय ५ दुष्टासु६ स्त्रीषु७ वर्णशंकरः ८ जायते ९॥४१॥ अ०हे कृष्णचन्द्र १अधर्मके बढ़नेसे २ कुलकी स्त्री३ भ्रष्ट होजाती हैं ४ हे भगवन् स्त्री दुष्ट (भ्रष्ट) होनेसे ६।७ वर्णशंकर ८ उत्पन्न होता है. ९ टी० वृष्णिवंशमें जो उत्पन्न हो उसको वार्ष्णेय कहतेहैं.यह नाम श्रीकृष्ण भगवान् का है ॥ ५ ॥ ४१ ॥

मू०--संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतंति पितरोह्येषांलुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

कुलघ्नानाम् १ कुलस्य २ च ३ संकरः ४ नरकाय ५ एव६ एषाम्७ पितरः८ हि पतंति१० लुप्तपिंडोदकक्रियाः ११ ॥ ४२ ॥ अ० कुलनाश करनेवालोंको १कुलका २ वर्णशंकर ३ भी४ नरकके

वास्ते ५ ही ६ सि० है. और ❀ इनके अर्थात् कुलघ्नोंके ७ पितर भी ८।९ पतित हो जाते हैं अर्थात् स्वर्गसे वे भी नरकमें गिर पडते हैं१० सि०क्योंकि ❀ लोप होगई है पिंड और जलकी क्रिया जिनकी अर्थात् न कोई उसको जलदाता रहता है न पिंड देनेवाला, वर्णसंकर (स्त्री भ्रष्टहुए बादजो प्रजा होती है सो) आपभी नरकमें जाताहै और जिस कुलमें उत्पन्न होता है वो कुल भी नरक में जाता है ११ ॥ ४२॥

मू०-दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यंतेजातिधर्माः कुलधर्माश्चशाश्वताः॥४३॥

वर्णसंकरकारकैः १ एतैः २ दोषैः ३ कुलघ्नानाम् ४ शाश्वताः ५ जातिधर्मा६ कुलधर्माः ७ च ८ उत्साद्यंते ९॥४३॥ अ० वर्णसंकर करनेवाले इन दोषोंसे १।२ अर्थात् कुलका नाश करना मित्रों से कपट करना आदि जो दोष हैं इन दोषोंने ३ कुलघ्नों के ४ सनातन ५ कुलधर्म ६ और जातिधर्म ७।८ लोप किये हैं ९. तात्पर्य-यही दोष जातिधर्म और कुलधर्मोंका लोप करते हैं ९ ॥ ४३ ॥

मू०-उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरकेनियतंवासोभवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

जनार्दन १ उत्सन्नकुलधर्माणाम् २ मनुष्याणाम ३ नरके ४ नियतम् ५ वासः ६ भवति ७ इति ८ अनुशुश्रुम् ९ ॥ ४४ ॥ अ० हे जनार्दन ! १ लोप हो जाते हैं कुलके धर्म जिनके २ सि० ऐसे ❀ पुरुषोंका ३ नरक में ४ सदा ५ वास ६ होता है ७ यह ८ हम पीछे सुनते रहे हैं ९ सि०पुराणादिमें ❀ ॥४४।

मू०-अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुंस्वजनमुद्यताः ॥४५॥

अहो बत १ वयम् २ महत्पापम् ३ कर्तुम् ४ व्यवसिता: ५ य ६ राज्यसुखलोभेन ७ स्वजनम् ८ हन्तुम् ९ उद्यताः १० ॥४५॥

अ०उ० सन्ताप करनेसे भी पाप दूर हो जाता है, जो आगे के पाप न करने का नियम करे यह समझ अर्जुन सन्ताप करता। अर्जुनने अपने सम्बन्धियों के साथ युद्ध करनेका जो मनोराज्य किया इसको भी पाप समझा, बडे कष्टकी बातहै ? ऐसी जगह अहो बत बोला करते हैं, अर्जुन कहताहै कि, अहो बत १ हम २बडापाप करनेको ३।४ निश्चितहुए अर्थात् हमने बडा पाप करनेका निश्चय किया ५ जो ६ राज्यसुखका लोभ करके ७ अपने सम्बन्धियों के मारने को ८।९ उद्यत हुये १०, तात्पर्य–अपने सम्बन्धियों के मारने के लिये हमने यत्न किया १० ॥ ४५ ॥

मू०–यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत ॥४६॥

शस्त्रपाणयः १ धार्तराष्ट्राः२ यदि ३ माम् ४ अप्रतीकारम् ५ अशस्त्रम् ६ रणे ७ हन्युः ८ तत् ९ मे १० क्षेमतरम् ११ भवेत् १२ ॥४६॥अ० उ० प्राणधारी को प्राणसे भी श्रेष्ठपरमधर्म अहिंसा है यही समझकर अर्जुन कहता है, शस्त्र हैं हाथमें जिनके १ सि ऐसे ❀ दुर्योधनादि २ जो ३ मुझ अप्रतीकार अशस्त्रको४।५।६।रण में७ मारे ८तो ९ मेरा १० बहुत भला ११ हो १२ टी० जो अपने साथ बुराई करे उसके साथ बुराई न करे उसको अप्रतीकार कहते हैं ५. धनुषादि शस्त्र अर्जुन ने उस समय हाथमेंसे रख दिये थे इस हेतुसे अर्जुन ने अपने आपको अशस्त्र कहा ६ ॥ ४६ ॥

मू०–संजयउवाच ॥ एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोप-
स्थ उपाविशत्॥ विसृज्य सशरं चापं शोक-
संविग्नमानसः ॥४७॥

संजयः १ उवाच २ अर्जुनः ३ संख्ये ४ एवम् ५ उक्त्वा ६ सशरम् ७ चापम् ८ विसृज्य ९ रथोपस्थे १० उपाविशत् ११ शोकसंविग्नमानसः १२ ॥४७॥ अ०संजय धृतराष्ट्र से कहता है १ । २ सि० हे राजन् ! ❀ अर्जुन १ रण में ४ इसप्रकार ५ कहकर ६ सहित शर के ७ धनुष को ८ विसर्जन करके ९ अर्थात् कमान का चिल्ला उतार और तीर तरकश में रखकर ९ रथ के पिछले भाग में १० बैठ गया ११ शोक में डूब गया है मन जिसका १२ तात्पर्य-अर्जुन को उस समय अत्यन्त शोक मोह हुए ॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मू०-संजयउवाच ॥ तंतथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥ विषीदन्तमिदंवाक्यमुवाचमधुसूदनः ॥१॥

मधुसूधनः १ तम् २ इदम् ३ वाक्यम् ४ उवाच ५ तथा ६ कृपया ७ आविष्टम् ८ अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ९ विषीदन्तम् १० ॥ १ ॥ उ० संजय धृतराष्ट्र से कहता है कि राजन् ! अ० श्रीभगवान् १ तिस २ सि० अर्जुन से ❀ यह ३ वाक्य ४ बोलतेभये ५ सि० कैसा है वो अर्जुन ? ❀ तिसप्रकार ६ कृपा करके ७ युक्त है ८ अर्थात् जो गति अर्जुन की पिछले अध्याय में कही और आंसुओं करके पूर्ण और व्याकुल होरहे हैं नेत्र जिसके ९ अर्थात् अर्जुन के नेत्रों में आंसू भर गये और विषाद को प्राप्त होरहा है १० ॥ १ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ कुतस्त्वाकश्मलमिदंविषमेसमुपस्थितम् ॥ अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

अर्जुन १ त्वा २ इदम् ३ कश्मलम् ४ विषमे ५ कुतः ६ समुप-

स्थितम्७अनार्यजुष्टम्८अस्वर्ग्यम्९अकीर्तिकरम्१०॥२॥अ०हे अर्जुन १ तुमको२यह३कायरपना४रणमें५कहांसे६प्राप्त हुआ? ७सि० कैसा यह कायरपना?*नहीं श्रेष्ठ जो है जन उनकरके सेवन करने योग्य अर्थात् तू तो उत्तम श्रेष्ठ है, यह तेरे योग्य नहीं अश्रेष्ठोंके योग्य है८ कैसा है यह कायरपना ?सि० कि*स्वर्गको प्राप्त करनेवाला नहीं९सि प्रत्युत * अयश करनेवाला है १ ॥२॥

मू० -क्लैब्यंमास्मगमः पार्थनैतत्त्वय्युपपद्यते ॥
क्षुद्रंहृदयदौर्बल्यंत्यक्त्वोत्तिष्ठपरंतप ॥ ३ ॥

पार्थ१क्लैब्यम्२ मास्मगमः।३एतत्४त्वयि५न६उपाद्यते७ परंतप८ क्षुद्रम्९हृदयदौर्बल्यम् १० त्याक्त्वा११ उत्तिष्ठ १२ ॥३॥अ० हे अर्जुन १ नपुंसकपनेको २ मत प्राप्त हो, ३ यह ४ तुझमें५नहीं ६ शोभा पाता है ७ हे परंतप अर्जुन ! ८नीचताको ९और हृदयकी दुर्बलता को १० त्याग ११ सि० युद्धके लिये * खडा हो ॥ १२ ॥३॥

मू०--अर्जुनउवाच॥ कथंभीष्ममहंसंख्येद्रोणंचमधुसूदन॥इषुभिःप्रतियोत्स्यामिपूजार्हावरिसूदन ॥४॥

मधुसूदन १ संख्ये२द्रोणम्३च४भीष्म्५प्रति६इषुभिः७ अहम्८ कथं योत्स्यामि १० अरिसूदन ११ पूजार्हौ १२॥४॥अ० उ० नपुंसकपने में युद्ध नहीं करता हूँ यह न समझिये, किंतु मुझको युद्ध करने अन्याय प्रतीत होता है, यह अर्जुन प्रगट करता है, हे मधुसूदन १रणमें२द्रोणाचार्य३और ४ भीष्मपितामहके५ प्रति ६ अर्थात् द्रोणाचार्य और भीष्मजीके साथ ६ बाणों करके ७ कैसे ८ युद्ध करूं ९ हे वैरियों को मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र १० सि० भीष्म और द्रोणाचार्य ये दोनों * पूजा करनेके योग्य हैं ११ तात्पर्य

जिनपर फूल चढ़ाना योग्यहै उनके साथ लडना यह वाणीसे कहना भी अयोग्यहै फिर तीरोंसे उनके साथ कैसेलड़ना चाहिये?यह अभिप्राय। ४ ।

मू०-गुरूनहत्वाहिमहानुभावाञ्श्रेयोभोक्तुंभैक्ष्यमपीह लोके।।हत्वाऽर्थकामांस्तुगुरूनिहैवभुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ।।५।।

महानुभावान् १ गुरून् २ अहत्वा३ हि ४ भैक्ष्यम् ५ अपि६ भोक्तुं ७ श्रेयः ८ इह लोके १० अर्थकामान् ११ गुरून् १२हत्वा१३तु१४ इह १५ एव १६ रुधिरप्रदिग्धान् १७ भोगान् १८ भुंजीय१९।।५।। अ० बड़ा प्रभाव है जिसका १ सि० ऐसे ❀ गुरुवोंको२ न मारके३ तो ४ भिक्षाका अन्न ५ भी ६ भोगना ७ श्रेष्ट है ८ इसलोकमें ९।१० अर्थात यही बात श्रेष्टहै कि, गुरुको कभी न मारना, मारनेसे भीख मांगकर खाना श्रेष्ठ है और अर्थकी कामनावाले ११ गुरुको १२ मारके १३तो १४ इसलोकमें १५ ही रुधिर (रक्त) के सने हुए भोगोंको १७।१८ हम भोगेंगे १९ तात्पर्य वे भोग हमको नरकप्राप्त करेंगे१९ टी० 'अर्थकामान्' यह भोगोंका भो विशेषण होसक्ताहै।।५।।

मू०-नचैतद्विद्मःकतरन्नोरगरीयोयद्वा जयेमयदिवा नो जयेयुः।।यानेव हत्वानजिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्रा ।। ६ ।।

नः१ कतरत् २ गरीयः ३ एतत ४ न ५ च ६विद्मः७ यद्वा८जयेम ९ यदि १० वा ११ नो १२ जयेयुः १३ यान् १४ हत्वा १५ न १६ जिजीविषामः१७ ते १८ एव १९धार्तराष्ट्राः२० प्रमुखे२१अवस्थिताः २२ ।। ६ ।। अ० पीछे बहुत जगह और इस अध्यायमें भी इसके पिछले श्लोकमें अर्जुनको विपर्यय हुआ सो स्पष्ट प्रतीत होता है.

और इस छटे श्लोकमें संशय और इससे अगले आठवें श्लोकमें अज्ञान स्पष्ट प्रतीत होताहै । अज्ञान, संशय और विपर्यय ये तीनों ब्रह्मज्ञानसे जाते है, ब्रह्मविद्या श्रवण करनेसे अज्ञान मनन करनेसे संशय और निदिध्यासन करनेसे विपर्ययका नाश होता है. अर्जुन कहता है हे भगवान् ! हमको १ सि० भिक्षाका अन्न श्रेष्ठ है कि गुरु आदिको मारकर राज्य भोगना श्रेष्ठ है इन दोनोंमें ❀ क्या श्रेष्ठ है ? ३ यह ४ हम नहीं ५।६ जानते हैं ७ सि० और जो इनके साथ हम लडैंभी तो हमको यह संशयहै कि ❀ यद्वा ८ सि० उनको हम जीतेंगे ९ यदि वा १०।११ हमको १२ वे जीतेंगे ? १३ सि० और जो हम उनको जीत भी लेंगे तोभी हमारी जीतकिसी कामकी नहीं क्योंकि ❀ जिनको १४ मारके १५ नहीं १६ जीना चाहतेहैं वे १७।१८ही १९ दुर्योधनादि २० सन्मुख २१ सि० मरनेको ❀ खडेहैं २२।६

मू०-कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामित्वांधर्मसंमूढचेताः॥यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितंब्रूहितन्मेशिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभाः १ धर्मसंमूढचेताः २ त्वां ३ पृच्छामि ४ सि० यत् ६ निश्चितम् ७ श्रेयः ८ स्यात् ९ तत् १० ब्रूहि ११ अहम् १२ ते १३ शिष्यः १४ त्वाम् १५ प्रपन्नम् १६ माम् १७ शाधि १८॥७॥

अ० उ० अर्जुनको जब अत्यन्त शोक संताप हुआ कर्तव्याकर्तव्यका विचार भी जाता रहा, तब फिर धीरज करके मनको सावधान किया और यह विचार कियाकि, वेदोंमें महात्माओंके मुखसे मैंने यह सुना हैकि,शोकके समुद्रको आत्माको जाननेवाला तरताहैधन,धर्म,कर्मऔर पुत्रादिकरके जीवको मोक्ष नहीहोताहै। 'तरतिशोकमात्मवित् न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'।इनश्रुतियोंका अर्थवे संदेह

सत्य है, क्योंकि धर्म कर्म मैं सब जानता हूं करताहूँ. धर्मका अवतार साक्षात् मेरे भाई हैं, वेदोक्तकर्मकांडके जाननेमें और अनुष्ठान करनेमें मुझको किंचित सन्देह नहीं और भेदोपासना (परमेश्वरकी भक्ति) का फल साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे स्वामी, सखा भाई मेरे पास हैं तो भी यह मुझको शोक है, इसी हेतुसे स्पष्ट यह प्रतीत होता है कि, शोक आत्माके ज्ञानसे ही नाश होता है वोह मुझको नहीं, यह पूर्वोक्त विचार कर अर्जुन ब्रह्मविद्या श्रवण करनेके लिये प्रथम ब्रह्मविद्यामें अपना अधिकार प्रगट करता है दोश्लोकोंमें अर्थात् ब्रह्मविद्याके अधिकारीका लक्षण करताहै, दीनतारूपदोषकरके दूषित होगयाहै स्वभाव जिसका १ अर्थात् जो आत्माको नहींजानताहै उसको 'कृपणता कृपणपन दीनता' इन सब पदोंका एकही अर्थ है। 'योवाएतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात्प्रैतिसकृपणः।" यह बृहदारण्यउपनिषद्श्रुति है, तात्पर्यार्थ इसका यहहै कि जो विना आत्मज्ञानके मरजाता है वो कृपण दीनहै, इस पदमें अर्जुनका तात्पर्य यही है कि, मैं भी अबतक कृपण अज्ञानी हूँ १सि० और*ब्रह्ममें संमूढ है चित्त जिसका १सि० सो मैं*आपसे ३ बूझता हूँ ४ मुझको ५ जो ६ निश्चित श्रेय ७।८ हो ९ सो१० कहो ११ सि० शिष्य वा पुत्रसे सिवाय और किसीसे ब्रह्मज्ञान नहीं कहना यह शंका करके कहता है कि*मैं१२ आपकाही १३शिष्य१४सि०हूं वाणी करके अनन्यगुरुभक्तको गुरुने ज्ञान सुनाना योग्य है, यह शंका करके कहता हैं कि*मैं आपको शरणागत १५ १६ सि० हूँ आपही मेरी रक्षा करनेवाले हैं, सबप्रकार मुझको आपकाही आश्रय है आप*मुझको उपदेश कीजिये १८ टी० जो धारण किया जावे उसको धर्म कहते हैं'धारयतीति धर्मः' इस व्युपत्ति से धर्म भी एक ब्रह्मका नाम हैं। वेदोक्तधर्म तो अर्जुन भले प्रकार

जानता था उस धर्ममें अपनेको मूढ़ क्यों कहता?२ एक अनित्य श्रे
होता है जैसे ब्राह्मणादि आशीर्वाद दिया करते हैं तुम्हारा श्रे
(कल्याण-भला) हो ऐसे श्रेयको मैं बूझता हूँ किन्तु जो निश्चय सदा
बनारहै तात्पर्य मेरा मोक्षसे है परमश्रेय मोक्षको ही कहतेहैं,जिसको
दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति नित्य कहतेहैं,उसका साधन
मुख्य साक्षात् मुझसे कहो यह मेरा तात्पर्य है ७ ॥८॥७॥

मू०-नहिप्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषण- मिंद्रियाणाम् ॥ अवाप्यभूमावसपत्नमृद्धंराज्यं सुराणामपिचाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

भूमौ १ असपत्नम् २ ऋद्धम्३राज्यम् ४ च ५सुराणम्६आधि
पत्यम् ७अपि८ अवाप्य ९ इन्द्रियाणाम् १० उच्छोषणाम् ११ * यत्
१२ शोकम् १३मम १४ अपनुद्यात्१५ न१६ हि १७प्रपश्यमि १८
॥८॥ अ० उ० वेदोंमें यह कथा हैं कि, नारदजी ने सनकादिकन से
यह प्रश्नकिया कि महाराज! मुझको सब विद्या सांगोपांग आती हैं
और जैसा उनमें कहा है वैसाही में अनुष्ठान करता हूं,और ब्रह्म लोक
के पदार्थोंपर्यन्त सब पदार्थ मुझको प्राप्तहैं,परन्तु मेरा शोक नहीं गया
सनकादि महाराजने उत्तर दियाकि,आत्मविद्या तुमने नहीं पढी होगी
नारदजीने कहाकि,यह तो मैंने नामभी नहींसुना,नहींतो अवश्य पढ़ता
सनकादिकने नारदजीसे यह कहा कि उसी विद्यासे शोकका नाशहोता
है फिरनारदजीने ब्रह्मविद्या सनकादिकनसे ब्रह्मजिज्ञासकरके श्रवणकी
तब उनका शोकनाश हुआ, यही बिचार करके अर्जुन कहताहै इस मंत्र
पृथ्वीमें१सि *तो शत्रुरहितपदार्थोंके भरेहुए राज्यको२।३।४सि०प्रा
होकर६सि०परलोकमें*अर्थात् देवताओंके अधिपति [स्वामी]इंद्रब्रह्मा

विष्णु शिवादि होकर९ इंद्रियोंको१० सुखानेवाला सन्ताप करनेवाला ११ जो १२ शोक १३ मेरा १४ दूर हो (नाशहो) १५ सि० यह बात मैं विना ब्रह्मज्ञानके ❀ नहीं देखताहूं १६।१७।१८. सि० क्योंकि, नारदजीने वैष्णवमहात्मासे ❀ बरसों अंगोंके सहितवेद और सब विद्या शास्त्रपढ़े बरसों अनुष्ठान किये.भेदभक्तिकी. ब्रह्माजीके साक्षात् पुत्र विष्णुभगवान्के परम प्यारे जब उनकाही विना ब्रह्मविद्याके शोक नाश न हुआ, तो फिर मेरा कैसा होगा ? इस श्लोकसे साफ प्रतीत होता है कि, शोक आत्मज्ञानसेही नाश होता है सिवाय आत्मज्ञानसे और कोई कर्मउपासना योगादि साक्षात् मुख्य उपाय नहीं. भेदवादी उपासक जो यह कहतेहैं कि केवल मूर्तिमान् विष्णु शिव रामकृष्णादि देवताओंके दर्शन करनेसे शोक दूर होजाताहै. विचार करना चाहिये कि जैसा दर्शन अर्जुनकोथा ऐसा तो इस समय भेदवादियोंको स्वप्नमेंभी होना कठिनहै. अर्जुनका तो शोक मोह विना ब्रह्मविद्याके गयाही नहीं,तो औरोंका विना ब्रह्मज्ञानके कैसे नाश होगा? देवताओंके दर्शनादि अन्तःकरणकी शुद्धिके हेतुहैं,फिर ज्ञानद्वारा मोक्षके हेतुहैं ॥८॥

मू०–संजयउवाच॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशंगुडाकेशःपरंतप॥नयोत्स्यइतिगोविन्दमुक्त्वातूष्णींबभूवह॥९॥

संजयः १ उवाच २ परंतप ३ गुडाकेशः ४ हृषीकेशम् ५ एवम् ६ उक्त्वा ७ न ८ योत्स्ये ९ इति १० गोविन्दम्११ उक्त्वा१२ तूष्णीम् १३ बभूव १४ ह १५ ॥ अ० संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै१।२सि०कि, हे राजन् ! ❀ परंतप ! ३ अर्जुन ४ श्रीकृष्णचन्द्रसे ५ इस प्रकार६ कहकर ७ सि०कि, जैसा पीछे कहा ❀ और अभी ❀ नहीं ८ युद्ध करूंगा९ यह१० गोविन्दजीसे११कहकर चुप१३ होगया१४[पू०१५] टी० निद्रा अर्जुनके वशमें थी इस हेतु गुडाकेश अर्जुनका नामहै,

४ इन्द्रियोंके स्वामी हैं श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज ! इस हेतु से हृषीकेश श्रीमहाराजका नामहै, ११ तत्त्वमस्यादि वेदोंके महावाक्योंकरके श्री श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी प्राप्ति होती है, इस व्युत्पत्तिसे श्रीमहाराजका नाम गोविन्दहै. ११ तात्पर्य अर्जुनका यहहै कि युद्धसे प्रथम ब्रह्मज्ञान मुझको उपदेश कर दीजिये. क्योंकि जो यह पूर्वोक्त अज्ञान, संशय विपर्यय मेरा बनारहा, और मैं मारागया तो मैं कृपण दीनही रहा, मुझको परमगति न होगी. विचारकरना चाहिये कि अर्जुन कैसे संकोच (अनबकाश) के समय ब्रह्मज्ञान श्रवणकरनेके लिये कैसी श्री महाराजसे प्रार्थना करता है. मैं आपका चेला हूं आपकी शरणागत हूँ मुझको उपदेश कीजिये, राज्यादि मुझको नहीं चाहिये अब इस समयके लाला मुन्शीसाहुकारादि कहते हैं कि साहब शास्त्रोंको सुननेका किसको अबकाशहै यहां मरनेकोभी अवकाश नहीं. ऐसे कामियोंके पास जब यमदूत आवेंगे तब कामकी गति उनको प्रतीत होगी. यमदूतोंसे भी यही कहना चाहिये कि अजी हमको मरनेका अवकाश कहां है तुमको सूझता नहीं कि हम अपने कामसे लगेहुए हैं जैसे गृहस्थ अतिथि अभ्यागतोंसे कह देते हैं ॥ ९ ॥

मू०-तमुवाच हृषीकेशःप्रहसन्निवभारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्येविषीदन्तमिदंवचः १० ॥

भारत १ उभयोः २ सेनयोः ३ मध्ये ४ विषीदन्तम् ५ तम् ६ प्रहसन् ७ इव ८ हृषीकेशम् ९ इदम् १० वचः ११ उवाच १२ ॥ १० अ० उ० अब अर्जुन चुप होगया. पीछे फिर क्या हुआ इस अपेक्षामें संजय कहता है कि,हे राजन् ! १ दोनों सेनाके २।३ मध्यमें ४ अतिदुःखित तिसको ५।६ उपहास करते हुए ७ जैसे अर्थात् जैसे किसीका उपहास कररहे हैं ऐसे ८ श्रीभगवान् ९

अतिदुःखित तिसके प्रति ६ अर्थात् अर्जुनसे ११यह १२ वचन १३ बोले १४ सि० जो आगे समाप्तिपर्यन्त कहना है ❀ टी० विना ब्रह्मज्ञानके बडे बडे लोगोंका उपहास होता है अर्जुनका उपहास श्रीमहाराजने किया तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ६। ७ इतिहास--एक समय बडे बडे ब्रह्मज्ञानी और भेदवादी भक्त भी श्रीरामचन्द्रजीमहाराज के पास बैठे थे हनूमानजी सेवा में थे. श्रीमहाराजने अपनी सेवा भक्तिका माहात्म्य प्रगट करने के लिये हनुमानजीसे यह बूझा कि तुम कौन हो ? हनुमान्जी ने सोचा कि जो यह कहता हूँ कि आपका सेवक दास हूं तो यह सब ब्रह्मज्ञानी मुझको अज्ञानी समझकर मेरा उपहास करेंगे. और ये समझेंगे कि इनकी सेवा भक्ति कैसी है जो अबतक आत्मज्ञान न हुवा. और जो मैं ब्रह्म हूँ यह कहता हूं तो ये सब भक्त यह समझेंगे कि इनकी कैसी यह भक्ति है और श्रीमहाराजमें कैसा यह भाव है कि जो अपनेहीको ब्रह्म कहते हैं. फिर तात्पर्य श्रीमहाराजका समझकर हनुमान्जी यह वोले कि देहदृष्टि करके तो आपका दास हूँ और जीवबुद्धिकरके आपका अंश हूँ और वास्तव जो आप हैं शुद्धसच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप सो मैं हूं. श्लोक–देहदृष्ट्या तु दासोहं जीवबुद्ध्या त्वदंशकः ॥ वस्तुतस्तुतदेवाहमितिमेनिश्चितामतिः ॥ यह सुनकर सब प्रसन्न हुए. समस्त श्रीभगद्गीता का सामर्थ्य यही है. समस्तगीताशास्त्रमें इसीके विस्तारार्थ उपाय और उपेय अंगांगीवत् कर्मनिष्ठाका और ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है १०॥

मू०-श्रीभगवानुवाच॥अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे॥गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः ११

श्रीभगवान् १ उवाच २ त्वम् १ अशोच्यान् २ अन्वशोचः ३ प्रज्ञावादान् ४ च ५ भाषसे ६ पंडिताः ७ गतासून् ८ अगतासून् ९ च १० न ११ अनुशोचन्ति १२ ॥ ११ ॥ अ० उ० परमकृपाकी खान श्रीभगवान् अर्जुनको ब्रह्मज्ञान सुनाते हैं. समस्तगीता-

शास्त्रमें केवल एक ज्ञाननिष्ठाकाही निरूपण है, अष्टांगयो
सांख्ययोग, भेदभक्तियोग और कर्मयोगादिका जो किसी ज
प्रसंग है वो ज्ञाननिष्ठाका अंगही श्रीमहाराजने कहा है और
श्रीरामायणमें रामचरित्रों से सिवाय और भी अनेक कथा
परन्तु मुख्य श्रीरामजीके चरित्र हैं. इसी प्रकार इस श्रीभगद्गी
उपनिषद्ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रमें ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है, उसीको
आनंदगिरिनामवाला श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामीमलूक
रिजी महाराजका अनुचर शिष्या (सेवक दास) श्रीमहाराजजो
स्वामी गुरुदेव उनके चरणकमलोंको पूजनेवाला श्रीमहाराजकी कृपा
निरूपण करता हूँ. श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैंकि,हेअर्जुन!१।२करन
शोचकरनेके योग्य जो नहीं हैं तिनके निमित्त २सि०तो॰शोचकरता
है ३और पंडितोंके सरीखे ४।५शब्दोंको बोलता है ६अर्थात् पंडितोंशी
सरीखी बातें कहता है. राजसुखभोगोंकरके हमको क्या है इत्यादि औ
पंडित७ जीतेमरे हुवोंका ८।९।१०नहीं११ शोच करते हैं १२ टी
भीष्मद्रोणादिक निमित्त, व्यवहारमें भी शोच करना बेजोग
क्योंकि वे सदाचारी हैं मरकर सद्गतिको प्राप्त होंगे. और परमा
में भी शोच करना न चाहिये, क्योंकि वे नित्य अविनाशी
अर्थात् न वाच्यार्थमें शोच बनता है न लक्ष्यार्थ में २ उनके बिन
हम कैसे जीवेंगे इनको कैसे सुख होगा? ९ सि० यह सब अज्ञान
का धर्म है. विद्वानोंको यह नहीं होता. इस हेतुसे प्रतीत होता है
तू ज्ञानी पंडित नहीं दो चार बातें पंडितोंकेसी सीखकर बोलता
है, अहिंसा परमधर्म है इत्यादि. ॰ इतिहास–एक पुरुषके दो लड़
जवान बहुत गुणवान् व्याहे हुए दैवयोग से एकही दिन कालमें म
गये, नगरके लोक उसको समझाने लगे. पंडितोंने अनेक श्लोक उ
को त्याग ज्ञान वैराग्यके सुनाए और इस मंत्रका उत्तराध भी सुनाय

पुरुष सुनतेही इस आधे श्लोकके प्रसन्नमुख होकर उत्तरदिशाको चला पंडितोंने बूझा कहां जाते हो?उसने उत्तर दियाकि, मैंने दुःखरूप गृहस्थाश्रमका संन्यास किया, विद्वत्संन्यासी होकर बिचरूंगा, पंडितोंने कहाकि, अभी तुम्हारी तरुण अवस्थाहै और तुम्हारे घरमें तीन तरुण स्त्रीहैं एक तुम्हारी दो तुम्हारे लड़कोंकी और मां बाप तुम्हारे बृद्ध विद्यमानहैं दोनों लड़के तुम्हारे घरमें मरे पडेहैं क्या यही समय संन्यास का है, किंचित् तुमको मरे जीवतोंका शोच नहीं उसने उत्तर दियाकि जो श्लोक तुमने पढ़ा उसका अर्थ बिचारकर तुमको भी तो अनुष्ठान करना योग्य है नहीं तो "परउपदेशकुशल बहुतेरे॥जे आचरहिं तेनर न घनेरे"बिना अनुष्ठानके पंडिताई किस कामकी है मरे जीवतों का शोच उसीको है जिसने यह मंत्र कहा है मेरा शोच करना निष्फल और यह मंत्रकहाहै. मेरा शोच करना निष्फल है और यह वेद की आज्ञा हैं कि जिससमय वैराग्यहो उसी समय संन्यासकरे " यदहरेव विरजेत्तदहरेवप्रव्रजेत"॥ यह कहकर उसी समय विरक्त होगया, विचारना चाहिये कि गीताका सुनना इसको कहते हैं, जिस श्लोकका उत्तरार्ध सुनकर यह पुरुष कृतार्थ हुवा इसका अर्थ सबही जानते हैं कहते हैं सुनतेहैं, परन्तु उनका कहना जानना और सुनना सब निष्फलहैं, क्योंकि रोटीके जानने कहने सुननेसे पेट किसीका नहीं भरताहै,यही आशय गीताके अर्थका है ऐसा पुरुष कोई होगाकि सत्यसंतोष त्याग वैराग्यभक्तिशमदमादिका अर्थ और फल न जानता होगा परन्तु सुन समझकर अनुष्ठान नहीं करतेहैं इसी हेतुसे भटकते रहते हैं भगवद्वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान करनेके लिये कमर बांधना चाहिये,या सोचना योग्य है देखो तो सही श्रीमहाराज तो अपने मुखारविन्द से यह कहते हैं, मरे जीवतोंका शोच नहीं करना, यह बात भलेकी है या नहीं? शोच करनेमें क्या बुराई है न शोच करनेमें क्या भलाईहै,

और शोच वास्तव है या भ्रांति है, यह मुझमें कबसे है इस
क्या स्वरूपहै, क्या अधिष्ठान हैं ? जीवगत है, वा अन्तःकरण
है एकरस रहता है, वा घटता बढता रहता है ? किस बात
बढता है, किस २ विचार करके समस्त गीता के अर्थका अनुष्ठा
करना योग्य है, जब गीताका अर्थ सुनना कहना सफल है ॥११॥

मू०–नत्वेवाहंजातुनासंनत्वनेमेजनाधिपाः।
नचैवनभविष्यामःसर्वेवयमतःपरम् ॥ १२ ॥

जातु १ अहम् २ न ३ आसम् ४ न ५ तु एव ७ त्वम् ८ न
इमे १० जनाधिपाः ११ न १२ अतः १३ परम् १४ वयम् १५
१६ न १७ भविष्यामः १८ न १६ च २० एव २१॥१२॥ अ
उ० आत्म नित्य है, इस हेतु से शोच करना न चाहिये, आत्मा
अद्वैत नित्य सिद्ध कहते हुए शोच न करनेमें हेतु कहते हैं पीछे
कभी १ मैं २ नहीं ३ होता भया ४ सि० यह ❀ नहीं ५ [पू६।
अर्थात् पीछे मैं थासि० और ❀ पू ८ सि० क्यापीछे ❀ न
६ सि० था यह नहीं. अर्थात् तू भी पीछे था. और ❀ ये १
राजा ११ सि० क्या पीछे ❀ नहीं १२ सि० थे, यह नहीं अर्थ
यह भी पीछे थे, तू और मैं और ये सब राजा वर्तमानमें विद्यमा
नहीं हैं और ❀ इसमें १३ पीछे ❀ १४ अर्थात् इस स्थूलशरीर
त्यागसे पीछे १४ हम १५ सब सि० क्या❀ नहीं १७ होंगे
सि० यह❀ नहीं १६ पू० २०।२१ अर्थात् तू और मैं औ
राजा अवश्य आगेको भी होंगे, क्योंकि सच्चिदानन्दरूप आत
एक नित्य, तात्पर्य–और ये राजा और मैं सब वास्तव एक
त्रिकालाबाध्य हैं त्वंपदार्थ को तत्पदार्थ के साथ लक्ष्यार्थ शु
सच्चिदानन्दस्वरूपमें ऐक्यता जानना योग्य है, इसमंत्रमें जीवों
नानात्व जो प्रतीत होता है, यह औपाधिक भेद है. वास्तव जी

(द्वि
एकह
पदों
अर्थ
होंगे
जीव
मू०
तथा
अ०
जीव
करके
३।४
की
त्ति
जन्म
बाल
कहे
हीं
सदा
कर
जीव
शरी

एकही है, अथवा समस्त श्लोकका अन्वय करके' सर्वे वयम् इन दोनों पदोंको हेतु कर देना अर्थात् जीव एकहीहै 'कुतः कियतःसर्वे वयम्' अर्थात् तू और मैं और ये राजा क्या आगे न होंगे यह नहीं अवश्य होंगे 'कुतः कियंतः सर्वे वयम्' बहुवचन आदरके लियेहै अर्थात् सब जीव आत्मा ही हैं ॥ १२ ॥

मू०--देहिनोऽस्मिन्यथादेहेकौमारंयौवनंजरा ।
तथादेहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तित्रनमुह्यति ॥ १३ ॥

देहिनः १ यथा २ अस्मिन्३देहे४कौमारम् ५ यौवनम्६जरा ७ तथा ८देहांतरप्राप्तिः ९ धीरः १० तत्र ११ न १२ मुह्यति १३॥१३॥

अ० उ० आप अपनेको जो नित्य कहते हो, यह तो सत्य है, परन्तु जीव नित्य कैसे होसक्ता है ? प्रत्यक्ष जन्म लेता है मरताहै,यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं, जीवको १ जैसे २ इस देहमें (स्थूलदेहमें) ३।४कौमार५यौवन६जरा७सि० अवस्था होती हैं*तैसे ही८ दूसरे देह की प्राप्ति ९सि० होजाती है* धीरजवाला१०तहां अर्थात् देहोंके उत्पत्तिनाशमें ११ नहीं १२ मोहको प्राप्त होता है अर्थात् जीवको जरा जन्मवान् नहीं मानता है १३तात्पर्य जैसे जीव स्थूल शरीरमें प्रथम बालक कहा जाता है फिर उसीको जवान कहतेहै फिर उसीको बूढ़ा कहते हैं, फिर जीव तीनों अवस्थामें वास्तव एकही रस रहता है, तैसे हीं दूसरे देहमें एकरस रहताहै,मरना उत्पन्न होना देहोंका धर्महै, जीव सदा एकरस नित्यहै, यथा 'अहं'और जैसे मुसाफिर एक सराय छोड़ कर दूसरे सरायमें बसकर अपनेको मरा जन्मा नहीं मानता, तैसे ही जीव मुसाफिरके तरह और शरीर सरायके तरह है, यह समझकर शरीर छूटनेका कुछ शोच करना न चाहिये आगेबहुत शरीर मिलेंगे

सरायके तरह आत्मा असंख्यात बरसोंका मुसाफिर है, नये शरीर
जाकर पीछलेकी गति दुखसुखादि भूलजाताहै और दूसरी अवस्था
जैसे जीव अन्यजात नहीं होजाता, अपनेको वोही मानता है
बालक अवस्थामें मानता था तैसेही दूसरे शरीरमें भी वोही एकरस
सच्चिदानंद आत्माको समझना चाहिये, सदाचारी पुण्यात्मा पुरुष
देहके छूटनेसे आनंदको प्राप्त होते हैं क्योंकि इसदेहके पीछे सुन्दर
दिव्यदेहकी प्राप्ति होगी, बुरा मकान छूटकर अच्छा मंदिर मिले
उसके निमित्त क्या शोक करना चाहिये ? ॥१३॥

मू०-मात्रास्पर्शास्तुकौन्तेयशीतोष्णसुखदुः खदाः
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥१४

कौन्तेय१मात्रास्पर्शाः२तु३शीतोष्णसुखदुःखदाः ४आगमापायिन
५अनित्याः६ भारत७तान्८तितिक्षस्व९ ॥१४॥ अ० उ० न जानि
दूसरा देह कैसा मिलेगा, शीतोष्णआदिका उसमें आराम होगा
नहीं, इस हेतुसे वर्तमान इष्ट पदार्थोंके वियोगमें दुख प्रतीत होताहै
देहके छूटतेही सब इष्टपदार्थोंका वियोग होजायगा यह शंका कर
श्रीमहाराज यह मंत्र कहतेहैं कि हे अर्जुन!१ इन्द्रियोंकी बृत्तियों
शब्दादिविषियोंके साथ जो सम्बन्ध हैं, इसको मात्रास्पर्श कहते हैं
अर्थात् देखना भोजनादि ये सब ३शीतोष्णसुखदुःखको देनेवाले३
सि०किसीकालमें शीत किसीकालमें गरमी कभो ये अनुकूल क
प्रतिकूल इसहेतुसे कभी सुख कभी दुःख वनाही रहता है, कैसे हैं
भोजनादि पदार्थ कि दिनरात्रिवत्४आनेजानेवाले५सि०हैं इसीहेतु
सब पदार्थ४अनित्य हैं, ६ हे अर्जुन!७तिनको८अर्थात् जाग्रत् अव
स्थाके भोगोंको८सि०स्वप्नपदार्थवत्समझकर९सहनकर९अर्थात् ति
के निमित्त वृथा हर्ष विषाद मतकर हर्ष विषादके वश मतहो९ तात्प

इष्टपदार्थोंका संयोगवियोगादि झूठी भ्रांति है वास्तव आत्माका न किसीके साथ संबंध है न वियोगहै,सिवाय आत्माके और कोई पदार्थ सुखदाई नहीं,सो नित्यप्राप्तहै,सिवाय इसका विचारकर जो सहन करता है उसको दुःख कम होताहै, नहीं तो सहना सबकोही पडताहै अनित्यपदार्थोंमें क्या तो हर्ष करना,क्या शोक करना कितनेकालके लिये क्योंकि क्षण पीछे हर्ष क्षणपीछे शोक होताही रहताहै इनको अनित्य समझ कर इनके वश नहीं होना यही इनका सहना है इष्टपदार्थके लिये तो यत्न नहीं करना,और उसके वियोगमें कुछ दुःख नही मानना और अनिष्टपदार्थोंसे उद्वेग नहीं करना, वर्त्तमानमें जैसा हो वोही हर्ष शोक रहित भोगना, यही एक अनुष्ठान बहुत है ॥१४ ॥

मू०-यंहिनव्यथयन्त्यतेपुरुषंपुरुषर्षभ॥
समदुःखसुखंधीरंसोऽमृतत्वायकल्पते॥१५॥

पुरुषर्षभ१एते२यम्३पुरुषम्४न५व्यथयंति ६समदुःखसुखम् ७धीरम् ८सः९हि१०अमृतत्वाय११कल्पते१२।१५।अ०उ०प्रयत्नकरके दुखकर देना चाहिये और सुख संपादन करना चाहिये, शीतोष्णादिको क्यों सहना यह शंका करके श्रीभगवान्‌का इस मंत्रमें आशय यहहै कि प्रयत्न करनेसे उनका सहना हजार जगह श्रेष्ठतमहै, क्योंकि सहनेका बड़ाफलहै, जो हमसे सुन, सिवाय इसके यह नियम नहीं कि प्रयत्न करनेसे अवश्य ही दुःखशीतोष्णादि दूर होजावें प्रत्युत प्रयत्न करना दूने दुःखका हेतु है क्योंकि एक तो प्रथम दुःख था, दूसरे यत्नमें महादुःख हुवा और जब वो कार्यसिद्ध न हुवा तब औरभी महादुःख हुवा, सहनेसे प्रयत्न करनेमें क्लेशही क्लेशहै इसहेतुसे सहनाही श्रेष्ठतमहै सोई सुन, हे अर्जुन! १ये२सि०मात्रास्पर्श शीतोष्णादि❀जिस पुरुषको ३।४ नहीं ५विषादके बश करतेहैं६सि० कैसा है वो पुरुष ❀

समान है सुखदुःख जिसको ७ सि० और बुद्धिमान् ✽ धीरःसि
जो✽सो ९ही१०मुक्तिके वास्ते ११ योग्य है१२ समर्थ है अर्थात्
मानअपमानादिको प्रारब्धकर्म का भोग समझकर सहता है उन
निवृत्ति के लिये यत्न नहीं करता है सोई मुक्तिके योग्य है वोही मु
होगा तात्पर्य दुःखादि में आत्माकी कुछभी क्षति नहीं समझता
इसमें हेतु यह है कि विचारवान्है. विचारवान् ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीही अ
मानादिको सहसकता है, और वोही मोक्ष का अधिकारी है, इ
वास्ते ज्ञान संपादन करना योग्यहै ॥१५॥

मू०—नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥
उभयोरपिदृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

असतः १ भावः२ न ३ विद्यते ४ सतः ५ अभावः ६ न ७ विद्यते
अपि ९ तु १० अनयोः ११ उभयोः १२ अन्तः१३ तत्त्वदर्शिभिः१
दृष्टः १५ ॥ १६ ॥ अ० उ० परामथ दृष्टिकरके तो शीतोष्णा
पदार्थ वास्तव तीनों कालमें नहीं, नित्य अखंड पूर्ण आत्माही
उसका अभाव नही होता. और शीतोष्णादि पदार्थोंका भाव न
होता यह विचारवान विद्वानोंको शीतोष्णादिबाधानहींकरते जो को
यह कहे कि शीतोष्णादिका सहना अत्यन्त कठिनहै, वो कैसे स
जावे ? कदाचित् अत्यंत सहनेमें आत्माका नाश न होजाय. उस
उत्तरमें यह कहते हैं. असत् की १ सत्ता २ नहीं ३ है ४ सत्की
असत्ता ६ नहीं ७ है सि० यह नहीं समझना कि इनका निर्ण
किसीसे नहीं कियाहै ✽ अपितु ९।१० इन दोनोंका ११।१२ अं
१३ तत्त्वदर्शी पुरुषोंने १४ देखा है १५ अर्थात् ब्रह्मज्ञानियोंने इ
दोनों सत और असत्का तत्व यही निर्णय किया है कि सत्स्वरू
आत्मा निर्लेप असंस्पर्श पदार्थ है. और असत्स्वरूपशीतोष्णादिक
आत्मा में गंधमात्रभी नहीं सो वेदोंनेभी यह कहा है. मन्त्र ॥ "ननिरो
धोनचोत्पत्तिर्न बद्धोनचसाधकः ॥ नमुमुक्षुर्नवैमुक्तइत्येषापरमार्थता॥"

तात्पर्य इस मन्त्रका यही है कि, सिवाय आत्माके कभी कुछ हुआ ही नहीं फिर निवृत्ति किसकी करना चाहिये ? और जो किसीको सिवाय आत्माके कुछ प्रतीत होता है वो भ्रांति है. क्योंकि भलेप्रकार कोईभी किसी पदार्थका करामलकवत् निःसंशय निश्चय नहीं करते. कोई कुछ कहता है. कोई कुछ कहता है. सबका सम्मत न होनेसेही स्पष्ट प्रतीत होता है कि, वास्तव सिवाय आनंदस्वरूप आत्माके और कुछ नहीं. सिवाय इसके इसबातको ऐसे समझो कि, जैसे दस महल्लोंका नाम एक नगर है बीस हवेलियोंका नाम एक महल्ला, मृत्तिकापाषाणकाष्ठादिकानाम हवेली है. पृथिवीके परमाणुवोंका जो संघात है उसको मृत्तिकाकाष्ठादि कहते हैं, ऐसे विचार करते २ परमाणु एक पदार्थ सिद्ध होता है. परमाणु उसको कहते हैं, जो किनका, नेत्रका तो विषय नहीं परंतु अनुमानद्वारा ऐसा निश्चय करते हैं कि. मकानमें पृथ्वीके किनके उडते नहीं दीख पडते, झरोखेके चांदनीमें दीख पडतेहैं इस हेतुसे प्रतीत होता है कि और भी इससे सूक्ष्म होंगे सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म किनकेको परमाणु कहते हैं. जब यह जीवअनुमानमें चतुर हो जाताहै तब इसको प्रत्याक्षानुमान शब्दादिप्रमाणोंसे आत्मा ।भार और जगत्का अभाव साक्षात् प्रतीत होने लगता है. जैसे पीछे विचार बहुत सूक्ष्म है अवश्य इस का मनन करना योग्य है. जैसे पीछे विचार करते २सब पदार्थोंका अभाव होगा सब कल्पित प्रतीत होने लगे. एक परमाणु रहगया. जब भले प्रकार बुद्धि निर्मल हो जाती है तब वोभी कल्पित प्रतीत होने लगता है. फिर उसका अत्यन्ताभाव हो जाता है. इसवास्ते जब तक यह विषय समझमें न आवे तबतक अन्तःकरण के शुद्धिका उपाय कर्मोपासना करे ॥१६॥

मू०-अविनाशितु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

येन १ इदम् २ सर्वम् ३ ततम् ४ तत् ५ तु ६ अविनाशि विद्धि ८ अस्य ६ अव्ययस्य १० विनाशम् ११ कर्तुम् १२ कश्चि १३ न १४ अर्हति १५ ॥ १७ ॥ अ० सामान्यकरके तो आत्मा को नित्य प्रतिपादन किया. अब फिर विशेषकरके दूसरे प्रकार आत्मा नित्य प्रतिपादन करते हैं. जैसे पीछले श्लोकमें आत्मा स सच्छब्दकरके निरूपण किया, तैसेही इस मन्त्रमें अविनाशी शब्द करके निरूपण करते हैं. आत्मा अतिसूक्ष्म पदार्थ है, इसवास्ते श्री महाराज उसको अनेकशब्दोंकरके वर्णन करते हैं पुनरुक्तिसमझ न चाहिये. इस प्रकरणमें बहुत जगह तो अर्थमें पुनरुक्ति प्रतीत होती है, जैसे सत् नित्य और अविनाशी इन शब्दोंका एकही अर्थ और बहुत जगह एक वो शब्द लिखाहै. यह बारंवार अनेक युक्ति योंके साथ उपदेशदवास्ते जल्द समझनेके हैं. पुनरुक्तिदोष नहीं जि करके अर्थात् सत्स्वरूप आत्माकरके परमानंदस्वरूप आत्मा से यह २ सब ३ सि० जगत् ❀ व्याप्त ४ सि० होरहा है ❀ तिस अर्थात् आत्माको ५ ही ६ (तू) अविनाशी ७ जान ८ इस अवि नाशीका अर्थात् अविनाशी निर्विकारका ९।१० नाश करनेको ११ १२ कोई १३ नहीं १४ योग्य है, वा नहीं समर्थ है, अर्थात् ऐ कोई समर्थ नहीं कि जो आत्माका नाश करे, वा कम करे, तात्प यह जगत् आत्माकरके व्याप्त है इसको समझना चाहिये कि आत्म सच्चिदानन्दस्वरूप है विचार करो जगत् में ऐसा कोई भी बुरा भला पदार्थ नहीं कि जिसमें कुछआनंद न हो आनंद करके यह जग पूर्ण है और आनंद करकेहीइसकी स्थितिहै वहीं आनंद तीनों अवस में अविनाशी है साक्षात् स्वयंप्रकाश है. इस हेतु से प्रत्य ज्ञानस्वरूप है ॥१७॥

मू०—अन्तवन्तइमेदेहानित्यस्योक्ताःशरीरिणः ॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्यतस्माद्युद्धचस्वभारत १

इमे १ देहाः २ अन्तवन्तः ३ उक्ताः ४ शरीरिणः ५ नित्यस्य ६ अनाशिनः ७ अप्रमेयस्य८ तस्मात् ९ युद्धयस्व१० भारत११॥१८।

अ० उ० सत्पदार्थ आत्माको तो नित्य सिद्ध किया, अब असत्पदार्थ देहादिअनात्माको अनित्य सिद्धकरतेहैं.अर्थात् असत्पदार्थोंका अभाव कहते हैं ये १ सि० अविद्याके भौतिक कल्पित * देह २ अन्तवाले ३ अर्थात् अनित्य कहेहैं ४ देहधारीजीवके५ अर्थात् अध्यारोपमें आत्माको देही शरीरी कहतेहैं और विवर्तवादमें उसको नित्य कहतेहैं. वास्तव वो अनिर्वाच्य है. और देहोंका भाववास्तव है नहीं. देहोंको अनित्य कहना, जीवको नित्य कहना, यह सब विवर्तवाद है. सि० कैसाहै वो आत्मा कि * सदा एकरूपहै ६ अर्थात सदा उसका एक सच्चिदानंद निर्विकार नित्यमुक्त रूप है इसीहेतुसे, सो अविनाशी है७ सि० जो ऐसा है तो सबको सत्त्वादिपदार्थोंवत् समझमें क्यों नहीं आताहै? यह शंकका करके कहते हैं कि सो आत्मा * अप्रमेय हैं ८ अर्थात् बुद्ध्यादिका विषय नहीं क्योंकि बुद्धिका आदि है इसीहेतुसे बुद्धिसे परे श्रेष्ठ है बुद्धिका साक्षी है. यही उसकी पहचान है. जैसे कोई यह कहे कि मेरी आंख मुझको दिखाओ. उत्तर उसका यही है कि जिस करके तू सबको देखता है, वोही तेरी आंख है, ऐसेही जिसकरके बुद्धिको भी ज्ञानहै, वो ज्ञानस्वरूप स्वयंसिद्ध है और जो अब भी इतने विशेषणोंसे आत्माका स्वरूप तेरे समझमें न आया होगा. क्योंकि आत्मा अतिसूक्ष्म है जब कि आत्मा अतिसूक्ष्म है तिसकारणसे अर्थात् इसी वास्ते ९ (तू) युद्ध कर १० हे अर्जुन! ११ सि०यह मैं तुझसे कहताहूं*तात्पर्य स्वधर्मका अनुष्ठान करनेसे अंतःकरण शुद्धिद्वारा आत्माका स्वरूप समझमें आजाता है,चर्चा चतुराईका वहां कुछ काम नहीं, अथवा जब कि आत्मा नित्य है, न उसका नाश

है न उसको दुःखसुखादि संबंध है, तिसकारणसे हे अर्जुन ! स्वधर्म
मत त्याग, सुखदुःखादिको सहन कर 'नित्यस्य अनाशिनःअप्रमेयस्य'
येतीनों 'शरीरिणः' इसपदके विशेषण हैं. अर्थात् सदा एकरस अवि
नाशी अप्रमेय देहधारी ऐसे जीवके शरीर अन्तवाले कहे हैं. अवि
नाशीका देहके साथ आविद्यक संबंधहै इस हेतुसे देह प्रवाहरूप करके
नित्य प्रतीत होतेहैं वास्तव नित्य अनित्य हैं नहीं ॥ १८ ॥

मू०—यएनंवेत्तिहन्तारंयश्चैनंमन्यतेहतम् ॥
उभौतौनविजानीतोनायंहन्तिनहन्यते ॥ १९ ॥

यः १ एनम् २ हन्तारम् ३ वेत्ति ४ यः ५ च ६ एनम् ७ हतम् ८
मन्यते ९ तौ १० उभौ ११ न १२ विजानीतः १३ अयम् १४ न १५
हन्ति १६ न १७ हन्यते ॥१८॥१९॥ अ० उ० भीष्मादिके मरने
अर्जुन जो शोक करता था कि ये मरेंगे सोश्रीमहाराजने दूर किया
परन्तु अर्जुनको अपने निमित्त भी यह शोकहै कि भीष्मादिके मार
नेमें मुझको पाप होगा, इसकोभी दूर करते हैं अर्थात् श्रीमहाराज
अर्जुनसे यह कहतेहैं,कि जैसे मारना हननरूपक्रियामें कर्मको अर्थात्
भीष्मादिको निर्विकारअविनाशि समझा तैसे ही कर्ताको अर्थात्
अपनेको अकर्त्ता समझ. तात्पर्य किसीक्रियामें भी आत्मा कर्त्ता
कर्म नहीं,यह अब श्रीमहाराज कहतेहैं जो१ इसको अर्थात् आत्माको
२ सि० हननक्रियामें ❀ मारनेवाला अर्थात् कर्त्ता३जानताहै ४ और
जो ५।६ इसको अर्थात् आत्माको ७ मराहुवा ८ अर्थात् कर्म मानता
है ९. वे १० दोनों ११ नहीं १२ जानते १३ सि० कि❀यह अर्थात्
आत्मा १४ न १५ सि० किसीको मारता है १६ न १७ मरताहै १८
तात्पर्य जो आत्माको किसीक्रियामें भी कर्त्ता कर्म जानते हैं वे पाप
पुण्यके भागी होतेहैं, तू तो आत्माको अक्रिय यानी अकर्त्ता जानके
युद्ध कर तुझको पाप न होगा, आत्मा न कर्त्ता है, न कर्म है । १९

मू०-नजायेताम्रियतेवाकदाचिन्नायंभूत्वा भविता वानभूयः॥अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणोन-हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

अयम् १ कदाचित् २ न ३ जायते ४ वा ५ न ६ म्रियते ७ वा ८ भूत्वा ९ भूयः १० भविता ११ न १२ अयम् १३ अजः १४ नित्यः १५ शाश्वतः १६ पुराणः १७ शरीरे १८ हन्यमाने १९ न २० हन्यते २१॥२०॥ अ०उ० उत्पन्न होना, व्यावहारिकसत्ताको प्राप्त होना, बढना, औरका और रूप होजाना, घटने लगना, नाश होजाना ये छह धर्म देहके, आत्माके नहीं, सोई इस श्लोकमें कहते हैं यह आत्मा १ कभी २ न ३ जन्मता है, ४ या ५ न ६ मरता ७ और ८ होकर ९ फिर १० रहनेवाला ११ सि० ऐसा भी यह आत्मा❀ नहीं १२ अर्थात् जिनका जन्म होता है, वे अवश्य मरते हैं, आत्माको न जन्म है न नाश है. क्योंकि, सादि पदार्थों का नाश होता है आत्मा अनादि है, परन्तु छः अनादि पदार्थों में अविद्यादि पदार्थ भी अनादि कहे जाते हैं, उनका ज्ञानकालमें नाश सुना जाता है अर्थात् अविद्यादि पदार्थोंका भी जन्म नहीं. क्योंकि,वे अनादि हैं परन्तु होकर अर्थात् हुवे फिर नहीं रहते हैं ऐसा भी यह आत्मा नहीं. यह अर्थ है. (नवें पदसे लेकर बारहवें पद तक) १२ सि० फिर कैसा है ❀ यह (आत्मा) १३ जन्मरहित १४ एकरस १५ नित्य १६ सनातन १७ सि० है ❀ शरीरके मारेजानेमें १८।१९ नहीं २० माराजाता है २१ अर्थात् शरीरके नाश होनेमें आत्मा का नाश नहीं होता है २१॥२०॥

मू०-वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥ कथ स पुरुषः पार्थ कं घातयतिहंतिकम् ॥२१॥

यः १ एनम् २ अविनाशिनम् ३ नित्यम् ४ अजम् ५ अव्ययम् ६ वेद ७ पार्थ ८ सः ९ पुरुषः १० कम् ११ कथम् १२ हंति १३ कम्

१४ घातयति १५ ॥ २१ अ०–उ० ज्ञानदृष्टिकरके सब क्रिया में आत्मा प्रेरकभी निर्विकार है. इस हेतुसे मैं तेरा प्रेरकभी असंग हूं मेरे निमित्तभी तुझको किसी प्रकार का शोच करना न चाहिये अर्थात् यह भी मत समझ कि श्रीभगवान् मुझको हिंसामें प्रेरते हैं कभी ऐसा न हो कि, इस पापके यही भागी हों. इस श्लोकमें यही कहते हैं–जो १ इस (आत्मा) को २ अविनाशी ३ नित्य ४ अज ५ निर्विकार ६ जानता हैं ७ हे अर्जुन ! ८ सो ९ पुरुषको १० किस प्रकार १२ मारता हैं अर्थात् आत्मा–किसीको किसीप्रकार नहीं मारता १३. है. सि० और ❀ किसी को १४ सि० किस प्रकार ❀ मरवाता है १५ अर्थात् किसीको किसी प्रकारभी नहीं मरवाता है. आत्मा किसी क्रियामें कर्त्ताका प्रेरक नहीं. तात्पर्य श्रीमहाराज नें जैसे अपनेको निर्विकार अकर्त्ता असंग ऐसा निरूपण किया वैसेही जीवको भी निर्विकार कहा. इस कहनेसे जीव ब्रह्मकी एकता स्पष्ट सिद्ध है इस प्रकरणका यही सिद्धांत है ॥२१॥

मू०–वासांसिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णातिनरोऽपराणि ॥ तथाशरीराणिविहायजीर्णान्यन्यानिसंयातिनवानिदेही ॥२२॥

यथा १ नरः २ जीर्णानि ३ वासांसि ४ विहाय ५ अपराणि ६ नवानि ७ गृह्णाति ८ तथा ९ जीर्णानि १० शरीराणि ११ विहाय १२ अन्यानि १३ नवानि १४ संयाति १५ देही १६ ॥ २२ ॥ अ०–उ० आत्मा को तो मैंने अविनाशी निर्विकार समझा. आत्मा के निमित्त तो मुझको अब किसी प्रकारका शोच नहीं अर्थात् आत्मा किसी क्रियामें न कर्त्ता, न प्रेरक, न कर्म है. और आत्मा के नाश करनेमें वा कर्म करनेमें न कोई साधन है परन्तु आत्माका शरीर से जो वियोग होता है इसके निमित्त तो शोच करना

हिये. यह शंका करके कहते हैं. जैसे१ मनुष्य २ जीर्ण ३ वस्त्रोंको ४ त्यागके ५ और ६ नये ७ सि० वस्त्रोंको❀ ग्रहण करताहै ८, तैसेही ९ जीर्ण १० शरीरोंको ११ त्यागके १२ और १३ नये १४ सि० शरीरोंको ❀ प्राप्त होता है १५ आत्मा जीव १६ सि० न जानिये दूसरा शरीर कैसा मिले. पहिलेसे अच्छा न मिले. इसके निमित्तभी शोच करना न चाहिये. क्योंकि धर्मात्मापुरुषोंको निस्सन्देह उत्तम शरीर मिलतेहैं. पापियोंको यह शोच करना चाहिये धर्मात्मापुरुषोंको पुण्यकी तारतम्यतासे देवताओंके शरीर मिलते हैं. पापात्मा नरकमें जाते हैं. उनको नारकीशरीर मिलते हैं मिले हुए कर्मकरनेवालोंको मनुष्योंके शरीर मिलते हैं. ज्ञानी महापुरुष मुक्त होतेहैं तात्पर्य विना ब्रह्मज्ञानके सबको दूसरा शरीर मिलताहै. चौदहवें अध्यायमें विशेष निरूपण करेंगे इस प्रसंगको गरुडपुराणादिकी प्रक्रियाभी इसी सिद्धांतसे मिलजाती है श्रोतिय ब्रह्मनिष्ठोंके मुखसे श्रवण करनेसे ॥२२।

मू०–नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकः ॥
नचैनंक्लेदयन्त्यापोनशोषयतिमारुतः ॥ २३ ॥

एनम् १ शस्त्राणि २ न ३ छिन्दन्ति ४ पावक.५ एनम्६ न७ दहति ८ आपः ९ एनम् १० न११ च१२ क्लेदयंति १३ मारुतः१४ न १५ शोषयति १६। २३॥अ०-उ० पीछे कहाथा कि, आत्मा किसी प्रकार भी नहीं माराजाताहै अर्थात् आत्मा किसी साधनकरके साध्य (सिद्ध) होनेके योग्य नहीं. उसीको अब स्फुट करतेहैं--इस आत्माको १ शस्त्र २ नहीं, ३ छेदन करते हैं ४ अग्नि ५ इसको ६ नहीं ७ जलाताहै ८ जल ९ इसको १० नहीं ११।१२ गलाताहैं १३ पवन १४ नहीं १५ सुखाताहै १६.तात्पर्य अन्य और भी किसी साधन करके साध्य नहीं. आत्मा स्वयंसिद्ध निर्विकारहै निरवयव होनेसे क्रिया सावयवमें है.इसी हेतुसे आत्मा अक्रिया है ॥ २३ ॥

मू०–अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच ॥
नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽयंसनातः ॥ २४॥

अयम् १ अच्छेद्यः २ अदाह्यः ३ अक्लेद्यः ४ अशोष्यः ५ एनः च ७ नित्यः८ सर्वगतः९ स्थाणुः१० अचल ११ सनातनः१२अयम् १३॥२४॥ अ०-उ० शास्त्रादिसाधनोंकरके आत्मा इस हेतुसे साध्य नहीं कि आत्मा निर्विकारादि विशेषणों करके विशेषित है यह कहते हैं, डेढ श्लोकमें--यह (आत्मा) १ नहीं है छेदनकरनेके योग्य २ नहीं है जलानेके योग्य ३ नहीं है गलानेके योग्य ४ नहीं है सुखानेके योग्य५।६।७ अर्थात् आत्मा न छिदसक्ताहै न जलसक्ताहै न गलसक्ता है सि० क्योंकि❀नित्य ८ सब जगह व्याप्त ९ स्थाणुवत् १० निश्चल ११ सनातन १२ सि० है ❀ यह १३ सि०आत्मा ❀ (यहाँ पदोंको पुनरुक्ति प्रतीत होतीहै इसका उत्तर प्रथमही हम लिख आयेहैं)२४॥

मू०–अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते॥
तस्मादेवंविदित्वैनंनानुशोचितुमर्हसि ॥ २५॥

अयम् १ अव्यक्तः २ अयम् ३ अचिन्त्यः ४ अयम् ५ अविकार्यः ६ उच्यते७ तस्मात् ८ एवम्९ एनम् १० विदित्वा११ अनुशोचितुम् १२ न १३ अर्हसि १४ ॥२५॥ अ०–उ० यह आत्मा १ अव्यक्त अर्थात् मूर्तिरहित २ सि० है ❀ यह आत्मा ३ अचिन्त्य ४ सि० है अर्थात् चिंतवन करनेमें नहीं आताहै अंतःकरणका विषय नहीं❀यह आत्मा ५ अविकारी ६ कहा है ७ सि० इस क्रियाका नित्यादि सब पदोंके साथ सम्बन्ध है जब कि यह आत्मा ऐसा है ❀ तिस कारणसे ८ इस प्रकार ९ इस आत्माको १० जानकर ११ पीछे शोच करनेको १२ नहीं १३ योग्यहै तो १४तात्पर्य जो लक्षण आत्माका पीछे निरूपणकिया उसको जान समझकर शोक नहीं रहताहै ॥ २५ ॥

मू०-अथचैनंनित्यजातंनित्यंवामन्यसेमृतम् ॥
तथापित्वंमहाबाहोनैवंशोचितुमर्हसि ॥२६॥

अथ१ च२ एनम्३ नित्यजातम्४ मन्यसे५ वा६ नित्यम्७मृतम्८ महाबाहो ९ तथा१० अपि११ एवम् १२ न१३ शोचितु१४ त्वम् १५ अर्हसि१६ ॥२६॥ अ० उ० जो कदाचित् देहोंके साथ आत्माको जन्ममरण तू समझता हो, तो भी शोच न करना चाहिये यह कहते हैं-और जो १ । २ सि० कदाचित्❀ इस आत्माको३ नित्यजात ४ मानताहै५अर्थात् जीवका देहोंके साथ सदा जन्म होताहै ५, वा ६ सदा७ मरताहै८ सि० देहोंके साथ❀हेअर्जुन! ९तोभी१०। ११सि० जैसे अगले श्लोकमें कहता हूं❀इसप्रकार १२ नहीं १३ शोच करने को १४ तू १५ योग्य है १६ ॥२६॥

मू०-जातस्यहिध्रुवोमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थेनत्वंशोचितुमर्हसि ॥२७॥

हि१ जातस्य२ मृत्युः ३ ध्रुवः४ मृतस्य५च ६जन्म७ध्रुवम्८तस्मात९ अपरिहार्ये१०अर्थे११त्वम्१२ शोचितुम्१३न १४अर्हसि१५॥२७। अ०-जब कि १ जन्मवालेको २मरण ३निश्चय ४सि०है अर्थात् जो उत्पन्न हुआहै वो अवश्य मरेगा, इसमें प्रमाण प्रत्यक्ष व्यवहार है❀ और मरे हुयेको ५।६ जन्म ७निश्चय ८सि० अर्थात् जो मरता है उसका जन्म अवश्य होता है, क्योंकि कर्त्ता होकर मरा है, अपने कियेहुये कर्मोंका भोगकरनेकेलिये अवश्य जन्म लेगा विना भोग वा विना ज्ञान कर्मोंका कभी नाश नहीं होताहै❀तिस कारणसे अवश्यं भाविकाममें १०।११ तू १२ शोच करनेको १३ नहीं १४ योग्य है१५ सि० जो काम अवश्य होनेवाला है, जिसको कुछ इलाज यत्न परि-

हार प्रतीकार नहीं, उसमें क्या शोच करना चाहिये? जो होना है
अवश्य होगा और जो न होना है वो कभी न होगा. "यदभावि
तद्भावि भाविचेन्न तदन्यथा॥अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारोभवेद्यदि
तदादुःखैर्नलिप्येरन्नलरामयुधिष्ठराः ॥" जो भावीका प्रतीकार हो
तो राजा नल, राम, युधिष्ठिरादिको क्यों दुःख होता?१०॥११ता
भीष्मादिका इन देहों से एक दिनअवश्य वियोग होना है तू क्यों शो
करताहै?वियोग अवश्यं भावी है और राजधनादिके निमित्त भी शो
मत कर.क्योंकि क्यातो भीष्मादि धन को छोड़कर मरजावेंगे, अथ
पहले धनही उनको छोड़देगा, इस हेतुसे तू मत शोचकर ॥२७॥

मू०-अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्यानिभारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येवतत्रकापरिदेवना ॥२८॥

भारत१भूतानि २अव्याक्तादीनि ३व्यक्तमध्यानि ४अव्यक्तनिधना
५ एव ६तत्र ७का ८परिदेवना ९ ॥२८॥अ०-उ० जैसे सीपी
चांदीकी रस्सीमें सर्पकी भ्रांति है,इसी प्रकार यह जगत् प्रतीत हो
है फिर क्यों शोच करता है यह कहते हैं हे अर्जुन!१सि पृथिव्या
ये सब (अपने कार्य अन्तकरणादि शरीर पुत्रादिके सहित) पंच
भूत२ सि० ऐसेहैं कि*अव्यक्त अदर्शन अनुपलब्धि आदिहै जिन
अर्थात् आदिमें ये भूतअदर्शनरूप थे,इनका दर्शनमात्र भी नहीं था,
सि० और* व्यक्त है मध्य जिनका ४अर्थात् उत्पत्तिसे पीछे नाश
पहले बीचमें प्रतीत होतेहैं शुक्तिमें रजतवत्, सि० और अव्यक्त ही
मरण जिनका५अर्थात् इनका जो अदर्शन है वो ही इनका मरण
नाश हुए पीछे भी ये नहीं दीखतेहैं, यह अभिप्राय है ५निश्चय(निस्स
न्देह) यह जगत् अविद्याभ्रांति से प्रतीत होता है, वास्तव नहीं

तहां ७ अर्थात् ऐसे पदार्थोंके निमित्त (जिनकी गति पीछे कही) ७क्या ८ शोक प्रलाप विलाप ९ सि० करना चाहिये, भ्रांतिके सर्पसे काटा हुआ कोई नहीं मरता है, जो आदि और अन्तमें नहीं तो वर्तमानमेंभी नहीं श्रुति यहीकहैहै, 'आदावन्तेचयन्नास्तिवर्तमानेपितत्तथा' ॥ ❀ तात्पर्य यह संसार स्वप्नवत् है। इस संसारमें ये भीष्मादि और यहसबसेना और इसके साथ युद्धकरना राज्य भोगना सब स्वप्नके पदार्थ हैं, इनके निमित्त वृथा विलाप मतकर॥ शोकनिमित्तस्य प्रलापस्य नावकाशोऽस्तीत्यर्थः॥ कः शोकनिमित्तोविलापः प्रतिबुद्धस्यस्वप्नदृष्टबन्धुष्विव शोकोनयुज्यते इत्यर्थः" ॥ २८ ॥

मू०--आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदतितथैव चान्यः॥आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोतिश्रुत्वाप्येनं- वेदनचैवकश्चित ॥ २९ ॥

कश्चित् १ एनम् २ आश्चर्यवत् ३ पश्यति ४ तथा ५ एव ६ च ७ अन्यः ८ आश्चर्यवत् ९ वदित १० अन्यः ११ एनम् १२ आश्चर्यवत् १३ च १४ शृणोति १५ कश्चित् १६ श्रुत्वा १७ अपि १८ एनम् १९ न २० च २१ एव २२ वेद २३ ।२९॥ अ०उ० आत्माका जानना एक आश्चर्य अलौकिक अद्भुत बात है आत्माके जाननेमें बहुत प्रयत्न करना चाहिये- कोई १ इस आत्मा २ सि० शमदमादिसाधनसम्पन्न हुआ ज्ञान चक्षू करके असंख्यात पुरुषोंमें जो देखता है, सो ❀आश्चर्यवत् ३ देखताहै ४ अर्थात् लौकिक पदार्थोंकी तरह आत्माका देखना नहीं बनसक्ताहै और तैसेंही ५।६।७ अन्य और कोई एक महात्मा ८ आश्चर्यवत् ९ कहता १० सि० आत्मा को ❀अन्य और कोई महात्मा ११ इस आत्माको १२ आश्चर्यवत् १३ ही १४ सुनताहै १५ कोई १६ सि० साधनरहितपुरुष 'तत्त्वमसि' अहंब्रह्मा- स्मि' इत्यादिमहावाक्योंको❀सुनकर १७ भी १८ आत्माको १९ नहीं

ही२०।२१।२२ जानताहै २३ तात्पर्य त्रिलोक वा चौदहलोक चौदह से भी सिवाय जिसके मत में कोई और ऊंचा बैकुंठादि हो, उनमें जितने नामरूपवाले इन्द्रियान्तःकरणके विषय जि पदार्थ हैं, उन सब पदार्थों को लौकिक कहते हैं, जो पुरुष आत्मा लौकिकपदार्थवत् सुना चाहता है. वा देखा चाहता है, वा कहा हता है, यह कभी नहीं होसक्ता. क्योंकि आत्मा लौकिकपदार्थ नहीं, अलौकिकआश्चर्यवत् है, जो इन्द्रियान्तःकरणका विषय तो नहीं, सो सुना जावे, कहा जावे (करामलकवत्) यही आश्चर्य ॥२

मू०-देहीनित्यमवध्योऽयंदेहेसर्वस्यभारत ॥
तस्मात्सर्वाणिभूतानिनत्वंशोचितुमर्हसि ॥३०

भारत १ अयम् २ देही ३ सर्वस्य ४ देहे ५ नित्यम् ६ अवध्यः तस्मात् ८सर्वाणि९भूतानि१०त्वम् ११ शोचितुम् १२न१३अर्हसि ३० ॥अ०-उ०ग्यारहवेंश्लोकसे आत्माका और आत्माका जो वि निरूपण करते हुये चले आते हैं, इस प्रकरणको अब समाप्त करते हे अर्जुन ! १ यह२सि० शुद्धसच्चिदानंद❀आत्मा३सबके४देहमें ब्रह्माजीसे लेकर चींटींपर्यन्त ❀ नित्य ६ अवध्य ७ सि०है अर्थात् का बध नहीं हो सक्ता, यह मर नहीं सक्ता, तात्पर्य किसी क्रिया विषय नहीं अविकारी अक्रियहै❀तिसकारणसे ८ सबभूतोंको अर्थात् कर्तृकर्मादिरूप भूतों के निमित्त१०तू११ शोच करने को नहीं १३ योग्य है. तात्पर्य मरे जीवतोंके निमित्त तू शोच मत कर, पंडितों कैसी बातें करताहै. तो फिर सच्चा ही पंडित होना, चा पंडित ब्रह्मज्ञानीका नाम है सो होना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥३

मू०-स्वधर्ममपिचावेक्ष्यनविकम्पितुमर्हसि ॥
धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्यनविद्यते३

स्वधर्मम्१ अपि २ च ३ अवेक्ष्य ४ विकम्पितुम् ५ न ६ अर्हसि ७ हि ८ धर्म्यात् ९ युद्धात् १० अन्यत् ११ श्रेयः १२ क्षत्रियस्य १३ न १४ विद्यते १५। ३१॥ अ०उ० लौकिकरीतिसे अब श्रीमहाराज अर्जुनको समझाते हैं आठ श्लोकोंमें अर्जुनने पीछे कहा था कि, महाराज ! अपने संबंधियोंको युद्धमें मारता हुआ समझ कर मेरा शरीर काम्पता है उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज कहतेहैं, कि प्रथम तो विचारदृष्टिकरके तुझको घबराना न चाहिये, सिवाय इसके अपने धर्मका स्मरण करकेभी तुझको घबराना योग्य नहीं. क्योंकि परमार्थदृष्टि करके तो कम्पनका सावकाश है ही नहीं--और अपने धर्मको भी १।२।३ देखकर ४ कम्पकरनेको ५ [तू] नहीं योग्यहै ६। सि०और यह जो तूने पीछे कहा कि,रणमें अपने संबंधियोंको मारकर अपना भला नहीं देखता हूं, यह मत समझ ❀ क्योंकि ८ धर्मयुक्त युद्धसे ९।१० सि० सिवाय पृथक् ❀अन्यत ११ सि० भिक्षाटनादिमें ॐ क्षत्रियका १२ कल्याण (भला) १३ नहींहै १४। १५ सि० इन आठोंश्लोकोंमें (इकतीसवेंसे अडतीसवेंतक) प्रकारणकाअर्थ तो यहीहै. जो अक्षरार्थ है.परन्तु तात्पर्य इन आठ श्लोकोंका परमार्थ भी है. उसको ऐसे समझो कि क्षत्रियार्जुनके जगे तो मुमुक्षु वा ज्ञानी और युद्धके जगह अंतःकरण इंद्रियादिका निरोध ❀ श्रीमहाराजविद्वानोंको समझातेहैं, कि विचारदृष्टिकरकेभी शरीरादिका निरोध कहना, चाहिये, घबराना योग्य नहीं. और अपने धर्मकोभी देखकर इंद्रियादिकोंका विषयोंसे निरोध करना योग्य है,क्योंकि शास्त्रका तात्पर्य बहिर्मुखतामें नहीं और जो पुरुष ज्ञाननिष्ठ नहीं पूर्वमीमांसाको वा उपासनाको इष्टधर्म समझयाहै,तोभी अंतःकरणादिके निरोधरूप धर्मसे पृथक् अन्यत बहिर्मुख होना इत्यादि उनका भला करनेवाला नहीं ॥ ३१ ॥

मू०-यदृच्छयाचोपपन्नंस्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनःक्षत्रियाःपार्थलभन्तेयुद्धमीदृशम् ॥३२॥

पार्थ १ ईदृशम् २ युद्धम्३ सुखिनः४ क्षत्रिया ५लभन्ते६ अपावृत ७ स्वर्गद्वारम् ८ यदृच्छया ९ च १० उपपन्नम् ११। ३२॥ अ०-उ आनंदका मार्ग अपने आप तुझको प्राप्त हुआहै, तू तो बड़ा भागी शोच क्यों करताहै ? हे अर्जुन ! १ ऐसे युद्धको २।३ सुख क्षत्रिय ५ अर्थात् स्वर्गादिजन्य सुखके भोगनेवाले ५ प्राप्त होते हैं ६ अर्था ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियोंको प्राप्तहोता है सि० कैसाहै यह यु कि॰ खुला स्वर्गका दरवाजा ७।८ और यदृच्छाकरके ९।१० प्राप्त हुआ है ११ अर्थात् विनाबुलाये विना प्रार्थना (इच्छा किये) अपने आप प्राप्त हुआ है ११. सि० परमार्थ यहहै कि, यह मनुष्य शरी सुदुर्लभ बड़े भाग्यसे अपने आप ईश्वरकी कृपाकरके प्राप्त हुआ इसमें अंतःकरणादिकोंका निरोध करना. कैसाहै कि खुला हुआ मोक्षद्वारहै.परमानंदजीवन्मुक्तिके भोगनेवाले महात्मा संघातका निरो करतेहैं इस शरीरके प्राप्त होनेका फल शब्दादि भोग नहीं और पर लोकके भोग भी अनित्य होनेसे दुःखदेनेवालेहैं. इस शरीरसे मोक्ष मार्गमेंही प्रयत्न करना योग्य है ॰ ॥ ३२ ॥

मू०-अथचेत्त्वमिमंधर्म्यंसंग्रामंनकरिष्यसि ॰ ॥
ततःस्वधर्मंकीर्तिंचहित्वापापमवाप्स्यसि ॥३३॥

अथ १ चेत् २ त्वम् ३ इमम् ४ धर्म्यम्५संग्रामम्६ न ७ करिष्यसि ८ ततः ९ स्वधर्मम् १० कीर्तिम् ११ च १२ हित्वा १३ पापम् अवाप्स्यसि १५ ।३३॥ अ०-उ० व्यतिरेकमुखकरके पक्षान्तर कहतेहैं, कि जो तू युद्ध न करेगा तो तेरी बड़ी क्षति होगी-और जो २ तू ३ इस धर्मयुक्तसंग्रामको ४ । ५ । ६ न करेगा ७ । सि० तो वे ॰ तिस कारणसे ९ अपने धर्मको १०

कीर्तिको ११ । १२ त्यागकर १३ पापको १४ प्राप्त होगा १५ सि० परमार्थ यह है कि, जो इन्द्रियादिकोंका निरोधरूप अपने धर्म को न करोगे तो तुहारा धर्म जाता रहने से तुम्हारी कीर्ति भी नाश हो जायगी, ऐसा पापकरने से नरकको प्राप्त होगे. तात्पर्य धर्मात्मा वेही हैं, जिनका संघात निरोध है, और जिनका यश सज्जनों में होवे, वेही सुयशवाले है, नहीं तो अपने अपने पेशे जाती में कोई न कोई एकप्रधान कहलाता है ❀ ॥ ३३ ॥

मू०-अकीर्तिंचापिभूतानिकथयिष्यंतितेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्यचाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

भूतानि १ते २अकीर्तिम् ३ च ४ कथयिष्यंति५अव्ययाम् ६ संभावितस्य ७ च८अकीर्तिः९मरणात् १० अपि११अतिरिच्यते१२॥३४॥ अ०-उ०यह नहीं समझना कि,अकीर्ति होनेसे मेरी क्या क्षति होगी? दो चार वर्ष कहकर सब चुप होजावेंगे अपि तु तेरी अकीर्ति सदा बनी रहेगी. यह कहते हैं-छोटे बड़े सब स्त्रीपुरुष प्राणीमात्र १तेरी २ अकीर्ति को३ भी ४ कहेंगे ५ सि० और तुझको नरकभी होगा. कैसी है वो अकीर्ति कि❀सदा बनी रहेगी यह तात्पर्य है ६ सि०फिर इससे मेरी क्या क्षति होगी? यह शंका करके कहते हैं कि अकीर्ति सबके वास्तेही बुरी है❀और प्रतिष्ठावाले पुरुषकी ७।८अकीर्ति ९सि०तो मरनेसे१० भी ११ सिवाय है १२. परमार्थ यह है, कि जिस कीर्तिके वास्ते तुम दिन रात प्रयत्न करते हो. यह चाहते हो कि हमारा नाम बना रहे सो परमधर्म जो संघात का निरोध करना इसके न करनेसे सदा जीतेजी और मरकर दूसरे जन्ममें इस प्रकार सदा अकीर्ति बनी रहेगी. जीतेजी तो लोगोंकी निन्दा सहनी पडेगी, और मरकर यमराजके सामने दुर्दशा होवेगी वो क्लेशमरने से भी अधिकहै❀॥३४॥

मू०—भयाद्रणादुपरतंमंस्यन्तेत्वांमहारथाः ॥
येषांचत्वंबहुमतोभूत्वायास्यासिलाघवम् ॥३५॥

महारथाः १ त्वाम् २ भयात ३ रणात् ४ उपरतम् ५ मंस्यन्ते येषाम् ७ च ८ त्वम् ९ बहुमतः १० भूत्वा ११ लाघवम् १२ यास्यसि १३ ॥३५॥ अ०-उ०लोक यह नहीं समझेंगेकि अर्जुनकी युद्धमें हिंसा पा समझकर उपराम हुआ है. यह नहीं समझेंगे, तो समझेंगे फिर स यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहतेहैं.शूरवीर दुर्योधनादि १ तु को २ सि० मरनेके ❀ भयसे ३रणसे ४ हटा हुआ ५ मानेंगे अर्था यह समझेंगे कि. मरने का भयकरके अर्जुन रणमें से भाग ग (हटगया) ६ सि० जो वे ऐसाही समझेंगे तो मेरी इसमें क्या क्षति होगी? यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं ❀ जिनका अर्थात् दुर्योधनादिका ७ और८सि०सिवाय उनके अन्य बहुत पुरुषोंका ❀ बड़ा १० सि कहलाता. दुर्योधनादि तुझको बहुत गुणवाला मानते ऐसा ❀ होकर ११ छोटाईको १२प्राप्त होगा १३ अर्थात् वेही दुर्यो धनादि कि जो तुझको बहुत गुणवाला शूरवीर मानते हैं तुझ कातर नपुंसक मूर्ख बतावेंगे, यह तेरी क्षति होगी जिनके बीचमें बहुगुणवाला माना जाताहै उनकेही बीचमें छोटाईको प्राप्त होगा ॥ परमार्थ यह है कि, जितेन्द्रिय महात्मा महापुरुष अजितेन्द्रिय बहिर्मु खोंको ऐसा समझेंगे कि शरीर.इंद्रिय प्राण और अंतःकरणका निरोध करना तो कठिन समझ रक्खा है. रोचक वाक्योंका आश्रय लेकर भोग भोगते है धन्य समझ और धन्य साधन किंचिन्मात्रभी शास्त्र का तात्पर्य न समझा. अग्निको अग्निसे बुझाते है. अंतःकरणादि के निरोध को बखेड़ा बताते हैं. महात्मालोक ऐसे पुरुषों को आलसी

प्रमादी विषयी बहिर्मुख मानते हैं. ज्ञानभक्ति कर्मका आश्रय लेकरजो बहिर्मुख अजितेन्द्रिय होंगे, तौ नीचताको प्राप्त होजावेंगे ॥ ३५ ॥

मू०-अवाच्यदावदांश्वबहून्वदिष्यंतिवाहिताः ॥
निन्दन्तस्तवसामर्थ्यंततोदुःखतरंनुकिम् ॥३६॥

तव १ सामर्थ्यम् २ निन्दन्तः३तव४अहिताः ५बहून् ६अावात्यवा-दान्७ च ८वदिष्यन्ति९ततः १० दुःखतरम्११किम् १२नु १३॥३६॥

अ०उ० तुझको छोटाभी समझेंगे और तेरे१पराक्रमकी निन्दा करते हुये २।३ तेरे ४ वैरी ५ सि० तेरे निमित्त ❋ बहुतअवाच्यवचनोंको६।७ भी अर्थात् न कहने के योग्य जो वचन तिनको भी ८ कहेंगे ९ सि० इसके मेरी क्या क्षति होगी? यह शंका करके कहते हैं ❋ तिससे १० अर्थात् समर्थ होकर दुर्वाक्य सुननेसे सिवाय और १० विशेष दुःख ११ क्या? १२ सि० होगा. 'नु' यह शब्द वितर्कमें बोला जाता है. जैसे कोई किसीको नानाधिकार देकर बोले कि और इस कुकर्मसे सिबाय क्या होगा ऐसेही अर्जुनको ताना देकर श्रीमहाराज कहते हैं, कि, दुर्वाक्य सहनेसे सिवाय और क्या दुःख होगा?यह इस नु शब्दका तात्पर्यार्थ है १३ परमार्थ यह है कि, संसारमें जो अजितेन्द्रिय बहि-र्मुख हैं और दैवयोगसे उनको धन प्राप्त होगयाहै. वा राज्यादि अधिकार मिलगया, उनको कोई बुरा न कहे. उनके अवगुण समझ कर चुप रहे, यह नहीं समझना किंतु वेद वेदान्त पातंजलशास्त्र उन की निन्दा करते हैं. सिवाय उनके सज्जन साधुलोक निस्पृही सब उन को बुरा समझते हैं. प्रसंगसे कहभी देते हैं और गृहस्थलोक मुखपर नहीं कहते, तो पीछे बुरा कहते हैं, विचारो इससे सिवाय उन निर्भा ग्योंकोऔर विशेष दुःख क्या होगा? और उनसे सिवाय और कौन वेद शास्त्र महात्मा बुराई कहें ? ॥ ३६ ॥

मू०-हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गंजित्वावाभोक्ष्यसेमहीम्
तस्मादुत्तिष्ठकौन्तेययुद्धायकृतनिश्चयः ॥३७॥ युद्ध

हतः १वा २ स्वर्गम् ३ प्राप्स्यसि ४ वा ५ जित्वा ६ महीम् ७भोक्ष्य-
से ८ कौन्तेय ९ तस्मात् १० उत्तिष्ठ ११ युद्धाय १२कृतनिश्चयः१३स
॥३७॥ अ०-उ० पीछे अर्जुन ने कहा था कि न जानिये ये मुझको हम
जीतेंगे वा मैं इनको जीतूंगा उस बाक्यका स्मरणकर श्रीमहाराजको
यह कहते हैं-कि तेरा दोनों प्रकार भला होगा सि०युद्धमें ❀सम
मारागया१।२सि०तू तो मरकर❀स्वर्गको३प्राप्तहोगा,४और५सि०६
जीत गये तो जीतकर ६ पृथिवीको७भोगेगा. अर्थात् राज्य करेगाओ
अर्जुन!८तिसकारणसे१०उठ खड़ाहोअर्थात् दोनों प्रकार अपनीभलमें
समझकर युद्धकर ११ सि० कैसा है तू❀युद्धके लिये १२ किया अ
निश्चय जिसने १३ अर्थात् युद्ध करनेका निश्चय करके तो तू यसम
आया है अब क्यों कायरपना करता है ? तात्पर्य पहिले ही अर्जुन
ने युद्ध करनेका निश्चय करलियाहै कुछ श्रीमहाराजका तात्पर्य युद्ध
करानेमें नहींतो युद्धकर खड़ाहोयह प्रासंगिक लौकिकरीतिहै,अभिप्राय
श्रीमहाराजका परमार्थमें ही है, परमार्थ यह है कि श्रीमहाराज भक्ति
से कहतेहैं जो तुम शरीरइंद्रिय प्राण और अन्तःकरण इनका निरोध
करते मरगये इस परमधर्ममें तो बडे बडे लोकोंको प्राप्त होंगे और
जो अन्नतःकरणादिको तुमने जीतलिया (बशमें करलिया) तो ज्ञान
द्वारा जीवतेही जीवन्मुक्तिका आनंद भोगोगे ऐसाविचारकर सावधान
होके इंद्रियादिका निरोधकरो दोनों पक्षमें आनंद है नर शरीर दुर्लभ
है ॥ नरतनुपायविषयमनदेहीं॥पलटिसुधातेंशठ विषलेहीं ॥३७॥

मू०-सुखदुःखेसमेकृत्वालाभालाभौजयाजयौ ॥
ततोयुद्धाययुज्यस्वनैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

सुखदुःखे१ समेन२ कृत्वा ३ लाभालाभौ ४ जयाजयो५ ततः६ युद्धाय७ युज्यस्व ८ एवम् ९ पापम् १० न ११ अवाप्स्यसि १२॥३८॥ अ० उ० पीछे अर्जुनने कहा था कि युद्ध करनेमें मुझको पाप होगा उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज यह कहते हैं—सुखदुःखको १-समान २ करके३ अर्थात् इन दोनोंको फलमें बराबर समझकर३ लाभको और अलाभको ४ जयको और अजयको ५ सि० भी समान ※समझकर※ पीछेउसके६ युद्धकेवास्ते७ चेष्टाकर८ अर्थात् युद्धकर इसप्रकार सि०९ (तू)पापको१० नहीं ११ प्राप्त होगा१२ तात्पर्य सुखदुःखकाकारण लाभ और अलाभ है, लाभालाभका कारण जय और अजय है, इन सब में रागद्वेषरहित होकर युद्धकर, कभी पाप न होगा परमार्थ यहहै कि अन्तकरणादिकेनिरोधकालमेंसुखदुःखोंको।इष्टानिष्टके प्राप्तिकोबरावर समझना चाहिये, हर्ष शोक न करना, प्रथम अन्तःकरणादिके निरोध कालमें विघ्न दुःख अपमानादि बहुत होते है, और फिर सुखसन्मानादिभी बहुत हैं, दोनोंमें हर्षशोक त्यागकरके अन्तःकरणका निरोध करताही रहे, इसप्रकार बन्धनको नहीं प्राप्त होंगे और जो दुःखसुख विघ्नसन्मानादिके झपट्टेमें आगये वा स्वर्गादिफलमें फँसगये तो फिर बन्धनसे छूटना कठिनहै तात्पर्य अन्तःकरणादिका निरोध निष्काम हो कर करना योग्यहै इस प्रकार बहिरंगकर्मोंके त्यागमें पाप न होगा।३८

मू०-एषातेऽभिहितासांख्येबुद्धिर्योगेत्विमांशृणु ॥
बुद्ध्यायुक्तो ययापार्थकर्मबन्धंप्रहास्यसि ॥३९॥

एषा१ सांख्ये २ बुद्धिः ३ ते ४ अभिहिता ५ योगे ६ तु ७ इमाम् ८ शृणु ९ पार्थ १० यया ११ बुद्ध्या १२ युक्तः १३ कर्मबन्धम् १४ प्रहास्यसि १५॥३९॥ अ०-उ० ग्यारहवें श्लोकसे लेकर तीसवें श्लोक तक वीस श्लोकमें अर्जुनका शोकमोह दूरकरनेके लिये ब्रह्मज्ञान का

उपदेश किया, फिर आठ श्लोकोंमें लौकिक न्यायकरके अर्जुन
समझाया, अब उस लौकिकन्यायको समाप्तकरके ज्ञाननिष्ठामें अ
को तत्पर करनेके लिये ज्ञाननिष्ठाकाजो साधन भगवद्भक्त्यादिनि
कर्मयोग उसको फलके सहित निरूपण करते हैं हे अर्जुन ! ग्या
श्लोकसे लेकर तीसवें श्लोकतक बीस श्लोकोंमें जो तुझको ज्ञान
उपदेश किया यह १ आत्मतत्त्वके विषय २ ज्ञान ३तेरे अर्थ ४ तु
कहा ५ सि० मैंने* अर्थात् यह तो मैंने ब्रह्मज्ञानोपदेश किया, प
यह अत्यन्तसूक्ष्म अलौकिक आश्चर्य पदार्थ है, जो तेरे समझ
आया हो तो इसकी प्राप्ति और समझके लिये इसका साधन भ
द्भक्त्यादि निष्काम कर्म योगविषय ६ भी ७सि० ज्ञानमें अब क
हूँ * इसको ८तू सुन ९ हे अर्जुन ! १० सि० यह वो ज्ञान तुम
सुनाता हूं, कि*जिसज्ञानकरके ११।१२ युक्त १३ सि १० हुआ
अर्थात् जिसज्ञानका अनुष्ठान करके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा कर्म
बन्धनको अर्थात् धर्माधर्मरूप बन्धनको १४ भलेप्रकार त्याग दे
अर्थात् बन्धन से छूट जायगा (मुक्तहोजायगा) १५ ॥३६॥

मू०-नेहाक्रभिमनाशोस्तिप्रत्यवायोनविद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात् ॥४०॥

इह१अभिक्रमनाशः२न ३अस्ति४प्रत्यवायः ५न ६विद्यते७अस्य
धर्मस्य९स्वल्पम् १० अपि११ महतः १२ भयात् १३ त्रायते १४
अ०उ०जैसे खेती आदिमें फलपर्यन्त अनेक विघ्न होते हैं ऐसेही
भगवदाराधनादि निष्कामकर्मयोगमें भी होंगे तो फिर अन्तःक
शुद्धिद्वारा ज्ञान की प्राप्ति कठिन प्रतीति होती है तात्पर्य फ
प्राप्ति पर्यन्त यत्न निर्विघ्न समाप्त होना, निष्कामकर्म योग
कठिन प्रतीत होता है, यह शंका करके कहते हैं,-निष्काम
योगमें १ सि० किसीप्रकारका बीचमें ही विघ्न हो जावे तोभी*

म्भका नाश २ नहीं है ३।४ सि० जैसे किसीने माघमासमें प्रातः-कालस्नानकरनेका प्रारंभ किया और दोचार दिनके पीछे उस महीनेके बीचमें कुछ विघ्न होगया कि, जिसकरके वो निष्काम पुरुष महीना-भर स्नान न करसका तो उस थोडेही कालके स्नान करनेका अर्थात् प्रारंभमात्रकाभी नाश नहीं होताहै.तात्पर्य वो सकामकर्मवत् और खेती आदिकर्मवत् निष्फल नहीं जाताहै, एक न एक दिन अवश्यही निष्कामपुरुषको निष्कामकर्मयोगके फिर सन्मुख करके अन्तःकरण-शुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठकरके मुक्त करेगा । द्वितीयशंका यह है कि, जैसे मंत्रका जप वा पाठ विधिवत् न होसके तो उसमें उलटा पाप होताहै' अथवा रोग दूर करनेके लिये औषधि खाते हैं. जो कदाचित् वैद्यके समझमें रोग न आवे तो उलटा औषधि खानेसे ही मर जाताहै. यह निष्काम कर्मभी ऐसाही होगा क्योंकि प्रथम तो धर्मकर्मभक्ति आदिका स्वरूप यथार्थ जानना ही कठिन है सब पंडितआचार्योंका एक सिद्धांत नहीं, और जो किसी एक मतमें निश्चयभी किया उस कर्मका अनुष्ठान विधिवत् होना कठिन है, और जो दूसरेके वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान किया और बतानेवालेने बुद्धिके भ्रमसे वा मतमतांतर करके खेंचसे यथार्थ न बतलाया तो फलदेना तो पृथक् रहा, उलटा पाप लगनेसे डर लगताहै.यह शंका करके श्रीमहाराज कहतेहैं.कि ये दोष सकामर्मयोगमें हैं. निष्काम कर्मयोगमें*प्रत्यवाय(पाप) ५ नहीं हैं६।७ इस धर्मका८।९थोड़ा१० भी११सि०अनुष्ठान किया हुआ प्रारम्भमात्र-भी*बड़े२ भयसे १२।१३अर्थात् दुःखालयसंसारसे १३ रक्षा करताहै १४ तात्पर्य भगवदाराधनादि निष्कामकर्मयोग थोड़ाभी अपनी शक्तिके अनुसार किया हुआ अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठाको प्राप्त करके जन्ममरण (दुःखरूपसंसार) से छुड़ाकर पूर्णब्रह्मपरमानंदस्वरूप आत्मा

को प्राप्त करता है. पीछले पूर्वपक्षमें कहे हुए दोष सब सकामकर्मों हैं. निष्कामकर्म और सकामकर्मोंका बड़ा भेद है ॥ ४० ॥

मू०—व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनन्दन ॥
बहुशाखाह्यनन्ताश्चबुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥४१

कुरुनन्द१ इह२ व्यवसायात्मिका३ बुद्धिः ४एका५अव्यवसायिना ६बुद्धयः ७ अनंताः८ च ९ बहुशाखाः१० हि ११ ॥ ४१अ०उ०ज कि निष्कामकर्मयोगका यह अद्भुत माहात्म्य आप कहते हो तो लोग इसीका अनुष्ठान क्यों नहीं करते ? मूर्तिमान् परमेश्वरकादर्श बैकुंठ स्वर्गादिफल क्यों चाहते हैं ? यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं-कि हे अर्जुन ! १ इस मोक्षमार्गमें२ सि० मुमुक्षु अंतर्मु व्यवसायीपुरुषोंके विषय❀निश्चयस्वरूपवाली ३ अर्थात् निश्चय करने वाली आत्माकी ३ बुद्धि अर्थात् ज्ञान ४ एक ५ सि० ही है तात्पर्य इस अर्थमें जिसबुद्धिका निश्चयहै अर्थात् निश्चलहै जोबुद्धि इ अर्थमें कि निष्काम भगवदाराधनादि कर्मयोगकरके अंतःकरणशुद्धि द्वारा ब्रह्मज्ञान होकर निःसंदेह परात्परपरमानंदपूर्णब्रह्म आत्माकी(जि को परमगति कहते हैं)जीव प्राप्त होताहै.इसका नाम व्यवसायात्मिक बुद्धि है, सो यह मोक्षमार्गमें एकही है, अर्थात् इस ज्ञानके सिवा और दूसरा कोई ज्ञान, मोक्षका हेतु नहीं और जिनका यह निश्च नहीं उनको अव्यवसायी बहिर्मुख प्राणजनितविवेकबुद्धिरहित कहते उनके६. ज्ञान७ अनंत८ और९ वहुतशाखाभेदवाले १० भी११ सि है ❀ तात्पर्य वैदिकमार्ग तो सनातनसे एकही चला आताहै,कि जे पूर्वनिरूपण किया स्मार्तमतसे उसका विरोधनहीं औरकल्पितमतअनं हैं.और एकएकमें भी नानाभेद हैं.जिस वास्ते नये मत लोगोंने कल्पि किये हैं. श्रौतस्मार्तसनातनेमार्गको छोड़ दिया है इसका तेंतालिसवें श्लोकमें श्रीमहाराज कहेंगे ॥ ४१ ॥

मू०—यामिमांपुष्पितांवाचप्रवदन्त्यविपश्चितः ॥
वेदवादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ॥४२॥

याम् १ वाचम् २ पुष्पिताम्३प्रवदन्ति ४ पार्थ ५ इमाम्६ वेदवादरताः ७ अविपश्चितः८ न९अस्ति१०अन्यत्११ इति१२वादिनः१३॥ ॥४२॥ अ०उ० प्रमाणजनित विवेक बुद्धिरहित बहिर्मुख अव्ययसायी जिसको आप कहते हैं वे क्या बिनाप्रमाणके कर्म उपासना करते हैं, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं-यह कि उनके प्रमाणोंको सुन. सि० वेदोंके सिद्धांतका तात्पर्य जाननेवाले महात्मा व्यवासायी*जिस वाणी को १।२ पुष्पिता ३ कहते हैं. ४ तात्पर्य जैसे किसी वृक्ष में फूल तो बहुत सुन्दर दीखें परन्तु फल उनसे नहीं लगता है, वा लगता है तो कडवा, ऐसेही वेदोंमें रोचक वाक्यहैं अर्थात् अर्थवाद वाली श्रुतिहैं, सुननेमें तो वे बहुत प्रिय प्रतीत होती हैं फल उनकाकुछ नहीं, अर्थात् जो फल उसका अव्यवसायी कहतेहै बो फल उसश्रुतिका नहीं, जैसे व्रततीर्थादिका महात्म्य अर्थवाद हैं, तात्पर्य उनका अंतःकरणकी शुद्धि और चित्तकीएकाग्रता इसमें है, स्वर्ग वैकुंठ पत्रादि में नहीं ऐसे२वाणीको कि जिसको वेद पुष्पित कहते हैं. हे अर्जुन! ५।६ सि० ही अव्यवसायिनः*मोक्षका साधन सिद्धांत कहते हैं. कैसे हैं वे अव्यवसायिनः * वेदवादमें है प्रीति जिनकी ७ अर्थात् वेदोंमें अर्थ वाद (रोचकवाक्य) हैं, वे उनको प्रिय लगते हैं, और वास्ते चर्चा करनेके (अपनी पंडिताई दिखानेके लिये) उन अर्थवादोंको कंठ करलेते हैं ऐसे! ७ अविवेकी मन्दमति बहिर्मुख ८ सि० फिर कैसेहैं ये लोक कि आप अज्ञानी बने तो बने, ब्रह्मज्ञानको भी खंडन करते हुये ब्रह्मज्ञानियोंको अज्ञानी बनाते हैं, तात्पर्य वे यह करतेहैं कि जो हमारा मत है अर्थात् वेदसिद्धान्त है इससे सिवाय नहीं ९ है १० अन्यत्

११ सि और कोई मत सिद्धान्त अद्वैतब्रह्मज्ञान ज्ञाननिष्ठा संन्या
जो हम कहते हैं यही सिद्धान्त है ❀ यह १२ कहनेका स्वभाव
जिनका १३ तात्पर्य वेदान्तमें दोष निकालनेका यही बकनेका स्वभा
जिनका और भी इनके विशेषण अगले श्लोक में हैं ॥४२॥

मू०—कामात्मानःस्वर्गपराजन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलांभोगैश्वर्यंगतिंप्रति ॥४३॥

कामात्मानः १ स्वर्गपराः २ जन्मकर्मफल प्रदाम् ३ भोगैश्वर्यगति
४ प्रति ५ क्रियाविशेषबहुलाम् ६॥४३॥ अ० उ० ऐसा अनर्थ वे क्यों
करते है ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहतेहै-कि वे कामी विषयी
अर्थात् बहिर्मुख १ सि० हैं फिर कैसे हैं कि ❀ स्वर्गही परमपुरुषार्थ
का अवधि जिनको २ सि० इस विशेषणसे स्पष्ट यह प्रतीत होता है
कि यज्ञ दान व्रत तीर्थ और भगवदाराधनादि जो करते हैं ये तो
कैवल्यमोक्षके लिये नहीं करते.किन्तु भोगोंके लिये करतेहैं स्वर्गपदतो
उपलक्षण है अर्थात् वैकुंठ गोलोंकादि सावयवलोक सब आगये
पीछले श्लोकमें जो कहाथा कि,वे इस पुष्पितावाणीको सिद्धांत कहतेहैं
उस वाणीके विशेषण औभीरसुन. कैसीहै वो वाणी❀ जन्मकर्मफलको
देनेवाली३सि०हैं अर्थात् उस वाणीके अनुसार जो कर्म किया जाता
उस कर्मका यही फल है कि, बारम्बर संसार में जन्म होना, जन्मही
उसका कर्ममेंफलहै, फिर कैसीहै❀भोग और ऐश्वर्य इनके प्राप्तिके प्रति
४।५ सि० तात्पर्य भोगैश्वर्यके प्राप्तिके लिये साधन है वो वाणी उस
वाणीके अनुसार अनुष्ठान करनेसे भोगकी और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती
है, फिर कैसी है वो वाणी❀क्रियाविशेष बहुत हैं जिसमें, सि०अर्थात्
उस वाणीमें नानाप्रकारकी क्रिया हैं और एक२ क्रिया का अंत नहीं

प्रतीत होताहै.क्योंकि अनंत अर्थात् बहुतहैं.हे अर्जुन!उन अव्यवसायियोंके ऐसे २ वाक्योंका प्रमाण है ऐसी २ वाणी वक्ते हुए संसार में भ्रमते रहते हैं ऐसे पुरुषोंकी साक्षात् मोक्षकी साधनरूप व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होतीहै.अगलेश्लोकके साथ इसका अन्वयहै॥४३।

मू०–भोगैश्वर्यप्रसक्तानांतयापहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौनविधीयते ॥४४॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् १ तया २ अपहृतचेतसाम् ३ समाधौ ४ व्यवसायात्मिका ५ बुद्धिः६ न ७ विधीयते ८ ।४४।अ०-उ० भेदवादी सदा ब्रह्मज्ञानसे विमुख रहकर संसारमें भ्रमते हैं. यह कहते हैं श्रीमहाराज भोग और ऐश्वर्य इनमें जो आसक्त हैं १ सि० और॥तिसकरके २ अर्थात् उस पुस्यितावाणीकरके२ हरागया है चित्त जिनका३अर्थात् उसपुस्पितावाणी करके उनकी विवेकबुद्धि आच्छादित होगई याने ढकगई है. उनके ३ अंतःकरणमें ४ व्यवसायात्मिका बुद्धि ५।६ नहीं ८ उत्पन्न होती है वा नहीं स्थिर होती=तात्पर्य उनका चित्तशांत नही होताहै, क्योंकि सदा इस लोक परलोकके विषयोंमें तत्पर रहतेहैं. टी० जो समाधान किया जावे उसको भी समाधि कहते हैं, इस व्युत्पत्ति से यहां समाधिका अर्थ अन्तःकरण है ४ ॥ ४४ ॥

मू०–त्रैगुण्यविषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥
निर्द्वन्द्वोनित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआतमवान्४५

त्रैगुण्यविषयाः १ वेदाः२ अर्जुन ३ निस्त्रैगुण्यः ४ भव ५ निर्द्वन्द्वः ६ त्यिसत्त्वस्थः ७ निर्योगक्षेमः ८ आत्मवान् ९ ॥ ४५ ॥ अ०उ० जब कि वेदोंही में पुष्पितावाणी याने रोचक अर्थात् निष्फल वाक्य हैं. तो उन वाक्योंके कहनेबालेका और उन वाक्योंके अनुसार अनुष्ठान करनेवाले का क्या दोष है ? यह शंका करके

श्रीमहाराज कहतेहैं-कि क्या वेदोंमें केवल पुष्पितावाणीहीहै, साक्षा मोक्षका साधन क्या उसमें नहीं? अर्थात् वेदोमें रोचक वाक्य भी और साक्षात् मोक्ष साधन मंत्रभी है, प्रत्युत मारण उच्चाटनादि भी बहुत हैं, परन्तु मुमुक्षुको सिवाय साक्षान्मोक्ष साधनोंके और वाक्यों से कुछ काम नहीं इस गीताशास्त्रमें ब्रह्मविद्या यह मैं साक्षात् मोक्ष का साधन निरूपण करता हूँ, समस्त वेदवाक्योंसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं, जो उनका प्रमाण दिया जावे, मुमुक्षुका प्रयोजन केवल मोक्ष साधनोंसे है, सोई सुन सत्त्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी कामनावाले पुरुषोंके विषय १ सि० भी हैं* वेद२ अर्थात् जैसेको तैसा फल देने वालेभी हैं और साक्षात् मोक्षका साधनभी हैं वेद २ हे अर्जुन! ३ सि० परन्तु तुझको तो मैं ब्रह्मविद्या साक्षात् मोक्षका साधन सुनाता हूं इस समय तू तो गुणा-तीत निष्काम ४ हो ५ सि० रोचकवाक्यों की तरफ दृष्टि मतकर, गुणातीत होनेका साधन यह है* द्वन्द्वरहित ६ सि० हो अर्थात प्रारब्धवशात् जो सुखदुःख इष्टानिष्टादि प्राप्त हो सबको सहनकर सुखदुःखादिके वश मत हो. निर्द्वन्द्व होनेमें हेतु यह साधकहै कि*नित्यसत्व जो आत्मा उसमें स्थिति ७सि० हो अर्थात् आत्मनिष्ठ हो, अथवा सदा सत्त्वगुणमें दीर्घकालस्थिति होसक्ती है, इसी वास्ते यह कहते हैं, कि* योगक्षेम रहित सि० हो अर्थात् जो पदार्थ लौकिक प्राप्त नहीं उसके प्राप्तिका तो उपाय मतकर, और जो प्राप्त है उसके रक्षामें प्रयत्न मतकर, पूर्वोक्त साधनोका हेतु यह साधन है कि* अप्रमत्त६सि०हो अर्थात् प्रमादी प्रमत्त मत हो, सदा चैतन्य अनालस्य रहना योग्य है. विषयोंसे विमुख होकर आत्माके सन्मुख होना चाहिये, पूर्वोक्तसाधन जिसको नहीं उसको मोक्षमार्ग में प्रयत्न होना कठिन है * ॥४५॥

सू०-यावानर्थउदपानेसर्वतःसंप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषुवेदेषुब्राह्मणस्यविजानतः ॥४६॥

यावान्१अर्थः२ उदपाने ३ सर्वतः ४ संप्लुतोदके ५ तावान्६ सर्वेषु ७ वेदेषु ८ विजानतः ९ ब्राह्मणस्य १०॥४६॥ अ० -उ०इस लोकपरलोकके सुन्दरभोगोंसे हटाकर निष्काम गुणातीत होना आप कहते हो, इसमें क्या आनंद है ? यह तो रूखीसूखी शिला प्रतीत होतीहै यह सुन्दर कर्मउपासना करके स्वर्गवैकुण्ठादिमें जाकर आनंद भोगना योग्य है, यहशंका करके श्रीमहाराज कहतेहैं कि, सि० जैसे॥जितना १ प्रयोजन२उदपानमें ३ सि० जगे जगे यत्रकुत्र भ्रमनेसे सिद्ध होता है अर्थात् जलपान कियाजावे जिसमें उसको उदपान कहते हैं, कूपसरसरितादिकोंका नाम उदपान है, कूपादिकोंके जलोंमें स्नान करना तीरना और नावका चलना इत्यादि प्रयोजन एक जगह सिद्ध नहीं हो सक्ते, जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है तात्पर्य जितना प्रयोजन उदपानमें जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है वो ॥ समस्त ४ समुद्रमें ५ सि० एक जगहही सिद्ध होजाता है, तात्पर्य जैसे समुद्रमें सब प्रयोजन उदपानोंका सिद्ध होजाता है तैसाही जितना॥सब वेदों में ६।७ सि० जो फल है अर्थात् समस्त वेदोक्त कर्मउपासना योगादिका अनुष्ठान करनेसे जो फल (जगेजगे स्वर्गवैकुंठादिमें भ्रमनेसे) परिच्छिन्न आनंद प्राप्त होता है॥उतना ही ८ अर्थात् वो सब फल प्रत्युत उससे भी विशेषपूर्ण निरतिशयानन्दफल८परमार्थ तत्त्वके जाननेवाले परमहंस ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणको ९।१० सि० प्राप्त होता हैं, तात्पर्य स्वर्गवैकुण्ठादि साधन हैं आनन्दके मुख्य फल परमानंद है, सोई गुणातीतनिष्काम ब्रह्मज्ञानीका स्वरूप है, पूर्णपरमानंद विद्वानोंकोही प्राप्त होता है, सिवाय ब्रह्मविदोंके औरोंको पूर्ण परमानन्द नहीं प्राप्त होता

है, जैसे कूपादि जलोंमें सब प्रयोजन नहीं सिद्ध होता है, इसी है
गुणातीत निष्काम ब्रह्मनिष्ठा होना ही सबसे श्रेष्ठ है ❀ ॥४६॥

मू०-कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषुकदाचन ॥
मार्कमफलहेतुर्भूर्मातेसंगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७

ते १ अधिकारः २ कर्मणि ३ एव ४ मा ५ फलेषु ६ कदाचन
कर्मफलहेतुः ८ मा ६ भूः १० ते ११ अकर्मणि १२ संगः १३
१४ अस्तु ॥१५॥४७॥अ०-उ० जो ब्रह्मज्ञानीको सब फलकी प्रा
होतीहैं,तोब्रह्मज्ञानकाही अनुष्ठान करके इसलोकपरलोकके सबभोगों
भोगना योग्यहै, अल्पफलदायक ऐसे कर्म उपासना और योगादि
अनुष्ठान करना कुछ आवश्यक नहीं, प्रयोजन तो हमारा फलसे
सो ज्ञाननिष्ठासेही प्राप्त होजायगा,यह शंका करके श्रीमहाराज क
हैं-कि तेरा १ अधिकार २सि०तो❀कर्ममें ३ही ४सि०है और न
है ५फलमें६कभी७सि० तेरा अधिकार अर्थात् साधनअवस्थामें सि
अवस्थामें व किसी अवस्थामें भी तेरा अधिकार स्वर्गवैकुण्ठादि फ
भोगोंमें नहीं, क्यों तू मुमुक्षुहै, तूने परमश्रेयका साधन मुझसे बूझा
हे अर्जुन!मुमुक्षुकाअधिकार अन्तःकरणके शुद्धिके लिये कर्मोंमें तो
परंतु स्वर्गवैकुण्ठादिके भोगोंके अधिकार नहीं, क्योंकि प्रथम तो
अनित्यादिदोषोंकरके दूषित हैं, और मोक्षमें प्रतिबन्धक हैं इस हे
❀कर्मोंके फलमें हेतु८मत६हो१० अर्थात् मनमें कर्मोंके फलकी तृष
मत रखकि, जिससे कर्मोंके फलके प्राप्तिका हेतु तुझको होना प
तात्पर्य कर्मोंके फलप्राप्तिमें हेतु तृष्णाहै,उसको त्याग और१० तेरी १
अकर्ममें १२ प्रीति याने निष्ठा १३ मत १४ हो १५ अर्थात् जबत
अन्तःकरण शुद्ध होवे, तबतक कर्ममें तेरी निष्ठा रहे यह उपदेश
है, और अशीर्वाद भी है, वास्ते निर्विघ्नताके ॥ ४७ ॥

मू०-योगस्थःकुरुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाधनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते४८

धनंजय१ योगस्थः २ संगम ३ त्यक्त्वा ४ सिद्ध्यसिद्ध्योः५समः६ भूत्वा ७ कर्माणि ८ कुरु ९ योगः १० समत्वम् ११ उच्यते १२ ॥४८॥ अ०उ० कर्म करने की विधि कहते हैं-हे अर्जुन ! १ योगस्थित हुआ २ सि० कर्मोंमें और कर्मों के फलमें ❀ आसक्ति को ३ त्यागकर ४ सि० और कर्मोंकी सिद्धि और असिद्धिमें ५ सम होकर ६।७ कर्मोंको ८ कर ९. योग १०समताको ११ कहतेहैं १२ तात्पर्य समतामें स्थित होकर कर्म कर ॥ ४८ ॥

मू०-दूरेणह्यवरंकर्मबुद्धियोगाद्धनंजय ॥
बुद्धौशरणमन्विच्छकृपणाःफलहेतवः ॥४९॥

धनंजय१बुद्धियोगात् २ कर्म ३ दूरेण ४हि ५ अवरम् ६ बुद्धौ ७ शरणम् ८ अन्विच्छ ९ फलहेतवः १० कृपणाः ११ ॥ ४९ ॥ अ० हे धनञ्जय ! १ ज्ञानयोगसे २ कर्म३अत्यन्त ४।५ निकृष्ट ६ सि० हैं अर्थात् श्रेष्ठ नहीं.इस वास्ते ❀ ज्ञानमें ७ रक्षा करनेवालेकी ८ प्रार्थनाकर ९. तात्पर्य अभयप्राप्तिका जो कारण परमार्थज्ञानका उसकी प्रार्थना (जिज्ञासा कर) उसको शरणहो. परमार्थ ज्ञानका आश्रयले कामनावाले फलके तृष्णावाले १० दीनयाने अज्ञानी ११ सि० होते हैं ❀ तात्पर्य कर्मों से अंतःकरण शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ होना चाहिये स्वर्गादिकी इच्छा नहीं रखना ॥ ४९ ॥

मू०-बुद्धियुक्तोजहातीहउभेसुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाययुज्यस्वयोगःकर्मसुकौशलम्॥५०॥

बुद्धियुक्तः १ इह २ सुकृतदुष्कृते ३ उभे ४ जहाति ५ तस्मात् ६ योगाय ७ युज्यस्व ८ योगः ९ कर्मसु १० कौशलम् ११ ॥ ५० ॥ अ०-ज्ञानयुक्त १ जीतेही २ पुण्य और पाप इन दोनोंको ३।४

त्याग देता है. ५ जिस कारण से ज्ञानयोग के वास्ते ७ प्रयत्नकर
ज्ञानयोग ६ कर्मों में १० चतुरता ११ सि० है ❀ तात्पर्य कर्मकरने
चतुरता क्याहै कि बन्धनरूप कर्मों मेंसे ज्ञानको प्राप्त होजाना अर्थ
कर्म करके अकर्म होजाना यही कर्म करनेमें चतुरताहै.नहीं तोजो
करनेसे इसी जन्ममें ब्रह्मज्ञान न हुआतोकर्मोंका करना निष्फलहुआ

मू०-कर्मजंबुद्धियुक्ताहिफलंत्यक्त्वामनीषिणः॥
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताःपदंगच्छन्त्यनामयम्॥५१

बुद्धियुक्ताः१ हि२ मनीषिणः ३कर्मजम् ४ फलम् ५ त्यक्त्वा६जन्म
बंधविनिर्मुक्ताः ७ अनामयम् ८ पदम् ९ गच्छंति १०॥५१॥ अर्थ
ज्ञानयुक्त १ ही२पंडित ३ कर्मसे प्राप्तहुए ४ फलको ५ त्याग कर
६ जन्मरूप बंधनसे छूटे हुए ७ समस्तउपद्रवरहितपदको ८।
प्राप्त होते हैं १० तात्पर्य कर्मों से जो उत्पन्न होते हैं,(अ
होते हैं) स्वर्गवैकुण्ठादि फलविशेष उनका त्यागकरके ज्ञानी पं
ही मुक्त होते हैं, कभी उपासकयोगी पंडित अपने किये हुए क
के फलको प्राप्त होते हैं, मोक्षको नहीं प्राप्त होते ॥५१॥

मू०-यदातेमोहकलिलंबुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदागन्तासिनिर्वेदंश्रोतव्यस्यश्रुतस्यच ॥५२

यदा १ ते २ बुद्धिः ३ मोहकलिलम् ४ व्यतितरिष्यति ५ तदा
श्रोतव्यस्य ७ श्रुतस्य ८ च निर्वेदम् १० गन्तासि ११ ॥ ५२॥
अ०-उ० यह कर्म करते करते मैं किसकाल में ब्रह्मज्ञान का अ
कारी हूँगा, और मेरा चित्त शान्त होकर आत्मा में कब आत्मा
होगा, इस अपेक्षामें श्रीमहाराजाअर्जुनकेप्रति दो श्लोकोंमें यह क
हैं-जिसकालमें १ तेरी २ बुद्धि ३ मोहरूपकीचको ४ भलेप्र
तरेगी५. तात्पर्य देहादिपदार्थों में जो तेरी आत्मबुद्धि है, देहादि

र्थोंको जो तू अपना आत्मा समझताहै, वा उनमें ममता करना वा उनके साथ आत्माकी एकता करना.वा तादात्म्याध्यासकरना इसीको मोहरूप कीच कहते हैं, यह अविवेक तेरा जब दूर होगा तिसकालमें ६ श्रुत और श्रोतव्यके ७।८।९ वैराग्यको १० [तू] प्राप्त होगा ११ अर्थात् पीछे जो जो सुनाहुआ है और आगेको जो जो सुननेके योग्य समझ रक्खाहै, इन सबसे तुझको वैराग्य होजायगा, न कुछ सुननेकी इच्छा करेगा और न पीछले सुनेमें कुछ संशय रहेगा, इसप्रकार शुभाशुभ कर्मोंसे उपराम होकर जब फिर ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होगा ॥ उक्तंच। "ग्रथंमभ्यस्यमेधावी विचार्यचपुनःपुनः॥ पलालमिवधान्यार्थीत्यजेद्ग्रन्थमशेषतः" इसका अर्थ यहहै मुमुक्षु प्रथम ग्रन्थोंका भलेप्रकार अभ्यास करके वारंवार विचार करे फिर अपने स्वरूपको प्राप्त होकर ग्रन्थोंको त्याग देताहै, जैसे धानकी इच्छावाला पुललको त्यागदेता है और धानका ग्रहणकरताहै,श्रुतश्रोतव्यसे वैराग्य होना इसको-कहते हैं

मू०--श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला ॥
समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि॥५३॥

यदा१ ते २ बुद्धिः ३ समाधौ४ निश्चला ५ अचला६ स्थास्यति७ तदा८ योगम्९ अवाप्स्यसि१० श्रुतिविप्रतिपन्ना११॥५३॥ अ० सि० और*जिस कालमें१तेरी२बुद्धि३आत्मामें४विक्षेपरहित५विकल्परहित स्थित होगी७ तिसकालमें८ समाधियोगको९ प्राप्त होगा (तू)१० से० अबतक कैसी है तेरी बुद्धि कि अनेक शास्त्रपुराणेतिहासादि और श्रुतिस्मृत्यादिकोंका*श्रवणकरनेसे विक्षेपको प्राप्त हुई है ११ तात्पर्य जबतक पूर्वापरवाक्योंका अविरोधसमन्वय नहीं समझेगा तब तक चित्तकी शांति कभी न होगी और वेदशास्त्रमें अवश्य श्रुद्धाविश्वास करकेआत्मनिष्ठ होनायोग्यहै रोचकवाक्योंमें नहीं अटकना यही इस प्रकारका अभिप्राय है॥ ५३ ॥

मू०-अर्जुनउवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्यकाभाषासमाधिस्थस्यकेशव ॥ स्थितधीःकिंप्रभाषेतकिमासीतव्रजेतकिम् ॥ ५४ ॥

केशव १ समाधिस्थस्य २ स्थितप्रज्ञस्य ३ का ४ भाषा ५ स्थितधीः ६ ७ प्रभाषेत ८ किम् ९ आसीत १० किम् ११ व्रजेत १२ ॥ ५४ ॥ अ०- ब्रह्मज्ञानीके लक्षण जानेकी इच्छा करके अर्जुन श्रीभगवान्से प्र करताहै-हे केशव ! १ सि० स्वभावसेही जो ❀ निर्विकल्पसमाधिमें स्थि हैसि० और अहंब्रह्मास्मि इस महावक्यार्थमें दृढ़ ❀ स्थितहै बुद्धि जिस तिसको ३ क्या ४ भाषा ५ सि० है. अर्थात् और लोग उसको कहते हैं, कहाजावे अन्यकरके उसको भाषाकहते हैं. तात्पर्य उस लक्षण क्या है, और आत्मस्वरूपमेंही ❀ निश्चयहै बुद्धि जिसकी ६ कैसे ७ बोलता है ? ८ कैसे ९ बैठताहै? १० कैसे ११ चलताहै? अर्थात् उस ज्ञानीका बोलना बैठना और चलना किस प्रकारका यह तीन प्रश्न उस ज्ञानीके प्राति हैं कि जो सविकल्पसमाधिमें स्थित और पहला प्रश्न निर्विकल्पसाधिवाले ज्ञानीके प्रतिहै, तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी किसीसमय निर्विकल्पसमाधि स्वाभाविक बनी रहती है, किसी स प्रयत्नसे और किसीसमय सविकल्पअंतःकरणकी वृत्तिहोजाताहै की अर्जुन दोनों प्रकारके ज्ञानियोंका लक्षण बूझता है ॥ ५४ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ प्रजहाति यदाकामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मनातुष्टःस्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

पार्थ १ यदा २ सर्वान् ३ कामान् ४ प्रजहाति ५ मनोगतान् आत्मना ७ आत्मनि ८ एव ९ तुष्टः १० तदा ११ स्थितप्रज्ञः १ उच्यते १३ ॥ ५५ ॥ अ०-उ० साधकके लिये जो ज्ञानके साध

हैं.वेही सिद्धके स्वाभाविक लक्षण हैं. अर्जुनके प्रश्नके अनुसार ज्ञानी
का लक्षण श्रीमहाराज निरूपण करते हैं, और साधकके लिये यही
अंतरंगज्ञानके हैं अध्यायक साधन समाप्तिपर्यन्त. प्रथम अब
थम प्रश्नका उत्तर दो श्लोकोंमें कहते हैं-हे अर्जुन ! १ जिसकालमें २
ब कामना को ३।४ त्याग देता है ५ सि० जो महापुरुष, कैसी
वे कामना कि इसलोक परलोकके पदार्थोंकी सूक्ष्मवासना ❀
नमें प्रवेश होरही है ६. तात्पर्य जिसकालमें सूक्ष्मवासनासहित
मस्त (इसलोकपरलोककी) वासना त्यागदेता है, और पूर्णा-
न्दस्वरूप ऐसे आत्मा करके ७ आत्मामें ८ ही ९ तृप्त १०
सि० है. जिसकालमें जो महापुरुष उसको ❀ तिस कालमें ११
स्थितप्रज्ञ १२ कहते हैं. १३ तात्पर्य ब्रह्माकारवृत्ति में निश्चल हो-
रही है बुद्धि जिसकी उसको महात्मा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं और
निर्विकल्प समाधिसहित ब्रह्मज्ञानका साधन समस्तवासना का त्याग
र है "वासनासंपरित्यागः" यही वासिष्ठमें भी कहाहै ॥ ५५ ॥

मू०-दुःखेष्वनुद्विग्नमनाःसुखेषुविगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधःस्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

दुःखेषु १ अनुद्विग्नमनाः २ सुखेष ३ विगतस्पृहः ४ वीतराग-
भयक्रोधः ५ स्थितधीः ६ मुनिः ७ उच्यते ८ ॥ ५६ ॥ अ०-
दुःखोंमें नहीं होता है उद्विग्न या क्षोभित या विक्षिप्त मन जिसका
सुखोंमें ३ नाश होगई है इच्छा जिसकी ४ जाते रहे हैं राग भय
और क्रोध जिससे ५ सि० ऐसे महात्माको ❀ ब्रह्मज्ञानी ६ परम-
हंस या संन्यासी ७ कहते हैं ८ विद्वान् पंडित और दुःखसुखा-
दिकोंमें सम होना ही ब्रह्मज्ञानके साधन हैं ❀ ॥ ५७ ।

मू०-यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्यशुभाशुभम् ॥
नाभिनन्दतिनद्वेष्टितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥५७॥

यः १ सर्वत्र २ अनभिस्नेहः ३ तत् ४ तत् ५ शुभाशुभम् ६

प्राप्य न ७न अभिनन्दति ९ न १० द्वेष्टि ११ तस्य १२ प्रज्ञा
प्रतिष्ठिता १४॥५७ ।अ० उ० कैसे बोलता है ज्ञानी, इस दूसरे
का उत्तर कहते हैं–जो १ सर्वत्र २ सि०पुत्र पोथी और देहादिपद
में॥स्नेह (प्रीति) रहित ३ सि० है और॥तिसतिस ४।५ शुभ
अशुभको ६ प्राप्त होकर ७ अर्थात् जो शुभ पदार्थ हैं, याने
को यह प्रिय अनुकूल ऐसा है, तिसको प्राप्त होकर तो ७ नहीं
हर्ष करता है ९, सि० और जो अशुभ पदार्थ है याने अपने
अर्थात् प्रतिकूल है, तिसको प्राप्त होकर॥नहीं १० द्वेष करता
सि०जो महापुरुष॥तिसकी १२बुद्धि १३निश्चल १४सि०ब्रह्म स्व
और जो पूर्वोक्त साधन करेगा उसकी वृत्ति ब्रह्माकार होजावेगी,
तात्पर्य बोलनेसे राग द्वेषादिगुण दोष सबके प्रतीत होते हैं,यह
प्रसिद्ध है, परन्तु ज्ञानीको नहीं प्रतीत होते हैं क्योंकि ज्ञानी हर्ष
के कारण हुए सन्तेभी उदासीन हुआ बोलता है. यह उदासीन
बोलना यही ज्ञानीका लक्षण है, इत्यभिप्रायः ॥५७॥

मू०–यदासंहारतेचायंकूर्मोंगानीवसर्वशः ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता

यदा १ अयम्२सर्वशः३ इन्द्रियाणि ४ इन्द्रियार्थेभ्यः ५संहरते
७ तस्य ८ प्रज्ञा ९प्रतिष्ठिता १० कूर्मः ११ अंगानि १२इव१३
अ०--जिसकालमें १यह सि०योगी॥सबतरफसे३ इन्द्रियोंके अर्थों
संकोच करलेता है६ और७ सि०चित्तमें स्मरणभी नहीं करता है,
कालमें॥तिसविद्वान्‌की ८बुद्धि ९निश्चल१० सि० सच्चिदानंद
ऐसे आत्मामें होती है इसी साधनसे मुमुक्षुकी होजायगी, इन्द्रि
निरोधमें विद्वानको आयास दुःखनहीं होता है,इसबातको दृष्टांतसे

करतेहैं, श्रीमहाराज॥कछुवा११सि० अपने हाथ पांव॥अंगोंका १२ जैसे१३ सि०स्वाभाविक संकोच कर लेता हैं, इसीप्रकार विद्वान् स्वाभाविक विषयोसे इंद्रियोंको निरोध करलेता है॥ ॥५८॥

मू०-विषयाविनिवर्तन्तेनिराहारस्यदेहिनः॥
रसवर्जरसोऽप्यस्यपरंदृष्ट्वानिवर्तते ॥५९॥

निराहारस्य १ देहिनः२विषयाः ३ विनिवर्तन्ते ४ रसवर्जम्५अस्य परम्७दृष्ट्वा ८रसः ९अपि१०निवर्तते११॥५९॥अ०-उ०इंद्रियोंकी विषयोंमें प्रवृत्ति न होना यह लक्षण जो ब्रह्मज्ञानीका श्रीमहाराज कहते, इसमें तो अतिव्याप्तिदोष आताहै क्योंकि ऐसे तो निराहारी रोगी भी होते हैं यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं-कि, निराहारीजीव के १।२सि० भी ॥ विषय ३ निवृत्त हो जाते हैं ४ सि० यह तो सत्यहै, परंतु॥ रसवर्जित ५ सि० निवृत्त होते हैं।। ॥ अर्थात् विषयों से राग उसका नहीं दूर होता है, तात्पर्य विषयोंमें उसकी अभिलाषाऔरसूक्ष्म कामना बनी रहतीहै और इस ब्रह्मज्ञानीका६ पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दआत्माको ७देखके ८अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त होकर ज्ञानीका ८रस ९भी १० निवृत्ति होजाता है ११सि०इसप्रकार समझनेसे पूर्वोक्तलक्षणमें अतिव्याप्तिदोष नहीं ॥ ॥५९॥

मू०-यततोह्यपिकौन्तेयपुरुषस्यविपश्चितः॥
इन्द्रियाणिप्रमाथीनिहरन्तिप्रसभंमनः ॥६०॥

कौन्तेय१ यततः२ हि ३विपश्चितः ४पुरुषस्य ५अपि ६ इन्द्रियाणि प्रमाथीनि ८प्रसभम्९ मनः १० हरंति ११॥६०॥अ०-उ० विना इन्द्रियोंके संयमकिये ज्ञान होना दुर्लभ है, इस वास्ते साधन अवस्थामें जो इन्द्रियोंके निरोध करनेमें अत्यंत प्रयत्नकरनायोग्यहैयहदो श्लोकोंमें

कहते हैं–१हे अर्जुन ! सि०मोक्षमेंप्रयत्न*करनेवालेके२सि०इन्द्रि
भी३ विद्वान् विवेकी पुरुषके ४।५भी६इन्द्रिय७प्रमथनस्वभाववाले
क्षोभकरनेवाले८बलकरके९मनको१०हरलेतेहैं११अर्थात् जबरद
मनको विषयोंमें विक्षिप्तकर देते हैं जब कि विद्वान् की इन्द्रिय
विद्वान्‌के मनको विषयोंमें विक्षिप्त करदेते हैं,तो फिर मुमुक्षु स
को तो साधन अवस्था में भलेप्रकार चैतन्यरहकर प्रयत्नकरना यो
इतिहास एकसमय व्यासजीजैमिनि(अपनेशिष्यको)यहीश्लोकसुना
थे,जैमिनिजीने कहाकि आपका कहना तो सब सत्यहै परन्तु यहनह
सक्ताकि जोइन्द्रिय विद्वान्‌के मनकोभी विषयोंमें विक्षिप्त करदें
द्वान्‌के मनको विक्षिप्तकर सक्ते हैं व्यासजीने उनको बहुत समझ
परंतु व्यासजीके इस वाक्य में उनको विश्वास न आया व्यास
कहा कि इस श्लोकका अर्थ फिर किसीकालमें तुमको समझावें
कहकर चलदिये. उसीदिन दोघड़ीदिन रहे ऐसी माया रची कि
ग्यारह स्त्री तरुण मायाकी रचकर और आपभी एक सुन्दरस्वरू
बनकर,जोरजैमिनिकी कुटिके सामने जाकर हँसी चोहल खेल
का प्रारम्भ करदिया जिसकालमें बारीकवस्त्र उन स्त्रियोंका प
उडा और गेंद उछालते हुये जो हाथ उन स्त्रियोंने ऊपरको कि
कालमें उधर, जंघा,स्तन इत्यादि अङ्ग उनस्त्रियोंके जैमिनिजीको
गये, फिर उसीकालमें ऐसा बादल होगया जैसे भादोंमें होताहै,
होगया मन्दमंद बरसने लगा,पवन चलनेलगी वे सब मायाकी
लोप होगई, व्यासजीका जो स्वरूप स्त्रीका बनाहुवा था वोही
गया सो वह स्त्री जैमिनिजीके पासगई,और कहाकि महाराज!
संगकी सहेली न जानिये कहांगई मैं अकेलीरहगईहूं अब रात
जाऊं? आप आज्ञा करो तो रातभर एक मकानमेंमैं भी पड़ी

प्रथम तो जैमिनिजीने उसको रात्रिके समय अपने पास रहनेको बहुत मना किया, फिर उसकी दीन बोली सुनकर कुछ दया आगई उसी स्त्रीसे यह कहा कि, दूसरे मकानमें जाकर भीतरसे सांकल लगा ले, यहां एक भूत रात्रिके समय आयाकरता है, वो मेरे सरीखी बोली बोलेगा, उसेके कहनेसे किवाड़ मत खोलिये, नहीं तो वो भूत तुझको खा जायगा. व्यासजीने मनमें कहा कि विद्वान् होनेमें तो इसके संदेह नहीं, यत्न तो बड़ा कियाहै. जैमिनिजीका वो वाक्य सुनकर मकानके भीतर जाकर उस स्त्रीने भीतरसे सांकल लगाय ली.वो स्त्रीरूपी व्यास फिर निजस्वरूप(व्यास)होकर ध्यानमें बैठ गये. जैमिनिजी जब ध्यान करनेमें बैठे तब उस स्त्रीकी याद होगई बारबार मनको निरोध करें, मन शान्तही न हो. जैमिनिजी ध्यान जप छोड़कर उठे और उस और उस मंदिरके द्वारपर जाकर कहा कि, ले प्रिये ! मैं जैमिनि हूँ तुझसे बचनेके लिये भूतकी झूठी कथा तुझको सुनाईथी अब तू बेसंदेह कपाट खोलदे तेरे बिना मुझको निद्रा नहीं आतीहै. इसीप्रकार प्रार्थना करते करतेहोगये.मारे काम और विरहके फिर कोठेपर जाकर छत उखाड़कर भीतर कूद पड़े. व्यासजीने एक थप्पड़ जैमिनिजीके मुखपर मारकर कहा तू विद्वान् वा अविद्वान् ? जैमिनिजी लज्जाको प्राप्त हुए. व्यासजी ने कहा कि तुम्हारे विद्वात्तामें और साधुतामें संदेह नहीं. जो चाहियेथा वोही तुमने किया कदाचित् इसप्रकार विद्वान् धोखा खाकर अनर्थकर बैठे उसको कभी प्रत्यवाय याने पातक नहीं. थोड़ेदिन हुए ऐसाही एक व्यवस्था दक्षिण देशमें हुई उसको भी सुनो.दैवयोगसे एक स्त्री भूली हुई रात्रिके समय किसी महात्माकी कुटीपर चलीआई.महात्माने इसी प्रकार भूतकी कथा सुनाकर दूसरे मकानमें सुवा दिई. रात्रिके समय थोड़ी रातरहे वे महात्माभी छत उखाड़कर कूदे.सो उनके शरीरमें एक

लकड़ी घुसगई उससे बड़ा भारी घाव हो गया. वो स्त्री इनको पहच कर घबराई. पछताती हुई कहने लगी कि, मुझसे बड़ा अपराध हुआ जो किवाड़ न खोले. महात्माने उसको समझादिया और यह कहा तू शोच मतकर और जो मैं मर जाऊं तो यह लिखा हुआ मेरा लो को दिखा देना कह उसीसमय महात्माने अपने रक्तसे वो सब व्यव संस्कृत श्लोकोंमें लिख दी. नाम उस व्यवस्थाका रक्तगीता लिख परमधामको प्राप्त हुए. सो वो रक्तगीता प्रसिद्धहै और वो संसारसे उप करनेवालीहै, और तात्पर्य उसका यहीहै कि जो इस श्लोकका अर्थ है

मू०-तानिसर्वाणिसंयम्ययुक्तआसीतमत्परः ॥
वशोहियस्येन्द्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥६१

तानि१ सर्वाणि २ सयम्य ३ युक्तः ४ मत्परः ५ आसीत ६ यस इंद्रियाणि ८ वशे ९ तस्य १० हि११ प्रज्ञा १२ प्रतिष्ठिता१३॥६१

अ०-उ०जब कि इंद्रिय यह अनर्थ करतेहैं, तो इसीवास्ते तिन सब योंको१।२सि०विषतोंसे*रोक करके३ सावधान हुआ४ मुझ सच्चि नंदपरायण५ सि०हुआ अर्थात् मैं सच्चिदानंदस्वरूप अद्वैत हूं, सि मुझ सच्चिदानंदपूर्णब्रह्मके और कुछ पदार्थ तीनों कालमें नहीं ध्यानमें तत्पर हुआ*बैठताहै६ जिसके७ इंद्रिय८ वशमें९ सि० तिसकी १० ही ११ बुद्धि १२ निश्चल१३ सि०है, सच्चिदानंदस्व पूर्णब्रह्ममें वो ज्ञानीकैसे बैठताहै,इसप्रश्नकाउत्तरइसमंत्रमेंकहा*ता ज्ञानीसब इंद्रियोंका निरोधकरके आत्मामें मग्न हुआ बैठा रहताहै॥

मू०-ध्यायतोविषयान्पुंसःसङ्गस्तेषूपजायते ॥
सङ्गात्संजायतेकामःकामात्क्रोधोऽभिजायते॥६

मू०-क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः॥
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥६३॥

विषयवान् १ ध्यायतः २ पुंसः ३ तेषु ४ संगः ५ उपजायते ६ संगात्७कामः ८ संजायते ९ कामात् १० क्रोधः ११ अभिजायते १२॥६२॥ क्रोधात् १ संमोहः २ भवति ३संमोहात् ४स्मृतिभ्रविमः ५ स्मृतिभ्रंशात् ६ बुद्धिनाशः ७ बुद्धिनाशात ८ प्रणश्यति९॥६३॥

अ०-उ०इन्द्रियोंके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होता है उसको तो निरूपण किया,अब अन्तःकरणके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होता है, सो दो श्लोकोंमें कहते हैं-सि०गुणबुद्धिकरके ❀ विषयोंका ध्यान करनेसे १।२ पुरुषकी ३ तिनमें अर्थात् स्त्रीशब्दादि विषयोंमें ४ आसक्ति ५ होजातीहै ६ आसक्त होजानेसे ७सि०फिर अधिक❀कामना ८ होजातीहै ९कामनासे १० क्रोध ११सि० उत्पन्नहोता है ❀॥६२॥ क्रोधसे १ अविवेक२ हो जाता है ३ अर्थात् मुझको यह करना योग्य है वा नहीं, इस विचारका अभाव होजाता है अविवेक होनेसे४स्मृतिका विभ्रम ५ सि० होजाता है अर्थात् जो कुछ शास्त्र आचार्योंसे सुन रक्खा था उस अर्थके स्मृतिका अभाव होजाता है, उससमय कुछ नहीं स्मरण होता है, सिवाय उस विषयके कि जिसका चिन्तवनकरनेसे जिस विषयमें चित्त आसक्त होगयाहै,फिर❀स्मृतिका अभाव होजानेसे वा विचल जानेसे वा भ्रंश होजानेसे ६बुद्धिका नाश७सि०होजाता है अर्थात् समझकर फिर भी चैतन्य होजावे यह बुद्धि नहीं रहतीहै❀ बुद्धिका नाश होनेसे ८ नाश होजाता है ९ सि० वही पुरुष जिसका विषयोंमें चिन्तवन करनेसे सूक्ष्मसंग होगया था अर्थात् वो पुरुष मोक्ष मार्गसे भ्रष्ट होता है, उस तरफसे तो मानो मरगया, ऐसे आदमीको

मुरदेके बराबरसमझना चाहिये,कि जो सच्चिदानंदरूपसे विमुखविष
सन्मुखहैवोजीता हुआही मुरदाहै क्योंकि परमपुरुषार्थ जो मोक्षहै
योग्य नहीं तात्पर्य सब अनर्थोंका और पापदुःखोका मूल मनोरा
क्योंकि प्रथम स्त्रीशब्दादि पदार्थोंमें गुणसमझकर अर्थात् स्त्री
को किसी एक अंशमें सुखदेनेवाला समझकर जो पुरुष उन
का मनमें ध्यान करता रहता है, फिर चिंतवन करते करते पदा
सूक्ष्म आसक्ति होकर अधिक कामना होजाती है फिर उसके प्रा
के प्रयत्नोंमें नानाप्रकारके उपद्रव होजाते हैं, उपाधि बढ़ते २ पशु
मनुष्य होजाता है ❀ इन दोनों श्लोकोंका अर्थ आनन्दामृतव
के ६ वें अध्यायमें और भी स्पष्ट लिखा है ॥६३॥

मू०-रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिन्द्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्माप्रसादमधिगच्छति॥६

विधेयात्मा १ इन्द्रियैः २ विषयान् ३ चरन् ४ तु ५ प्रसादम्६अ
गच्छति ७ रागद्वेषवियुक्तः ८ आत्मवश्यैः ९॥६४॥अ०-उ०श्रो
इन्द्रियों करके शब्दादि विषयोंको न भोक्ता हो ऐसा तो कोई भी
ज्ञानी भगवद्भक्त उपासक योगी कर्मी इत्यादि नहीं दीखता है,
इंद्रियोंके असंयममें आप अनर्थ करते हो तो फिर ब्रह्मज्ञानी
अज्ञानी पुरुषोंमें क्या भेद हुआ ? यह शंका करके श्रीमहाराज
श्लोकोंमें ज्ञानीके भोगनेकी रीति फलके सहित निरूपण क
हैं-विवेकी ब्रह्मज्ञानी आत्मोपासक १ इन्द्रियों करके २ विषयों
३ भोक्ता हुआ ४ भी ५ निजानन्दको ६प्राप्त होता है ७ सि०
हैं वे इन्द्रिय कि, जिनकरके विषयोंको भोक्ता हुआ मुक्त हो जा
है ❀ रागद्वेष रहित ८ सि० हैं अर्थात् भोग समय ज्ञानीका विष

द्वेष नहीं. एक तो ज्ञानीमें और अज्ञानीमें यह भेद है. और दूसरे
नीके इन्द्रिय ❀ मनके वशमें हैं ६. टी० आठवां और ९ वां ये
नोंपद 'इंद्रियैः ❀ इस दूसरे पदके विशेषण हैं ८।९॥६४॥

मू०-प्रसादेसर्वदुःखानांहानिरस्योपजायते ॥
प्रसन्नचेतसोह्याशुबुद्धिःपर्यवतिष्ठते ॥६५॥

प्रसादे १ अस्य २ सर्वदुःखानाम् ३ हानिः ४ उपजायते ५
प्रसन्नचेतसः ६ हि ७ बुद्धिः ८ आशु ९ पर्यवतिष्ठते १० ॥ ६५ ॥
प्र०-उ० निजानन्दको प्राप्त होने से क्या होता है इस अपेक्षा में
महाराज यह कहते हैं-निजानन्दको प्राप्त होनेसे१ इसके अर्थात्
महंस ज्ञानी महापुरुषके २ दुःखों की ३ हानि ४ होजाती है ५
र्थात् आध्यात्मिकादि सबदुखोंका नाश होजाता है. ५ सि०
र ❀ निजानन्दको प्राप्त हुआ है, अन्तःकरण जिसका अर्थात्
त्मामें स्थित हुआ है चित्त जिसका. उसकी ६ ही ७ बुद्धि ८
शीघ्र) जलदी ९ निश्चल होती है १० सि० उसी आत्मा में टी०
साद प्रसन्नता सुख आनन्द आत्मा इस शब्दों का एकही अर्थ है
जगह विषयानन्दकी प्रसन्नता से तात्पर्यार्थ नहीं १ ॥६५॥

मू०-नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना ॥
नचाभावयतःशान्तिरशान्तस्यकुतःसुखम्॥६६॥

अयुक्तस्य १ बुद्धिः २ न ३ अस्ति ४ अयुक्तस्य ५ भावना ६
७ च ८ अभावयतः ९ शांतिः १० न ११ च १२ अशा-
स्य १३ सुखम् १४ कुतः १५ ॥ ६६ ॥ अ०-उ० यति अन्त-
ज्ञानीको जो आनन्द पीछे निरूपण किया वो अयति याने
हसुख अज्ञानीको नहीं होता है. यह श्रीमहाराज इस मंत्र में
हते हैं सि० प्रथम तो ❀ अयतिको १ बुद्धि २ सि० ही ❀

नहीं३है४अर्थात् प्रथम तो आत्मा का निश्चय करनेवाली व्यवसा-
त्मिका बुद्धि बहिर्मुखअज्ञानीको नहीं उदय होती है. इसी हे
अज्ञानी को ५ आत्माका ध्यान ६ नहीं अर्थात् जब कि वो आ
को जानता ही नहीं तो फिर आत्माका ध्यान वो कैसे क
इसी हेतुसे वो आत्मध्यान रहित है ७ और ८ ध्यान रहित क
शान्ति १० नहीं. ११ फिर विक्षिप्त १२ चित्त वालेको १३ सुख
कहांसे १५ अर्थात् किस प्रकार हो सकता है ? तात्पर्य
ब्रह्मज्ञानके परमानन्दकी प्राप्ति नहीं ॥ ६६ ॥

मू०–इन्द्रियाणांहिचरतांयन्मनोनुविधीयते ॥
तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

चरताम् १ इन्द्रियाणाम् २ यत् ३ मनः ४।५ अनुविधीयते
तत् ७ अस्य ८ प्रज्ञान् ९ हरति १० अम्भसि ११ वायुः
नावम् १३ इव १४ ॥ ६७ ॥ अ०–उ० अयुक्त पुरुषकी
आत्मा में निश्चल क्यों नहीं होती ? इस अपेक्षामें श्रीमहा
यह कहते हैं–सि० अज्ञानी के इंद्रियोंका विषयों के साथ
समय संबंध है अर्थात् श्रोत्रेंद्रिय जब शब्दों को सुनाता है. नेत्र
समय रूपको देखता है. इसी प्रकार सब इंद्रियोंको समझलेना,
संबंध समय ❀ विषयसंबन्धी १ इन्द्रियोंके २ सि० साथ ❀ जो ३
४भी ५ सि० कभी अकेले इंद्रियके साथभी उसी विषयमें ❀ प्रवृत्त
जावे ६ अर्थात् जिस रूपादि विषयमें चक्षुरादि इंद्रिय प्रवृत्त होरह
उस कालमें जो मनभी उसी विषयमें उस इंद्रियके साथ प्रवृत्त हो जा
तो ६सो७सि० कि जिसका साथी मन हुआ है, वोही इन्द्रिय ❀
इन्द्रिय अज्ञानीकी ८ बुद्धि को ९ हरलेता है १० अ

बिषयोंमें विक्षिप्त करदेता है १० सि० इसमें दृष्टांत यह है कि
* जलमें ११ पवन १२ नाव को १३ जैसे १४ सि० उलट
पुलट करता है, झकोले देता है और जिस समय नाव को मल्लाह
सँभालता हैं, उसी प्रकार ज्ञानी मनको सावधान करते हैं. अज्ञानी
का ऐसा सामर्थ्य नहीं * तात्पर्य जब कि यह व्यवस्था है कि एक
इंद्रियके साथ मन लगा हुआ अनर्थ करता है, तो फिर क्या
कहना है, जो सब इन्द्रियोंके साथ मिलकर मन अनर्थ करावे मृग
हस्ती पतंग मच्छी भ्रमर ये पांचों शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध विषयों
में से क्रमसे एक विषयके मारे हुए मरते हैं. अज्ञानी जीवमनुष्य के
तो पांचों प्रबल होरहे हैं इस कारणसे अज्ञानी की बुद्धि आत्मा
में निश्चल नहीं होती है. इत्यभिप्रायः ॥६७॥

मू०-तस्माद्यस्यमहाबाहोनिगृहीतानिसर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता॥६८॥

महाबाहो १ यस्य २ इन्द्रियाणि ३ इन्द्रियार्थेभ्यः ४ सर्वशः ५
निगृहीतानि ६ तस्मात् ७ तस्य ८ प्रज्ञा ९ प्रतिष्ठिता १०। ६८ ॥
अ०-उ० शरीर प्राण इन्द्रिय और अन्तःकरण इनका जो निरोध
याने संयम अर्थात् इनको वश करना है यही तो मोक्षका अंतरंग
साधन है. और यही मुक्तपुरुषोंका लक्षण है. स्थित प्रज्ञके प्रकरण में
पीछे जितने मंत्र कहे, और आगे जो और मंत्र कहनेके रहे हैं, उन
सबका तात्पर्य यही है और सोई तात्पर्य श्रीमहाराज इस मन्त्र में
कहते हैं-हे अर्जुन ! १ जिसके २ इंद्रिय ३ शब्दादिविषयों से ४
सबप्रकारकरके ५ निरुद्ध हैं ६. तिसकारणसे ७ तिसकी ८ अर्थात्
परमहंसविद्वान् ब्रह्मज्ञानी ८ बुद्धि ९ निश्चल १० सि० है परमा-
नन्द स्वरूपमें वा ज्ञानी की बुद्धि ९ श्रेष्ठ याने सर्वोत्कृष्ट है, यह

जानना योग्य है, और साधक पक्षमें जिज्ञासुकी याने मुमुक्षुकी निश्चल हो जाती है, ब्रह्म में इन्द्रियादिको का निरोध करे ॐइत्यभिप्रायः ॥६८॥

मू०-यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्त्तिसंयमी ॥ यस्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुनेः॥६

सर्वभूतानाम् १ या २ निशा ३ तस्याम् ४ संयमी ५ जागर्ति यस्याम् ७ भूतानि ८ जाग्रति ६ सा १० निशा ११ पश्यतः मुनेः १३॥ ६६ ॥ अ०-उ० सबप्रकारके इन्द्रियोंका निरोध अर्थात् निष्कर्म होना यह पूर्वोक्त लक्षण तो असंभावित प्रतीत है, यह शंका करके श्रीमहाराज यह मंत्र कहते हैं, तात्पर्य इस मं यह है, कि ज्ञाननिष्ठा जो ज्ञानीकी है, वहां क्रिया और कारक मात्र भी नहीं, निष्क्रय ब्रह्मज्ञानीको कोई ज्ञानीही जान सक्ता है निष्ठ पुरुष नैष्कर्म ज्ञाननिष्ठाको क्या जाने क्योंकि कर्म्मनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाका दिनरात्रिवत् अन्तरहै इस हेतुसे अज्ञानी जीवकर्म का यह लक्षण असम्भावित प्रतीत होता है सोई इस मंत्रमें तेहैं-सबभूतोंकी १ अर्थात् अज्ञानीजीव कर्मनिष्ठ इन्होंको १ सि० रात्रिवत् ज्ञाननिष्ठा ॐ रात्रि ३ सि० है ॐ तिस में ज्ञाननिष्ठा में ४ ब्रह्मज्ञानी सर्वकर्म संन्यासी ५ जागताहै ६ ज्ञाननिष्ठा अज्ञानी कर्मनिष्ठों के लिये रात्रिवतहै. क्योंकि निष्ठाकी अव्यव्यवस्था अज्ञानी नहीं जानते हैं और न उनका कुछ व्यापार होता है और वोही ज्ञाननिष्टा ज्ञानियको दिनवत् क्योंकि ज्ञानी उसमें ही विचरते हैं, और जिसमें ७ अर्थात् कर्म में ७ अज्ञानी कर्मनिष्ठप्राणी ८ जागते हैं ६ अर्थात् जिस निष्ठा में कर्मनिष्ठा व्यापारकरते हैं, कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं

अर्थात् कर्मनिष्ठा १० सि० रात्रिवत् ❀ रात्रि ११ सि० है, किसकी ब्रह्मतत्त्व को ❀ देखते हुए ज्ञानी संन्यासीकी १२। १३ तात्पर्य ज्ञानीका कर्मनिष्ठा में किंचित् लेशमात्रभी व्यापार नहीं, इस हेतु से कर्मनिष्ठा विद्वान्‌की रात्रि है, इस मंत्रमें समुच्चयकाभी खण्डन स्पष्ट प्रतीत होता है ॥ ६९ ॥

मू०-आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापःप्रविश-
न्तियद्वत ॥ तद्वत्कामायंप्रविशंतिसर्वेसशां
तिमाप्नोतिनकामकामी ॥७०॥

यद्वत् १ आपः २ समुद्रम् ३ प्रविशंति ४ आपूर्यमाणम् ५ अचलप्रष्ठिम् ६ तद्वत् ७ सर्वे ८ कामाः ९ यम् १० प्रविशन्ति ११ सः १२ शांतिम् १३ आप्नोति १४ कामकामी १५ न १६ ॥ ७० ॥
अ०-उ० ऐसे कर्मसंन्यासीकी जिसको कर्मनिष्ठा रात्रिवत् है उनके शरीर का निर्वाह कैसा होता हैं, इस अपेक्षा में यह मन्त्रभी कहते हैं और चौंसठवें मंत्र में इस शंकाका उत्तर अन्यप्रकारसे दे भी चुके है, इस मंत्रका तात्पर्य यह है कि बिना इच्छा किये हुए संसार के तुच्छ पदार्थ प्राप्त होजाना तो कितनी बात है प्रत्युत सब ऋद्धि सिद्ध महात्माके सामने हाथ जोड़के खड़ी रहती है.सदा यह इच्छा रखतीं हैं कि जिनके वास्ते परमेश्वरने हमको रचा है. कभी कृपा करके वे भी तो हमको सफल करें. दृष्टान्तके सहित इस बातको श्रीमहाराज इसमन्त्र में कहते हैं.जैसे १सि० बिनाबुलाये नदीसरोवरादिके ❀ जल २ समुद्रमें ३ प्रविष्ट होते हैं ४ सि० कैसाहै वो समुद्र ❀ सब तरफसे भराहुआ ऐसा पूर्ण है ५सि० और ❀ अचल है प्रतिष्ठा याने मर्यादा जिसकी ६ सि० यह तो दृष्टान्तहै ❀ तैसे ही ७ सब ८ भोग ९ सि०प्रारब्धके प्रेरेहुए ❀ जिसको १०अर्थात्

निष्कामज्ञानी को १० प्राप्त होते हैं ११. सि० कैसा है ❀ सो
सि० ज्ञानी ❀ शांति को १३ प्राप्त हैं १४. भोगोंकी कामना करने
वाला १५ नहीं १६ अथवा जो भोगोंकी कामानावाला है सो शांति
और ब्रह्मानन्द इनको नहीं प्राप्त होता है ॥ ७० ॥

मू०–विहायकामन्यःसर्वान्पुमांश्चरतिनिस्पृहः ॥
निर्ममोनिरहंकारःसशांतिमधिगच्छति ॥७१॥

यः १ पुमान् २ सर्वान् ३ कमान्४विहाय ५ निस्पृहः ६ निर्ममः
निरहंकारः ८ चरति ९ सः १० शांतिम् ११ अधिगच्छति
॥७१॥ अ०-उ० चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठासेही पु
मोक्षको प्राप्त होता है गृहस्थ याने कर्मनिष्ठ मोक्षके भागी नहीं
कर्म करनेसे शुभलोकोंको प्राप्त होते हैं, यह नियम याने विधि
औरजो कदाचित कोई कहे कि कर्मनिष्ठ गृहस्थभी विना संन्
किये मुक्त होजाते हैं, तो चतुर्थाश्रमका महात्म्म वृथाही वेदोंमें प्र
पादन किया है, क्या काम है शीतोष्णादिके सहनेका ? क्यों संन्
करना चाहिये? और जनकादिके कथाका तात्पर्य परार्थमें है,
र्थमें नहीं. अर्जुनने बूझाथा 'ज्ञानी कैसे चलताफिरता है ?' इस
प्रश्नका उत्तर मंत्रमें कहते हुएचतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननि
का महात्म्य और लक्षण श्रीमहाराज निरूपणकरते हैं-जो१ पुरु
सब भोगोंको ३।४ त्यागके ५ इच्छारहित ६ ममतारहित ७ अहं
रहित ८ विचरता है ९ सो १० शांतिको अर्थात् मोक्ष को
प्राप्त होता है अर्थात् जिसमें ये लक्षण नहीं वो मोक्षकी आशा
रक्खे, यह नियमविधि है १२ तात्पर्य कोई ज्ञानरहित त्या
ऐसे होते हैं, कि उनको त्यागनेके पीछे फिर उस त्यागेहुए पदार्थ
इच्छा हो जाती है. ज्ञानी देहादिकपदार्थों के रहनेकी भी इ

नहीं रखते हैं फिर पीछे त्यागे हुये पदार्थकी इच्छा तो क्यों करने लगेंगे ? इसवास्ते उसको 'निस्पृहः' यह विशेषए है और कोई ऐसे होते हैं, उनके पास त्यागनेके पीछे आपही आप पदार्थ विना इच्छा प्राप्त होतेहैं, परन्तु उनमें उनकी ममता होजाती है और ज्ञानीके पास जो विनाइच्छा पदार्थ प्राप्तहोतेहैं उनमें ज्ञानीकी ममता नहीं होती है, इसवास्ते 'निर्ममः' यह ज्ञानीका विशेषण है, और कोई ऐसे त्यागी होते हैं कि न तो उनको इच्छा होती है. और जो पराई इच्छा से पदार्थ आजावे उसमें ममता भी नहीं होती है,परन्तु इन तीनों बातों का अहंकार बना रहता है ज्ञानीको अहंकार भी नहीं होता यह ज्ञानी का लक्षण है इसको ज्ञाननिष्ठा कहते हैं । ७१ ॥

मू०--एषाब्राह्मीस्थितिःपार्थनैनांप्राप्यविमुह्यति ॥
स्थित्वास्यामन्तकालेपिब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।७२

पार्थ १एषा २ ब्राह्मी स्थितिः ३ एनाम् ४ प्राप्य ५ न ६ विमुह्यति ७ अन्तकाले ८ अपि ९ अस्याम् १० स्थित्वा ११ निर्वाणम् १२ ब्रह्म १३ अधिगच्छति १४॥७२॥ अ०--उ० ज्ञाननिष्ठाकी महिमा वर्णन करते हुए इस स्थितप्रज्ञके प्रकरणको श्रीभगवान् समाप्त करते हैं–हेअर्जुन! १यह२सि०जो पूर्वोक्त सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक❀ ब्रह्मनिष्ठामें स्थिति सि०इसको४प्राप्तहोकर५सि०कोई संन्यासी❀नहीं६मोह को प्राप्तहोताहै। ७सि०ब्रह्मचार्यश्रमसेही जो संन्यासाश्रम ग्रहण करके ज्ञाननिष्ठामें स्थित रहते हैं, वे महात्मा मोक्षको प्राप्त होवें तो इसमें क्या कहना है ? ❀ अन्तकालमें ८ भी अर्थात् अवस्थाके चौथे भाग में भी ९ इसमें १० अर्थात् ब्रह्मनिष्ठामें चतुर्थाश्रमसंन्यास पूर्वक१०

स्थित होकर ११ निर्वाणब्रह्मको १२ । १३ अर्थात् समस्त अ
की निवृत्ति और परमानन्दको प्राप्ति है लक्षण जिस मोक्षको
प्राप्त होता है ॥ १४ ॥७२॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३.

मू०-अर्जुनउवाच॥ज्यायसीचेत्कर्मणस्तेमताबुद्धिर्ज
नार्दन॥तत्किंकर्मणिघोरेमांनियोजयसिकेशव॥

केशव १ चेत् २ कर्मणः ३ बुद्धिः ४ ज्यायसी ५ ते ६ मता ७ जना
र्दन ८ तत् ९ माम् १० घोरे ११ कर्मणि १२ किम् १३ नियोजयसि
१४ ॥ १ ॥ अ०-उ० अर्जुनने समझा कि श्रीभगवान्को ज्ञाननिष्ठ
सम्मत है. क्योंकि द्वितीय अध्यायमें ज्ञाननिष्ठाकी बहुत प्रशंसा करके
और यह भी कहा कि चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा मोक्षप्राप्त
हेतु है जो श्रीमहाराजको ज्ञाननिष्ठा श्रेष्ठ प्रिय ऐसी है—तो मुझ
कर्ममें क्यो लगाते हैं यह बिचारकर अर्जुन कहते हैं हे केशव
१ जो २ कर्मसे ३ ज्ञान ४ श्रेष्ठ ५ आपको ६ सम्मत ७ सि० है
हे जनार्दन ।८ तो ९ मुझको १० हिंसात्मक ११ कर्ममें १२ क्यों १
प्रेरतेहो ? १४ अर्थात् जबकि आप ज्ञाननिष्ठाको ही मोक्षका हे
समझते हो तो फिर मुझसे यह क्यों कहते हो कि तूतो कर्मही क
तेरा तो कर्ममें ही अधिकार है ॥ १४ ॥ १ ॥

मू०-व्यामिश्रेणेववाक्येनबुद्धिंमोहयसीवमे ॥
तदेकंवदनिश्चित्ययेनश्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

व्यामिश्रेण १ इव २ वाक्येन ३ में ४ बुद्धिम् ५ मोहयसि ६ इव ७ तत् ८ एकम् ९ निश्चत्य १० वद ११ येन १२ अहम् १३ श्रेयः १४ अवाप्नुयाम् १५ ॥२॥ अ०-उ० किसी जगह तो श्रीमहाराज ज्ञानकी महिमा कहते हैं, और किसीजगह कर्मकी इस मिले हुए वाक्यमें स्पष्ट नहीं प्रतीत होता, कि इन दोनोंमें श्रेष्ठ क्या है ? यह विचारकर अब अर्जुन यह कहता हैं-मिलेहुएवत् वाक्य करके १।२ ३ मेरी ४ बुद्धिको ५ मानो भ्रांत करते हो ६।७ अर्थात् मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि, मानो कोई मिले हुए वाक्यकरके मोहको प्राप्त करता है, वास्तव न आप मुझको मोह करते हो और न आपका वाक्य मिला हुआ, न सन्देहजनक है, क्योंकि आप परम-करुणाकी खान हैं, हे करुणाकर ! मेरे इस अज्ञान को दूर करनेके लिये इन दोनों ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा और कर्मनिष्ठामें एक जो श्रेष्ठ हो ७ तिस एकको ८।९ निश्चय करके १० आप कहो ११ जिस करके अर्थात् ज्ञानकरके वा कर्मकरके १२ मैं १३ कल्याण को प्राप्त हूँगा १५॥२॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ लोकेऽस्मिन्द्विविधानिष्ठा पुराप्रोक्तामयाऽनघ। ज्ञानयोगेनसांख्यानांकर्म-योगेनयोगिनाम् ॥

अनघ १ अस्मिन् २ लोके ३ द्विविधा ४ निष्ठा ५ मया ६ पुरा ७ प्रोक्ता ८ सांख्यानाम ९ ज्ञानयोगेन १० योगिनाम् ११ कर्मयोगेन १२ ॥ ३ ॥ अ०-उ० इस मंत्रमें तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि हे अर्जुन ! जो मैंने 'स्वतंत्र पृथक् पृथक् दो निष्ठा' स्वतंत्र दो पुरुषोंके निमित्त कही हो तो यह तेरा प्रश्न बनसक्ता है,कि कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा इन दोनोंमेंसे एक श्रेष्ठ मुझसे कहो और जबकि

मैंने एकनिष्ठाकोही दोप्रकारकी (एकपुरुषके निमित्त अधिकारी भेदसे उत्तरोत्तर) कही है, और एकपुरुषको ही अधिकार भेदसे प्रकारका अधिकारी कहा है, तो इस हेतुसे यह प्रश्न बेजोग है क्योंकि स्वतंत्र एकनिष्ठासे कल्याण नहीं होसक्ता, न दोनोंके समसमुच्चयसे होसक्ता हैं. क्रमसमुच्चयसे कल्याण यह मैंने पीछे कहा है. मिला हुवा वाक्य नहीं कहा. फिर भी भलेप्रकार स्पष्ट करताहूँ सावधान होकर सुन. हे अर्जुन ! जनके विषय २ । ३ अर्थात् मुमुक्षु दोनों निष्ठाका अधिकारी ही पुरुष है, इस एक पुरुषके निमित्त ३ दो हैं प्रकार जिस सि० ऐसीएक * निष्ठा ५ मैंने ६ पहले अर्थात् द्वितीय अ० में वा वेदों में ७ कही है ८ सि० वे दो प्रकार ये हैं * संन्यासीपरमहंस शुद्धान्तःकरणवालोंको ९ ज्ञानयोग करके अर्थात् विरक्तोंके लिये ज्ञाननिष्ठा कही है, और ज्ञानके प्रथम काबाले १० कर्मयोगियोंको ११ कर्मयोगकरके १२ अ० मलिनान्तःकरणवालोंको कर्मनिष्ठा कही है, क्योंकि कर्म करके ही अन्तःकरण शुद्धहोकरज्ञान होता है १२ तात्पर्य दोनों ओंका केवल एक ब्रह्मनिष्ठाहीमें है. जबतक अन्तःकरण शुद्ध उपरति याने वैराग्य न होवे तबतक कर्म करना योग्य हैं जब अंतःकरणशुद्ध होकर वैराग्यादिका आविर्भाव होजावे कर्मोंका संन्यासकरके ज्ञाननिष्ठ होजावे. टी० "लोकस्तु जने" इत्यमरः ॥ श्रीधरजीनेभी यही अर्थ किया है ॥ ३ ॥

मू०–नकर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यंपुरुषोऽश्नुते ॥

नचसंन्यसनादेवसिद्धिंसमधिगच्छति ॥४॥

कर्मणाम् १ अनारम्भात् २ पुरुषः ३ नैष्कर्म्यम् ४ न ५ ते ६ संन्यासात् ७ एव ८ सिद्धिम् ९ च १० न ११ समधि

१२॥४॥अ०-उ०दो निष्ठा आप कहतेहो.एकमेंतो कर्मोंका अनुष्ठान
करनापड़ताहै,और एकमें कर्म नहीं करना पड़ताहै,मेरे जानमें पहलेसेही
एक निष्ठा श्रेष्ठ है कि जिसमें कर्म करना न पड़े. यह शंका करके
कहते हैं--सि०विना अंतःकरण शुद्धहुए*कर्मोंके१ अनारम्भसे अर्थात्
कर्मोंके न करनेसे २ मनुष्य३ ज्ञाननिष्ठाको४ नहीं ५ प्राप्त होताहै ६
अर्थात् विना अंतकरण शुद्ध हुए कर्मोंके केवल ६ त्यागसे ७ ही ८
सि० विना ज्ञानहुए * मोक्षको ९ भी १० नहीं ११ प्राप्त होताहै१२
अथवा विना अंतःकरण शुद्ध हुए केवल चतुर्थाश्रम याने संन्यास ग्रहण
करनेसे ज्ञानको वा मोक्षको नहीं प्राप्त होता है कोई भी १२ तात्पर्य
विना अंतकरण शुद्ध हुए जो कर्म त्यागदेताहै उसको न इस लोकमें
सुख, न परलोकमें. और उसको न स्वर्ग, न मोक्ष, न ज्ञान प्राप्तहोता
है इसवास्ते जबतक अंतःकरण भलेप्रकार शुद्ध न होवे तबतक भग-
वदाराधनादिक कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे फिर ज्ञाननिष्ठाका
अधिकारी हो जायगा ॥ ४ ॥

मू०-नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

जातु १ कश्चित२ हि३ क्षणम्४ अपि५ अकर्मकृत६ न७ तिष्ठति८
९ सर्वः१० प्रकृतिजैः११ गुणैः१२ अवशः१३ कर्म१४ कार्यते१५
१५ । अ०उ० अन्तरग कर्मोंको अज्ञानी नहीं त्यागसक्ताहै ज्ञानीही
उनके त्यागनेमें समर्थ है. क्योंकि उनका त्याग स्वरूपसे नहीं होसक्ता.
विचारदृष्टिकरके उनमें आसक्तनहोना उनको मिथ्याकल्पित, मायिक,
अनात्मधर्म,समझना यही उनका त्याग है.यह अज्ञानीसे नहीं होसक्ता,

सोई कहतेहैं, कभी १ कोई २ भी अर्थात् ब्रह्मज्ञानरहित कोई
३ पलमात्र ४ भी ५ अकर्मकृत् ६ नहीं ७ ठहरता है ८ अर्थात्
नकरता हुआ अक्रिय हुआ पलभर भी किसी कालमें नहीं
तात्पर्य सदा कुछ न कुछ करता ही रहता है ८ क्योंकि ९ स
अर्थात् अज्ञानी प्राणीमात्र १० प्रकृतिसे उत्पत्ति है जिनकी
सत्वरजमगुणोंकरके ११।१२ सि० प्रेरा हुआ ❀ अवश हुआ
परतंत्र गुणोंके वश हुआ अज्ञानीजीव १३ कर्म १४ करता है
तात्पर्य अज्ञानी जीवसे सत्त्वादिगुण बलकरके कर्म करवाते हैं
करके प्रेरित परवश हुआ कर्म करता है, यह मायाकी प्रवलता
से ही दूर होती है ॥ ५ ॥

म०--कर्मेन्द्रियाणिसंयम्ययआस्तेमनसास्मरन्।
इंद्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारःस उच्यते॥

कर्मेन्द्रियाणि १ संयम्य २ मनसा ३ इंद्रियार्थान् ४ स्मरन् ५
आस्ते ७ सः ८ विमूढात्मा ९ मिथ्याचारः १० उच्यते ११॥
अ० -उ० मलिन अन्तःकरणवाला जो कर्म त्यागदेताहै उसकी
भगवान् बुराई कहते हैं -कर्मेन्द्रियोंको १ रोककरके २ सि० औ
मनसे ३ शब्दादिविषयोंको ४ स्मरण करत हुआ ५ जो ६ बैं
अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता हुआ ८ मलिनअन्तःकरण
९ सि० कर्मत्यागी ❀ मिथ्याचारी १० कहाहै ११ अर्थात् ऐसे त्या
दम्भी कपटी ऐसा कहते हैं, और झूँठाहै मौन आसनादि
जिसका ।११। १६

मू०यस्त्विन्द्रियाणिमनसानियम्यारभतेऽर्जुन॥
कर्मेन्द्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते॥ ७

यः १ तु२इंद्रियाणि ३ मनसा४हिनसा ४ नियम्य५अर्जुन६कर्मेन्द्रियैः ७ कर्मयोगम् ८ असक्तः ६ आरभते १० सः ११ विशिष्यते १२ ॥ ७ ॥ अ०–उ० मलिन अन्तःकरणवाले कर्मत्यागीसे कर्मकरने वाला श्रेष्ठ है यह कहते हैं-सि० मलिनमनवाला तो कपटी है ❀ और जो १।२ ज्ञानेन्द्रियोंको ३ मन करके सि० विषयोंसे ❀ रोक कर५हे अर्जुन ! अर्जुन ! ६ कर्मेन्द्रियों करके ७ कर्मयोगको८आसक्त हुआ ६ करता है १०सो ११ विशेष है १२. सि०पूर्वोक्त से❀तात्पर्य फलकी इच्छासे रहित, और कर्मोंमें जो आसक्त है, सो अंतः-करण शुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होगा, इसहेतुसे विशेष है ॥ ७ ॥

मू०–नियतंकुरुकर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापिचतेनप्रसिध्येदकर्मणः ॥८॥

हि १ अकर्मणः २ कर्म ३ ज्यायः ४ नियतम् ५ कर्म ६ त्वम् ७ कुरु ८ ते ६अकर्मणः १० देहयात्रा ११ अपि १२ च १३ न १४ प्रसिद्धेत १५॥८॥ अ०–जब कि १ न करनेसे २ कर्म ३ श्रेष्ठ ४ सि० है. इस हेतुसे❀वेदोक्त ५ निष्कामकर्मको ६ तू ७ कर ८ सि० नहीं तो ❀ तुझ अकर्मी ६।१० देहयात्रा ११ भी १२ और १३ सि० मोक्षभी ❀ नहीं १४ सिद्धहोगा१५. टी० कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे करना श्रेष्ठ है २।३ जो तू अपना स्वधर्मकर्म युद्ध न करेगा, तो तुझको भोजनवस्त्रादिभी देहके रक्षाके लिये नहीं मिलेंगे, और बिना अन्तःकरण शुद्ध हुए तुझको ज्ञानका अभाव होने से तू मुक्तभी न होगा. इत्यभिप्रायः ६ । १० ॥ ८ ॥

मू०–यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयंकर्मबन्धनः ॥
तदर्थंकर्मकौंतये मुक्तसंगः समाचरः ॥९॥

यज्ञार्थात् १ कर्मणः २ अन्यत्र ३ कर्मबन्धनः ४ अयम् ५ लो ६ कौन्तेय ७ मुक्तसंगः ८ तदर्थम् ९ कर्म १० समाचार ११ ॥
अ०–उ०इस लोकके वा परलोकके पदार्थों की कामना क जो कर्म किया जाता है वो वंन्धका हेतुहै यह कहते हैं-सि०"यज्ञो विष्णुः" यह श्रुति है यज्ञ नाम विष्णुका है, विष्णु सच्चिदा व्यापकको कहते हैं. तात्पर्यात् यहशब्दका 'तत्त्वं' पदोंके लक्ष में हैं ❀ यज्ञनारायणार्थ १ कर्मसे २ पृथक् ३ सि० जो और स कर्म हैं. तिन ❀ कर्मकरके बन्धन को प्राप्त होता है ४. य जीव६हे अर्जुन ! ७सि० तू ! तो ❀ निष्काम असंगहुआ ८ परं रार्थ ९ कर्म १० कर ११ अर्थात पूर्ण ब्रह्मसच्चिदानन्दस्वरू आत्मा है उसके प्राप्तिके लिये ११. तात्पर्य अज्ञान के निवृ लिये कर्मोंका अनुष्ठान कर. अज्ञानकी जो निवृत्ति है आत्मा की प्राप्ति है ॥ ९ ॥

मू०–सहयज्ञाःप्रजाःसृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१

प्रजापति : १ सहयज्ञाः २ प्रजाः ३ सृष्ट्वा ४पुरा ५ उवाच ६ अ ७ प्रसविष्यध्वम् ८ एषः ९ वः १० कामधुक् ११ अस्तु १२ ॥
अ०–उ० सर्वथा न करनेसे सकामकर्म करनाही श्रेष्ठ है. अब श्लोकोंमें यह कहते हैं कि, ब्रह्माजीका वाक्य इसमें प्रमाण है,-ब्रह १ सहित यज्ञोंके प्रजाको २।३ रचकर अर्थात् यज्ञ और प्रजाको कर ४ पहले ५ सि० प्रजासे यह ❀ ६ सि० कि हे कर्मनि वालीप्रजा ! ❀ इसकरके अर्थात् कर्म यज्ञकरके ७ तु(तुम)उत्तरो बढोगे ८ यह यज्ञ ९ तुमको १० कामधुक् ११ हो अ वांछितफल देनेवाला हो १२ यह मेरा अशीर्वाद ॥ १० ॥

मू०-देवान्भावयताऽनेनतेदेवाभावयन्तुवः ॥
परस्परंभावयन्यः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

अनेन १ देवान् २ भावयत ३ ते ४ देवाः ५ वः ६ भावयन्तु ७ परस्परम् ८ भावन्तः ९ परम् १० श्रेयः ११ः अवाप्स्यथ १२ ॥११॥ अ०-उ० बढानेका प्रकार निरूपण करते हैं-इसयज्ञ करके देवताओंको२ [तुम] बढाओं३. तात्पर्थ देवता यज्ञकरनेसे बढते है. उनका भोजन यज्ञही है सि० और यज्ञका भाग पाने वाले ❀ वे ४ देवता ५ तुमको ६ बढावें ७. सि० इसप्रकार ❀ परस्पर आपसमें ८ बढते हुए सि० तुम और देवता ❀ परमकल्याणको १०। ११ अर्थात् स्वर्गजन्यसुखको ११ प्राप्त होंगे १२ टी० यज्ञ करनेसे देवता तुमको ३ वांछित फल देंगे ७ ॥ ११ ॥

मू०-इष्टान्भोगान्हिवोदेवादास्यन्तेयज्ञभाविताः॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्योयोभुंक्तेस्तेनएवसः ॥१२॥

यज्ञभाविताः १ देवाः २ वः ३ इष्टान् ४ भोगान् ५ हि ६ दास्यन्ते ७ तैः ८ दत्तान् ९ एभ्यः १० अप्रदाय ११ यः १२ भुङ्क्ते १३ सः १४ स्तेनः १५ एव १६ ॥१२॥ अ०- यज्ञ करके बढे हुए वा प्रसन्नहुए १ देवता २ तुमको ३ सि०स्त्रीपुत्रअन्नवस्त्र इत्यादि ❀प्यारे ४ भोगोंको ५ ही ६ देंगे ७ तात्पर्य देवता मोक्ष नहीं देसकते हैं. मोक्षकी प्राप्ति तो सर्वकर्म संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा से ही होती हे. तिनकरके ८ दियेहुओंको अर्थात् देवताओंके दिये भोगोंको इनके ९ अर्थ१०तात्पर्य उनही देवताओंके अर्थ न देकर ११ अर्थात् साधुको भोजन कराना इत्यादि पंचयज्ञ न करके ११ जो भोजन करताहैं १२ सो १४ चोर १५ सि० है ❀ निश्चयसे १६ तात्पर्य नित्य बिना पंचयज्ञ किये भोग भोगना अनर्थका हेतु है ॥१२॥

मू०-यज्ञशिष्टाशिनःसन्तोमुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः ॥
भुंजतेतेत्वघंपापायेपचन्त्यात्मकारणात् ॥१

यज्ञशिष्टाशिनः १ सन्तः २ सर्वकिल्बिषैः ३ मुच्यन्ते ४ ये ५ ६ आत्मकरणात् ७ पचन्ति ८ ते ९ पापाः १० अघम् ११ भुं १२॥ १३॥ अ०-उ० गृहस्थोंको नित्य नियय करके पंच यज्ञ क योग्य है, जो करते हैं उनकी श्रीमहाराज अस्तुति करते हैं और नहीं करते उनकी निन्दा करते हैं-यज्ञमेंका बचा अन्न भोजन क हुए १।२ सब पापोंसे ३ छूट जाते हैं ४ और जो ५ । ६ आत्म वास्ते अर्थात् केवल अपनाही और अपने कुटुम्बका पेट भर वास्ते ही ७ पाक करते हैं ८ (पचंति-यह क्रिया उपल-क्षण है) तात्पर्य जो केवल कुटुम्बके लिये रसोई मन्दिरादि बनाते वस्त्रादिकोंका भोग भोगते हैं, साधु यां परमेश्वर इनका उन पदा में नाममात्रभी नहीं, वे ९ पापी १० पापको ११ भोजन करते १२ सि० " कंडनीपेषणीचुल्लीउदकुम्भी च मार्जनी ॥ पंचसूना गृ स्थस्य ताभिः स्वर्गं न विंदतिः ॥" अ०-ओखली चक्की चू जलरखनेकी जगह बुहारी जिसको सोहरनी सोहनी और झाड़ कहते हैं इन पांचमें प्रतिदिन अनेक हत्या पांचप्रकारसे होती रह हैं, इस हेतुसे ही गृहस्थोंका अन्तःकरण मलिन रहता है,और स्व नहीं मिलता है ।। "स्वाध्यायोब्रह्मयज्ञश्चपितृज्ञस्तुतर्पणम् ॥ होमोदै लिर्वज्ञोऽतिथिपूजनम् ।अ वेद शास्त्रादिका पढना वा पाठकर इस ब्रह्मयज्ञ कहते हैं, तर्पण को पितृयज्ञ कहते हैं, हवन करना औ बलि वैश्वदेव कर्म करना इन दोनों को देवयज्ञ कहते अतिथि अभ्यागतोंको पूजन करके उनको भोजन करना वस्त्रादि देना, इसको नरयज्ञ कहते हैं, तात्पर्य पठन पाठ

र्पण होम बलि वैश्वदेव कर्म विरक्तसाधुओंको भोजन कराना इन
ंच यज्ञ करनेसे नित्यकी नित्य पांचों हत्या दूर होती हैं. जो नहीं
रते हैं, उनकी बढ़ती रहती हैं ॥ १३ ॥

मू० -अन्नाद्भवन्तिभूतानिपर्जन्यादन्नसम्भवः ॥
अज्ञाद्भवतिहर्जन्योयज्ञःकर्मसमुद्भवः॥ १४ ॥

अन्नात् १ भूतानि २ भवन्ति३ पर्जन्यात् ४ अन्नसम्भवः ५ यज्ञात्
पर्जन्यः ७ भवति ८ यज्ञः ९ कर्मसमुद्भवः १०॥१४॥ अ०-उ०
र्म करनेसे ही वृष्टिद्वारा अन्नादिपर्थोंकी प्राप्ति होतीहै. इस हेतुसेभी
र्मकरना योग्य है यह तीन श्लोकोंमें कहते हैं--अन्नसे १ मनुष्यादि
णी २ होते हैं ३ अर्थात् अन्नका परिणाम जो शुक्रशोणित स्त्री-
रुषोंका वीर्य, ये दोनों मिलकर मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न होते हैं ३.
र्षासे ४ अन्न होता है. ५. यज्ञसे ६ वर्षा ७ होती है. ज्ञ ९ कर्मसे
० होता है. सि०ऋत्विज और यजमान इनका जो व्यापार है, वोही
र्म है. उससे यज्ञ सिद्ध होता है। १४ ॥

मू०--कर्मब्रह्मोद्भवंविद्धिब्रह्माक्षरसमुद्भवम्
तस्मात्सर्वगतंब्रह्मानित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

र्म १ ब्रह्मोद्भवम् २ विद्धि ३ ब्रह्म ४ अक्षरसमुद्भवम् ५ ब्रह्म ६
र्वगतम् ७ तस्मात् ८ यज्ञ ९ नित्यम् १० प्रतिष्ठितम् ११ ॥ १५ ॥
०--कर्मको१ वेदसे उत्पन्नहुआ२ जान तू ३. वेदको ४ मायोपहित
ह्मसे उत्पन्न हुआ ५ सि०जान. माया मिथ्या है ❀ ब्रह्म ६ पूर्ण ७
सकारणसे ८ यज्ञमें ९ नित्य१० स्थित है ११ सि० भूतादि पदार्थ
तने पीछे कहे उन सबका कारण मायोपहित ब्रह्म है सो पूर्ण है,

तिसकारणसे यज्ञमें भी स्थित है॥तात्पर्य यद्यपि ब्रह्म पूर्ण है, उसकी प्राप्ति निष्काम कर्म करने से अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ब्रह्म होकर होती है, इस वास्से यज्ञमें ब्रह्म नित्य स्थितहै यह कहा॥

मू०--एवंप्रवर्तितंचक्रंनानुवर्तयतीहयः॥
अघायुरिन्द्रियारामोमोघंपार्थसजीवति॥

एवम् १ चक्रम् २ प्रवर्तितम् ३ यः ४ न ५ अनवर्तयति ६ पार्थ ७ सः ८ इह९ मोघम् १० जीवति ११ अघायुः १२ इन्द्रियारामः ॥१६॥ अ०उ०ईश्वरसे वेद,वेदसे कर्म,कर्मसे मेघ,मेघसे अन्न,अन्नसे प्राणी और प्राणी जब वेदोक्त कर्म करतेहैं तब फिर मेघादि होतेहैं ही फिर करते हैं फिर होते हैं–इसप्रकार १ चक्र २ सि० परमेश्वरने लोगोंके पुरुषार्थके सिद्धिके लिये ॐ प्रवृत्त किया है ३. जो ४ कर्मका अधिकारी इसमें ॐ नहीं ५ प्रवृत्त होता अर्थात् कर्म अनुष्ठान नहीं करता ६ हे अर्जुन! ७ सो ८ इस संसारमें ९ १० जीवता है ११ सि० कैसाहै सो पापरूप अवस्था है उसकी सि० और ॐ इन्द्रियों करके विषयों में बिहार है जिसका सि० सो पृथिवीपर भार है. आप डूबा और औरों को डुबाता है ॐ॥ १६॥

मू०--यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः
आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते॥ १७

यः १ तु २ मानवः ३ आत्मरतिः ४ एव ५ तृप्तः ६ ७ आत्मनि ८ एव ९ च १० संतुष्टः ११ स्यात् १२ तस्य १३ कार्यं १४ न १५ विद्यते १६॥१७॥ अ०-उ० अज्ञानियों को अंतःकरणकी शुद्धिके लिये निष्काम कर्मयोग कहकर और सर्वथा

करनेसे सकाम करनाही अच्छा है,यह कहकर, अब ज्ञानीको कर्मका अनुपयोग दो श्लोकोंमें कहते हैं अर्थात् ज्ञानीको कर्म करना कुछ आवश्यक नहीं और जो आत्माको यथार्थ पूर्णानन्द ब्रह्मस्वरूपनहीं जानता है,उसको अज्ञानकी निवृत्तिके लिये अवश्यही निष्काम कर्म करना योग्य है, यह श्रीमहाराज कहते हैं–जो १।२ मनुष्य ३ सि० ऐसा है कि*आत्माहीमें है प्रीति जिसकी४ । ५ अर्थात् आत्मासे पृथक् पदार्थोंमें जिसकी प्रीति नहीं५ और आत्माही में तृप्तहै ६ । ७ अर्थात् इसलोकके और परलोकके पदार्थोंकी प्राप्तिसे तृप्ति नहीं जानता ७और आत्मामें ही ८।९।१०संतुष्ट११ है १२ अर्थात् आत्माहै पृथक् पदार्थकी न इच्छा रखताहै, और न उसकी दृष्टिमें आत्माके सिवाय श्रेष्ठ पदार्थ है ऐसा जो विरक्तज्ञानी याने संन्यासी है१२तिसको१३ करनेके योग्य१४सि० कुछ भी कर्म*नहीं१५ हैं१६तात्पर्य जो कोई कदाचित् कर्मकांडी ब्राह्मणादिक यहकहै संन्यासियोंसे,कि जैसे भिक्षा टनादि कर्म तुम करते हो ऐसेही तीर्थयात्रा देवपूजादि कर्म करनेमें तुम्हारी क्या क्षतिहै?उत्तर इसका प्रसिद्ध स्पष्टहै,कि जिसकी जहां प्रीत होतीहै वो उसी जगह तत्पर रहताहै, इस हेतुसे ज्ञानी आत्मामें परायण रहतेहैं उनको देवपूजादिकर्म करनेका सावकाशही नहीं, और भिक्षाटनादि विद्वान्का गौणकर्म है बाल्यभोजनवत् और उसके बिना शरीरकी स्थिति नहीं होसक्ती,देवपूजादि कर्मके विना विद्वान्की क्या उन्नति होतीहै, जो सुन्दर सच्चिदानन्ददेवको छोड़ जडपाषाणादिदेवता का आराधन करै, तात्पर्य सिवाय आत्मनिष्ठाके विद्वान्को और कुछ कर्तव्य नहीं सो वो निष्ठा ज्ञानीको स्वभाविकहै, कर्तव्य नहीं. ज्ञानी शुद्धि–स्वरूप, सच्चिदानन्द नित्यमुक्त, नित्यनिर्विकार पूर्णब्रह्म है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ॥१७॥

मू०-नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥
नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥१

तस्य १ कृतेन २एव ३ अर्थः ४ न अकृतेन ६ इह ७ कश्च न ६सर्वभूतेषु १० अस्य ११ कश्चित् १२ अर्थव्यपाश्रयः१३ च १५ ॥१८॥अ०-उ० वेदमें लिखाहै कि ज्ञानमार्गमें देवता विघ्न हैं यह सत्य है, परन्तु ज्ञानसे पहले विघ्न करतेहैं, ज्ञानमार्ग प्रवृत्त होने देते मतमतान्तरके पंडितोंकी बुद्धिमें बैठकर और राजादि मनमें स्थित होकर प्राणीको कर्मोंमें प्रेरते हैं, और उनके विघ्न हैं ज्ञानहुए पीछे तो वही देवता ज्ञानीको अपना आत्मा जानना चाहते हैं आत्माके बराबर यह भी तो वेदमें ही लिखा है. श्रीभ भी सातवें अध्यायमें कहेंगे, ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' तात्पर्य को शंका करे कि देवतोंका भयकरके, वा कुछ देवतों से आशा क ज्ञानीको कर्म करना योग्य है, इस शंकाको दूर कननेके यह मन्त्र श्रीमहाराज कहते हैं-जब कि ज्ञानी देवतोंको भी जी फिर अब उसको कर्म करनेसे और न करनेसे क्या प्रयोजन है कहते है-इत्यभिप्रायः। तिसको अर्थात् ज्ञानीको १सि०कर्म करके२ भी३सि०किसीसे इसलोकवापरलोकमेंकुछ❀प्रयोजन४ सि० और ❀ न कियेसे ६ सि० भी❀ इस लोकमें ७ कुछ उस ज्ञानीको पाप (प्रायश्चित्त) ❀ नही ९ सि० होता और जीसे लेकर चींटी पर्यंत ❀ सबभूतोंमें १० इसका११ अर्थात् का१२कोई१३अर्थ आश्रय१४भी१५नहीं१६तात्पर्य देवतामनुष्य ज्ञानीका व्यवहारमें वा परमार्थमें कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि

के शरीरका निर्वाह तो प्रारब्धवशात् हुए चला जाताहै, उसको कोई अधिक या न्यून नहीं करसक्ता और न उसके स्वरूपको कोई अधिक न्यून कर सक्ता फिर कर्म करने में तो उसकी क्षति और क्या उसको लाभ ? ॥ १८ ॥

मू०--तस्मादसक्तः सततंकार्यंकर्मसमाचर ॥
आसक्तोह्यचरन्कर्मपरमाप्नोतिपूरुषः॥१९॥

तस्मात् १ सततम् २ असक्तः ३ कार्यम् ४ कर्म ५ समाचर ६ असक्तः ७ पुरुषः ८ हि ९ कर्म १० आचरन् ११ परम् १२ आप्नोति १३ ॥१९॥ अ०--उ०विरक्त ज्ञानीकोही कर्मका अनुपयोग है अज्ञानीको गृहस्थ ज्ञानीको मैं नहीं कहताहूँ--हे अर्जुन ! तिसकारणसे १ निरन्तर २ असंग हुआ ३ करनेके योग्य ४ कर्मको ५ [तू] कर ६ असक्त ७ पुरुष ८ हि ९ कर्मको १० करता हुआ ११ सि० अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ज्ञानी होकर*मोक्षको प्राप्त होता है १३ ॥१९॥

मू०--कर्मणैवहिसंसिद्धिमास्थिताजनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

जनकादयः १ कर्मणा २ हि ३ एव ४ संसिद्धिम् ५ आस्थिताः ६ लोकसंग्रहम् ७ अपि ८ संपश्यन् ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ एव १२ ॥२०॥ अ०--उ--सदासे कर्म करकेही बडे २ महात्मा मुमुक्षु अन्तः करणशुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त हुये हैं. यह कहते हैं--जनकादि १ कर्म करके २ ही ३ निश्चयसे ४ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा*ज्ञानको ५ प्राप्त हुये हैं ६ सि० और जो कदाचित् तू यह मानता हो कि मैं तो पहिले ही ज्ञानी हूँ, फिर अब कर्म क्यों करूं ? उत्तर इसका यह है कि * लोक संग्रहको ७ ही ८ देखता हुआ ९ अर्थात् यह विचार कर कि अज्ञानजनही महात्माओंका देखादेखी आचरण करते हैं

ज्ञानियोंके छोड़देनेसे अज्ञानी भी कर्म छोडकर कुमार्गमें प्रवृत्त हो
उनसे कर्मकरानेके लिये कर्मकरना योग्य है, इस प्रयोजनको स्म
करता हुआ ६ कर्म करनेको स्मरण करता हुआ ६ कर्म करने
१० तू योग्य है ११निश्चयसे १२ तात्पर्य श्रीभगवान्का यह है
हे अर्जुन जो तू-अज्ञानी है तब तो अन्तःकरणकी शुद्धि हो
लिये कर्म कर और जो तू ज्ञानी है, तो लोक संग्रहके लिये कर्म
गृहस्थाश्रमकी शोभाकर्मसेहीहै इसीवास्ते जनकादि कर्म करते
सर्वथा कर्मका अनुपयोग विरक्तमन संन्यासियोंके वास्ते कहा है॥

मू०-यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ॥
सयत्प्रमाणंकुरुतेलोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

श्रेष्ठः १ यत्२यत्३आचरति ४ तत ५ तत् ६ एव ७ इतरः ८
९ सः १० यत् ११प्रमाणम् १२कुरुते१३लोकः १४ तत् १५अनु
१६॥२१॥ अ०-उ०-बहुतेरे लोग जो कर्म, पाप वा पुण्य करते
उनकर्मोंके भागी होते हैं वे लोग कौन, तो धनवाले और हुकुम
और पंडित और जातिमें जो प्रधान इत्यादि बडे बडे आदमी
कहलाते हैं वे ये क्यों भागी होते हैं इनसेही बुरेभलेकर्मों का
जगत्में होताहैं सोई इसमन्त्रमें कहते हैं-श्रेष्ठ १सि०पुरुष❀जो
आचरण करता है ४ सो सोही ५।६ ७ अन्यजन ८।९ सि०
करताहै और❀सो १० सि० प्रतिष्ठितजन❀ जिसका ११
कर्मयोगको वा ज्ञानयोगको११प्रमाण१२करताहै १३ सि०अज्ञ
जन १४ तिसकेही अनुसार वर्तता है १५। १६ ॥२१॥

मू०-नमेपार्थास्तिकर्त्तव्यंत्रिलोकेषुकिंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यंवर्तएवचकर्मणि ॥ २२ ॥

पार्थ १ त्रिषु २ लोकेषु ३ मे ४ किंचन५ कर्तव्यम् ६ न ७ अस्ति ८ अवाप्तव्यम् ९ अनवाप्तम् १० न ११ एव १२ च १३ कर्मणि१४ वर्ते १॥२२॥अ५०–उ० लोकसंग्रहके लिये ज्ञानी होकर किसीने कर्म किया है इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं–कि प्रथम तो मैं ही ऐसा हूं. हे अर्जुन!१ तीनलोकमें २।३ मुझको ४ कुछभी ५ कर्तव्य६ नहीं ७ है ८. सि० और ❀ प्राप्त होनेके योग्य ९ सि० वस्तु जो चाहिये वो मुझको सब क्या ❀ नहीं प्राप्तहै १०।११ तोभी१२।१३ कर्ममें १४(मैं) वर्तता हूं १५.तात्पर्य मोक्षपर्यन्त मुझको सब पदार्थ प्राप्तहैं, और मुझको न किसीका खटका न मुझपर किसीकी आज्ञा है तोभी मैं लोकसंग्रहके लिये कर्म करता हूँ कर्म न करना यह केवल विरक्त साधुयोंके वास्ते विधि है ॥ २२ ॥

मू०--यदिह्यहंनवर्तेयंजातुकर्मण्यतंद्रितः ॥
ममवर्त्मानुवर्तन्तेमनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

यदि १ जातु २ अतन्द्रितः ३ अहम् ४ हि ५ कर्मणि ६ न ७ वर्तेयम् ८ पार्थ ९ सर्वशः १० मनुष्याः ११ मम १२ वर्त्म १३ अनुवर्तंते १४॥२३॥अ०--उ० आप अपनी इच्छासे कर्म करतेहो, जो न करो क्या हो?यह शंका करके कहते हैं जो१कभी२अनालस्य हुआ अर्थात् रहित होकर ३ मैं ४ ही ५ कर्ममें ६ न ७ वर्तू ८ अर्थात् जो मैंही कर्म न करूँ तो हे अर्जुन ! ९ सब प्रकारकरके १० मनुष्य ११ मेरे १२ मार्गको १३ पीछे वर्तेंगे १४ अर्थात् सब लोग कर्म छोड़ देंगे. जिस रस्तेसे मैं चलूँगा उसी रस्तेसे सब चलेंगे ॥ २३ ॥

मू०-उत्सीदेयुरिमेलोकानकुर्यांकर्मचेदहम् ॥
संकरस्यचकर्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

चेत् १ अहम् २ कर्म ३ न ४ कुर्यां ५ इमे ६ लोकाः ७ उत्सीदे ८ संकरस्य ९ च १० कर्ता ११ स्याम् १२ इमाः १३ प्रजाः उपहन्याम् १५ ॥ २४ ॥ अ०-उ० जो मनुष्य आपके देखादे कर्म छोड़देंगे, तो उसमें आपने क्या किया और आपकी क्या यह शंका करके कहते हैं. जो १ मैं २ कर्म ३ न ४ करूं ५ सि० ❀ ये ६सि० अज्ञानी❀जीव७सि० मेरे देखादेखी कर्म न करने भ्रष्ट होजावेंगे८ अर्थात् वर्णसंकर होजवेंगे. इस हेतुसे मैंने ही प्रजा भ्रष्ट किया, और वर्णसंकरका ९ भी १० कर्ता ११ सि० मैंही हुआ १२ सि० मेरा अवतार धर्मकी रक्षाके वास्ते था, मैंने धर्म रक्षा क्याकी ? उलटा मनुष्योंको वर्णसंकर किया और इसी हेतु इस प्रजाको१३।१४भ्रष्ट करनेवाला मैं हुआ.१५अर्थात् उलटा प्रजा अन्तःकरण मैला करनेवाला मैं हुआ मैंनेही यह प्रजा मैलीकी.इत्यर्थ

मू०-सक्ताः कर्मण्यविद्वांसोयथाकुर्वन्ति भारत
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्ताश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रसम्॥ २५ ॥

भारत १ यथा २ अविद्वांसः ३ कर्मणि ४ सक्ताः ५ कुर्वन्ति तथा ७ विद्वान् ८ असक्तः ९ कुर्यात् १० लोकसंग्रहम् ११ चिकी १२॥२५॥अ०-उ०अज्ञजीवोंपर कृपाकरके लोकसंग्रहके लिये गृ और ज्ञानी ऐसा होकर भी कर्म करे यह कहते हैं.-:हे अर्जुन जैसे २ अज्ञानी ३ कर्ममें ४ सक्त हुए ५ सि०कर्म❀करते हैं ६ ७ ज्ञानी ८ असक्त हुआ करे १० सि० कैसा है वो ज्ञानी ❀लो की रक्षा ११ करनेकी इच्छावाला १२ सि० है. वो ज्ञानी यह झता है कि ये कर्म और लोगोंके भलेके वास्ते मैं करताहूँ❀ ॥२

मू०–नबुद्धियेदंजनयेदज्ञानांकमसंगिनाम् ॥ २६ ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणिविद्वान्युक्तःसमाचरन् ॥२६॥
अज्ञानाम् १ कर्मसंगिनाम् २ बुद्धिभेदम् ३ न ४ जनयेत् ५ द्वान् ६ युक्तः ७ सर्वकर्माणि ८ समाचरन् ९ जोषयेत् १० ॥ २६ ॥ अ०-उ० अज्ञाननियोंपर जब कृपा करनाही ठहरा फिर नको कर्ममें क्यों प्रवृत्त करना चाहिये ? उनकोभी ब्रह्मतत्वका देश करना योग्य है, यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं-कि र्मसंगीको याने अज्ञानियोंको कभी भूलकरभी ब्रह्मज्ञान सिखाना चाहिये. ब्रह्मज्ञानके अधिकारी औरही मुमुक्षु शुद्धान्तःकरण-लेहैं. पुत्र स्त्री और धन इनमें जो असक्त हैं वे नहीं. अज्ञानी १ र्मसंगियोंके २ बुद्धिका भेद ३ न ४ उत्पन्न करे ५ विद्वान ६ वधान हुआ ७ सि० अपनेस्वरूपमें ❀ सबकर्मोंको ८ करता आ ९ सि० अज्ञानियोंको कर्ममें ❀ प्रेरे अर्थात् आपभी करे और सेभी करावे १० तात्पर्य कर्मोंमें पुत्रादिपदार्थोंमें और देहादि में आसक्तहैं, उनकीबुद्धिको ज्ञानी कर्मोंमेंसे न हटावे अर्थात् उन-यह न कहे कि आत्मा अकर्त्ता, अद्वैत, अभोक्ता, स्वतंत्र, शुद्ध, च्चिदानन्द, निर्विकार ऐसा है. तुम कर्म क्यों करतेहो ? कर्म तो हैं. इसप्रकार उनकी बुद्धिका भेद नकरे, क्योंकि उनका राग-ादि सहित अन्तःकरण होनेसे उनको आत्माका ज्ञान न होगा र कर्म जोडदेनेसे उनको इस लोकमें सुख न होगा, न परलोकमें उनके अन्तकरणमेंसे तम रज और काम क्रोधादि दूर होंगे. इस से अज्ञानी जन कर्म न करनेसे उभयभ्रष्ट होजावेंगे ॥२६॥
०–प्रकृतेःक्रियमाणानिगुणैःकर्माणिसर्वशः ।
अहंकारविमूढात्माकर्ताऽहमितिमन्यते ॥२७॥

सर्वशः १ कर्माणि २ प्रकृतेः ३ गुणैः क्रियमाणानि ५ अहंकार
विमूढात्मा ६ इति ७ मन्यते ८ अहम् ९ कर्ता १०॥२७॥अ० मू०
अज्ञानी कर्मोंमें मनसे आसक्त होजाता है यह कहतेहैं-सब
करके १ कर्म २ प्रकृतिके३गुणोंकरके ४ किये जाते हैं ५ अर्थात्
ही कर्त्ताहै ५ अहंकारकरके बिमूढ अंतःकरण जिसका ६ सि०
यह ७ मानता है ८ सि० कि० ❀ मैं ९ करता १० सि०
हेतुसे कर्मों में आसक्त होजाता है ❀ टी० अहंकार करके
इन्द्रियादियोंमें आत्माका अध्यास करके अर्थात् मैं देखता
खाताहूं, समझता हूं, इत्यादि इसमकार इन्द्रियादिकोंके
आत्माकी एकता करके भ्रान्तिको प्राप्ति हुई है बुद्धि जिसकी
यह मानता है कि मैं कर्त्ता हूँ ॥ २७ ॥

मू०-तत्त्ववित्तुमहाबाहोगुणकर्मविभागयोः ॥८॥
गुणागुणेषुवर्तन्तइतिमत्वानसज्जते ॥२

महाबाहो १ गुणकर्मविभागयोः २ तत्त्ववित् ३ तु ४
मत्वा ६ न ७ सज्जते ८ गुणाः ९ गुणेषु १० वर्तते ११ ॥२८
उ० ज्ञानी कर्मों से मनसेनहीं आसक्त होता है, यह कहते हैं-हे अ
१ गुण और कर्मों के विभागका २ तत्त्व जाननेवाला ३ तो ४
मानकर ६ नहीं ७ आसक्त होता है ८ सि० कर्मों में क्या
ता है वो, इस अपेक्षा में कहते हैं कि ❀ इंन्द्रियें ९ विषयों
वर्तती हैं ११ सि० आत्मा निर्विकार शुद्ध है, ज्ञान यह मा
❀ टी० मैं गुणात्मक नहीं हूं अर्थात् गुणरूप मैं नहीं, इस
तो गुणों से आत्माको पृथक् समझता है और ये कर्म मेरे
प्रकार कर्मों से आत्माको पृथक् समझता हैं ॥ २८ ॥

मू०-प्रकृतेर्गुणसंमूढाःसज्जन्तेगुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदोमन्दान्कृत्स्नविन्नविचालयेत्॥२९॥

प्रकृते १ गुणसंमूढा २ गुणकर्मसु ३ सज्जन्ते ४ तान् ५ अकृत्स्नविदः ६ मन्दान् ७ कृत्स्नवित् ८ न ९ विचालयेत् १० ।२९॥

टी०-उ० कर्मसंगी मन्दमति हैं, इस हेतुसे भी उनको ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं करना, यह कहते हैं,--प्रकृतिके १ सि० सत्वादि ❀ गुणोंकरके भ्रान्त हुए २ गुणोंके कर्मों में ३ आसक्त है ४ सि० ❀ तिन अल्पज्ञ मन्दमतिपुरुषोंको ५।६ ७ सर्वज्ञ ज्ञानी ८ ९ विचाले १० सि० कर्मोंसे ❀ अर्थात् उनको ब्रह्मतत्वोपदेश नहीं करना. वे ब्रह्मज्ञानके अभी अधिकारी नहीं, जबवे आप जिज्ञासा करें तब उनको उपदेश करना योग्य है. इत्यभिप्रायः ॥२९॥

मू०-मयिसर्वाणिकर्माणिसंन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममोभूत्वायुध्यस्वविगतज्वरः ॥३०॥

मयि १ अध्यात्मचेतसा २ सर्वाणि ३ कर्माणि ४ संन्यस्य ५ निराशीः ६ निर्ममः ७ विगतज्वरः ७ भूत्वा ९ युध्यस्व १०॥३०॥

टी०-उ०मुमुक्षुको जिसप्रकार कर्मकरना चाहिये सो कहते हैं. मुझ सर्वज्ञत्वादिगुणविशिष्टसर्वात्मामें १ विवेकबुद्धिकरके. १ अर्थात् अंतर्यामीके अधीन हुआ मैं यह कर्म करता हूं, यह कर्म परमेश्वरार्थ है, मुझको फलकी इच्छा नहीं, इस बुद्धिकरके. सबकर्मोंको ३।४ अर्थात् सबकर्मोंके फलको ४ सि० परमेश्वरमें ❀ अर्पण करके ५ आशारहित ६ ममतारहित ७ सन्तापरहित ८ होकर युद्ध कर सि० क्षत्रियोंका युद्ध ही स्वधर्म याने कर्म है, सो इसप्रकार कर, जैसे ऊपर कहा ❀ टी० कर्म करनेके समय कि-

सीप्रकार फलकी इच्छा याने आशा नहीं रखना ६ कर्मोंके ममतारहित इस वास्ते होना चाहिये, कि उनका फल परमे अर्पण होचुका. अभावपदार्थमें ममता नहीं बनसक्ती है ७ कर्म के समय धीरज उत्साह चाहिये८ । ३० ॥

मू०–येमेमतमिदंनित्यमनुतिष्ठंतिमानवाः ॥
श्रद्धावन्तोऽनसूयंतामुच्यतेतेपिकर्मभिः ॥३१॥

ये १ श्रद्धावन्तः २ अनसूयन्तः ३मानवाः ४ मे ५ इदम् ६ ७ नित्यम् ८ अनुतिष्ठन्ति ९ त १० अपि ११ कर्मभिः १२ १३ ।३१॥अ०–उ० प्रमाणोंके सहित मैंने यह उपदेश किया है अनुष्ठान करनेमें बड़ा गुण है. यह श्रीमहाराज कहतेहैं–जो १ वाले २ असूयारहित ३ मनुष्य ४ सि०मैंने जो पीछे उपदेश ❀मेरे ५ इस ६ मतको ७ नित्य ८ अनुष्ठान करेंगे ९ अर्था तक फले प्रकार अन्तःकरणमेंसे रागद्वेषादि दूर न होवे जबत कर्म मेरी आज्ञासे करेंगे ९ वे कर्माधिकारी कर्मसंगी भी ११ कर्मोंकरके १२ अर्थात् कर्मोंसे १२ छूट जावेंगे १३ कर्म करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध होजायगा, फिर वे अपने कर्मोंको त्यागकर ज्ञाननिष्ठा होजावेंगे १३ टी० जो श्रीम कहते हैं, सो सत्य है. वे सन्देह भगवदाराधनादिकर्मोंका करनेसे अन्तःकरण शुद्धा होकर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है श्रद्धा कहते हैं २ गुणोंमें दोष निकालना उसको असूया भगवत्के उपदेशमें यह दोष नहीं निकलते हैं, कि परमेश्वर तो त्याग करवाते हैं, और कर्म करनेको कहते हैं एसे ऐसे दो पुरुषोंको अनसूयन्तः कहते हैं ॥ ३ ॥ ३१ ॥

मू०–येत्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठंतिमेमतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः ॥

ये १ तु २ मे३ एतत् ४ मतम् ५ न ६ अनुतिष्ठन्ति७अभ्यसूर्यन्तः ८ तान् ९ अचेतसः १० नष्टान् ११ सर्वज्ञानविमूढान् १२ विद्धि १३ ॥३२॥ अ०-उ० गुणमें जो दोषकी कल्पना करते हैं वे महानीच हैं कोई कहते हैं जो मेरे मतका अनुष्ठान करते हैं वे तो विद्वान्हैं और जो १।२ मेरे ३ इस मतका ४।५ नहीं ६ अनुष्ठान करते हैं ७ सि० प्रत्युत ❀ असूया करते हैं ८ तिन अल्पज्ञ मुरदों ९।१०।११ सब ज्ञानके विषय मूढ हैं १२ सि० यह जान❀तू १३ टी० मोक्षमार्ग में मुरदेके तुल्य हैं इसवास्ते उनको नष्ट कहा ११ कर्मसे अन्तःकरण शुद्धि होता है. तमोगुण दूर होता है, उपासनासे चित्त एकाग्र होता है, रजोगुण दूर होता है, यही कर्म उपासना और अष्टांगयोगादिका परमप्रयोजन है फिर ज्ञानसे मोक्ष होता है यह मेरा मत है, इससे पृथक् जो किसी पन्थ मत सम्प्रदाय है उन सबको सर्वरूपब्रह्मज्ञानके विषय मूर्ख जान तू १२ । १३ गुणोंमें जो अवगुणों की कल्पना करते हैं, उनको 'अभ्यसूयन्तः कहते हैं कल्पना ऐसे करते हैं कि जो शुभउपदेश करे. उनको वाक्यवादी कहते हैं जो मौन रहे उसको पाखंडी, मूर्ख, अभिमानी ऐसा कहते हैं जो संतोष से बैठा रहै उसको आलसी बतावें, जो उद्यम करे उसको लोभी कहें तात्पर्य मैंने बहुत यह बिचार किया है, कि कोई ऐसा गुण विद्वानों का नहीं, जिसको दुष्टोंने दूषित न किया हो अक्षरोंका अर्थ फेरकर अनर्थ करे तो फिर इसमें क्या आश्चर्य है ॥३२॥

मू०-सदृशंचेष्टतेस्वस्याःप्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिंयांतिभूतानिनिग्रहः किंकरिष्यति ॥३३॥

भूतानि १ प्रकृतिम् २ यान्ति ३ स्वस्याः ४ प्रकृतेः ५ सदृशम् ६

ज्ञानवान् ७ अपि ८ चेष्टते ९ निग्रहः १० किम् ११ करिष्यति १२॥
अ०-उ० सबही मनुष्य प्रथम कर्मोंका अनुष्ठान करके अन्तः
शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ क्यों नहीं होते हैं ? जिससे पूर्ण परम
नित्यनिर्विकारकी प्राप्ति होती है. इस सीधे रस्तेपर प्राणी क्यों
चलते हैं, नाना प्रकारके अर्थोंकी कल्पना करके आपकी आ
क्यों नहीं मानते हैं ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं
प्राणी १ सि० अपने ❀ प्रकृतिको २ प्राप्त होरहे हैं ३ अ
प्रकृतिके ५ सदृश ६ ज्ञानवान् ७ भी ८ चेष्टा करता है ९ सि०
अज्ञानी जीव अपने स्वभाव के अनुसार बरते, तो इसमें क्या
है ? फिर मेरा वा किसीका ❀ निग्रह १० क्या ११ करेगा!
तात्पर्य पूर्व कर्मोंके संस्कारोंसे जो स्वभाव जीवोंका होरहा है (
गुणी वा तमोगुणी वा सत्त्वगुणी) उसी स्वभावको सब प्राप्त
हैं, वैसे कर्म करते हैं, जो पुरुष अपने स्वभावके अनुसार कु
प्राप्त होरहा है उसको किसीका उपदेश क्या फल देगा ?
स्वभाव बलवान् है, इसहेतुसे मेरा उपदेश भी नहीं मानते हैं॥

मू०-इंद्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥३४॥

इन्द्रियस्य १ इन्द्रियस्य २ अर्थे ३ रागद्वेषौ ४ व्यवस्थितौ
६ वशम् ७ न ८ आगच्छेत् ९ तौ १० हि ११ अस्य १२
थिनौ १३ ॥३४। अ०-उ० जबकि आप स्वभावको ही
कहते हो, तो वेदादिकोंका विधिनिषेध वृथाही है, यह
करके कहते हैं-इन्द्रिय इन्द्रियका १।२ सि० अर्थात् सब इन्द्रि

अपने अपने॰अर्थमें ३ अर्थात् शब्दादिपदार्थों में ३ रागद्वेष ४ स्थित हैं ५ अर्थात् सब इन्द्रियोंके विषयोंमें राग भी है और द्वेष भी है ५ तिनके ६ अर्थात्-रागद्वेषके ६ वशको ७ नहीं ८प्राप्त हो ६ अर्थात् रागद्वेषके वश न होजावे ६ सि० क्योंकि ॰ वे १० ही ११ अर्थात् रागद्वेषही ११ इसके१२ अर्थात मुमुक्षुके मोक्षमार्ग में १२ चोर हैं १३ सि० लूटनेवाले हैं ॰ तात्पर्य सब इंद्रियोंके अनुकूलपदार्थमें तो राग है, और प्रतिकूलमें द्वेष है यह बात ज्ञानीकी भी होती है और अज्ञानीकी भी होती है यहांतक तो स्वभाव बलवान् है और रागद्वेषके वश होजाना, यह अज्ञानीका काम है और वशमें न होना, यह ज्ञानीका काम है जैसे निर्मल और गम्भीर ऐसे जलमें एकमणि पड़ा है, उसको देख कर ज्ञानीका भी मन चला. और अज्ञानीकाभी मन चला, यहांतक तो स्वभावकी प्रबलता हैं, क्योंकि रजोगुणके प्रभावसे मणिमें दोनोंका राग होगया याने इच्छा उत्पन्न होगई. परन्तु ज्ञानीने जो यह समझा कि जल बहुत है, जो मैं इसमें कूदा तो डूब जाऊंग, अज्ञानीको यह समझ न थी, कि बहुत जलमें डूब जाते हैं वो रजोगुणके वशसे तृष्णारागादि का दबाया हुआ कूद कर डूब गया इस जगह ज्ञानी और अज्ञानी इन दो शब्दोंका तात्पर्य समझवाले और बे समझवाले इन दो शब्दोंमें है. ब्रह्मज्ञानीका प्रसंग नहीं इसप्रकार स्त्रयादि पदार्थोंमें सबका रागद्वेष है परन्तु जिन्होंने शास्त्रद्वारा उससे भी गुरुद्वारा यह निश्चय कर रक्खा है, कि कांचनकान्तादिपदार्थ मोक्षमार्गके वैरी हैं वे तो रागादि हुए सन्ते भी प्रवृत्त नहीं होते और जिन्होंने शस्त्र नहीं श्रवण किया वे धोका (धक्के) खाते हैं इस हेतु से और शास्त्र विधिनिषेध स्वभाव से बलवान् है इसवास्ते शास्त्र का श्रवण करना, तात्पर्य अनुष्ठान करनेसे है, नहीं तो दिन में हजारों

लोग श्रवण करते हैं रात्रिको भूलकर फिर वोही खोटा काम
हैं. तात्पर्य यह है कि पदार्थों में रागद्वेष होना, यह तो स
की प्रबलता है. शास्त्रदृष्टि करके उसमें प्रवृत्त होना वा न
यह शास्त्र कहता है. शीतादिके सहनेमें प्रवृत्ति, स्त्रीधन
पदार्थोंसे निवृत्ति, शास्त्र करता है ॥ ३४ ॥

मू०–श्रेयान्स्वधर्मोविगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मेनिधनंश्रेयः परधर्मोभयावहः ॥३५॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५
६ निधनम् ७ श्रेयः ८ परधर्मः ९ भयावहः १० ॥ ३५ ॥ अ०
स्वभावकेही वश होकर जो मनुष्य डूबता है, तो पहिले स्वभा
जीतनाही योग्य है और स्वभाव तो वेदोक्त कर्मों का अनु
करनेसे ही जीता जाता है सोई कहते हैं-सद्गुणोंकरके युक्त
पराये धर्मसे १।२ अपना धर्म ३ किसी गुण करके रहित ४
भी होवे, तोभी ❀ श्रेष्ठ ५ सि० है ❀ अपने धर्म में ६ मर
श्रेष्ठ ८ सि० है ❀ पराया धर्म ९ भयको प्राप्त करनेवाला है
तात्पर्य जो अपना निवृत्तिधर्म है वा प्रवृत्ति, वोही श्रेष्ठहै,
धर्मवालेकोतो प्रवृतिधर्मका अनुष्ठान करना न चाहिये और
धर्मवालेको निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करना चाहिये. जो जो
वर्णका या आश्रमका धर्म है, वोही वर्तना योग्य है. अपने
अनुष्ठान करनेसे स्वभाव जीता जाता है अथवा अपना ध
सच्चिदानन्दरूप निर्विकार विगुणभी है अर्थात् सत्त्व तम
उसमें नहीं, वो निर्गुणभी हैं तोभी गुणोंवाले परमधर्मसे,
सत्त्वादिगुणोंके धर्म इन्द्रियशब्दादिविषयोंसे श्रेष्ठ हैं इन्द्रिया
का जो धर्म है वो आत्माका धर्म नहीं परधर्म कहलाता है

धर्ममें मरना, अर्थात् कर्त्ता होकर इन्द्रियादिकोंको साथ मिलकर जो देहका त्यागकरना हैं वो संसारके प्राप्त करनेवाला है, भय यह नाम संसारकाही है और अपने धर्ममें मरना अर्थात् ज्ञाननिष्ठा ब्रह्माकार वृत्तिस्वरूप में जो देहका त्याग है वो श्रेष्ठ है, क्योंकि मुक्तिका हेतु है. यहां श्रुति प्रमाण है "काश्यांतुमरणान्मुक्तिः ॥ काशःब्रह्मतत्वप्रकाशःयस्याम् अवस्थायां सा काशी" काशी उस अवस्थाका नाम है, कि जिसमें ब्रह्मतत्वका प्रकाश होता है. उस काशीमें मरनेसे मुक्ति होती है ॥ ३५ ॥

मू०-अर्जुनउवाच॥अथकेनप्रयुक्तोऽयंपापंचरतिपूरुषः।
अनिच्छन्नपिवाष्र्णेयबलादिवानियोजितः ॥ ३६ ॥

अथ १ वार्ष्णेय २ अनिच्छन् ३ अपि ४ अयम् ५ पूरुषः ६ केन ७ प्रयुक्तः ८ पापम् ९ चरति १० बलात् ११ इव १२ नियोजितः १३ ॥ ३६ ॥ अ०–उ० श्रीभगवान् कहते हैं कि रागद्वेषके वश नहीं होना, पाप नहीं करना, अर्थात् परधर्मका अनुष्ठान नहीं करना, अपने ही धर्मका करना, वेदोक्तमार्गपर चलना यह सब सत्य कहते हैं परन्तु जीवतो परतंत्र प्रतीत होता है जो स्वतंत्र हो तो सबकुछ करसक्ता है. कोई ऐसा प्रबल प्रतीत होता है कि जीवसे बलकरके याने जबरदस्तीसे पाप कराता है. यह विचार करके अर्जुन श्रीमहाराजको प्रश्न करता है, किहे महाराज ! वोकौन है कि जिसके वश जीव पाप करता है ?--'अथ' यह शब्द प्रश्नमें आता है १ हे कृष्णचंद्र ! २ नहीं इच्छा करता हुआ ३ भी ४ यह ५ जीव ६ किस करके ७ प्रेरा हुआ ८ पापको ९ करता है ? १० सि० ऐसा प्रतीत होता है, कि किसीने ❀ बलसे ११ जैसे १२ सि० पापमें ❀ जोडदिया है. १३ सि० जैसे बैलको

जबरदस्तीसे गाड़ीमें जोडदेते है तैसेही जीवसे कोई जबर
पाप कराता है. ऐसा प्रतीत होता है, ❀ तात्पर्य पाप क
क्या हेतु है, यह अर्जुनका प्रश्न है ॥ ३६ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ कामएषक्रोधएषरजोगुण
द्भवः॥महाशनोमहापाप्माविद्ध्येनमिहवैरिणम् ॥

एषः १ कामः एषः २ क्रोधः ४ रजोगुणसमुद्भवः ५
शनः ६ महापाप्मा ७ एनम् ८ इह ९ वैरिणम् १० विद्ध ११
॥३७॥ अ०-उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि हे अर्जुन ! तूने
बूझा कि पाप करनेमें क्या हेतु है, सो सुन. यह १ काम २
और ❀ यह ३ क्रोध ४ सि० दोनों येही पाप करने में हेतु
येही जबरदस्तीसे जीवसे पाप कराते हैं. इसलोकके और परलोक
के पदार्थोंकी जो कामना है. यही पापकी जड है. यही नि
क्रोधाकार होजाती है. कैसाहै यह काम ❀ रजोगुणसे उत्प
जिसकी ५ अर्थात् कामकी भी जड रजोगुण है. इसविशेषण
तात्पर्य हैं, कि रजोगुणके जीतनेसे कामभी जीताजाता है
कामके जीतने से क्रोध जीता जाता है. सत्वगुण बढानेसे रज
कम होता है, फिर कैसा है वो काम ? बड़ा भोजन है जिस
अर्थात् कितनाही भोग भोगो, कभी इच्छा पूर्ण न होवेगी।
दूनी आग लगे. इस हेतुसे वो काम ६ महापापी ७
है, कामकरकेही यह जीव पाप करता है और सदा
पापी पाप कराता है ❀ इसको अर्थात् कामको ८ मोक्षमा
९ वैरी १० जान तू ११ तात्पर्य कामना को वैरी (वि
सिवाय) समझकर इस लोक परलोककी कामनाको त्याग
यही मोक्ष का हेतु है ॥ ३७ ॥

मू०--धूमेनाव्रियतेवह्निर्यथादर्शोमलेनच ॥
यथोल्बेनावृतोगर्भस्तथातेनेदमावृतम् ॥ ३८॥

यथा १ धूमेन २ वह्निः ३ आव्रियते ४ यथा ५ च ६ आदर्शः ७ [मल]ेन ८ उल्बेन ९ गर्भः १० आवृतः ११ तथा १२ तेन १३ इदम् १४ [आ]वृतम् १५॥३८॥ अ०--उ० कामका वैरीपना यह है-जैसे १ धूमकरके [२] अग्नि ३ ढका है ४ और जैसे ५।६ शीशे (ऐना) ७ मलकरके ८ [१]० मैला हो रहा है. और जैसे ❀ जेरकरके ९ गर्भ १० ढका [हु]ता है ११ तैसे ही १२ तिसकरके १३ अर्थात् कामकरके १३ यह [१]४ अर्थात् विवेक ज्ञान या आत्मा १४ ढका हुआ है १५ तात्पर्य [जै]से धूमादि अग्नि आदिको ढक रक्खा है. तैसे ही मनने विचार [वि]वेक और ज्ञानको ढक रक्खा है. ये तीन दृष्टांत उत्तम मध्म और [क]निष्ठ इन तीन अधिकारियोंके वास्ते हैं.जेरके भीतर जो बच्चा होता [है], उसका नाम गर्भ है. बच्चेके ऊपरसे जेर दूरकरनेमें थोड़ाही यत्न [च]ाहता है, यह दृष्टान्त उत्तमके वास्ते है. बीचका मध्यमके वास्ते [औ]र शेष कनिष्ठके वास्ते है ॥ ३८ ॥

मू०--आवृतंज्ञानमेतेनज्ञानिनोनित्यवैरिणा ॥
कामरूपेणकौन्तेयदुष्पूरेणानलेनच ॥ ३९ ॥

कौन्तेय १ एतेन २ कामरूपेण ३ ज्ञानम् ४ आवृतम् ५ ज्ञानिनः ६ [नि]त्यवैरिणा ७ दुष्पूरेण ८ अनलेन ९ च १०॥३९॥ अ०--हे अर्जुन! इस कामरूपने २।३ ज्ञान ४ ढकरक्खा है ५ सि० अर्थात् इस [लो]कके या परलोकके पदार्थोंकी कामना ज्ञानको नहीं होनेदेती है, [कै]सा है यह काम? अज्ञानियोंको तो फल भोगोंके प्राप्तिके प्रयत्न [क]रनेमें और प्राप्त हुये ऐसे भोगोंके नाश होनेमें मात्र यह वैरीसा

प्रतीत होता है अर्थात् भोग भोगनेके समय तो जीवसेभी प्या
और ज्ञानीको तो भोग समयभी वैरी प्रतीत होता है. इसहेतुसे
का ६ नित्यवैरी है ७ सि० ज्ञानी यह समझता है कि इन भोगों
परमानंदस्वरूपपरमात्मासे विमुख कर रक्खा है. इसवास्ते सब
ज्ञानीको भोग वैरी प्रतीत होते हैं. फिर कैसा है यह काम ❀
करके कभी पूर्ण नहीं होता है. ८ और अग्निके ९सदृश स्वभा
जिसका ९।१० सि० जैसे अग्निमें जितना घी और इंधन डा
उतनाही सिवाय प्रचण्ड होता है. यही कामकी गति है. जित
प्राप्ति भोगोंकी होवे उतनी तृष्णा और कामना बढ़तीजावे❀
आठवां और नववां ये तीनोंपद'कामरूपेण'इसपदके विशेषणहैं।

मू० -इन्द्रियाणिमनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते
एतैर्विमोहयत्येषज्ञानमावृत्यदेहिनम् ॥ ४०॥

अस्य १ अधिष्ठानम् २ इन्द्रियाणि ३ मनः ४ बुद्धिः ५ उ
एषः७ ज्ञानम् ८ आवृत्य ९ एतैः १० देहिनम् ११ विमोहयति
॥४०॥ अ०-ब०कामके जीतनेकेवास्ते कामका अधिष्ठान
अर्थात् काम जहां रहता है. उन स्थानोंको बताते हैं. क्योंकि
वैरीका घर न जाना जावे तबतक कैसे जीताजावे, इसका १
कामका १ अधिष्ठान रहनेकी जगह २ इन्द्रिय३ मन ४ बुद्धि
हैं.६ अर्थात् महात्मा यह कहते हैं कि इंद्रिय मन बुद्धि कामके
जगह हैं. क्योंकि प्रथम विषयोंको देखा, सुना फिर यह
विकल्प किया, कि इस पदार्थको भोगना योग्य है
फिर यह निश्चय कर लिया, कि अवश्य इस पदार्थको प्राप्त
भोगेंगे ६ सो यह ७ सि० काम ❀ ज्ञानको ८ ढककर ९

के अर्थात् इन्द्रियादि करके १० जीवको ११ भ्रान्त कर देता है अर्थात् काम करके जीव अन्धासा होजाता है, कामनाके वश होकर बुरेभलेकी सुध नहीं रहती है ॥ ४० ॥

मू०-तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौनियम्यभरतर्षभ ॥
पाप्मानंप्रजहिह्येनंज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

तस्मात् १ भरतर्षभ २ आदौ३ इन्द्रियाणि ४ नियम्य५ एनम् पाप्मानम् ७ त्वम् ८ प्रजहि ९ हि १० ज्ञानविज्ञाननाशनम् ११ ४१ ॥ अ०-जब कि यह काम इंद्रियादिकोंमें रहता है तिस-कारणसे १ हे अर्जुन ! २ सि० मोह होनेसे ❀ प्रथम (आदिमें) सि० ही ❀ इन्द्रियोंको ४ रोककर ५ इस पापीको ६।७ अर्थात् कामको ७ तू ८ मार (दूरकर) ९ क्योंकि १० सि० यही ❀ ज्ञान विज्ञानका नाश करनेवाला है ११ टी० शास्त्र आचार्योंसे जो सुन समझ रक्खा है, उसको इस जगह ज्ञान कहतेहैं और विशेष युक्तियों करके जो उसी ज्ञानको निश्चय किया है उसको इसजगह कहते हैं ब्रह्म है, इतनाही समझना इसका ज्ञान और उसका प्रत्यक्षअनुभव होना इसका विज्ञान, यहनाम है, परन्तु यहां उस ज्ञान विज्ञानका ग्रहण नहीं, क्योंकि उनको कोई नाश नही कर सक्ता, तात्पर्य ज्ञान-विज्ञानके पीछे कामादिका उदय विद्वान्के अन्तःकरण में होता ही नहीं और जो अज्ञानीको प्रतीत होताहो तो उसको कामाभास सम-झना योग्य है "रागो लिंगमबोधस्यसंतु रागादयोऽबुधे" तात्पर्य रागाभास विद्वान्में रहो ज्ञानविज्ञानकी उससे कुछ क्षति नहीं रागा-दिक अज्ञानके चिन्ह हैं ज्ञान विज्ञानको उदय और परिपाक नहीं होने देते हैं. यह अभिप्राय है, आनंदामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमें ज्ञानविज्ञानका लक्षण भलेप्रकार निरूपण किया है ११ जबतक

इन्द्रिय और विषयका संबन्ध नहीं हुआ हैं उससे पहले ही विचा
करके इन्द्रियोंका निरोध करना चाहिये जब विषयका सम्बन्ध
जाताहै तब फिर इन्द्रिय नहीं रुक सक्ती हैं और इन्द्रियोंके रोकने
ही मन बुद्धिमेंसे काम जाता रहता है ॥ ४१ ।

मू०-इंद्रियाणिपराण्याहुरिन्द्रियेभ्यःपरंमनः ॥
मनसस्तुपराबुद्धिर्योबुद्धेःपरतस्तुसः ॥४२॥

इन्द्रियाणि १ परायणि २ आहुः ३ इन्द्रियेभ्यः४ मनः५परम्
बुद्धिः ७ मनसः ८ तु ९ परा १० यः ११ बुद्धेः १२ तु १३ प
१४ सः १५ ॥ ४२ ॥ अ०-उ० कुछ आश्रय भी चाहिये कि जि
करके इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकाजावे, कामको जीता जावे,
अपेक्षामें श्रीमहाराज आश्रय बताते हैं-(स्थूल देहसे) इन्द्रि
१ श्रेष्ठ २ कहते हैं ३ सि० विद्वान् क्योंकि सूक्ष्म हैं, और प्र
शक हैं, और इन्द्रियोंसे ४ मनको ५ श्रेष्ठ ६ सि० कहते हैं. क्यों
इन्द्रियोंका प्रेरक है, और*बुद्धि ७मनसे८भी९श्रेष्ठ१०सि०है क्यों
मनकी मालिक है बुद्धिको मनीषा कहते हैं * जो ११ बुद्धिसे
भी १३ श्रेष्ठ १४ सि० है अर्थात् सबका जो परमप्रकाशक है
१५ सि० आश्रयरक्षक आत्मा है इसीको परमपुरुष, पूर्ण
परमगति, परमधाम, राम ऐसा कहते हैं इससे परे पृथक् श्रेष्ठ प
कुछ नहीं*"पुरुषन्नापरं किंचित्साकाष्ठासापरागतिः॥" यह श्रुति
सबकर परमप्रकाशक जोई॥राम अनादि अवधिपति सोई' ॥४२

मू०-एवंबुद्धेःपरंबुद्ध्वासंस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहिशत्रंमहाबाहोकामरूपंदुरासदम् ॥४३॥

महाबाहो १ एवम् २ बुद्धे ३ परम् ४ बुद्धा ५ आत्मना ६ आत्मनम् ७ संस्तभ्य ८ कामरूपम् ६ शत्रुम् १० जहि ११ दुरासदम् १२ ॥ ४३ ॥ अ०-सि० आत्मा बुद्धि आदिकोंका साक्षी प्रेरक, और वास्तव अक्रिय, निर्विकार, बुद्धि आदिपदार्थों से विलक्षण है ❀ हे अर्जुन ! १ इस प्रकार २ बुद्धि से ३ परमश्रेष्ठ ४ सि० परमानन्दस्वरूप परमात्मा को ❀ जानकर सि० और फिर उसी ❀ बुद्धिसे ६ मनको ७ सि० आत्मामें ❀ निश्चल करके ८ कामरूप वैरीको ६।१० मार, त्यागकर, दूरकर ११ सि० कैसा है यह काम ❀ दुःखकरके प्राप्ति है जिसकी१२ अर्थात् बडे बडे दुःखों करके काम (भोग) प्राप्त होते हैं ॥४३॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

मू०-भगवानुवाच॥इमंविवस्वतेयोगंप्रोक्तवानहमव्ययम् ॥ विवस्वान्मनवेप्राहमनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥

इमम् १ अव्ययम् २ योगम् ३ विवस्ते४अहम् ५ प्रोक्तवान् ६ विवस्वान् ७ मनवे ८ आह ६ मनुः १० इक्ष्वाकवे ११ अब्रवीत् १२॥१॥ अ०-उ० पीछे दो अध्यायोंमें जो निरूपण किया कर्मसंन्यासयोग, ज्ञाननिष्ठा और उसका साधन (उपाय) कर्मयोग इसीमें सब वेदोंका अर्थ होगया, प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण यही दोप्रकारका धर्म, समस्त वेदार्थ है सोई श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा हैं ये दोनों धर्म अनादिहैं सोई श्रीभगवान् कहतेहैं-इस अव्यययोगको १।२।२सि०प्रथम

सृष्टि आदिमें ❀ आदित्य के अर्थ ४ मैं ५ कहता हूं
अर्थात् यह ज्ञानयोग साधन सहित पहले मैंने आदित्यसे कहा
आदित्य ७ मनुके अर्थ ८ कहते भये ६ अर्थात् आदित्यने
कहा ९ मनु १० इक्ष्वाकुके अर्थ ११ कहते भये १२ अ
मनुने इक्ष्वाकुसे कहा. कर्मयोग और ज्ञानयोग को पृथक्
स्वतंत्रमोक्षके साधन दो योग नहीं समझना, किन्तु केवल
ज्ञानयोगही मोक्षका साधन है. कर्मयोगसाधन उसका अं
इसी वास्ते श्रीभगवान्ने योगशब्दके विषय एक बचन
द्विवचनवाला प्रयोग नहीं क्योंकि मोक्षमार्ग दो नहीं इस
योगका अव्यय अविनाशी फल है इस वास्ते योगकोभी अ
कहा. नववें और बारहवें पदमें एक वचनका प्रयोग है अर्थ में
बचन आदरार्थ है १२ ॥ १ ॥

मू० -एवंपरंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥
सकालेनहमहतायोगोनष्टःपरन्तप ॥२॥

एवम् १ परंपराप्राप्त २ इमम् ३ राजर्षयः ४ विदुः ५ प
६ महता ७ कालेन ८ इह ९ सः १० योगः ११ नष्टः १२ ॥

अ०–पीछले मंत्रमें जैसे कहा इस प्रकार १ परम्परासे प्राप्त
सि० यह ज्ञान योग ❀ इसको ३ सि० पहलेसे ही बडे ब
राजऋषि ४ जानते हैं ५. तात्पर्य तू भी क्षत्रिय है, तुझको भी
ज्ञानयोग उपायसहित जानकर इस ज्ञानयोगका अनुष्ठान
योग्य है, हे अर्जुन ! ६ बहुतकालसे ७ । ८ इस लोक में
१० योग अर्थात् ज्ञानयोग ११ छिप गया है १२
भेदवादियोंका राजबल होजानेसे और और भेदवादीपं
अनर्थ करनेसे वेदोक्त ज्ञानयोग साक्षात् मोक्षका साधन

होगया है.कुछ जातानहीं रहा नष्ट नहीं हुआ, क्योंकि उसका उपदेश करनेवाला अविनाशी अच्युत मैं विद्यमान हूँ. इसी हेतुसे वो ज्ञान-योगभी अव्यय नित्य है ॥ २ ॥

मू०--सएवायंमयातेऽद्ययोगःप्रोक्तःपुरातनः ॥
भक्तोऽसिमेसखाचेतिरहस्यंह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

सः १ एव २ पुरातनः ३ अयम् ४ योगः ५ मया ६ ते ७ अद्य८ प्रोक्तः ९ मे १० भक्तः ११ सखा १२ च १३ असि १४ इति १५ हि १६एतत् १७ उत्तमम् १८ रहस्यम् १९ ॥ ३ ॥ अ०-जो ज्ञान मैंने आदित्यसे कहा, सोई १।२ पहिला अनादि ३ यह ४ योग ५ मैंने६ तेरेअर्थ ७ (तुझसे७) अब ८ कहा है ९ [तू] मेरा १० भक्त ११ और सखा १२।१३। है १४ यह १५ निश्चय सि० रख. इसी वास्ते❀ यह १७ उत्तम १८ रहस्य १९ अर्थात् ज्ञानयोग मैंने तुझसे कहा अथवा यह ज्ञानयोगही श्रेष्ठ निश्चित श्रेय है, इसीवास्ते मैंने तुझसे कहा, तूने द्वित्तीत अध्यायमें मुझसे कहा था कि जो निश्चित श्रेय हो सो मुझसे कहो ॥ ३ ॥

मू०-अर्जुनउ०॥अपरंभवतोजन्मपरंजन्मविवस्वतः॥
कथमेतद्विजानीयांत्वमादौप्रोक्तवानिति ॥ ४॥

भवतः १ जन्म २ अपरम् ३ बिवस्वतः ४ जन्म ५ परम् ६ एतत् ७कथम्८ विजानीयाम् ९ त्वम् १० आदौ ११ प्रोक्तवान् १२ इति१३ १४॥ अ०-उ० श्रीभगवान्के कहनेको असंभव मानता हुआ अर्जुन कहता है--कि, हे महाराज ! आपका १ जन्म २ पीछे ३ सि० द्वापर के अंतमें अब हुआ❀ आदित्यका ४ जन्म ५ पहले ६ सि०सो द्वापरके अन्तमें हुआ ❀ यह ७ कैसे ८ मैंजानूं ९ आप १० सि० सृष्टिके ❀ आदिमें ११ सि० आदित्यसे ❀ कहते भये अर्थात् पहले

आपने आदित्यसे किसप्रकार कहा १२ यह १३ सि० मेरा प्रश्नरके
अर्जुनके इस प्रश्नसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि,अर्जुनको ब्रह्मज्ञान
नहीं. क्योंकि पूर्णब्रह्म अनादि, अज, अमरको अबतक वसुदेवका
पुत्रही समझता हैं ❀॥ ४ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥बहूनिमेव्यतीतानिजन्मानिव
तवचार्जुन॥तान्यहंवेदसर्वाणिनत्वंवेत्थपरंतप

अर्जुन १ मे २ बहूनि ३ जन्मानि ४ व्यतीतानि ५ तव ६
तानि ८सर्वाणि९ अहम्१० वेद११ परंतप १२ त्वम् १३ न १४
१५॥५॥अ०-उ० अर्जुनके प्रश्नका अभिप्राय समझकर श्रीभ
कहते हैं-हे अर्जुन ! १ मेरे २ बहुत ३ जन्म ४ व्यतीत हुएस्य
सि० और ❀ तेरे ६ भी ७तिन सबको ८।९ मैं १० जानता हूं
शुद्धसत्त्वप्रधानमायोपहित होनेसे. हे अर्जुन ! १२ तू १३ नहींस
जानता है १५. सि० मलिनसत्त्वप्रधान अविद्योपहित होनेसे
तात्पर्य आदित्यको मैंने और रूप करके उपदेश किया है सि०
जन्ममें यह तू समझ ॥ ५ ॥

मू०-अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपिसन्
प्रकृतिंस्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्ममयया ॥६॥

अव्ययात्मा १ अजः २ अपि ३ सन्४ भूतानां५ ईश्वरः ६
सन् ८ स्वाम् ९ प्रकृतिम् १० अधिष्ठाय ११ आत्ममायया १२
वामि १३॥६॥ अ०-उ० जब कि ईश्वर निर्विकार जन्मादि
है उसका बारंबार जन्म कैसे होसक्ता है ? यह शंकाकरके कहते
निर्विकार है आत्मा जिसका अर्थात् मेरा १ सि० सो मैं नि
❀ जन्मरहित २ भी ३ हुआ ४ भूतोंका ५ ईश्वर ६ भी ७
८ अपनी ९ मायाका १० आश्रय करके ११ अपनी शक्ति

करके १२ प्रकट होता हूं १३ टी० त्रिगुणात्मकत्रिगुणवाली शुद्धसत्व-प्रधान मायाको अपने अधीन करके मायाके संबंधसे मायोपहित होकर अवतार लेता हूं ६ ।१०।११. ज्ञानबलवीर्य आदि-अलौकिक अचिंत्यशक्तिकरके अपनी इच्छापूर्वक अवतार लेता हूँ. वास्तव जीववत् मैं देहाधारी नहीं. यद्यपि जन्मरहित निर्विकार ईश्वरभी मैं हूं तोभी मायामात्र मेरे जन्म हैं, वास्तव मैं अज हूँ ॥६॥

मू०-यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजाम्यहम् ॥७॥

भारत १ यदा २ यदा ३ धर्मस्य ४ ग्लानिः ५ भवति ६ अधर्मस्य ७ अभ्युत्थानम् ८ तदा ९ हि १० अहम् ११ आत्मानम् १२ सृजामि १३॥७॥ अ०-उ० किस कालमें आपका जन्म होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं. हे अर्जुन ! जिसजिसकालमें २।३ धर्मकी हानि ५ होती है ६ सि० और ❀ अधर्मकी ७ अधिकता ८ सि० होती है ❀ तिस कालमें ९ ही १० मैं आत्मा को १२ प्रकट करता हूं १३ अर्थात् मैं अवतार लेता हूं. टी० ज्ञानयोग साधन के सहित जब काम होता है, तबही मैं अवतार लेता हूं. मेरे अवतार दो प्रकार के हैं, एक नित्य अवतार और दूसरा निमित्त अवतार. ज्ञानी विरक्त महात्मा साधु मेरे नित्य अवतार हैं और राम कृष्णादि निमित्त अवतार हैं ४ अनुष्योंके कल्पित पाखण्डपंथ सम्प्रदायोंकी जब वृद्धि होती है तबहीं नित्य वा निमित्त अवतार लेता हूं ॥७॥

मू०-परित्राणायसाधूनांविनाशायचदुष्ताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥८॥

साधूनाम् १ परित्राणाय २ दुष्कृताम् ३ च ४ विनाशाय ५ धर्मसंस्थापनार्थाय ६ युगे ७ युगे ८ संभवामि ९ ॥ ८ ॥ अ०-उ०

आप अवतार क्यों लेते हो, इस अपेक्षामें कहते हैं-साधु महात्मा
ओंकी १ रक्षा (सहायता) के लिये २ और दुष्टोंका ३।४
करनेके वास्ते ५ सि० इसप्रकार ❀ धर्मके स्थिर करनेके
अथवा ज्ञानयोगको साधनोंके सहित स्थिर करनेके वास्ते
युगयुगमें ७।८ अर्थात् सत्ययुगादि हरएक युगमें जब जब दुष्ट
साधुलोगोंसे वैर (विरोध) करते हैं. तब मैं उसीकाल में ८
तार लेता हूं ९ तात्पर्य साधुजनोंकी रक्षा करनेसे धर्मकी
होती है. धर्म के स्थिर रहनेसे अर्थकाममोक्षकी प्राप्ति होती
दुष्टोंको जो दंड देना है यह भी नारायण की उनपर कृपा है,
कि जैसे माता जब तक बालकको ताडना नहीं करते,
तक वो नहीं सुधरता, जैसे मातापिताकी ताडना निर्दयकरके
ऐसेही महेश्वरकी ताडना दया करकेही होती हैं. जो लोग
वासनादिको त्यागकर केवल ब्रह्मपरायण हैं, सिवाय परमेश्वर
और किसी राजा मित्र पुत्र धनादिका आश्रय नहीं रखते
साधुमहात्माओं के वास्ते अवतार होता है ॥ ८ ॥

मू०-जन्मकर्मचमेदिव्यमेवंयोवेत्तितत्त्वतः ॥
त्यक्त्वादेहंपुनर्जन्मनैतिमामेतिसोर्जुन ॥

दिव्यम् १ मे २ जन्म ३ कर्म ४ च एवं ६ यः ७ तत्वतः
९ अर्जुन १०सः ११ देहम् १२ त्यक्त्वा १३ पुनः १४ जन्म १५
एति १७ माम् १८ एति १९॥९॥ अ०-उ० परमेश्वरके जन्म
जो यथार्थ जानता है, वो परमपद ऐसे मोक्षको प्राप्त होता है
कहते हैं—मायामात्र अलौकिक १ मेरे जन्म ३ और कर्मको
प्रकार ६ अर्थात् जब धर्मका नाश होने लगता है, तब
प्रचारक साधुलोगों की रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंके नाश

लिये अवतार लेताहूँ इस प्रकार६जो७यथार्थ परमार्थ दृष्टिसे८जानता है ९ हे अर्जुन! १० सो ११ देहको १२ त्यागकर १३ फिर १४ जन्मको १५ नहीं १६ प्राप्त होता है १७ सि० वोमुझ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको १८ प्राप्त होता है १९ तात्पर्य वास्तव न उनमें कर्मका करना बनसक्ता है, क्योंकि परमेश्वर निर्विकारहै,अध्यारोपमें व्यवहारमात्रदृष्टिकरके तत्त्वज्ञानके प्राप्तिकेलिये भगवत्के जन्मकर्म विद्वानोंने निरूपण किये हैं, और जो सिद्धान्तमें भी यह कहतेहैं कि भगवत्के जन्मकर्म वास्तव सत्यहैं. ईश्वर अपनी अचिन्त्यशक्तियों करके अपने अधीन हुआ अपनी इच्छासेही जन्म लेताहै,और औरों के भलेके लिये कर्म करताहै, वो आप्तकाम है, प्रथम तो इस अर्थमें यह शंका है कि ईश्वर नित्य निर्विकार न रहा ऐसा प्रतीत होता हैं, किसीकालमें (प्रलयादिकालमें) ईश्वर निर्विकार कहा जाता होगा, सो ईश्वर अब तो रक्षादि कर्मकरनेसे विकारवान् स्पष्ट प्रतीत होताहै और प्रलय समयमें तो जीवभी निर्विकार होता है. इस प्रकार जीवको भी निर्विकार कहना चाहिये, दूसरी शंका यह है कि यह कौन नहीं जानताहै, कि ईश्वरके जन्मकर्म अपने वास्ते नहीं पराये वास्ते हैं. ईश्वर आप्तकाम अचिन्त्यशक्तिमान् स्वतन्त्र स्वाधीन है, यह बात सब जानते हैं, परन्तु केवल इतने जाननेसे कोई परमेश्वरको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यह ज्ञान ऐसाहै कि बालकोंकोभी है, सबही मुक्त हो जाना चाहिये, श्रीमहाराजके कहनेसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि भगवत् की प्राप्ति केवल ईश्वरके ज्ञानसेहीं होतीहै,तात्पर्य जिस ज्ञानसे परमेश्वर की प्राप्ति होती है, वो ईश्वरका ज्ञान यह है, कि परमेश्वरको नित्य निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानंद ऐसे आत्मासे अभिन्न जानना योग्य है और जन्मकर्म परमेश्वरको वास्तव नहीं. मायामात्र, तत्त्वज्ञानके

प्राप्तिके लिये अध्यारोपमें कहे जाते हैं, यही तात्पर्य वेदोंका और विद्वानोंका अनुभव भी है ॥ ६ ।

मू०-वीतरागभयक्रोधामन्मयामामुपाश्रिता ॥
बहवोज्ञानतपसापूतामद्भावमागताः ॥१०॥

ज्ञानतपासा १ पूताः २ माम् ३ उपाश्रिताः ४ मन्मयाः ५ वी रागभयक्रोधाः ६ बहवः७मद्भावम् आगताः ८ ॥१०॥अ०-उ० ज्ञानसे ही पृथक् किसीसाधनकीभी अपेक्षा न रखकर केवल ब्रह्मज्ञा सेही असंख्यात् जीव मुक्त होगए,ब्रह्मज्ञानीही सनातनसे मोक्षमा सोई कहते हैं-ज्ञानरूप तपकरके अर्थात ब्रह्म ।ानकरके १ पवित्र २ मुझ ३ अर्थात शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको ३ आश्रय हुए ४ अर्थात् केवल ज्ञाननिष्ठ हुए ३ब्रह्मस्वरूप हुए ५ दूर होगए रागभयक्रोध जिनसे ६ सि० ऐसे ब्रह्मज्ञानी ❀ बहुत ७ मोक्ष प्राप्तहुए ८ टी० तप नाम विचारका है, (तपविमर्शने, इति धातु द्रष्टव्यम) ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मबिचार ये दोनों एकही बात हैं, और तप शब्दका अर्थ एक करनेसे,अभिप्राय यह हैकि ज्ञान ही मोक्षका हेतुहैं, किसीऔर साधनकी इच्छा नहीं रखता शास्त्रमें यह सुना जाता है, कि तपकरके ज्ञान होताहै,तात्पर्यार्थ इसकायह कि ब्रह्मविचार करके ज्ञान होताहै, बिचारका स्वरूप यह है, ऐसे करके कि वो ब्रह्मनिर्गुणहै वा निर्विकार है, मुझसे भिन्न अभिन्न है, साकार है वा निराकार, इसप्रकार मनन करनेका विचार है,इस विचारसे निराकार निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आत्मासे जानकर, पवित्र होकर ब्रह्मको प्राप्त हुए ज्ञानके बराबर कोई पवित्र नहीं. पवित्रसे ही पवित्र होसक्ता है इस हेतुसे ही मोक्ष है । पढना सुनना साधन है. कर्म उपासना अन्य प्रकार है ॥

मू०-येयथामांप्रपद्यन्तेतांस्तथैवभजाम्यहम् ॥
ममवर्त्मानुवर्तन्तेमनुष्याः पार्थसर्वशः ॥११॥

ये १माम् २ यथा ३प्रपद्यन्ते ४तान्५ तथा६ एव ७ अहम् ८ भजामि ९ पार्थ १० सर्वशः ११ मनुष्याः १२ मम १३ वर्त्म १४ अनुवर्तन्ते १५'। ११ ॥ अ०-उ० अष्टांगयोग, सांख्य, कर्म, भेद-भक्ति, अभेदभक्ति, ब्रह्मज्ञानपर्यन्त ये सब क्रमसे मोक्षमार्ग हैं, परन्तु साक्षात् स्वतंत्रमुक्ति, ब्रह्मज्ञानियोंको ही प्राप्त होती है और लोक पीछे क्रमसे ज्ञानद्वारा मुक्त होते हैं, सोई कहते हैं-जो १ मुमुक्षुशुद्ध सच्चिदानन्दको २ जैसे ३ भजते हैं ४ तिनको ५ तैसेही ६।७ मैं ८ भजता हूँ ९ अर्थात् जैसे फलकी मनमें भावना करके मेरी उपासना करते हैं, उनको मैं वैसाही फल देता हूँ अर्थात् मुक्ति चाहते हैं, उन को मैं मुक्त करता हूँ और जो वृन्दावनके वृक्ष गीदड बना चाहते हैं, मुक्त नहीं चाहते. उनको मैं वोही फल देता हूँ ९ सि० परन्तु ❀ हे अर्जुन ! १० सब प्रकारकरके ११ मनुष्य १२ मेरे १३ सि० ही❀ मार्गमें १४ अर्थात् ज्ञानमार्गमें १४ पीछे वर्तते हैं १५ सि० तब मुक्त होते हैं ❀ अर्थात् योगकर्मभक्तितप आदि सब साधनोंका अनुष्ठान करके पीछे सब ज्ञाननिष्ठा का अनुष्ठान करते हैं, तब मुक्त होते हैं ।। ११ ॥

मू०-कांक्षतःकर्मणांसिद्धिंयजन्तइहदेवताः ॥
क्षिप्रंहिमानुषेलोकेसिद्धिर्भवतिकर्मजा ॥१२॥

कर्मणाम् १ सिद्धिम् २ कांक्षंतः ३ इह ४ देवताः ५ यजन्ते ६ मानुषे ७ लोके ८ क्षिप्रम् ९ हि १० सिद्धिः ११ भवति १२ कर्मजा १३॥१२॥ अ०-उ० मोक्षके वास्ते जो सब भजन नहीं करते

उसमें यह कारण है अर्थात ज्ञानमें निष्ठा और श्रद्धा लोगों
जिस वास्ते नहीं होती, और जिस हेतुसे ज्ञानको थोथा
तुषोंका कूटना कहते हैं वो हेतु यह है.–कर्मोंकी सिद्धि को १
चाहनेवाले अर्थात शब्दादि भोग और स्त्री पुत्रादि के चाहने
३ इस लोकमें ४ साकार देवताओंका ५ पूजन करते हैं ६
साक्षात् पूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानन्द ऐसे आत्मा की उपासना
करते जिससे साक्षात् परमपदकी प्राप्ति होती है ❀ मनुष्य
में ७। ८ शीघ्र ९ हि १० सिद्धि ११ होती है १२ कर्मजा
कर्मों से उत्पत्ति है जिस सिद्धिकी १३ अर्थात् कर्मोंका
(स्त्रीपुत्रधनादि) मनुष्य लोक में ही शीघ्र प्राप्त हो जाता है
तात्पर्य कर्मोंके करनेने धनपुत्रादि फलकी प्राप्ति शीघ्र होजा
ज्ञानका फल परमपद, तितिक्षा वैराग्य त्याग चाहता है. अ
परमपदकी प्राप्ति शब्दादिभोगोंके त्यागनेसे होती है. इस
उनकी ज्ञानमेंनिष्ठा नहीं होती और ज्ञानको थोथा भूसेका
बताते हैं, सिवाय इसके ब्रह्मज्ञान विना विद्याके मूर्खों की सम
नहीं भी आता. उसका अनुष्ठान करना तो दूर रहा. तात्पर्य
आलसी विषयी ज्ञानमें श्रद्धा नही रखते, अनित्यपदार्थों में
करके अनित्य फलको ही प्राप्त होते हैं और ज्ञाननिष्ठावाले
पद को (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

मू०–चातुर्वर्ण्यंमयासृष्टंगुणकर्मविभागशः ॥
तस्यकर्तारमपिमांविद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

गुणकर्मविभागशः १ चातुर्वर्ण्यम् २ मया ३ सृष्टम् ४ त
कर्तारम् ६ अपि ७ माम् ८ विद्धि ९ अकर्तारम् १० अव्यय
॥ १३ ॥ अ०–उ० जो निष्कामवेदोक्त अनुनुष्ठान करते है

जो सकाम भजन करते है, ये सब चारो वर्ण आपकेही रचे हुए हैं इन चारोंवर्णोंमें जो विषमता आपने करदी है,इसी हेतुसे कोई सकाम है, कोई निष्काम है और इस दोषके कारण आपही हैं. मनुष्योंका कुछ दोष नहीं, यह शंका करते रहते हैं.--सत्त्वादिगुणोंके विभागसे कर्मोंका विभाग करके १ टी० 'गुणबिभागेन कर्मविभागस्तेन इति समासः' अर्थात् जिसमें जैसा गुण देखा उसीके अनुसार उसके कर्मों का विभाग करदिया. जैसे एकजीवको सतोगुणप्रधान देखा तो उसी सतोगुणके अनुसार शमदमादि उसके कर्मोंका विभाग कर दिया, और एक नाम ब्राह्मण उसका प्रसिद्ध करदिया. इसीप्रकार १ चारोंवर्ण २ मैंने३ रचे हैं४. अध्यारोपमें मायामात्र तिनका५ कर्ता६ भी मुझको८ जान तू९सि०और वास्तव परमार्थमें*अकर्ता१० निर्विकार ११ सि० मुझको तू जान. पीछे भी इसी अध्यायमें परमेश्वरको निर्विकार सिद्ध कर चुके, और आगे पंचमादि अध्यायोंमें भलेप्रकार सिद्ध किया है और चारोंवर्णोंका भेद अठारहवें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है* ॥१३॥

मू०--नमांकर्माणिलिम्पन्तिनमेकर्मफलेस्पृहा ॥
इतिमांयोऽभिजानातिकर्मभिर्नसबध्यते ॥१४॥

कर्माणि १ माम्२ न३ लिम्पन्ति४ न५ मे६ कर्मफले७ स्पृहा ८ यः ९ माम् १० इति ११ अभिजानाति १२ सः १३ कर्मभिः १४ न १५ बध्यते १६॥१४॥अ०—वास्तव अकर्ता होनेसे ही कर्म १ मुझको २ नहीं ३ स्पर्श करते ४ सि०और न ५ मुझको ६ कर्मोंके फलमें ७ चाह सि०है * जो ९ मुझ सच्चिदानंदस्वरूप आत्माको १० ऐसे११ जानता है १२ सो १३ कर्मोंकरके१४ नहीं १५ बन्धनको प्राप्त होता है १६. टी० जैसे ईश्वर वास्तव अकर्ता है ऐसे जीवात्माको समझना

चाहिये,नहीं तो ईश्वरको तो कोई भी विकारवान् नहीं जानता,
को अकर्ता निर्विकार जाननेसे जीव मोक्षको नहीं प्राप्त होता,
को वास्तव अकर्ता निर्विकार जाननेसे मोक्ष होता है ॥ १४ ॥

मू०-एवंज्ञात्वाकृतंकर्मपूर्वैरपिमुमुक्षुभिः ॥
कुरुकर्मैवतस्मात्त्वंपूर्वैःपूर्वतरंकृतम् ॥ १५ ॥

एवम् १ ज्ञात्वा २ पूर्वैः३ मुमुक्षुभिः४ अपि ५ कर्म६ कृतम्७
८ पूर्वतरम् ९ कृतम् १० तस्मात् ११ त्वम् १२ एव १३कर्म १४
१५॥१५। अ०-उ०अहंकारादि रहितहोकर किया हुआ कर्म
हेतु नहीं, आत्मा वास्तव अकर्ता है. इसप्रकार १ जानकर २
जनकादि मुक्तिके इच्छावालोंने ३।४ भी५ कर्म ६कियाहै७.सि०
करणकी शुद्धिके लिये कुछ अभी नया यह कर्मयोग तुझको
देश नहीं करताहूं. जब कि*पहले जनकादिने ८ पहले त्रेतादि
९कियाहैं १० तिसकारणसे ११ तू १२ भी १३ कर्मको १४ कर
टी०पहले अर्थात् प्रथम सत्यादि युगोंमें जो मुक्तिके इच्छावाले
उन्होंनेभी किया है.जो तुझको ब्रह्मज्ञान है तो लोकसंग्रहके लिये
कर और जो ज्ञान नहीं है तो अंतःकरणके शुद्धिके लिये कर्म
तात्पर्य श्रीमहाराजका है ॥ १५ ॥

मू० -किंकर्मकिमकर्मेतिकवयोऽप्यत्रमोहिताः ॥
तत्तेकर्मप्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

कर्म १ किम् २ अकर्म ३ किम् ४ इति ५ अत्र ६ कवयः७
८ मोहिताः ९ तत् १० कर्म ११ ते १२ प्रवक्ष्यामि १३ यत्
ज्ञात्वा १५ अशुभात् १६ मोक्ष्यसे १७ ॥ १६ ॥ अ०-उ०

संध्या, पाठ, पूजा, जप, साधुसेवा इत्यादि कर्म कहलाते हैं. जिस विधि से इनको पूर्वमीमांसा वाले कहते हैं, उसीविधिसे मैं भी करता हूं कर्म करनेमें और क्या विचित्रता (विशेषता) है कि, जो बारंबार आप मुझसे कहतेहो कि जैसे पहले लोग कर्म करते आये हैं उस प्रकार तू कर्म कर. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं—कि लोकप्रसिद्ध परंपरामात्रकरके कर्म मुक्तिके हेतु नहीं. विद्वान् ज्ञानी जैसे उपदेश करे उस प्रकार कर्म करनेसे वे कर्म मुक्तिके हेतु हैं कर्मका स्वरूप समझना कठिन है, मैं तुझको समझाऊंगा. कर्म १ क्या २ सि० है और ॥ अकर्म३क्या ४ सि० है॥यह ५सि० जो बातहै॥इसमें६कविपंडित ७ भी ८ भ्रांत होगये हैं९ तिसकर्मको १० ११[मैं] तुझसे१२कहूंगा१३ जिसको१४जानकरके१५संसारसे १६[तू] मुक्त होजायगा १७तात्पर्य क्या कर्म करना चाहिये और किस प्रकार चाहियो, कौनसा कर्म न करना चाहिये इसबातके समझने में पंडितभी संदेह और विपर्ययको प्राप्त होजाते हैं, दृष्टांतसे इसबातको स्पष्ट करते हैं. जैसे एक औषधी गरमी को दूर करती है, तब भी उसके खानेकी रीति तोल समय बुद्धिमान् वैद्यसे बूझना योग्य है, क्योंकि बुद्धिमान् वैद्य देश कालवस्तुका बिचार कर कहेगा. प्रसिद्ध है कि एकही दवा किसीदेश में फल करती है, किसीमें नहीं. वा दूसरे देशमें उलटा फलभी कर देती है इसी प्रकार कालवस्तु में समझ लेना. दवाके साथ जलादि मिल जानेसे औरका और फल होजाता है. इसीप्रकार कर्मोंकी व्यवस्था है. शास्त्रमें जो यह बारंवार उपदेश है, कि गुरुके बिना सर्व धर्म निष्फल हैं यह सत्य है क्योंकि देशकालवस्तुका बिचार करना ऐसीऐसी बहुत बातें केवल शास्त्रके पढने सुनने से नहीं मिलती हैं सद्गुरुमहापुरुषोंसे एकान्तमें मिलती हैं और सत्पुरुषोंका यह

नियम है, कि वे अपने अनन्य भक्त को बताते हैं. नहीं संसार में यह कहानी सच्ची है, कि "जैसा जिसका गाना दूसरेका बजाना" अर्थात् जैसे दुनियांके लोक चतुर हैं. सिवाय विद्वान हैं ॥१६॥

मू०-कर्मणोह्यपिबोद्धव्यंबोद्धव्यंचविकर्मणः ॥
अकर्मणश्चबोद्धव्यंगहनाकर्मणोगतिः ॥१७

कर्मणः १ अपि २ बोद्धव्यम् ३ विकर्मणः ४ च ५ बोद्ध अकर्मणः ७ च ८ बोद्धव्यम् ९ हि १० कर्मणः ११ गति गहना १३ । १७ ॥ अ०-उ० कर्मका स्वरूप यथार्थ जानकर करना चाहिये, भेडकीसी चाल अच्छी नहीं यह श्रीमद् समझाते हैं-कर्मका १ सि० तत्व ❀ भी २ जानना योग्य और विकर्मका ४।५ सि० तत्त्व भी ❀ जानना योग्य है ६ अकर्मका ७ । ८सि० तत्वभी जानना योग्य है ९. क्योंकि कर्मकी ११ गति १२ गहना१३ अर्थात् कर्म अकर्म और विक तीनोंकी व्यवस्था गम्भीर (कठिन विषम) है. टी० विधिको कर्म कहते हैं. १. वेदोक्तनिषेधको विकर्म कहते कुछ न करनेको अकर्म कहते हैं ७ तात्पर्य भलेप्रकार सम कर्मों को करना योग्य है ॥ १७ ॥

मू०-कर्मण्यकर्मयःपश्येदकर्मणिचकर्मयः ॥
सबुद्धिमान्मनुष्येषुसयुक्तःकृत्स्नकर्मकृत ॥

यः १ कर्म्मणि २ अकर्म ३ पश्येत ४ यः ५ च ६ अकर्म कर्म ८ सः ९ मनुष्येषु १० बुद्धिमान् ११ सः १२ कृत्स्नकर्मकृ युक्तः १४ ॥ १८ ॥ अ०-उ० जिस कर्मको जानकर संसा तू मुक्त होजायगा वो कर्म तुझसे मैं कहूंगा, श्रीभगवान

यह प्रतिज्ञा करी थी सो सब कहते हैं अर्थात् ज्ञानीका लक्षणभी निरूपण करते हैं—जो १कर्ममें २ अकर्म ३ देखता है ४ और जो ५।६ अकर्ममें ७कर्म८सि०देखता है*सो ९ मनुष्योंमें १० ज्ञानी ११ सि० है, क्योंकि*सो १२समस्तकर्म करता हुआ १३ सि० भी*युक्त १४ रहता है* अर्थात् समाहित सावधान रहता है, आत्माको अकर्ता जानता हुआ समाधिनिष्ठ रहता है, टी० शरीरप्राणेन्द्रियांतःकरणके व्यापार कर्ममें २आत्माको कर्मरहित अकर्ता अकर्म ३ जो जानताहै, है, और अकर्मरूप ब्रह्ममें संसारकर्मको कल्पित जो जानताहै,सोई ज्ञानी हैसोई समस्तकर्मोंका कर्ता है,सोई सावधान है,स्वरूपमें अथवा निष्काम-कर्ममें जो अकर्म देखता है अन्तःकरणशुद्धिद्वारा और ज्ञानद्वारा मुक्तिका हेतु होनेसे, और अकर्ममें अर्थात् बिना ज्ञान कर्म न करने में जो कर्मको अर्थात् संसारको देखता है, अन्तःकरण शुद्ध न होने से और ब्रह्मज्ञान न होनेसे कर्मोंका न करनासंसारबन्धनका हेतु है ऐसे जो समझता है, सो मनुष्योंमें चतुर है सो समस्त कर्मकरता हुआ भी युक्तयोगी है तात्पर्य ज्ञानावस्थामें आत्माको अकर्ता समझना इसमें तो कुछ सन्देह है नहीं, परन्तु अज्ञानावस्थामेंभी आत्मा अकर्ता समझना योग्यहै अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय भी आत्मा अकर्ता निर्बिकारहै, यह समझना चाहिये और जबतक ज्ञान हो तबतक निष्काम असंग होकर आसक्तिरहित कर्मोंका अनुष्ठान करना योग्यहै और ज्ञानकालमें ज्ञानीके दृष्टिमें कर्म अकर्म और विकर्म ये सब सम हैं,यह इसमन्त्रका अभिप्राय है और इसी अर्थको अगले पंच श्लोकोंमें और दूसरे प्रकारके स्पष्ट निरूपण करेंगे॥१८॥

मू०–यस्यसर्वेसमारम्भाःकामसंकल्पवर्जिताः॥

ज्ञानाऽग्निदग्धकर्माणंतमाहुःपंडितंबुधाः ॥१९॥

यस्य १ सर्वे २ समारम्भाः ३ कामसंकल्पवर्जिताः ४ तम् ५ बुधाः ६ पंडितम् ७ आहुः ८ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् ९ ॥१९॥ अ०—जिसके १ समस्त २ कर्म ३ कामसंकल्प करके वर्जित४अर्थात् बिनाकामना और संकल्पके ४ सि० अभासमात्र होते हैं, अर्थात् ज्ञानी जो कर्म करता है, वो कर्म न कुछ दृढ इच्छा करके करता है, और न कुछ संकल्पकरके किसी फल भोगकी कामना कल्पनाकरके करताहै, स्वाभाविक जिसके सबकर्म होतेहैं॥तिसको५विद्वान्६लोगविद्वान७कहते हैं ८सि०कैसा है सो विद्वान्॥ज्ञानरूपअग्निकरके भस्म करदियेहैं कर्म जिसने ९ अर्थात् ज्ञानीके कर्म भी अकर्म हैं टी० जिनका प्रारम्भ किया जावे तिनकोही कर्म कहते हैं २ इच्छाका कारण संकल्प इन दोनों करके रहित विद्वान् के कर्म हैं, इसी हेतुसे वे कर्म अकर्म हैं ४ ॥१९॥

मू०—त्यक्त्वाकर्मफलासंगंनित्यतृप्तोनिराश्रयः॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपिनैवकिंचित्करोतिसः॥॥२०॥

कर्मफलासंगम् १ त्यक्त्वा २ नित्यतृप्तः ३ निराश्रयः ४ सः ५ कर्मणि ६ अभिप्रवृत्तः ७ अपि ८ किंचित् ९ एव १० न ११ करोति १२।२० अ०—उ० समस्त कर्मोंका त्याग स्वरूपसे होना असम्भव है, उसमें आसक्ति और फलका त्याग कर देना यही कर्म त्याग कहलाता है और इसप्रकार कर्म करनेवाले त्यागी सन्यासी कहलाते हैं सोई कहते हैं—कर्मोंके और अकर्मोंके फलकी आसक्तिको १ त्याग करके २ नित्यस्वरूपकरके तृप्त अर्थात् नित्यजो जो आत्मा है उस नित्य निजानन्दकरके तृप्त३ आश्रयरहित४अर्थात्

सिवाय आत्मानन्दके और किसी विषयका नहींहै आलम्बन [आश्रय]
जिसको ४ सो ५ कर्ममें ६ सब तरफसे भले प्रकार प्रवृत्त ७ भी ८
सि० है*अर्थात् दिनरात कर्मोंका कर्ता भी है ७।८ सि०तो भी वो
* अर्थात् कुछ ९ भी १० नहीं ११करता १२ टी० लोकवासनादि
करके रहित ४ शरीरप्रणेन्द्रियांतःकरणसे यथायोग्य कर्मोंका कर्ता
भी है ७ आत्माके साथ उन कर्मोंका लेशमात्र भी संबन्ध नहीं
विद्वान्को यह समझता है इसहेतुसे कर्म करनेवाले महात्माको ज्ञानी
कहते हैं ॥२०॥

मू०-निराशीर्यतचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ शारीरंकेवलंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ॥२१॥

निराशीः १ यतचित्तात्मा २ त्यक्तसर्वपरिग्रहः ३केवलम्४शरीरम् ५
कर्म ६ कुर्वन् ७ किल्बिषम् ८ न ९ आप्नोति। ।२१॥ अ०–आशा
रहित १ जीत लियाहै अन्तःकरण और शरीर जिसने२त्याग दिया
है सब परिग्रह जिसने ३ सि० सो * केवल ४ शरीरके निर्वाहमात्र
५ कर्मको ६ करता हुआ ७ पापको ८ नहीं ९ प्राप्त होता १० टी०
इसलोक परलोकके पदार्थोंकी कोई आशा नहींहै जिसको क्योंकि उसने
इंद्रियादिको वशकर लिया, देहयात्रासे सिवाय सब बखेडा है. फटा
पुराना वस्त्र, रूखासूखा अन्न इसके विना तो निर्वाह निर्विक्षेप होना
कठिनहै,अन्नवस्त्रकाग्रहणभी विक्षेप दूरकरनेके लिये है, क्योंकि जो
शीतकालमें शीतनिवारणवस्त्र न हो, वा अन्न न खावे,तो अतिविक्षेप
होता है विचार नहीं होसक्ता देहयात्रामात्र अन्नवस्त्र विक्षेपके हेतु नहीं
इससे सिवाय सब परिग्रह कहलाता है, वो त्याग दिया है जिसने
सो पदार्थोंमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि रहित होकर केवल शरीरका निर्वाह

करता हुआ कर्माकर्म करके बंधनको नहीं प्राप्त होता, विकर्म
वेदके विधिकाभी तात्पर्य निवृत्तिमेंहै सो निवृत्ति विद्वान्का वा
है. वेदका विधिनिषेध कामियोंके वास्ते हैं, निष्काम पुरुषों
किसी का विधिनिषेध नहीं ॥२१॥

मू०-यदृच्छालाभसन्तुष्टोद्वंद्वातीतोविमत्सरः ॥
समःसिद्धावसिद्धौचकृत्वापिननिबध्यते ॥२२॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टः १ द्वंद्वातीतः २ विमत्सरः ३ सिद्धौ ४
असिद्धौ ५ च ६ समः ७ कृत्वा ८ अपि ९ न १० निबध्यते ११
॥२२॥ अ०-उ० विनाइच्छा किये विनासंकल्प, विनामांगे जो
पदार्थ प्राप्त हो उसको यदृच्छालाभ कहते हैं, यदृच्छालाभ करके
तृप्त १ द्वन्द्वरहित २ निर्वैर ३ सि० कर्मोंकी ❀ सिद्धि और
असिद्धिमें ४ । ५ । ६ सम सि० जो है, ऐसा महापुरुष कर्माकर्म
विकर्म ❀ करके ८ भी ९ नहीं १० बन्दनको प्राप्त होता है
११ टी० हर्षविषाद, शीतोष्णा, मानापमान सुखःदुःख इत्यादि
जोड़ोंको द्वन्द्व कहते हैं २ ॥ २२ ॥

मू०-गतसंगस्यमुक्तस्यज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतःकर्मसमग्रंप्रविलीयते ॥२३॥

गतसंगस्य १ मुक्तस्य २ ज्ञानावस्थिततेतसः ३ यज्ञाय ४
आचरतः ५ कर्म ६ समग्रम् ७ प्रविलीयते ८ ॥ २३ ॥ अ०-दूर
होगई है सब पदार्थों में आसक्ति जिसकी अर्थात् न इस लोकके
पदार्थों में जिसका मन आसक्तहै, और न परलोकके पदार्थों में १ सि०
धर्माधर्मसे❀छूटा हुआ २ ब्रह्मज्ञानसेही स्थित है चित्त जिसका ३

परमेश्वरार्थं वा लोकसंग्रह (धर्मकी रक्षा) के लिये ४ सि० जो कर्म करता है ५ उसका ६ समस्त ७ सि० कर्माकर्म विकर्म ब्रह्ममें ❀ लय होजाता है ८ अर्थात् जिस महात्मा के ऊपर चार विशेषण हैं उस विद्वान् के कर्मविकर्म सब नाश होजाते हैं. तात्पर्य ऐसे महात्मा जीवन्मुक्त हैं ॥ २३ ॥

मू०-ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम् ॥
ब्रह्मैवतेनगंतव्यंब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

अर्पणम् १ ब्रह्म २ हविः ३ ब्रह्म ४ अग्नौ ५ ब्रह्मणा ६ हुतम् ७ ब्रह्म ८ तेन ९ ब्रह्म १० एव ११ गंतव्यम् १२ ब्रह्मकर्मसमाधिना १३॥२४॥ अ०-उ० अठारहवें श्लोकमें तो ज्ञानीका लक्षण संक्षेप करके कहा और उन्नीससे लेकर तेईसवें श्लोकतक उसी अर्थ को स्पष्ट करनेके लिये विस्तारपूर्वक निरूपण किया. अब यह कहते हैं कि जिस कारणसे ज्ञानी कर्म करता हुआ भी ब्रह्महीको प्राप्त होता है सो समझ यह है—अर्पण किया जावे जिसकरके १ सि० स्रुवादि पदार्थ करण ❀ ब्रह्म २ सि० ही है ❀ घृतादि ३ सि० भी ❀ ब्रह्म ४ सि० ही है ❀ अग्नि में ५ ब्रह्मने ६ अर्थात् कर्ताने ६ होम ७ सि० है जो किया है सोभी ❀ ब्रह्म ८ सि० ही हैं तात्पर्य क्रिया, कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण यह सब ब्रह्म ऐसे जो समझता है, तिसको ९ ब्रह्म १० ही ११ प्राप्त होने के योग्य है १२ अर्थात् उसको ब्रह्म प्राप्त होगा १२, सि० क्योंकि ब्रह्मरूपकर्ममें समाधान है चित्त जिसका १३ अर्थात् क्रिया कारकादि सब पदार्थोंको ब्रह्मरूप जानता है इसकारणसे वो ब्रह्मको प्राप्त होगा, नरकस्वर्गादिफल (कर्म अकर्म विकर्मों के) उसको स्पर्श नहीं करेंगे. टी० करण १ कर्म ३ कर्ता ६ अधिकरण

५ क्रिया ७ अर्पणादिशब्दों का करणादिशब्दों में तात्पर्य है
क्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है. कर्ताकर्मकरणाधिकरण
कारक कहते हैं. हवनादिको क्रिया कहते हैं. क्रियाकरणादि
सब ब्रह्म हैं. इस ज्ञान से जीव ब्रह्मको प्राप्त होता
इत्यभिप्रायः ॥ २४ ॥

मू०—दैवमेवापरेयज्ञंयोगिनःपर्युपासते ॥
ब्रह्माग्नावपरेयज्ञंयज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

अपरे १ ब्रह्माग्नौ २ यज्ञम् ३ यज्ञेन् ४ उपजुह्वति ५ अ
योगिनः ७ दैवम् ८ यज्ञम् ९ एव १० पर्युपासते ११ ॥
अ०-उ० सर्वत्र ब्रह्मदर्शन को यज्ञका रूपक बांधकर
वर्णन किया अब इसज्ञानयज्ञकी स्तुति करनेके लिये और
यज्ञकी महिमा प्रसिद्ध करनेके लिये ज्ञान ज्ञानज्ञय के सहित
यज्ञ वर्णन करते हैं अर्थात् ग्यारहयज्ञ सिवाय ज्ञानयज्ञ
वर्णन करेंगे वह ज्ञानयज्ञके प्राप्ति का उपाय हैं. ज्ञानयज्ञ
है, साक्षात् मोक्षके देनेमें ज्ञानयज्ञही समर्थ है. सोई प्रथम
हैं, इसमंत्रमें दोयज्ञोंका निरूपण है पाठक्रमसे अर्थक्रम
होता है, इस हेतुसे प्रथम ज्ञानयज्ञ अर्थ लिखते हैं-
महात्मा ब्रह्मरूप ऐसे अग्निमें २ आत्माको ३ ब्रह्मयज्ञ
अर्थात् ब्रह्मज्ञान करके ४ हवन करते हैं ५, तात्पर्य
शुद्ध सच्चिदानन्द, पूर्ण, निर्विकार ऐसा ब्रह्म जो समझते
ज्ञानी हैं उनके ज्ञानको ज्ञानयज्ञ वर्णन करते हैं. एक
तो निरूपण हो चुका, अब दूसरा यज्ञ निरूण करते हैं,
योगी अर्थात् कोहे कर्मयोगी ७ दैव ८ यज्ञकी ९ ही १० उ
करते हैं ११ तात्पर्य साकाररामादिदेवताओंका आराधन
जाता है जिस यज्ञमें उसको दैवयज्ञ कहते हैं, साकारदेवता

पासनाका नाम दैवयज्ञ है. एवशब्दका यह तात्पर्य है भेदवादी मादिदेवताओंको वास्तव मूर्तिमान् देवता समझतेहैं.नित्य निराकार विकार नहीं समझते तो ज्ञानी और उपासकोंमें भेद क्या हुआ और नयज्ञसे दैवयज्ञको पृथक् क्यों निरूपणकरते ? श्रीमहाराज रामादि- तओंको ज्ञानी नित्य निराकार जानतेहैं. उपासक उनको वास्तव र्तिमान् समझते हैं, मूर्तियोंको कल्पित मायिक नहीं समझते यह द उपासक और ज्ञानियोंमें है ॥ २५ ॥

मू०-श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्येसंयमाग्निषुजुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्यइन्द्रियाग्निषुजुह्वति ॥ २६ ॥

अन्ये १ श्रोत्रादीनि २ इंद्रियाणि ३ संयमाग्निषु ४ जुह्वति ५ अन्ये शब्दादीन् ७ विषयान् ८ इंद्रियाग्निषु९ जुह्वति १० ॥२६ ।अ०-- इसमंत्रमें दो यज्ञ निरूपण करेंगे. तीसरा यज्ञ कहते हैं--और कोई श्रोत्रादि इंद्रियोंको २।३ संयमरूप ऐसे अग्निमें ४ हवन करतेहैं५ तात्पर्य इन्द्रियोंका संयम करना;यही यज्ञहै.कोई यहीयज्ञ करतेहैं अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे निरोध करते है चौथा यज्ञ यह जो अब कहतेहै, कोई एक शब्दादि ७विषयोंको८इन्द्रियरूप अग्निमें९ हवन करतेहैं १० तात्पर्यवेदोक्तविषयोंको भोगनाभी यज्ञहै.जैसा शास्त्रमें भोजनादि निरूपण किया है. (नियम करके) जो उसीप्रकार वर्तते हैं वो यज्ञ तात्पर्य इन्द्रियोंके दमनमें ही है ॥ २६ ॥

मू०-सर्वाणींद्रियकर्माणिप्राणकर्माणिचापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौजुह्वतिज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

अपरे १ सर्वाणि २ इंद्रियकर्माणि ३ प्राणकर्माणि ४ च ५ आत्म- संयमयोगाग्नौ ६ जुह्वति ७ ज्ञानदीपिते ८॥२७॥ अ० उ० पांचवाँ

एक यज्ञ इसश्लोकमें निरूपण करेंगे और कोई१ सब इंद्रियोंके क
२।३ औरप्राणापनादिके कर्मोंको ४।५ आत्मसंयम योगाग्निमें ह
करतेहैं ७ अर्थात् इन्द्रिय और प्राणादिके गतिका जो आत्मामें
(निरोध या उपराम) करना, यही हवियोगरूप अग्नि उसमें उ
(शांत) करते हैं ७ तात्पर्य आत्मध्यानमें स्थिर होकर प्राणा
गतिको निरोध करते हैं सि० कैसे है वो आत्मसंयमयोगाग्निअ
करके प्रज्वलित है ८ तात्पर्य इंद्रियोंकी वृत्तियोंको रोककर और
द्रियोंके और प्राणापानादिके कर्मोंको रोककर आत्मस्वरूप (स
नन्द) में जो तत्पर होना, यह एक यज्ञ है इंद्रियप्राणादिके
आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें लिखे हैं ॥ २७ ॥

मू०-द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञायोगयज्ञास्तथाऽपरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्चयतयःसंशितव्रताः ॥ २

द्रव्ययज्ञा १ तपोयज्ञाः२ योगयज्ञाः३ तथा४ अपरे ५ स्वाध्या
यज्ञाः ६ च ७ यतयः ८संशितव्रताः ९।१.२८अ०उ० पांचयज्ञ इ
कहेंगे—सि०तीर्थयात्रासाधुसेवादिशुभकर्मोंमें द्रव्यव्यय (खर्च)
यही ❀ द्रव्ययज्ञ है जिसका १ सि०यह एक छठायज्ञ हुआ.
यममौनादिको तप कहतेहैं❀तपयज्ञ है जिनका २सि०यह एक
यज्ञ हुआ❀अष्टांग योगयज्ञ है जिनका सि०यह एक आठवां य
❀ और तैसेही ४।५सि० कोई ऐसे हैं कि ❀ "स्वाध्याय और
ये यज्ञ है जिनके ६ अर्थात् स्वाध्याययज्ञ है जिनका कोई ऐसे
ज्ञानयज्ञ है जिनका कोई ऐसे हैं ६ सि० वेदशास्त्रोंका पढ़

करना इसको स्वाध्याय कहते हैं, यह एक नववां यज्ञ है और वेद-शास्त्रको अर्थ समझनेको भी ज्ञानयज्ञ कहते हैं, यह एक दशवां यज्ञ हुआ ❀ प्रथम यज्ञका नाम भी ज्ञानयज्ञ है ७ सि० उसका तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें हैं कैसे हैं यह यह यज्ञके करने वाले ❀ यत्नशीलवाले सि० हैं ❀ अर्थात् यज्ञ करनेमें प्रयत्न करनेवाले हैं ८ तीक्ष्णव्रत हैं, जिनके ९ अर्थात् तलवारकी धारपर चलना जैसा वडा तीक्ष्णकामहै ऐसे ही इन यज्ञोंका अनुष्ठान करना है ९॥२८॥

मू०-अपानेजुह्वतिप्राणंप्राणेऽपानंतथाऽपरे ॥
प्राणापानगतीरुद्ध्वाप्राणायामपरायणाः ॥२९॥

तथा १ अपरे २ अपाने ३ प्राणम् ४ प्राणे ५ अपानम् ६ जुह्वति ७ प्राणापानगती ८ रुद्ध्वा ९ प्राणायामपरायणाः १० ॥२९॥ अ०-उ० एक ग्यारहवां यज्ञ इसमन्त्रमें निरूपण करतेहैं, और कोई १।२ अपानमें ३ प्राणको ४ सि० और ❀ प्राण में ५ अपानको ६ हवन करते हैं वा लय करते हैं अर्थात् मिलातेहैं ७तात्पर्य प्राण और अपान् की गतिको एक करते हैं, प्राण और अपानकी गतिको ८ निरोध करके ९ प्राणायाम परायण१०सि० हैं,यह भी एक यज्ञ है ❀ अर्थात् प्राणोंका जो निरोध यही परम आश्रय है जिनको ऐसे हैं कोई १० तात्पर्य प्राणकी गति रोकनेसे मन उसके साथही रुकता है, इसवास्ते प्राणायाममें तत्पर रहते हैं ।२९॥

मू०-अपरेनियताहाराःप्राणान्प्राणेषुजुह्वति ॥
सर्वेऽप्येतेयज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

अपरे १ नियताहाराः २ प्राणान् ३ प्राणेषु ४ जुह्वति५एते ६ सर्वे ७ अपि८ यज्ञविदः ९ यज्ञक्षपितकल्मषाः १० ॥ ३० ॥ अ०-

३० आधेमन्त्रमें बारहवां एक यज्ञ निरूपण करते हैं, फिर आधे मैं सब यज्ञ करनेवालोंका महात्म्य कहते है–और कोई १ नियताहारी २ अर्थात् थोड़ा भोजन करनेवाले२ प्राणोंको ३ प्राणमें४ ही ❀ लय करते हैं ५ तात्पर्य भोजनका संकोच करनेसे प्राण गति भी संकुचित होजाती है और प्राणकी गति कम होनेसे मन गतिका निरोध होता है यह समझकर कोई एक अहार का संकोच करते हैं, यह एक वारहवां यज्ञ है. ये ६ सब ७ही ८ वारह❀यज्ञोंके जाननेवाले अर्थात् यज्ञोंके करनेवाले९ यज्ञोंकरके कर दिये हैं पाप जिन्होंने १० तात्पर्य वे सब सनातन ब्रह्मको होंगे, ❀अगले मंत्रके साथ इस आधे मन्त्रका अन्वय है ब्रह्म साक्षात् प्राप्त होंगे, और कर्मकांडी (उपासक योगी) ब्रह्मज्ञान ब्रह्मको प्राप्त होंगे ॥ ३० ।

मू०–यज्ञशिष्टामृतभुजोयांतिब्रह्मसनातनम् ॥
नायंलोकोस्त्ययज्ञस्यकुतोऽन्यःकुरुसत्तम॥३१

यज्ञशिष्टभुजः १ सनातनम्२ब्रह्म ३ यान्ति ४ कुरुसत्तम ५ अयज्ञस्य ६ अयम् ७ लोकः ८ न ९ अस्ति १० अन्यः कुतः १२॥३१॥ आधेमन्त्र में यज्ञ करनेवालोंका माहात्म्य कहते और आधेमन्त्रमें जो बारहयज्ञोंमेंसे एक भी यज्ञ नहीं करते हैं, श्रीमहाराज निन्दा करतेहैं अर्थात जो अयज्ञों को फल होगा सो हैं–यज्ञशिष्टामृतका भोजन करनेवाले १ सनातन२ब्रह्मको३प्राप्त ४ हे अर्जुन! ५यज्ञ न करनेवालोंको ६अर्थात् जो यज्ञ नहीं उनको ८यह ७ लोक८सि० भी❀नहीं९है १० सि० फिर❀परलोक सि० तो ❀ कहां से १२ सि० होगा। ❀ तात्पर्य जो

यज्ञ नहीं करता है उसको जब कि इसलोकमेंही सुख नहीं तो पर-लोकमें कैसे होसक्ताहै ? न उसको इसलोकका सुख है, न परलोकमें मिलैगा वो पशुवत् संसारमें उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥

मू०-एवंबहुविधायज्ञावितताब्रह्मणामुखे ॥
कर्मजान्विद्धितान्सर्वानेवंज्ञात्वाविमोक्ष्यसे ॥३२॥

एवम् १ ब्रह्मणः २ मुखे ३ बहुविधा ४ यज्ञाः ५ वितताः ६ तान् ७ सर्वान् ८ कर्मजान् १० एवत् ११ ज्ञात्वा १२ विमोक्ष्यसे १३॥३२॥ अ०-जिसप्रकार बाहर यज्ञ पीछे कहे इसीप्रकार १ वेदके २ मुखमें३ सि०अर्थात् वेदोंमें ❀ बहुतप्रकारके यज्ञ४।५विस्तार ६ अर्थात् बहुत प्रकारके यज्ञोंका वेदोंमें विस्तार है, तिन सबको ७।८ अर्थात् उक्ता-नुक्तोंको शरीर मनवाणीके ८ कर्मोंसे उत्पन्न हुआ ६ जान तू १० तात्पर्य आत्मस्वरूपसे स्पर्शरहित जान इसप्रकार ११ सि० आत्माको ❀ जानकर १२ सि०ज्ञाननिष्ठ होकर संसारसे ❀ छूट जायगा तू १३ अर्थात् परमानंदस्वरूप मुक्तिको प्राप्त होगा. टी०ये सब यज्ञ कायिक वाचिक मानसिकहैं. आत्मा इनका विषयभी नहीं.इत्यभिप्रायः ॥३२॥

मू०श्रेयाद्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरंतप ॥
सर्वंकर्माखिलंपार्थज्ञानेपरिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

परंतप १ द्रव्यमयात् २ यज्ञात् ३ज्ञानयज्ञः ४ श्रेयान् ५ पार्थ ६ सर्वम् ७ कर्म ८ अखिलम् ६ ज्ञाने १० परिसमाप्यते ११॥३३॥अ० -सब यज्ञोंसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठहै अर्थात् कर्मभक्ति,उपासना और योगादि कोंसे ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठहै क्योंकि साक्षात् मुक्तिका हेतुहै, सोई कहते हैं-हे अर्जुन ! १ देवादियज्ञोंसे २।३ ज्ञानयज्ञ ४ श्रेष्ठ ५ सि० हे जो सब

यज्ञोंसे प्रथम निरूपण कियाहैं.क्योंकि*हे अर्जुन ! ६ सब कर्म८ फलसहित९ब्रह्मज्ञानमें१० समाप्त होतेहैं ११अर्थात् ब्रह्मज्ञानसेही दुःखस्वरूपकर्म नाश होते हैं, और कोई उपाय कर्मोंके जड़का नाश करनेवाला नहीं ॥ ३३ ॥

मू०-तद्विद्धिप्रणिपातेनपरिप्रश्नेनसेवया ॥
उपदेक्ष्यन्तितेज्ञानंज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४

तत् १ विद्धि २ प्रणिपातेन ३ परिप्रश्नेन ४ सेवया ५ ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः ७ ते ८ ज्ञानम ९ उपदेक्ष्यन्ति १०॥३४॥ अ०-उ प्राप्त होनेके मुख्य साधन कहते हैं. ब्रह्मज्ञानप्राप्तिका सम्प्रदाय(या मार्ग) यही है. जो श्रीभगवान् इस श्लोकमें कहते हैं-जो ज्ञान साक्षात् मुक्तिका हेतु है, और सब कर्म उपासना योगादिसे है. तिसको २ [तू]जान२ अर्थात् तिसब्रह्मको प्राप्त हो, जो पर नंदकी इच्छा रखता है तू २ सि०उस ब्रह्मानन्दके प्राप्तिका उ यह है, कि ज्ञान श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंसे प्राप्त होसक्ता है जो कांडवेदोंके तात्पर्यको जानतेहैं,जिनको ब्रह्मभी साक्षात् (अनुभव रोक्ष)प्रत्यक्षहै,उनको श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहतेहैं.तात्पर्य ऐसे पंडित वि संन्यासी परमहंस हैं,वे ब्रह्मज्ञानका उपदेश करसक्ते हैं और जो श्रोत्रिय, शास्त्रार्थके जाननेवाले हैं ब्रह्मनिष्ठ नहीं, ब्रह्मज्ञानका भवसहित उपदेश नहीं कर सक्ते साक्षात् ब्रह्मको अपरोक्ष नहीं सक्ते और जो केवल ब्रह्मनिष्ठही हैं शास्त्र नहीं पढ़े दृष्टांतयुक्ति अनुमान शंका समाधानपूर्वक नहीं उपदेश सक्ते इसहेतुसे ब्रम्हतत्त्वका उपदेश करनेके योग्य ब्रह्मतत्त्वोपदेश करनेमें समर्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठही हैं श्रोत्रियभी हों और ब्रम्हनिष्ठभी हों,श्रीभगवान् कहतेहैं,

ऐसे ब्रह्मनिष्ठोंके पास जाकर प्रथम उनको*दंडवत् नमस्कार करके ३ सि० और फिर * प्रश्नकरके ४ सि० बहुतकाल * सेवा करके ५ सि० ज्ञान सीख अर्थात् प्रथम् साधुमहात्माके पास जाकर उनको आदरके सहित प्रणामकर. फिर उन्होंसे यह प्रश्न करे कि,हे भगवन् मुझको कृपा करके ब्रह्मज्ञानका उपदेश कीजिये और बहुत दिनों उनकी सेवाकर, तन मन धन वाणी करके तब*ज्ञानी ६ तत्त्वदर्शी ७ अर्थात् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठा ८ तुझको९ज्ञान उपदेश करेंगे १० तात्पर्य यह तीनों साधन अवश्य चाहतेहैं,जो इनमें एक भी न होगा,तोभी ज्ञान प्राप्त होना कठिन है प्रथम तों साधनरहित पुरुषको महात्मा उपदेश न करेंगे और जो वे दयाकरके साधनरहितको उपदेश भी कर देंगे तो उसको कभी बोध न होगा क्योंकि यह बात स्पष्ट प्रसिद्ध है, कि लोग बहुत वरसों वेदान्तशास्त्र पढते सुनतेहैं और ब्रह्मवार्तामें बहुत चतुर हो जाते हैं, परन्तु छोकरे, लुगाई और कुपात्रधनवालोंके दास ही बने रहते हैं, (उनमें ही ममता रखता हैं) केवल नमस्कार मात्र करके ही विनाप्रश्न और सेवाके महात्मा उपदेश नहीं करेंगे क्योंकि दण्डवत् सब कर सक्ते हैं प्रश्न करनेसे जिज्ञासूका तात्पर्य प्रतीत होता है, न जानिये कैसा अधिकारी है, सिवाय इसके धर्मशास्त्रमें निषेध है और बहुत लोग ब्रह्मवार्ता में जो कुशल होते हैं वे प्रश्न भी भले भले किया करते हैं, परन्तु महात्मा विना चिरकाल सेवा के उपदेश नहीं करते हैं, क्यों कि मन्त्र का उपदेश करना विना एक वर्षकी परीक्षा किये निषेध है और यह तो साक्षात् ब्रह्मविद्या हैं इसवास्ते बहुत चिरकाल सेवा करके और प्रश्न करके और दंडवत् नमस्कार करके ही ब्रह्मज्ञान होता है इत्याभिप्रायः ॥३४॥

मू०--यज्ज्ञात्वानपुनर्मोहमेवंयास्यसिपांडव ॥
येनभूतान्यशेषेणद्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि ॥३५

पांडव १ यत् २ ज्ञात्वा ३ एवम् ४ पुनः ५ मोहम् ६ न याास्यसि ८ येन ६ अशेषेण १० भूतानि ११ द्रक्ष्यसि अथो १४ मयि १५ ॥ ३५ ॥ अ०–उ० ज्ञान का फल महिमा चार श्लोकोंमें कहते. हे अर्जुन ! १ जिसको २ जानकर अर्थात् ज्ञानको प्राप्त होकर ३ इस प्रकार ४ फिर ५ मोहको६ नहीं प्राप्त होगा ८. सि० जैसा अब मोह तुझको प्राप्त होरहा है और जिस करके अर्थात् उसी ज्ञानकरके ६ समस्त १० भूतों ११ ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❀ आत्मा में १२ देखेगा तू अर्थात् यह समझेगा, कि यह समस्त संसार मुझ सच्चिदानन्द ही नामरूप करके कल्पित हैं १३ पीछे उसके १४ मुझ शुद्ध च्चिदानन्दस्वरूपमें १५ सि० आत्मा की एकता जानेगा अर्थात् आत्मा को नित्य निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द ए जानेगा केवल आत्मा ही करके, बुद्ध्यादिकरके नहीं क्योंकि बुद्धिमें जड बुद्धिकी गति नहीं ❀ ॥ ३५ ॥

मू०–अपिचेदसिपापेभ्यःसर्वेभ्यःपापकृत्तमः ॥
सर्वंज्ञानप्लवेनैववृजिनंसंतरिष्यसि ॥३६॥

चेत् १ सर्वेभ्यः २ पापेभ्यः ३ अपि ४ पापकृत्तमः ५ असि ६ ज्ञानप्लवेन ७ एव ८ सर्वं ९ वृजिनम् १० संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥अ०–जो १ सब पापियोंसे २।३ भी ४ बडा पाप करने वाला ५ है तू ६ सि० तोभी ❀ ज्ञानरूप जहाज करके ७ निश्चय से ८ सब पापको ९ । १० तर जायगा तू ११. तात्पर्य यह

समुद्रवत् अथाह पापरूप है. इसके पार होजायगा. अर्थात् ज्ञान करके तेरे पास सब नाश होजावेंगे ॥ ३६ ॥

मू०-यथैधांसिसमिद्धोग्निर्भस्मसात्कुरुतेर्ज्जुन ॥
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कुरुतेतथा ॥३७॥

यथा १ एधांसि २ समिद्धः ३ अग्निः ४ भस्मासात् ५ कुरुते ६ अर्जुन ७ तथा ८ ज्ञानाग्निः ९ सर्वकर्माणि १० भस्मासात् ११ कुरुते १२॥ ॥ ३७ ॥ अ०-०जैसे १ सि० सूखी ❀ लकड़ियोंको २ प्रज्वलित ३ अग्नि ४ राख करदेती है, ५।६ हे अर्जुन ! ७ तैसेही ८ ज्ञानरूपअग्नि ९ सबकर्मों को १० नाश ११ करदेती है १२ ॥ ३७ ॥

मू० -नहिज्ञानेनसदृशंपवित्रमिहविद्यते ॥
तत्स्वयंयोगसंसिद्धःकालेनात्मनिविन्दति॥३८॥

इह १ ज्ञानेन २ सदृशम् ३ पवित्रम् ४ हि ५ न ६ विद्यते ७ तत् ८ योगसंसिद्धः ९ कालेन १० आत्मनि ११ स्वयम् १२-विन्दति १३ ॥ । ३८ ॥ अ०-सि० कर्म भेदभक्तियोगादि साधनोंके बीचमें अर्थात् ❀ मोक्षमार्ग में १ ब्रह्मज्ञानके सदृश २ । ३ पवित्र ४ ही ५ नहीं ६ है ७ सि० दूसरा मोक्षका साधन ❀ तिस ब्रह्मज्ञानको ८ समाधियोग करके सिद्ध हुआ ९ कालकरके १० आत्माका विषय ११ अपने आप १२ प्राप्त होजाता है १३. तात्पर्य आत्माका ध्यान करते करते साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान अपने आप प्राप्त होजाता है कुछ थोडेही कालमें. इस वास्ते सदा आत्मा का ध्यान करना योग्य है ॥ ३८ ॥

मू०-श्रद्धावाँल्लभतेज्ञानंतत्परःसंयतेन्द्रियः ॥
ज्ञानंलब्ध्वापरांशान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥३९

श्रद्धावान् १ तत्परः २ संयतेन्द्रियः ३ ज्ञानम् ४ लभते ५ ज्ञा ६ लब्ध्वा ७ पराम् ८ शान्तिम् ९ अचिरेण १० अधिगच्छति ॥३९॥ अ०-उ० ज्ञानके प्राप्तिके साधन बहिरंग तो चौबीसवें में नमस्कार, प्रश्न, सेवा ये तीन कहे इन तीनों को तो मायावी करसक्ता है, यह शंका करके इस मन्त्र में तीन अंतरंगज्ञान के सा कहते है. ये साधन जिसमें होंगे वो अवश्यही बेसन्देह ज्ञान प्राप्त होकर मुक्त होगा यह कहते हैं. श्रद्धावाला १ सि० ब्रह्मज्ञा ❀ तत्पर (परायण) २ भलेप्रकार जीती हैं इन्द्रिय जिसने अवश्यही सो इन तीन साधनों करके संपन्न ❀ ज्ञानयोग ४ अवश्यही ❀ प्राप्त होता है ५ ज्ञानको ६ प्राप्त होकर ७ परमश को ८।९ जल्दी १० प्राप्त होता है ११. तात्पर्य ये तीनों सा परस्पर सापेक्ष हैं तीनों ही से ज्ञान होता है एकसाधनसे वा साधनोंसे कचाई रहजाती है । ३९ ॥

मू०-अज्ञश्चाश्रद्दधानश्चसंशयात्माविनश्यति ॥
नायंलोकोस्तिनपरोनसुखंसंशयात्मनः ॥४०

अज्ञः १ च२ अश्रद्दधानः ३ च ४ संशयात्मा ५ विनश्यति संशयात्मनः ७ न ८ अयम् ९ लोकः १० परः १२ न सुखम् १४ अस्ति १५ ॥ ४० ॥ अ०-उ० वेदोंके महावा सुनकर और ब्रह्मविद्या वेदान्तशास्त्रको सुनकर भी जिसको संशय है कि, मैं पूर्णब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानंदघनहूँ वा नहीं, उसको इस लोकमें सुख होगा, न परलोकमें. क्योंकि जिसको स्वयं शआत्मामें संशय रहा, उसको परोक्ष वाक्योंमें कैसे विश्वास इस हेतुसे वो संशयात्मा सदा दुःखी रहेगा. यद्यपि मन्दबुद्धि श्रद्धारहित पुरुषोंकोंभी ज्ञान नही होता, परन्तु वह यह

रहतीहै, कि कभी न कभी मन्दबुद्धि तो बुद्धिमान हो जायगा और श्रद्धारहित श्रद्धावान् होजायगा केवल संशयात्माही भ्रष्टहोगा. तात्पर्य मन्दबुद्धि और श्रद्धारहित और संशयात्मा ये तीनों ज्ञानके अनधिकारी हैं और इन तीनोंमें भी संशयात्मा सबसे निकम्मा है,सोई इस मंत्रमें श्रीभगवान् कहते हैं, मन्दबुद्धि १और२ श्रद्धारहित ३और ४ संशयात्या ५ नष्ट होता है ६ अर्थात् आनन्द से भ्रष्ट हो जाता है ये तीनों ब्रह्मानन्द के लेखे मुरदे के बराबर हैं और इन तीनों में से भी संशयात्मा तो अवश्य ही भ्रष्ट है ६ संशय आत्मा को ७ न ८ यह ६ लोक १० न ११ परलोक १२ न १३ सुख १४ है १५ तात्पर्य जो पुरुष अज्ञ होता है. उसका गुरूशास्त्रमें तो विश्वास होता है काल पाकर सुधर सक्ता है. और अज्ञभी हो और श्रद्धारहित भी वो किसीकालमें श्रद्धावान् और बुद्धिमान् होकर सुधर जाताहै और जो जान बूझकर तर्क करताहै और अपने विपर्ययपक्षमें दुराग्रह करताहै,उस तर्की दुराग्रहीको कभी सुख न होगा.जब कि संशयात्मा,कुतर्की,दुराग्रही इसको इसीलोकमेंसुखनहीं तो परलोक का सुखकहां होगा सदा उसके विषय तर्क,दुराग्रह, संशय.बनेही रहेंगे, महात्माने ऐसे दुष्टोंको कभी एक बात भी ज्ञानकी सुनाना न चाहिये क्योंकि वो कुछ न कुछ उसमें झूठा कुतर्क करेगा, संशयात्मा उनको कहते हैं, कि जिसको यह संशय है कि मैं कर्मों का अनुष्ठान करूं वा न करूं,अकर्म ज्ञानमें निष्ठा करूं वा न करूं,संशयत्मा इसपदका अक्षरार्थ यहहै,कि संशय है अंतःकरणमें जिसके सो संशय दोप्रकारका है, प्रमाणगत और प्रमेयगत सो ऊपर लिखा गया तात्पर्य श्रीमहाराजके उपदेशमें जो संशयकरेगा उसका नाशहोजायगा,यह शापहै भगवान् का. बे सन्देह आत्मा शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप जानना योग्य हैं॥४०॥

मू-०योगसंन्यस्तकर्माणंज्ञानसंच्छिन्नसंशयम् ॥
आत्मवन्तंनकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥४१॥

धनंजय १ योगसंन्यस्तकर्माणम् २ ज्ञानसंच्छिन्नसंशयम् ३ आत्मवन्तम् ४ कर्माणि ५ न ६ निवध्नन्ति ७ ॥ ४१ ॥ अ० उ० इस अध्याय में जो अर्थ पीछे विस्तार पूर्वक निरूपण कि उसी को इस मंत्रमें संक्षेप करके कहते हैं, समस्त अध्याय तात्पर्यार्थ समझनेके लिये. हेअर्जुन! १ज्ञानयोग करके संन्यास कि हैं, कर्म जिसने २ सि० और ❀ ब्रह्मज्ञान करके छेदन कि हैं, संशय जिसने ३ सि० ऐसे ❀ अप्रमत्त आत्मनिष्ठको ४ ५ नहीं ६ बन्धन करते हैं ७ ॥ ७१ ॥

मू०-तस्मादज्ञानसम्भूतंहृत्स्थंज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनंसंशयंयोगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत ॥४२॥

भारत १ तस्मा २ अज्ञानसंभूतम् ३ हृत्स्थम् ४ आत्मनः एनम् ६ संशयम् ७ ज्ञानासिना ८ छित्त्वा ९ योगम् १० आतिष्ठ उत्तिष्ठ १२ ॥ ४२ ॥ अ०--उ० जव कि संशयात्माको न है लोक में सुख होता है, न परलोक में हे अर्जुन! १तिस कारणसे अज्ञान करके उत्पन्न हुआ ३ अन्तःकरणमें स्थित ४ सि० जो संशय कि मैं युद्ध करूं वा न करूं और मैं सदा निर्विकार हूं नहीं ❀ अपने ५ इस ६ संशयको ७ ब्रह्मज्ञानरूप तलवार से ८ करके ९ कर्मयोगका १० अनुष्ठानकर ११ खडाहो १२ सि० करनेके लिये ❀ तात्पर्य आत्मा को शुद्ध, सच्चिदानन्द. नित्य पूर्णब्रह्म ऐसा समझकर युद्ध कर, इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥

ॐ इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

मू०-अर्जुनउवाच ॥ संन्यासंकर्म्मणांकृष्णपुनर्योगंचशंससि॥यच्छ्रेयएतयोरेकंतन्मेब्रूहिसुनिश्चितम्॥१॥

कृष्ण: १ कर्मणाम् २ संन्यासम् ३ पुनः ४ योगम् ५ च ६शंससि ७ एतयोः ८ एकम् ९ यत १० सुनिश्चितम् ११श्रेयः १२ तत्१३ मे १४ ब्रूहि १५ ॥ १ ॥ अ०-उ० चतुर्थाध्याय में अर्जुनको समुच्चय प्रतीत हुआ, इसवास्ते प्रश्न करता है, हे कृष्णचन्द्र ! १ कर्मोंका २ त्याग ३ सि० भी आप कहते हो और ❀ फिर ४ योग ५ भी ६ आप कहते हो ७ सि० इन दोनोंका स्वरूप दिनरात्रिवत विरुद्धहै एक पुरुषसे एकसमय इन दोनोंका अनुष्ठान कैसे होसक्ता है ❀ इन दोनोंमें ८ एक ९ जो १० भले प्रकार निश्चय किया हुआ११ श्रेष्ठ है, १२ सो १३ मुझको १४ कहो १५ तात्पर्य कर्मयोग और कर्मसंन्यास उनदोनोंमें मेरेवास्ते श्रेष्ठ क्या है, यह मेरा तात्पर्य है, यह तो मैं तृतीय अध्यायमें समझगया हूँ, कि अधिकारीप्रति दोनों श्रेष्ठ हैं मैं किसनिष्ठाका अधिकारी हूं इत्यभिप्रायः ॥१॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ संन्यासःकर्मयोगश्चनिःश्रेयसकरावुभौ । तयोस्तुकर्मसन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥ २ ॥

संन्यासः१ कर्मयोगः २ च ३ उभौ ४ निःश्रेयसकरौ५ तयोः ६ तु ७ कर्मसंन्यासात् ८ कर्मयोगः ९ विशिष्यते १० । ।२ ॥ अ० उ० श्रीभगवान कहते हैं, कि पीछे जो हमने कर्मों का अनुष्ठान

करना और त्यागकरना, ऐसा कहा है, उसमें कुछ विरोध नहीं है
क्योंकि सम समुच्चय मैंने नहीं कहा है, अधिकारी प्रति कर्मसमु
कहा है, शोकमोहरहितज्ञाननिष्ठावाले पुरुषोंको तो ज्ञाननिष्ठा परि
होनेके वास्ते कर्मोंका त्याग करना श्रेष्ठ है,और तमोगुणी रजोगु
पुरुषोंको ज्ञाननिष्ठाके प्राप्तिके लिये कर्मोंका अनुष्ठान करना श्रेष्ठ
सि० इसप्रकार कर्मोंका * त्याग १ और कर्मयोग २।३ सि०
क्रमसे * दोनों ४ मोक्षको प्राप्त करनेवाले हैं,५ सि० यथा
अधिकारियोंको और तू जो यह बूझता है, कि इन दोनोंमें से
वास्ते क्या श्रेष्ठहै, सो सुन तुझको * तिनके ६ सि० बीचमें *
७ अर्थात् कर्मयोग और कर्मसंन्यास इन दोनोंके बीचमें ६।७
संन्याससे ८कर्मयोग ६ विशेष है १० अर्थात् क्षत्रियोंका धर्म
युद्ध करना है, अभी उसका अनुष्ठान करना ही तुझको श्रेष्ठ
कदाचित् इस मंत्रका कोई यह अर्थ करे, कि कर्मसंन्याससे कर्म
सबके वास्ते विशेष है, तो इस अर्थमें वदतोऽव्याघात दोष आता
क्योंकि पुनः पुनः वारंवार पीछे श्रीभगवान्ने कर्मसंन्यास
ज्ञाननिष्ठाकी प्रसंशाकी और आगे करेंगे जिसकी प्रथम आप
करें, फिर उसीको आप निकृष्ट बतावें, इसीको वदतोव्याघात
कहते हैं,अर्थात् अपने कहेहुएको आपही खंडन करना यह बडा
"श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥ नहिज्ञानेनसदृशंपवित्र
विद्यते" । इतियादि, ऐसे वाक्य और भी बहुत हैं, इसजगे ता
श्रीभगवान्का यही है, कि रजोगुणीतमोगुणी ऐसे पुरुषोंके
कर्मोंका अनुष्ठान करना ही श्रेष्ठ है क्योंकि तमोगुणी रजो
पुरुषोंको कर्मों का अनुष्ठान करना अन्तःकरण के शुद्धि

हेतुहै, और सतोगुणी पुरुषोंके लिये तो कर्मोंका त्याग करनाही श्रेष्ठ है क्योंकि उनको अब कर्मोंका अनुष्ठान करना विक्षेपका हेतु है और ज्ञाननिष्ठाके परिपाक होनेमें प्रतिबंध है. और दोनोंका अनुष्ठान एककालमें एकपुरुषसे नहीं हो सक्ता. कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका स्वरूप दिनरात्रिवत् विरुद्ध है. प्रथम अंतःकरणके शुद्धिके लिये तुझ-को कर्मयोग विशेष है. इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

मू०--ज्ञेयःसनित्यसंन्यासीयोनद्वेष्टिनकांक्षति ॥
निर्द्वन्द्वोहिमहाबाहोसुखंबन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥

यः १ न २ द्वेष्टि ३ न ४ कांक्षति ५ सः ६ नित्यसंन्यासी ७ज्ञेयः ८ महाबाहो ९ निर्द्वंद्वः १० हि ११ सुखम् १२ बन्धात् १३ प्रमुच्यते १४॥३॥अ०-उ०रागद्वेष रहितनिष्काम जोकर्मोंका अनुष्ठान करताहै उसको संन्यासीवत् समझना चाहिये. इसप्रकार श्रीभगवान् अब कर्म-कर्मयोग की स्तुति करते हैं, कर्मयोगके वास्ते सि० प्रतिकूलपदार्थोंमें जो १ नहीं २ द्वेष करता है, ३ सि० अनुकूलपदार्थोंकी ❀ नहीं ४ इच्छा करताहै ५सो६ सि०कर्मयोगी❀नित्यसंन्यासी ७सि० निष्काम कर्मयोगी ऐसा ❀ जानता तूने ८. हे अर्जुन ! ९ द्वन्द्वरहित १०ही ११ सुखपूर्वक १२ बन्धसे १३ छूटता है १४.तात्पर्य रागद्वेषादिद्वन्द्व-रहित ऐसा होकर तू कर्मोंका अनुष्ठान कर ॥ ३ ॥

मू०--सांख्ययोगौपृथग्बालाःप्रवदन्तिनपंडिताः ॥
एकमप्यास्थितःसम्यगुभयोर्विंदतेफलम् ॥ ४ ॥

सांख्ययोगौ १ पृथक् २ बालाः ३ प्रवदन्ति ४ पंडिताः ५ न ६ सम्यक् ७ एकम् ८ अपि ९ आस्थितः १० उभयोः ११ फलम् १२

विन्दते १३॥४॥ अ०–उ० अवस्थाभेदकरके कर्मयोग और ज्ञान
इन दोनोंका क्रमसमुच्चय है. अर्थात् प्रथम निष्कामकर्मोंका अनु
करना, अंतःकरण शुद्ध हुए पीछे कर्मोंको त्यागदेना, यही सि
है, सब शास्त्र और महात्मा पुरुषोंका. और जो यह प्रश्न करता
कि इन दोनोंमेंसे एक स्वतंत्रमुक्तिका देनेवाला बताओ यह प्र
कमसमझवालोंका है. कर्मयोग और ज्ञानयोग इन दोनोंका ता
एक परमानंदमें ही है. इस हेतुसे इन दोनोंको फलमें पृथक् समझ
न चाहिये सोई कहते. ज्ञानयोगको और कर्मयोगको १ पृथक् २
एक स्वतंत्र निरपेक्षमोक्षका देनेवाला ❀ कमसमझवाले ३ क
हैं ४ सि० पूर्वापरशास्त्रतात्पर्य समझे हुए ❀ विद्वान् ५ नहीं
सि० पृथक् स्वतंत्र कहते क्योंकि ❀ भलेप्रकार ७ एकको ८ भी
आश्रय किया हुआ १० अर्थात् सांगोपांग एकका भी अनुष्ठान कि
हुआ १० दोनोंके ११ फलको १२ प्राप्त करता १३. अर्थात् दोनों
फल परमानंद है सोई दोनोंको प्राप्त होजाता है. तात्पर्य जो कर्मों
अनुष्ठान निष्काम करेगा, उसका अवश्यही अन्तःकरण शुद्ध होगा
उसको ज्ञान प्राप्त होगा और पीछे उसके मोक्षपरमानन्दकी प्रा
होगी, यही दोनोंका फल है और ज्ञानका अनुष्ठान जो भलेप्रकार
करेगा, बेसंदेह पहले उसने इस जन्ममें वा जन्मांतरमें कर्मयोगका
अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है उसको भी मोक्षपरमानन्दकी प्रा
होगी, यही दोनोंका फल है. एक ज्ञानयोग साक्षात् सच्चिदानन्द
प्राप्तकरता है, और एक कर्मयोग अन्तःकरण शुद्धकर ज्ञानद्वा
सच्चिदानन्दको प्राप्त करता है इसप्रकार ये दोनों फल में एक
स्वरूप इनका एक नहीं ॥ ४ ॥

मू०-यत्सांख्यैःप्राप्यतेस्थानंतद्योगैरपिगम्यते ॥
एकंसांख्यंचयोगंचयःपश्यतिसपश्यति ॥५॥

सांख्यैः १ यत् २ स्थानम् ३ प्राप्यते४तत् ५ अपि ६ योगैः ७ गम्यते ८ सांख्यम् ९ च १० योगम् ११ च १२ एकम् १३ यः १४ पश्यति १५ सः १६ पश्यति १७ ॥ ५ ॥ अ०-उ० पिछले मंत्र में जो कहा, उसीको फिर भलेप्रकार स्पष्ट करते हैं. ज्ञानी १ जिस स्थान को २।३ सि० साक्षात् याने व्यवधानरहित ❀ प्राप्त होते हैं, ४ तिसको ५ ही ६ कर्मयोगी ७ सि० ज्ञानद्वारा ❀ प्राप्त होते हैं ८ ज्ञानयोग को ९ भी १० कर्मयोगको भी ११।१२ सि०फलमें ❀ एक १३ जो और १४ देखता है,१५सो १६ देखता है, १७ सि० शुद्धसच्चिदानंदस्वरूप आत्माको ❀ तात्पर्य जो यह समझता है, कि दोनों का फल एक (अद्वैतशुद्धसच्चिदानंदस्वरूपपूर्णब्रह्मआत्मा) है. सो महात्मा यथार्थ आत्मा को और परमात्मा को जानता है. जैसे दो पुरुष जगन्नाथजीको जाते हैं, उनमें एक काशीजी में है और एक प्रयागराजमें है कहनेवाले दोनोंको यही कहते हैं, कि ये दोनों जगन्नाथजीको जाते हैं, पहुँचेगे. और जाननेवाला भी सब ठिकाने दिन प्रतिदिन यही कहता है, कि मैं जगन्नाथजी को जाता हूं. एक मंजलवाला भी यही कहता है, और ज्यादा मंजलवाला भी यही कहता है. और यह सब यथार्थ है कि दोनों एकजगे पहुंचेगे, परन्तु इसमें भेद भी है जो सब मंजल करचुका है, एक ही मंजल जिसकी रही है. वो उसीमंजल में, उसी दिन, साक्षात् व्यवधानरहित जगन्नाथजीमें पहुंचेगा. इसप्रकार तो ज्ञानी की गति है, और जिसको दो मंजल रही हैं वो प्रथम बीचकी मंजल पहुंचकर फिर जगन्नाथजी में पहुंचेगा. इसप्रकार कर्मयोगी की गति है. शुद्ध

सच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्मआत्माको दोनों प्राप्त होंगे, यही दोनों
स्थान परमपद है. विना ब्रह्मज्ञानके कर्मयोगी स्वतन्त्र मुक्त नहीं
होसक्ता, और जो कहते हैं, यातो उसको पूर्वापर अर्थ की समझ
नहीं. वा हठकरके, वा रुचि बढनेके लिये, कहते हैं, अर्थ सच्चा
वोही है जिसमें पूर्वापरसे विरोध न आवे, नहीं तो इस श्लोकका
अर्थ तो बालकभी कहसक्ता है ॥ ५ ॥

मू०–संन्यासस्तुमहाबाहोदुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्मनचिरेणाधिगच्छति ॥६॥

महाबाहो १ संन्यासः २तु३ अयोगतः४दुःखम् ५ आप्तुम्
योगयुक्तः ७ मुनिः ८ ब्रह्म ९ न १० चिरेण ११ अधिगच्छति।
॥ ६ ॥ अ०–उ० कर्मयोग तो ज्ञानद्वारा परमानन्द ऐसे मुक्ति
को प्राप्त करता है, और कर्मोंका संन्यास, ज्ञान (साक्षात् मुक्ति
देता है, तो कर्मयोग क्यों करना चाहिये संन्यासही करे. अ
ज्ञानकाही अनुष्ठान करना, यह शंका करके श्रीमहाराज क
हैं–हे अर्जुन ! १ सि० विनारागद्वेषादि दूर होवे प्रथम ही क
का ❀ संन्यास २ तो ३ सि० अर्थात् प्रथम ❀ विनाकर्म
गका अनुष्ठान किये ४ दुःखपूर्वक ५ प्राप्तहोने को ६ सि० श
❀ तात्पर्य विनाकर्मयोगकिये ज्ञान प्राप्त होना कठिन
कर्मोंके अनुष्ठान करनेमें बहुत देर लगती है, इस हेतुसे ब्र
प्राप्ति बहुतकालसे होगी यह शंका करके कहते हैं. योगयु
मुमुक्षु ८ ब्रह्मको ९ नहीं १० देरकर ११ प्राप्त होगा
तात्पर्य कर्मयोगी मुमुक्षु, संन्यासी, ज्ञाननिष्ठा, ऐसे होकर ब्र
शीघ्रही प्राप्त होगा, अथवा इसजगह ब्रह्म संन्यासका ना
योगयुक्तमुनि संन्यासको शीघ्र और सुखपूर्वक प्राप्त होगा ॥

मू०-योगयुक्तोविशुद्धात्माविजितात्माजितेन्द्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्माकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ ७ ॥

योगयुक्तः १ विशुद्धात्मा २ विजितात्मा ३ जितेन्द्रियः ४ सर्वभूतात्मभूतात्मा ५ कुर्वन् ६ अपि ७ न ८ लिप्यते ९ ॥ ७ ॥ अ०-उ० कर्मयोगी बन्धनको प्राप्त होता है, यह शंका करके कहते हैं कि योगी अन्तःकरणशुद्धद्वारा ज्ञानी हो जाता है, इस हेतुसे बन्धनको नहीं प्राप्त होता योगयुक्त १विशेषकरके शुद्ध है अन्तःकरण जिसका २ विशेषकरके जीता है शरीर जिसने ३ जीते हैं इन्द्रिय जिसने ४ सब भूतोंका आत्मभूतहै आत्मा जिसका५अर्थात् ब्रह्माजीसे लेकर चींटी-पर्यन्त सब भूतोंका आत्मा उसीका आत्मा है ५ सि० सो लोक रक्षाके लिये अथवा स्वभावसे ही कर्म ❀ कर्ता हुआ ६ भी ७ नहीं ८ बन्धनको प्राप्त होता ९ ॥ ७ ॥

मू०-नैवकिंचित्करोमीतियुक्तोमन्येततत्त्ववित ॥
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपिइन्द्रिया-
णींद्रियार्थेषुवर्त्तन्तइतिधारयन् ॥९॥

किंचित् १एव २ न ३ करोमि ४ इति ५ युक्तः ६ तत्ववित् ७ मन्येत् ८ इन्द्रियाणि ९ इन्द्रियार्थेषु १० वर्तन्ते ११ इति १२ धारयन् १३ पश्यन् १४ शृण्वन् १५ स्पृशन् १६ जिघ्रन् १७ अश्नन् १८ गच्छन् १९ स्वपन् २० श्वसन् २१ प्रलपन् २२ निसृजन् २३ गृह्णान् २४ उन्मिषन् २५ निमिषन् २६ अपि २७ ॥८॥ ॥ ९ ॥ अ०-उ० जिस समझसे कर्मोंके साथ बन्धन नहीं होता सो कहते हैं दो श्लोकों में दो श्लोकोंका अन्वय एक हैं कुछ १ भी २ नहीं ३ करता हूँ मैं ४ यह ५ समाहित याने सावधान ६

ज्ञानी ७ मानता है इन्द्रिय ६ इन्द्रियोंके अर्थोंमें १० वर्तते हैं, अर्थात् शब्दादिविषयोंको भोगना इन्द्रियोंका धर्म है, आत्मा अ- निर्विकार और शुद्ध ऐसा हैं ६।१०। ११ यह १२ धारण कर हुआ १३ अर्थात् पूर्वोक्त निश्चय करके १३ कौनसे वे कर्म हैं जिनको करता हुआ यह मानता है, कि मैं असंग हूँ, सो कहते देखता हुआ १४ सुनता हुआ १५ स्पर्शकर्त्ता हुआ १६ सूंघ- हुआ १७ खाताहुआ १८ चलता हुआ १९ सोताहुआ २० श्वा- लेता हुआ २१ बोलताहुआ २२त्यागता हुआ २३ग्रहण करताहुआ २४ नेत्रोंको खोलता हुआ २५ मीचता हुआ २६ अपिश- करके अनुक्तोंको भी जान लेना २७ तात्पर्य जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थामें जितनी क्रिया होती हैं, इस संघात विषय सब अनात्म धर्म हैं, किस प्रकार इस अपेक्षामें कहते सुनो–दर्शनादि चक्षुरादि इन्द्रियोंका धर्म है, आत्माका न चलना पैरोंका धर्म है, सोना बुद्धिका, श्वासलेना प्राणका, बोल- बाणीका, त्यागना गुदा और उपस्थ इनका, ग्रहण करना हाथोंका खोलना और मीचना नेत्रोंका ये सब कर्म प्राणका धर्म है, आत्मा सदा अकर्ता है, ज्ञानी यही समझते हैं, इसी समझ से निर्- होजाते हैं॥ ८ ॥ ९ ॥

मू०–ब्रह्मण्याधायकर्माणिसंगंत्यक्त्वाकरोतियः॥
लिप्यतेनसपापेनपद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १०॥

यः १ कर्माणि ब्रह्मणि ३ आधाय४ संगम् ५ त्यक्त्वा ६करो- ७ सः ८ पापेन ९ न १० लिप्यते ११ पद्मपत्रम् १२ इव अम्भसा १४॥ १०॥ अ०–उ० जिसको यह अभिमान है, कि कर्ता हूं अर्थात् जो आत्माको अकर्ता नहीं जानता ब्रह्मज्ञान रहि-

उसको तो कर्म बन्धन करेगा और मैला अन्तकरण होनेसे उसको कर्मोंके संन्यासमें और ज्ञाननिष्ठामें अधिकार नहीं वो तो बड़े संकट में फँसा, यह शंका करके श्रीभगवान् उसके वास्ते यह कहते हैं. जो १ कर्मोंका २ परमेश्वरमें ३ अर्पण करके ४ सि० और कर्मों के फल के❀संगको याने आसक्तिको ५ त्यागकर ६ करता है, ७ सो ८ पाप से ९ नहीं १० स्पर्शित होता है. ११ अर्थात् पापपुण्य दोनों उसको छूतेभीनहीं११कमलकापत्र१२जैसे१३जलसे१४सि०नहीं भीगता॥१०

मू०–कायेनमनसाबुद्ध्याकेवलैरिंद्रियैरपि ॥
योगिनःकर्मकुर्वंतिसंगंत्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

कायेन १ मनसा २ बुद्धया३इन्द्रियैः४केवलैः ५ अपि६ योगिनः ७ कर्मः ८ कुर्वन्ति ९ संगम् १० त्यक्त्वा ११ आत्मशुद्ध ये १२ ॥११॥ अ०–उ० अन्तःकरण के शुद्धिके लिये जो कर्म करते हैं वे बंधनको नहीं प्राप्त होते, यह कहते हैं श्रीमहाराज शरीर करके १ मन करके २ बुद्धि करके ३ इन्द्रियों करके ४ ममता वर्जित करके ५ । ६ अर्थात् केवल ब्रह्मार्पण करता हूँ, हैं यह समझ करके ५ । ६ कर्मयोगी ७ कर्मको ८ करते हैं ९ सि० कर्मोंके फलके ❀ आसक्तिको १० त्यागकर ११ अन्तःकरण शुद्धिके लिये १२ सि० अपि पादपूरणार्थ ❀ टी० स्ननादि १ ध्यानादि २ तत्त्व का निश्चय करना इत्यादि ३ श्रवणादि ये कर्म केवल अन्तःकरण की शुद्धि और कुछ चित्तको एकाग्रता होनेके लिये करते हैं सिवाय इस के और कुछ फल चाहना बन्धका हेतु है, तात्पर्य इन कर्मोंमें अभिनिवेशरहित होकर कर्म करना, यही इस पांचवें पदका तात्पर्यार्थ है ॥ ११ ॥

मू०–युक्तःकर्मफलंत्यक्त्वाशान्तिमाप्नोतिनैष्ठिकीम् ॥
अयुक्तःकामकारेणफलसक्तोनिबध्यते ॥१२॥

युक्तः १ कर्मफलम् २ त्यक्त्वा ३ नैष्ठिकीम् ४ शान्तिम् ५ आप्नोति ६ अयुक्तः ७ कामकारेण ८ फले ९ सक्तः१०निबध्यते ११ ॥ १२ ॥ अ०-उ० कर्म एक है, कोई तो उसको करके मुक्त होता है, और कोई उसको करके बद्ध होता है यह कैसी व्यवस्था है, ऐसी शंका करके श्रीभगवान् यह कहते हैं समाहित याने सावधान१ चित्त ऐसा भगवद्भक्त ❀ कर्मों के फलको २ त्यागकर ३ मोक्षरूप शांति को ४।५ सि० ज्ञानद्वारा ❀ प्राप्त होता हैं. बहिर्मुख याने विषयी अर्थात् कामी ७ कामकी प्रेरणा करके ८ फलमें ९ आसक्त १० हो बन्धन को प्राप्त होता रहता है, ११ तात्पर्य निष्कामकर्म ज्ञानद्वारा मुक्त कर देता है, उसी कर्म में जो इस लोकके वा परलोकके पदार्थ की चाहना होंवेगी, तो सो कर्म बन्धनको प्राप्त कर देता है ॥१२॥

मू०–सर्वकर्माणिमनसासंन्यस्यास्तसुखंवशी ॥
नवद्वारेपुरेदेहीनैवकुर्वन्नकारयन् ॥ १३ ॥

वशी १ देही २ सर्वकर्माणि ३ मनसा ४ संन्यस्य ५ सुखम् ६ नवद्वारे ७ पुरे ८ आस्ते ९ न १० एव ११ कुर्वन् १२ न १३ कारयन् १४ ॥ १३ ॥ अ०-उ० जिसका अन्तःकरणशुद्ध नहीं उसको कर्मसंन्याससे कर्मयोग विशेष हैं, यह विस्तारपूर्वक निरूपण किया, अब यह कहते हैं, कि जिसका अन्तःकरण शुद्ध है उसको कर्मसंन्यास श्रेष्ठ है शुद्धान्तःकरणवाला १ देहका स्वामी जीव २ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दरूप ऐसा ज्ञानी २ सब कर्मों को ३ मनसे ४ त्याग कर ५ सुखपूर्वक ६ नवद्वारपुरमें ७ । ८ आ

नव दरवाजे हैं जिसमें ऐसे पुरमें याने देहमें ८ बैठा है ६ सि० किसप्रकार बैठा है और क्या करता है इस अपेक्षा में कहते हैं ❀ न १० सि० ११ सि कुछ ❀ करताहुआ, १२ न १३ कराता हुआ, हुआ, १४ सि० बैठा है ❀ अर्थात् ज्ञानी इस देह में न कुछ करता है न कुछ कराता १३ तात्पर्य न कर्ता है. न प्रेरक है, अपने स्वरूप में जीवते हुये ही मग्न है. न आपको कर्ता मानता है, और न शरीरादिके साथ ममता करता हैं, यही उसका न करना और न कराना है. टी० दो कानमें, दो नाक में, दो नेत्रोंमें, और एक मुख में, ये सातद्वार तो शिरमें है और दो नीचे हैं इस प्रकार नवद्वार है ॥ १३ ॥

मू०–नकर्तृत्वंनकर्माणिलोकस्यसृजातिप्रभुः ॥
नकर्मफलसंयोगंस्वभावस्तुप्रवर्तते ॥१४॥

प्रभुः १ लोकस्य२कर्तृत्वम् ३ न ४ सृजति ५ न ६ कर्माणि ७ न ८ कर्मफलसंयोगम् ६ स्वभावः १० तु ११ प्रवर्तते १२ ॥१४॥अ०-उ० त्वंपदार्थ जीवको तो निर्विकार निरूपण किया अब तत्पदार्थ ईश्वरको भी निर्विकार निरूपण करते हैं. अर्थात् परमार्थ में ये दोनों निर्विकार है. क्योंकि नाममात्र ही दो है, वास्तवमें दोनों एक हैं. यह दो श्लोकोंमें कहते है. ईश्वर १ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार, १ सि० यह ❀ जीवके २ कर्तृत्वको ३ सि० वास्तव में ❀ नहीं ४ रचता है, ५ सि० और ❀ न ६ कर्मोंको ७ सि० और ❀ न ८ कर्मों के फलसंयोगको सि० रचता है. यह जो कुछ देखासुनाजाता है, वो सब ❀ अविद्या १० ही ११ प्रवृत्त होरही है, १२ तात्पर्य क्रिया कारकफलादि सब अविद्याकरके कल्पित हैं, न किसीने ये रचे हैं. और न वास्तवमें हैं, यह सब जीवका

अज्ञान अध्यारोपमें विस्तार हो रहा है वास्तव में जीव भी शुद्ध
जगत्का कर्ता ईश्वर है ऐसा जो कहते हैं सो अध्यारोप में कहते
वास्तव में ईश्वर निर्विकार है, जगत् है नहीं. इत्यभिप्रायः ॥१४॥

मू०--नादत्तकस्यचित्पापंनचैवसुकृतंविभुः ॥
अज्ञानेनावृतंज्ञानंतेनमुह्यन्तिजन्तवः ॥१५॥

विभुः १ कस्यचित् २ पापम् ३ एव ४ न ५ आदत्ते ६
च ८ सुकृतम् ९ अज्ञानेन १० ज्ञानम् ११ आवृतम् १२ तेन
जंतवः १४ मुह्यन्तिः १५ ॥ १५ ॥ अ०—ईश्वर १ किसीके २
को ३ भी ४ नहीं५ग्रहणकरता६ और न ७ । ८ पुण्यको ९
अनिर्वाच्य ऐसे मूलज्ञानकरके १० सि० जीवका ❀ ज्ञान ११
गया है, १२ तिस करके १३ अर्थात् तिस अज्ञानकरके १३
१४ भ्रान्ति को प्राप्त हो रहे है १५ अर्थात् ईश्वर को भी
विकारवान् ऐसा मानते हैं और अपने को भी ॥ १५ ॥

मू०--ज्ञानेनतुतदज्ञानंयेषांनाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानंप्रकाशयतितत्परम् ॥१६॥

ज्ञानेन १ तु २ तत् ३ अज्ञानम् ४ येषाम् ५ नाशितम् ६
७ आत्मनः ८ तत्परम् ९ ज्ञानाम् १० आदित्यवत् ११ प्रकाश
१२ ॥ १६ ॥ अ०—उ० ज्ञानीको भ्रांति नहीं होती, यह कहते
सि० और ❀ ब्रह्मज्ञान करके १।२ सो ३ अज्ञान ४ सि० पू
त्रोक्त ❀ जिनका ५ नाश होगया है ६ तिनको ७ आत्माका
मार्थतत्व ९ ज्ञान १० सूर्यवत् ११ सि प्रकाशकरके परमार्थतत्व
आत्मा को ❀ प्रकाशित करदेता है, १२ तात्पर्य जैसा सूर्य
कारकानाशकरके दृश्यपदार्थों को प्रकाशित करदेता है तैसा ॥

मू०-तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिंज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

तद्बुद्धयः १ तदात्मानः २ तन्निष्ठाः ३ तत्परायणाः ४ ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ५ अपुनरावृत्तिम् ६ गच्छन्ति ७ ॥ १७ ॥ अ०-उ० जिन पुरुषोंको आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है, उनका लक्षण कहते हैं, और ज्ञानका फल निरूपण करते हैं तिसमेंहीं है बुद्धि जिनकी १ अर्थात् सिवाय आत्मा के और किसी पदार्थमें नहीं जाती है बुद्धि जिनकी १ याने आत्मासे सिवाय और किसी पदार्थको सत्य त्रिकालाबाध्य निश्चित नहीं करते सि० और * तिसमें ही है मन जिनका २ अर्थात् सिवाय आत्मा के और किसी पदार्थ में जिनका मन नहीं जाता २ सि० और * तिसमेंही है निष्ठा जिनकी३ अर्थात् सिवाय आत्माके दूसरीजगे निष्ठा नहीं करते. याने सदा आत्माही में तत्पर रहते हैं ३सि० और *सोई आत्मा परमआश्रय है जिनका ४ सि० ऐसे महात्मा * ज्ञान करके नाश करदिये हैं पाप जिन्होंने ५ सि० वे * मुक्तिको ६ प्राप्त होते हैं ७ ॥ १७ ॥

मू०-विद्याविनयसंपन्नेब्राह्मणेगविहस्तिनि ॥
शुनिचैवश्वपाकेचपंडिताःसमदर्शिन ॥१८॥

विद्याविनयसंपन्ने १ ब्राह्मणे २ श्वपाके ३च ४ गवि ५ हस्तिनि६ शुनि ७ च ८एव ९समदर्शिनः १० पंडिता ११॥१८॥ अ०-उ०- पंडितनाम भी ज्ञानियोंकाही है. अर्थात पंडित ज्ञानीको कहते हैं. इस मंत्रमें पंडित शब्दके अर्थका लक्षण कहते हैं. विद्या और नम्रताकरके युक्त ऐसे ब्राह्मणमें १।२ और चांडालमें ३।४ गौमें ५ हाथी में ६ और कूकरमें ७।८ भी ९ सि० आत्मा को*समदेखनेका

स्वभाव है जिसका १० सि० वे ❀ पंडित ११ हैं सि० मुखसे कहनेसे और पंडितनाम रखवालेनेसे पंडित नहीं होसक्ता टी० ब्राह्मण और चांडालमें तो कर्मकी विषमता है और गौ और कूकर इनमें जातिकी विषमता है. तात्पर्य सबमें आत्माको समदेखते हैं. इस वास्ते उनको भी समदर्शी कहा जाता व्यवहारमें ब्राह्मण और चांडालादिको एक देखना या सम भ्रष्ट और मूर्खों का काम है ॥ १८ ॥

मू०—इहैवतैर्जितःसर्गोयेषांसाम्येस्थितंमनः ॥
निर्दोषंहिसमंब्रह्मतस्माद्ब्रह्मणितेस्थिताः ॥१९॥

येषाम् १ मनः २ साम्ये ३ स्थितम् ४ तैः ५ इह ६ एव ७ सर्गः ८ जितः ९ ब्रह्म १० निर्दोषम् ११ समम् १२ तस्मात् १३ हि १४ ब्रह्मणि १५ ते १६ स्थिताः १७ ॥ १९ ॥ अ०—उ० समदर्शियोंका माहात्म्य कहते हैं. जिनका १ मन २ समता के विषय ३ स्थित है. ४ अर्थात् सबभूतोंमें जिनकी ब्रह्मभावना है, ४ तिन्होंने ५ जीवतेहुये ६ ही ७ संसार ८ जीता है, ९ सि० क्योंकि ❀ ब्रह्म १० निर्दोष ११ सि० और ❀ सम १२ सि० है ❀ तिसकारणसे १३ ही १४ ब्रह्ममें १५ वे १६ सि० पंडित (पूर्वमंत्रोक्त) स्थित हैं. १७ अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्त हैं. १७ तात्पर्य संसार दोषों के सहित विषमरूप है और ब्रह्म समरूप निर्दोष है, ब्रह्मभावको प्राप्त होकरही संसारजय होसक्ता है, जीताजाता है, हो सक्ता है, अथवा इस प्रकार अन्वय कर देना कि, जिसकारण ब्रह्म सम और निर्दोषी ऐसा है, तिसकारणसेही वे ब्रह्म में स्थित हैं और जब कि ब्रह्ममें उनकी स्थिति हुई, तिसकारणसे ही उन्होंने संसार को जीता, सिवायशुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म ऐसेब्रह्म

सब पदार्थ सदोष हैं. समझकर निर्दोष ब्रह्ममें स्थित होकर संसार जीता जाता है ॥ १६ ॥

मू०-नप्रहृष्येत्प्रियंप्राप्यनोद्विजेत्प्राप्यचाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढोब्रह्मविद्ब्रह्मणिस्थितः ॥२०॥

असंमूढः १ स्थिरबुद्धिः ब्रह्मवित ३ ब्रह्मणि ४ स्थितः ५ प्रियम् ६ प्राप्य ७ न ८ प्रहृष्येत् ९ अप्रियम् १० च ११ प्राप्य १२ न १३ उद्विजेत् १४ ॥ २० ॥ अ०-मोहवर्जित १ संदेहरहित २ ब्रह्मवित् ३ ब्रह्ममें ४ स्थित हुआ ५ प्रियको ६ प्राप्त होकर ७ नहीं ८ आनन्दी होता है ९ और अप्रियको १० ! ११ प्राप्त होकर १२ नहीं १३ उद्वेग करता है १४ ॥२०॥

मू०-बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्माविन्दत्यात्मनियत्सुखम्॥
सब्रह्मयोगयुक्तात्मासुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

बाह्यस्पर्शेषु १ असक्तात्मा २ ब्रह्मयोगयुक्तात्मा ३ सः ४ आत्मनि ५ यत् ६ सुखम् ७ विन्दति ८ अक्षय्यम् ९ सुखम् १० अश्नुते ११ ॥२१॥ अ०—उ० जिसहेतुसे शब्दादि पदार्थों में रागद्वेष नहीं हैं ज्ञानीका वो हेतु कहते हैं, शब्दादि इन्द्रियोंके अर्थों में १ नहीं आसक्त आन्तःकरण जिसका २ सि० और ॐ ब्रह्म में समाधिकरके युक्त है अन्तःकरण जिसका ३ सो ४ अन्तःकरणहै ५ जो सि० सत्त्वगुणी उपशमात्मक ऐसे ॐ सुखको ७ सि० प्रथम ॐ प्राप्त होता है ८ सि० फिर ॐ अक्षमसुखको ९ । १० प्राप्त होता है, टी० बाहर जिनका स्पर्श होता है इन्द्रियोंकी वृत्ति करके, वे शब्दादिपंचेन्द्रियोंके अर्थ हैं, तिनमें जिनका मन आसक्त नहीं उसमें यह हेतु है कि, उन्होंने आत्मामें अन्तःकरणको समाधानकरके, जीवको ब्रह्मरूप समझलिया है, और आत्मा पूर्णानं नित्य और एक रस है

इस वास्ते उनको अक्षय सुख प्राप्त होताहै अर्थात् वे सच्चिदानन्द
रूप एकरस ऐसेहैं.पूर्णानंदके सामने विषयानन्द तुच्छहै,प्रथम तो
गुणी सुखके सामने विषयानंद है फिर परमानंद के सामने
हो,तो इसमें क्याकहनाहै,अथवा इस श्लोकका अन्वय ऐसा
कि शब्दादिविषयोंमें नहींहैं आसक्त अन्तःकरण जिसका.सो मध्य
सात्त्विक सुखकोप्राप्त होताहै.फिर समाधि करके ब्रह्मात्मामें अन्तःक
लगायहै जिसने, सो महात्मा पुरुष अक्षयसुखको प्राप्त होताहै॥

मू०--येहिसंस्पर्शजाभोगादुःखयोनयएवते ॥
आद्यन्तवन्तःकौन्तेयनतेषुरमतेबुधः ॥२२॥

संस्पर्शजाः १ ये २ भोगाः ३ ते ४ एव ५ हि ६ दुःखयोनयः
कौंतेय ८ अद्यन्तवन्तः ९ तेषु १० बुधः ११ न १२ रमते
॥ २२ ॥ अ०--उ० शब्दादिविषयों में इंद्रादिदेवता आनंद
हैं और बडे बडे समझवाले चतुरलोक वैकुण्ठलोकादिपरलोक
के प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके प्रयत्न करते हैं वहां जाकर
प्रकारके शब्दादिविषयोंको भोगते हैं, पुराणादिमें भी उनका
त्म्य सुना जाता है, ऐसे प्रत्यक्ष सुन्दर शब्दादिविषयोंको छोड़
ब्रह्मआत्मामें परमानंद मानते हैं, वे तो कुछ कम समझ प्रतीत
हैं यह शंकाकरके श्रीमहाराज कहते हैं. शब्दादि विषयों से
होते हैं. १ जो २ भोग ३ अर्थात् विषयजन्य जो सुख याने
३ वे ४ निश्चयसे ५ ही ६ दुःखके कारण हैं ७ अर्थात् वे
समझना कि शब्दादिपदार्थोंमें जो सुख है वो दुःखोंका मूल
सि० जो कोई मूर्ख यह समझे कि आपके समझमें विषयानंद
का मूलहै, हमारे समझमें श्रेष्ठ है यह शंका करके प्रत्यक्ष औ
दोष दिखाते हैं हे अर्जुन ८ सि०फिर कैसे हैं ये भोग*आद्यं

हैं. अर्थात् आगमापायी याने आनेजानेवाले हैं. सदा नहीं बने रहते तिनके विषय १० विद्वान् ११ नहीं १२ रमता है १३ तात्पर्य जो स्त्रीधनादि पदार्थोंमें रमते हैं शब्दादिविषयोंको प्रिय समझकर भोगते हैं, और उनके प्राप्तिके लिये लौकिक वैदिक कर्म करतेहैं, कुछ बड़े समझवाले चतुर नहीं, उनको महामूर्ख समझना उक्तं च "रमंति-मूर्खाविरमन्तिपंडिताः" हि यह शब्द कहनेसे तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि बिषय इसलोकके और परलोकके सब सम हैं.उनके प्रयत्न करनेमें और नाश होनेमें जो जो दुःख हैं वे तो प्रसिद्धही हैं, परंतु भोगकालमें भी वे दु खके हेतु हैं, चोर, राजा इत्यादिका सदा भय बना रहता है, तात्पर्य जो बिषयोंमें कुछ एक सुख प्रतीत होता है तो सहस्रों प्रकारका उनमें दुःख है वो सुख भी अनित्य है. श्रेष्ठ आत्मानन्द ही है आत्मानन्दके भोगनेवाले आत्मानन्दके प्रयत्न करने वाले चतुर बुद्धिमान् और सबसे श्रेष्ठ ऐसे हैं. इत्यभि-प्रायः ॥ २२ ॥

मू०-शक्नोतीहैव यः सोढुंप्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवंवेगंसयुक्तःससुखीनरः ॥ २३ ॥

यः १ कामक्रोधोद्भवम् २ वेगम् ३ प्राक्शरीर विमोक्षणात् ४ इह ५ एव ६ सोढुम् ७ शक्नोति ८ सः ९ युक्तः१० सः ११ सुखी १२ नरः १३ ॥ २३ ॥ अ०-उ० परमपुरुषार्थ मोक्ष है उसके ये दो (काम और क्रोध) वैरी हैं जो इनको सहेगा याने त्यागेगा वो मोक्षका भागी होगा. यह कहते हैं जो १ सि० महापुरुष ❀ काम और क्रोधसे प्रकट होता है जो बेग उसको २ । ३ पहले शरीरके छूटनेके ४ जीवते ५ ही ६ सहनेको ७ समर्थ है, ८ सोई ९ योगी १० सि० और ❀ सोई सुखी १२ महापुरुष १३ सि०

है ॐतात्पर्य कामना सब पदार्थोंकी (शुभ वा अशुभ इस लोक परलोकके पदार्थोंकी) अनर्थका हेतु है और स्त्रीकी कामना मोक्षमें बड़ा ही प्रतिबन्ध है, जिस समय देखनेसे, सुननेसे स्मरण करने से मन में विकार प्रतीत हो उसी समय दोषों स्मरणकरे जिसगुणका स्मरण करने से कामना होती है उसका चिंतवन न करे, जितने उस उसपदार्थमें अवगुण हैं, उन सब स्मरण करे. मनोराज्यका अंकुर जमने न दे. दूसरे अध्यायके का विचार करे नारायणकी याद करे, जैसे बने वैसे वो समय और इससे भी उत्तम उपाय यह है कि उस समय विरक्त सा पास जा बैठ. बे सन्देह उसी समय चित्त शांत हो जायगा यह प्रयत्न सुषुप्तिमरण पर्यंत चाहिये. कामनासे क्रोध होता ऐसे ही क्रोधलोभादिका जब उद्वेग हो उसी समय समझकर नि करे इसी प्रकार सहज सहज सहते सहते, फिर आप ही स्व ऐसा पड़ जायगा. प्रथम तो कामादिका उदयही न होगा कामा जो कुसंग से उदित भी होवें तो उनका विचार करनेसे वह काम उदय नष्ट होजावेगा ॥२३॥

मू०-योन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेवयः ॥
सयोगीब्रह्मनिर्वाणंब्रह्मभूतोधिगच्छति ॥२४॥

अंतःसुखः१यः २ अंतराराम: ३ तथा ४ एव ५ अंतर्ज्योति ६ यः ७ सः ८ योगी९ ब्रह्मभूतः १० ब्रह्मनिर्वाणम् ११ गच्छति १२ ।२४॥ अ०–उ० कामनादिके त्यागने से सुखकी प्राप्ति होती है,कैसा है,वो सुख कि. स्वतंत्र नित्य पूर्ण अखण्ड है उसमें विहार करता हुआ पूर्ण ब्रह्मपरमानंद स्व आत्माको सदाके वास्ते प्राप्त होजाता है, सोई कहते हैं करणमें है सुख जिसको१ अर्थात् आत्मा में ही जिसको सुखहै१

इसी हेतुसे वो विषयोंमें सुख नहीं मानता ❀ जो २ सि० महात्मा और ❀ आत्मा में ही है विहार जिसका ३ सि० इसी हेतुसे बाहरके पदार्थोंमें नहीं विहार करता और जैसे अन्तःसुखमानता हैं. अन्दर ही विहार करता है ❀ तैसे ४ ही ५ भीतर है सृष्टि जिसकी ६ सि० इसी हेतु से गीतनृत्यादिमें दृष्टि नहीं करता, ऐसा ❀ जो सि० महापुरुष योगी ❀ सो ८ योगी ९ ब्रह्मस्वरूप हुआ १० सि० ब्रह्म में लय होकर, ब्रह्मको अर्थात् ❀ निर्वाणब्रह्म ऐसे मोक्षको ११ प्राप्त होता है. तात्पर्य फिर उसको जन्ममरण नहीं होता, पूर्ण परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

मू०-लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहितेरताः ॥२५॥

ऋषय १ क्षीणकल्मषाः २छिन्नद्वैधा ३ यतात्मानः४ सर्वभूतहितेरताः ५ ब्रह्मनिर्वाणम् ६ लभन्ते ७॥२५॥ अ०-उ० जो ब्रह्म को प्राप्त होते हैं उनका लक्षण कहते हैं. ज्ञाननिष्ठावाले साधु महात्मा १ नाश होगये हैं पाप जिनके २ सि० और ❀ छिन्न भिन्न दो दो टूक होगये हैं हैं संशय जिनके ३ अर्थात् किसी प्रकारका संशय जिनको नहीं ३ जीता हुआ है अंतःकरण जिनका ४ सबभूतों के हितमें प्रीतिहै जिनकी ५ सि० ऐसे कृपालु महात्मा ❀ ब्रह्मनिर्वाणको ६ प्राप्त होंगे ७ सि० पहले बहुत होगये, वर्तमानकालमें बहुत जीवन्मुक्त विद्यमान हैं ❀ टी० साधनचतुष्टसंपन्न श्रवणादिसाधनों करके युक्त १ तिरोभाव होगये हैं रजोगुण तमोगुण जिनके ज्ञानके प्रताप से सब पाप नाश होगये हैं, जिनके २ प्रमाणगत वा प्रमेयगत किसी जगे उनको संशय नहीं. ३ सदासमाधिनिष्ठ रहते हैं ४ नगरग्राममें जो उनका आना, याने गृहस्थों के घर

जान, गृहस्थोंसे बात करना यह उनकी केवल कृपाही समझ
क्योंकि वे पूर्णकाम है ऐसे दयालु महापुरुषों का दर्शन भी
भाग्य से होता है ५ उक्तं च "महद्विचलनंनृणांगृहिणांदीनचेतसाम्
निःश्रेयसायभगवन्कल्प्यतेनान्यथाक्वाचित् ॥" तात्पर्यार्थ इस श्लो
का यह है कि, गृहस्थोंके घरमें महात्मा पुरुष का जो जाना है
केवल उनके भले के लिये है, सिवाय उसके उनका और
प्रयोजन नहीं, कभी कुछ और प्रकार की कल्पना नहीं करना
क्योंकि गृहस्थ आपही दीन होते हैं, उनके पास है क्या, कि
किसी कामनाकी कल्पना कीजावे ॥ २५ ॥

मू०-कामक्रोधवियुक्तानांयतीनांयतचेतसाम् ॥
अभितोब्रह्मनिर्वाणंवर्ततेविदितात्मनाम् ॥२६॥

यतीनाम् १ अभितः २ ब्रह्मनिर्वाणम् ३ वर्तते ४ कामक्रोध
वियुक्तानाम् ५ यतचेतसाम् ६ विदितात्मनाम् ७ ॥२६॥ अ०-
कामादिरहित सज्जन जीवते ही मुक्त हैं. फिर उनके विदेहमुक्ति
तो क्या बात कहना है, संन्यासी के १ सब अवस्थामें २मोक्ष
मानन्द को ३ वर्तता है ४ अर्थात् जीवतेहुए भी जाग्रत स्वप्न
सुषुप्ति परमानंद को भोगते हैं ४ तात्पर्य अज्ञानियोंके दृष्टि में ज्ञानि
योंके विषय ये तीन अवस्था प्रतीत होती है. वास्तव में ज्ञानि
की एक तुर्यातीत अवस्था रहती है, और पीछे देहके भी पर
नन्द को भोगते हैं सि० कैसे हैं वे संन्यासी ज्ञानी * कामक्र
करके रहित हैं. ५ जीत रक्खा है अंतःकरण जिन्होंने ६ जाना
आत्मतत्व जिन्होंने ७ अर्थात् पूर्णब्रह्मसच्चिदानंद नित्यमुक्त
आत्माको जानते हैं और कामादिरहित ऐसे हैं ७ ॥ २६ ॥

मू०-स्पर्शान्कृत्वाबहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरेभ्रुवोः ॥
प्राणापानौसमौकृत्वानासाभ्यंतरचारिणौ ॥२७॥

बाह्यान् १ स्पर्शान् २ बहिः ३ एव ४ कृत्वा ५ चक्षुः ६ च ७ भ्रुवोः ८ अन्तरे ९ प्राणापानौ १० नासाभ्यन्तरचारिणौ ११ समौ १२ कृत्वा १३॥२७॥ अ०-उ० जिसयोगकरके संन्यासी महात्मा जीवते हुये, और देहके पीछे भी सदा परमानंद भोगते हैं, उस योगका लक्षण दोमंत्रोंमें संक्षेपसे तो अब कहते हैं और अगले छठे अध्यायमें विस्तारपूर्वक कहेंगे. बहिःपदार्थों को १ रूपरसादिको २ बाहर ३ ही४करके ५अर्थात् रूपरसादि जो पदार्थ हैं ये सब बाहर हैं, उनका चिंतवन करनेसे वे भीतर प्रवेश करते हैं, इस वास्ते विषयोंका चिन्तवन दर्शनादिका त्याग करके ५ और नेत्रों को ६।७ दोनों भ्रू के८ बीचमें सि० करके❀तात्पर्य नेत्रों को बहुत न खोलना न मीचना. बहुत खोलनेसे रूपके साथ संबंध होजाता है, बहुत मीचनेसे निद्रा आजाती है, इस वास्ते दोनों भ्रूके मध्य में ९ दृष्टि रखना. और अपान इनको १० नासाभ्यंतरचारी ११ समान १२ करके १३ सि० मुक्त होजाता है ❀ तात्पर्य ऐसे महात्मा सदा मुक्त हैं. अगले मंत्रके साथ इसका अन्वय है, टी० नासिका के भीतर ही प्राणचले, शीघ्रगति न होने पावे नीचेकी ऊपर की ये दोनों गति सम करना योग्य है. जिसको कुम्भक कहते हैं, यह अर्थ साक्षात् गुरु के बतलानेसे समझमें आता है, यह केवल शास्त्रके श्रवणसे और विचार से नहीं आता ॥ २७ ॥

मू०-यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायण ॥
विगतेच्छाभयक्रोधोयःसदामुक्तएवसः ॥२८॥

यतेंद्रियमनोबुद्धिः १ मोक्षपरायणः २ विगतेच्छाभयक्रोधः ३ यः ४ मुनिः ५ सः ६ सदा ७ मुक्तः८ एव९ ॥२८॥ अ०-उ० जीते हैं इंद्रिय (मन और बुद्धि) जिसने १ मोक्षही है परमगति जिसकी दूर होगये हैं इच्छा भय क्रोध जिससे ३ सि० ऐसे ❀ जो

मुनि (संन्यासी) ५ सि० हैं ❀ वे ६ सदा ७ सि० जीते भी और देहके पीछे भी ❀ मुक्त ८ ही ९ सि० हैं इससे पृ० कोई मुक्तिपदार्थ नहीं, सलोकतादि (अनित्य होनेसे) नाम० कहलाती है ❀ तात्पर्य सबदुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्द रूपआत्मा की प्राप्ति यह मुक्तिका लक्षण है. टी० जिसका आत्मा में ही रहता है उसको मुनि कहते हैं ॥ २८ ॥

मू०-भोक्तारंयज्ञतपसांसर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदंसर्वभूतानांज्ञात्वामांशांतिमृच्छति ॥२९॥

यज्ञतपसाम् १ भोक्तारम् २ सर्वभूतानाम् ३ सुहृदम् ४ लोकमहेश्वर ५ माम् ६ ज्ञात्वा ७ शान्तिम् ८ ऋच्छति ९ ॥२९॥
अ०-उ० जैसा पीछे निरूपण किया, इसप्रकार इंद्रिय अंत करणादिका निरोध करके ब्रह्मज्ञानद्वारा मुक्त होता है, इस अब ज्ञान का स्वरूप कहकर शान्तिफल सबका निरूपण त्वम० वाच्यार्थ करते हैं—यज्ञतपका १ भोक्ता २ सि० और ❀ सबभू० ३ बेप्रयोजन हित ४ अर्थात् अविद्योपहित करनेवाला ४ अंतर्यामी अतएव ईश्वर सबकर्मों के फलका देनेवाला, तत् वाच्यार्थ, सच्चिदानंद है और ❀ सबलोकोंका महेश्वर ५ परमात्मा शुद्ध, सच्चिदानन्द, निर्विकार, नित्य, मुक्त, तत् त्वं का लक्ष्यार्थ ऐसा ही एक अद्वैत है. इस प्रकार ❀ मुझ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्द स्वरूपपूर्णब्रह्म ऐसे आत्मा को ६ जा० ७ शान्तिको ८ अर्थात् मुक्तिको ८ प्राप्त होता है, ९ पुनरावर्तते. इयतभिप्रायः ॥ २९ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

उ० इस छठे अध्यायमें श्रीभगवान् यह कहेंगे, कि जो अग्निहोत्रादि कर्म करता है और कर्मोंके फलमें आसक्त नहीं उसको संन्यासी समझना, यह कर्मयोगीकी स्तुति है, इसको शास्त्रमें अर्थवाद कहते हैं, इस कहनेसे यह नहीं समझना, कि गृहस्थाश्रममें ही सदा बनेरहना,चतुर्थाश्रमसंन्याससे क्या प्रयोजन है,ये जैसे संन्यासी वैसेही गृहस्थकर्मयोगी हैं, यह अधिकारीप्रति श्रीमहाराजका कहना है, नहीं तौ पुनः पुनः पाचवें, बारहवें, दूसरे, अठारहवें इत्यादि अध्यायोंमें चतुर्थाश्रमसंन्यासके जो लक्षण और माहात्म्य गृहस्थाश्रमसे विशेष अपने मुखसे श्रीमहाराजने कहा है वो कहना भगवान्का निरर्थक होजायगा, तात्पर्य सर्वज्ञोंके वाणीका यह नियम है, कि जिससमय जिससाधनका प्रसंग होता है उससमय उसीसाधनको सबसे अच्छा कहा करते हैं.उनका आशय यथार्थ जब प्रतीत होता है, कि अगले पिछले कहे हुए उनके सब अर्थको विचारें, फिर अधिकार, गौण, मुख्य, देश, वस्तु और कालादिका विचार करे, युक्तियों करके सब श्रुतिस्मृतियोंके साथ उस अर्थका एकजगह समन्वय करे, अगले पिछले वाक्योंमें विरोध न आवे सबका एक अर्थमें समन्वय होजाय,तब समझना कि इस श्लोकका वा ग्रन्थका यह यथार्थ जैसेका तैसा अर्थ है,और लक्षणा और व्यंजना इनशक्तियोंको भी देखना योग्यहै पूर्वपक्षको और सिद्धांतको पृथक् २ समझना साधनफलका भेद देखना साधनोंमें भी तारतम्यता अधिकारी प्रतिहै इस प्रकार शास्त्रका तात्पर्य जानाजाता,है औरभी शास्त्रके तात्पर्यजानने

में मुख्य छः बातें ये हैं–प्रथमतो उपक्रम और उपसंहार १अर्थात्
का आदिअन्त देखना, कि दोनोंकी संगति मिलती है वा नहीं
का कहा हुआ जो ग्रंथ होता है उसके प्रारंभमें जो अर्थ होगा,
अन्तमें होगा, जैसे श्रीभगवद्गीताका आदिपद अशोच्य है,
माशुचः यह पिछला पद है, इन दोनों पदोंसे प्रथम पीछे जो
है, वो संगतिके लिये उपोद्धात है, इस प्रकार गीताका उपक्रम
उपसंहार एक मिलता है, शोचका न होना और अर्थात् परमानन्द
प्राप्ति, यही गीताशास्त्रका तात्पर्य है १इसी बातको सिद्धकरनेके
बीचमें पांच बातें ये हैं अपूर्वता २ अर्थात् आत्माकोही सच्चिदा
नित्यमुक्त जानना जिनके जाननेसे बेशोच होजाताहै, यह बात
अलौकिक है २अनुवाद ३अर्थात् उसी एक बातको नाना प्रका
रीति और शैलीकरके पुनः२कथन करना३अर्थवाद ४ अर्थात्
पदार्थके सिद्धिके जो साधन हैं,उनकोही (रुचि बढ़ानेके लिये)परा
श्रेष्ठ इत्यादि कहना जैसे कर्म, भक्ति योग और तीर्थ इत्यादि,
महात्म्य कहाहै४उपपत्ति५अर्थात् फिर युक्तियोंकरके साधनको
कह कर, सिद्धान्त पक्षको सिद्ध करना५फल ६ अर्थात् सिद्धान्त
कथन करना याने उसका लक्षण करना कि वो परमानन्दस्वरूप
है ६ इस प्रकार ग्रंथका तात्पर्य प्रतीत होता है ग्रन्थके एक २
अर्थात् एक श्लोक वा एक अध्यायसे ग्रन्थका तात्पर्य नहीं जाना
ये भी छः बातें (उपक्रम उपसंहारादि) गीताशास्त्रमें हैं
व्यंजनादि भी हैं इन छः बातोंका एकपदार्थमें जब समन्वय
तब जानना कि इस ग्रन्थका यह तात्पर्यहै अर्थवादसाधनोंको
समझ लेना य हमूर्खोंका काम है ॥

मू०॰श्रीभगवानुवाच ॥ अनाश्रितःकर्मफलंकार्यं

करोतियः॥ससंन्यासीचयोगीचननिरग्निनचाक्रियः॥१

कर्मफलम् १ अनाश्रितः २ कार्यम् ३ कर्म ४ यः५करोति ६ सः७ संन्यासी ८ च ९ योगी १० च ११ न १२ निरग्निः १३ न १४ च १५ अक्रियः १६ ॥१॥ अ०-उ० अन्तःकरण शुद्ध होनेके लिये कर्मयोगीकी स्तुतिकरते हैं श्रीभगवान् कर्मोंके फलका नहीं आश्रय किया है १।२अर्थात् कर्मफलकी तृष्णा और कामना नहींहै जिसको जिसने १।२करनेके योग्य कर्मको ३।४ जो५करताहै ६अर्थात् नित्य-नैमित्तिकप्रायश्चितकर्म, और भगवद्भक्तिसंबंधि, ज्ञानसंबंधि जो कर्म, और तीर्थयात्रा साधुसेवादि साधारण जो कर्म और दानलेना इत्यादि जो असाधारणकर्म हैं इनसब कर्मोंकोयथाशक्ति जो करताहै६सो७संन्या-सी८और९योगी१०भी११सि० समझना चाहिये ❀तात्पर्यकर्मफलका संन्यासकरनेसेएकदेशमें तोउसकोसंन्यासीसमझना और कर्मयोगकरने सेएकदेशमें उसको योगीसमझना इस अर्थमें समसमुच्चयकी गंधमात्रभी नहीं कल्पना करना कर्मयोग और कर्मसंन्यासका दिनरात्रिवत् विरोध है कर्मयोगीकोहीसंन्यासी कहना यहउपमाहैं जैसे स्त्रीके मुखको चंद्रमा कहना इस उपमाका तात्पर्य एकदेशमें होताहै नहीं तो अगले पिछले वाक्योंमें बिरोध आताहैं,पीछे श्रीभगवान्‌ने बहुत जगह कर्मसंन्यास, फलके सहित निरूपण किया, और आगे बहुत करेंगे,इसजगे कर्मयोग काही प्रसंग है. इसीवास्ते श्रीमहाराज कर्मयोगीकी स्तुति करते हैं.सि० कैसा है वो कर्मयोगी❀ न १२ निरग्नि १३ और १४ न१५ अक्रिय १६ सि० हैं जैसे चतुर्थाश्रमी संन्यासी, अग्निहोत्रादिकर्म नहीं करते, निरग्नि होते हैं, ऐसा कर्मयोगी नहीं और चतुर्थाश्रमी संन्यासी ऐसे ज्ञानवत् अक्रिय भी नहीं क्योंकि ज्ञानी आत्माको अक्रिय(क्रियारहित) मानतेहैं.आत्माका जब देहके साथ सम्बन्ध माना, तब आत्माअक्रिय

कहां रहा, यहबात श्रीमहाराज सत्य कहते हैं कि कर्मयोगी अग्नि
नहीं अथवा केवल अग्निके नछूनेसे, कर्मोंकेनकरनेसेविनाज्ञाननिष्ठा
मार्थमेंसंन्यासी नहीं होसक्ता, व्यवहारमें उसकोनाममात्र संन्यासी कहें
❀तात्पर्य जबतक अन्तःकरणशुद्धनहो तबतक ज्ञाननिष्ठा और संन्यास
का महात्म्य सुनकर, कर्मोंका त्याग नकरे और जिनका अन्तःकरण
शुद्ध हो उनके वास्ते कर्मोंका संन्यास करना चतुर्थाश्रम धारणकरना
निषेध नहीं अवश्य चतुर्थाश्रम धारण करना उसके विना ज्ञाननिष्ठा
कभी परिपाक न होगी यह नियम याने विधि है ॥१॥

मू०-यंसंन्यासमितिप्राहुर्योगंतंविद्धिपाण्डव ॥
नह्यसंन्यस्तसंकल्पोयोगीभवतिकश्चन ॥२॥

पांडव १ यम् २ संन्यासम् ३ प्राहुः ४ तम् ५ हि योगम्
इति ८ विद्धि ९ असंन्यस्तसंकल्पः १० कश्चन ११ योगी १२
१३भवति १४ ॥ अ० उ० कच्चेकर्मयोगीका संन्यासमें अधि
नहीं यह कहते हैं, हे अर्जुन! १जिसको २ संन्यास ३ कहते हैं
तिसको ५ ही ६ योग ७ सि० कहा है ❀ यह ८ जान तू ९
क्योंकि संन्यास योगका ही फल हैं ❀ नहीं संन्यास किये हैं सं
जिसने १० सि० ऐसा ❀ अर्थात् शुभाशुभ संकल्पों को जि
नहीं त्यागा है ऐसा १० कोई ११ योगी १२ नहीं १३ होता
१४ तात्पर्य जबतक शुभ वा अशुभ संकल्प मनमें बने रहे तब
अपनेको सिद्धयोगी समझना न चाहिये, अर्थात् यह समझे कि
भक्तियोग अभी सिद्ध नहीं हुआ जब अन्तःकरणका निरोध
जाय, संकल्पविकल्प सूक्ष्म (कम)होजावें तब संन्यासका अधि
होता है ॥२॥

मू०-आरुरुक्षोर्मुनेर्योगंकर्मकारणमुच्यते ॥
योगारूढस्यतस्यैवशमःकारणमुच्यते ॥३॥

योगम् १ आरुरुक्षोः २ मुनेः ३ कर्म ४ कारणम् ५ उच्यते ६ योगारूढस्य ७ तस्य ८ एव ९ शमः १० कारणम् ११ उच्यते १२ ३ ॥ अ०-उ० हे अर्जुन! पीछे जो मैंने कर्मयोगकी स्तुति की, उस कहनेसे यह नहीं समझना कि सदा कर्म ही करता रहे, अधिकारी प्रति मैंने वहाँ कहा है, तात्पर्य सिद्धांत मेरा यह हैं, कि जो मैं अब कहता हूँ. सि० ऊपरके पदपर ❀ ज्ञानपर १ चढने की इच्छा है जिसको २ सि० ध्यानयोगमें समर्थ नहीं, ऐसा अर्थात् हे सच्चिदानन्द निराकारका ध्यान नहीं करसकता ऐसा ज्ञानयोगका जिज्ञासु ऐसा ❀ मननशीलको ३ अर्थात् मन में तो यह मनन करता है, कि सच्चिदानन्दनिराकारका ध्यान करना चाहिये, परन्तु अंतःकरण मैला होनेने ध्यान नहीं होसकता. ऐसे जिज्ञासुमुनिको ३ कर्म ४ अर्थात् बहिरंग भगवदाराधनादि ४ सि० परमानन्दस्वरूप आत्मा के प्राप्तिमें ❀ हेतु ५ कहा है ६ सि० और ❀ योगारूढको ७ अर्थात् शुद्धांतःकरणवाले को तात्तर्य जो ज्ञानयोगपर चढगया है, वोही कर्मयोगी साधनचतुष्टय-संपन्न होकर ज्ञाननिष्ठ हुआ है, ७ तिसको ८ ही ९ उपशम १० हेतु ११ कहा है. १२ तात्पर्य परमानन्दस्वरूप आत्मा के प्राप्ति में उपशम हेतु है. अर्थात् लोकिक और वैदिक कर्मोंसे उपराम होकर सच्चिदानन्दनिराकार का ध्यान करना कहा है. फिर उसको बहिरंगकर्मोंमें प्रवृत होना न चाहिये. क्योंकि वे विक्षेपके हेतु हैं, याने ऊपर चढ़ेहुएको नीचे उतारते हैं, टी० तिसकोही अर्थात् उसीको कि जो पहले कर्मयोगी था. याने साकारमूर्तियोंका ध्यान

करता था औप बहिरंगकर्मोंमें प्रवृत्त था उसी बहिर्मुख को अं
होना कहते हैं श्रीभगवान्. यह नहीं समझना कि कर्मयोगीको
बहिर्मुख रहनाही कहते हैं. वा ज्ञानमार्ग दूसरा है. उसके अधि
दूसरे हैं. जैसे कोई कोई कम समझवाले यह कहाकरते हैं कि म
एकहै उसके रस्ते अनेक हैं, यह बात नहीं, तो मोक्षमार्ग एकहीहै
ला अनेकहैं रस्ते अनेक नहीं. रस्ताएकही है अर्थात् मोक्षके मार्ग अ
नहीं, अधिकरीप्रति भूमिका दरजे याने सीढी अनेक हैं ॥ ३ ॥

मू०-यदाहिनेंद्रियार्थेषुनकर्मस्वनुषुज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासीयोगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

यदा १ हि २ न३ इद्रिन्यार्थेषु ४ न ५ कर्मसु ६ अनुषज्ज
सर्वसंकल्पसंन्यासी ८ तदा ९ योगारूढः १० उच्यते ११ ॥ ४
अ०-उ० यह कैसे प्रतीत हो कि योगारूढ अब मैं हुआ.
अपेक्षामें योगारूढका लक्षण कहते हैं. जिसकालमें १ ही २
जो महापुरुष ※ न ३ विषयोंमें ४ न ५ कर्मों में ६ आसक्ति
है. ७ अर्थात इसलोकमें जो देखे या सुने हैं. रूपशब्दादि और
लोकके जो अथवाद सुने हैं उनमें किसीमें तृष्णा नहीं करता. क्यों
अंतःपरमानंदस्वतंत्रके सामने बहिःसुख परिच्छिन्नपरतंत्र
जन्य ऐसे सुखको तुच्छ समझता है. और बहिर्मुखके जो सा
कर्म उनको करभी सक्ता है परन्तु अपना उनसे कुछ प्रयोजन
यह समझकर उन कर्मों में भी प्रीति नहीं करता ७ सि० और
सब संकल्पोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका ८ अर्थात इस
के या परलोकके निमित्त, जो जो संकल्प उत्पन्न होते हैं. उन
को त्याग देता है. सि० तात्पर्य सिवाय सच्चिदानंद आत्मा के
किसी पदार्थके प्राप्ति का संकल्पमात्र भी नहीं करता जिसका

तिस कालमें ६ सि० वो पुरुष ❀ योगारूढ १० कहा जाता ११ तात्पर्य सो महात्मा सोई साधु, सोई भगवद्भक्त, जो विषयामें प्रीति नहीं करता ॥ ४ ॥

मू०--उद्धरेदात्मनात्मानंनात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैवह्यात्मनोबंधुरात्मैवरिपुरात्मनः ॥५॥

आत्माना १ आत्मनम् २ उद्धरेत् ३ आत्मानम् ४ न ५ अवसादयेत् ६ आत्मनः ७ आत्मा ८ हि ९ एव १० बंधुः ११ आत्मनः १२ आत्मा १३ एव १४ रिपुः १५ ॥ ५ ॥ अ०–उ० अब यह कहते हैं, कि ज्ञानपर आरूढ होना चाहिये. चढ़ना योग्य है, नीचे कर्मोंमें ही गिरना न चाहिये विवेकयुक्तमनकरके १ जीवको २ सि० ज्ञानयोगपर ❀ चढावे ३ सि० यह जीवका संसारसे उद्धार करना है. ❀ अर्थात् ज्ञाननिष्ठहोना योग्य है. ३ जीवको ४ नीचे न गिरावे ५।६ अर्थात् सदाकर्मों मेंही न लगारहै ६ जीवका ७ विवेकयुक्तमन ८ ही ९ तो १० बंधु ११ सि० है ❀ अर्थात् संसारसे मुक्तकरने वाला है ११ सि० और ❀ जीवका १२ रागद्वेषादियुक्तमन १३ ही १४ वैरी १५ सि० है ❀ अर्थात् नरकादिको प्राप्त करनेवाला है १५. टी० विवेकयुक्त रागद्वेषादिरहित मनको शुद्ध मन कहते हैं ८ विवेकरहित रागद्वेषादिसहित मनको मलिनमन कहते हैं १३ दोए वकारोंसे यह तात्पर्य है, कि जो मैं कहता हूं, इसको धारणकरना योग्य है, कहानीवत् सुननेसे प्रयोजना सिद्ध न होगा १०।१४ तात्पर्य बंधमोक्षमें कारण मनुष्योंका मनही है, विषयोंमें आसक्त हुआ बंधका हेतु और स्वरूपनिष्ठ हुआ मोक्षका हेतु है. उक्तंच-"मनएवमनुष्याणांकारणंवंधमोक्षयोः" ॥ "मुक्तिमिच्छसिचेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ॥ क्षमार्जवदयातोषसत्यंपीयूषवद्भज" अष्टावक्रजीने कहा है, कि हे तात ! तू जो मुक्ति की इच्छा करता है,

तो विषयोंको विषवत् त्याग और क्षमा, आर्जव, दया संतोष और सत्य इनका अनुष्ठान कर, यही तात्पर्य इस मंत्रका है ॥ ५ ॥

मू०--बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्येनात्मैवात्मनाजितः॥
अनात्मनस्तुशत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत ॥६॥

तस्य १ एव २ आत्मनः ३ आत्मा ४ बंधः ५ येन ६ आत्मना ७ आत्मा ८ जितः ९ अनात्मनः १० तु ११ आत्मा १२ एव १३ शत्रुवत् १४ शत्रुत्वे १५ वर्तेत १६ ॥६॥ अ०–उ० पिछले अर्थको इस मंत्रमें स्पष्ट करते हैं. तिसही जीवका १ ॥२॥३ मन ४ बंधु ५ सि० है कि ❀ जिसजीवने ६।७ शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण ८ वश में किया है ९ और जिसने अन्तःकरणादि नहीं वश किये. तिसका १०। ११ मन १२ ही १३ वैरिवत् १४ वैरभावमें १५ वर्तता है १६ तात्पर्य विषयासक्त मन मोक्षमें प्रतिबंधक है इस हेतुसे उसको वैरी कहा, और रागद्वेषादिरहित मन मोक्षमें सहाय कहा है, इस हेतु से उसको बंधु कहा ॥ ६ ॥

मू०-जितात्मनःप्रशांतस्यपरमात्मासमाहितः॥
शीतोष्णसुखदुःखेषुतथामानापमानयोः ॥७॥

जितात्मनः १ प्रशान्तस्य २ परमात्मा ३ समाहित ४ शीतोष्णसुखदुःखेषु ५ तथा ६ मानापमानयोः ७ ॥ ७ ॥ अ०– अन्तःकरणादिके वश करनेका फल कहते हैं. जीते हैं अंतःकरणादि जिसने १ सि० इसीहेतुसे जो ❀ भलेप्रकार शांत अर्थात् विशेष रहित है जो, तिसको २ परमात्मा ३ अर्थात् सच्चिदानन्दपूर्णब्रह्म ३ साक्षात् अपरोक्ष आत्मभावकरके वर्तता है अर्थात् आत्मा सच्चिदानन्द अखंड नित्ययुक्त साक्षात् अपरोक्ष जीते हुएही अनुभव करता है ४ सि० और कोई उसको

(बाधा यानेविक्षेप) नहीं करसक्ते यह आधे श्लोकमें अब कहते हैं * शीत,गर्मी,सुख और, दुखः इनमें ६ सि० और* तैसे ही ६ मा० और अपमानमें ७ सि०आत्मा अखंड अपरोक्ष रहताहै*तात्पर्य पांचवीं छटी जो ज्ञानकी भूमिका हैं उनमें वर्तता है अर्थात् सदा जीवन्मुक्तका आनंद भोक्ता है इसी हेतुसे उस आनंदके सामने मानापमानादिभी नहीं प्रतीत होते और कभी रजोगुणके आविर्भाव होनेसे वहिर्मुखहोनेमेंअपमानादि भी प्रतीत हों, तोभीं उनको गुणों का कार्य समझकर और अपनेको असंग जानकर,विक्षेपको नहीं प्राप्त होता है ॥७॥

मू०--ज्ञानविज्ञानतृप्तात्माकूटस्थोविजितेंद्रियः ॥
युक्तइत्युच्यतेयोगीसमलोष्टाश्मकांचनः ॥८॥

युक्तः १ योगी २ इति ३ उच्चते४ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा५कूटस्थः६ विजितेंद्रियः७ समलोष्टाश्मकांचनः ८ ॥८॥ अ० उ० जिसयोगरूढ को अखंडात्मा अपरोक्षहै उसका लक्षण यह है* ज्ञानविज्ञानकरके तृप्त है अन्तः करण जिसका ५ निर्विकार ६ भलेप्रकार जीती हैं इन्द्रियें जिसने ७ समान है लोहा पाषाण और सोना जिसको ८ सि० उसको योगारूढ योगी कहते हैं *टी० महावाक्य श्रवण करके यह जानना, कि मैं ब्रह्महूं, क्योंकि वेदवाक्यमें विश्वास(श्रद्धा) करना अवश्य योग्य है,वेदोंके कहनेसे यह जानना. कि मैं सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म हूँ इसको ज्ञान कहते हैं अर्थात् यह तो परोक्षज्ञान है और युक्ति समन्वयादिकरके साक्षात् करामलकवत् अनुभव करना इसको विज्ञान कहते हैं अर्थात् यह अपरोक्षज्ञान है. इन दोनों ज्ञान-विज्ञानकरके संतुष्ट हैं अंतःकरण जिसका, उसको ज्ञानविज्ञानतृप्ता-

त्मा कहते हैं ५ रागद्वेषादि विकारों करके जो रहित हैं उसको
कूटस्थ कहते हैं ६ ॥ ८ ॥

मू०—सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपिचपापेषुसमबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

सुहृत् १ मित्र२ अरि ३ उदासीन ४ मध्यस्थ ५ द्वेष ६ बंधु
७। सि० यहांतक एक पद है ❀ साधुषु २ च ३ पापेषु ४ अ
५ समबुद्धिः ६ विशिष्यते ७ ॥९॥ अ०—उ० सातवें अङ्कतक
पद है. पापीसाधुआदिजनोंमें समान बुद्धि है जिसकी, सो पूर्वोक्त
भी विशेष है यह कहते हैं, वे प्रयोजन जो दूसरेका भला चाहे
करे और जो ममता और स्नेहकरके वर्जित हो, उसको, सुहृद्
हैं १ ममतास्नेहके वश होकर जो भला करे उसको मित्र कहते
२ जो अपना सदा अनिष्टचिन्तवन करता है और प्रत्यक्ष भी कर
है उसको अपना शत्रु समझना ३ किसीका न बुरा चाहना न
चाहना, इसको उदासीन कहते हैं ४ दोके झगडेमें यथार्थ ज्यों
त्यों कहनेवाला मध्यस्थ है ५ आत्माका अप्रिय अर्थात् आपसे
प्यार नकरे याने अपनेकोलाभ हुआ देखकर जिस दूसरेको वह
न हो उसको द्वेष्य कहते हैं ६ संबंधि ७ इन सबमें ७।१ और
जनोंमें २। ३ सि० और ❀ पापी पुरुषोंमें भी ४। ५ समबु
वाला ६ विशेषहै ७ तात्पर्य शत्रु मित्रादिमें जो न राग करता
द्वेष करता है सो पूर्वोक्तयोगीसे भी विशेष है ॥

मू०—योगीयुंजीतसततमात्मानंरहसिस्थितः ॥
एकाकीयतचित्तात्मानिराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

योगी १ सततम् २ आत्मानम् ३ युंजीत ४ रहसि ५ स्थित
एकाकी ७ यतचित्तात्मा ८ निराशीः ९ अपरिग्रह १० ॥ ११

अ०-उ० योगारूढका लक्षण कहा, अब योगको अङ्गोंके सहित कहते हैं योगारूढ निरन्तर २ अन्तःकरणको३ समाधानकर४एकांत में ५ बैठकर ६ अकेला ७ जीता है अन्तःकरण शरीर जिसने ८ आशारहित ६ परिग्रहरहित १० सि० ऐसा होवे ❀ टी० योगारूढ १ बहिरंगसाधनोंमें,अर्थात् तीर्थयात्रादिमें मुख्यता करके प्रवृति नहो निरन्तर दिनरात्रि अन्तःकरणका निरोध कर, क्षणमात्र बहिर्मुख वृत्ति न होने पावे २ जिसजगह सिंह, सर्प और चोर इत्यादिका अतिभय न हो स्त्री बालक या प्राकृत जन इन्होंका समुदाय न हो शुद्ध चित्तकेप्रसन्न करनेवाले स्थलमें अर्थात उत्तराखण्ड भागीरथी नर्मदाजीके तीर इत्यादि स्थलोंमे चिरकाल निवास करे ५ एकान्त में भी अकेलाही रहे,दोचार इकट्ठे होकर नहीं रहना ७ एकान्तजगह भी हो. और अकेलाभी हो. तो वहां रहकर शिष्यसेवकोंको उपदेश करना इत्यादि क्रिया. अथवा मंदिरकुटीके पास फुलवारी लगाना इत्यादि क्रिया न करे कि जिससे वृत्ति वहिंमुख हो८एकांतमें अकेला जब निवासकरे तब किससे यह आशा न रक्खे कि हमको भी न कोई इसी जगह वैठेहुए भिक्षा देजायाकरे और बंधान्नभीन बांधे और बंधान्नकीआशारक्खे तात्पर्य भिक्षान्न भोजनकरना योग्यहै९एकांतमें अकेला जो मनके समाधान करनेको बैठे, तो भोजनवस्त्रादि सिवाय शरीरयात्राके संचय न करे, ऊपर कहे अनुसार जब चलेगा, तब अभ्यास होसक्ता है १० निरन्तर एकान्त अकेला, जितेन्द्रिय,आशा रहित, परिग्रहरहित ये सब अंग अन्तःकरणसमाधान करनेके हैं, बिना गृहस्थाश्रमके छोडे, बिनाविरक्त हुए इन सब अंगोंका अनुष्ठान भलेप्रकार नहीं होसक्ता जो सब न होसके, तो जितना होसके,उतना अवश्य करना योग्य है, बिना अभ्यासके वहिरंग साधन निष्फल है

ईश्वराराधनादिकर्मोंका फल यही हैं. कि अन्तःकरण शांतहोना॥१०॥

मू०-शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्यस्थिरमासनमात्मनः॥
नात्युच्छ्रितंतिनानीचंचैलाजिनकुशोत्तरम्॥११॥

शुचौ १ देशे २ आत्मनः ३ आसनम् ४ स्थिरम् ५ प्रतिष्ठाप्य ६ न ७ अति ८ उच्छ्रितम् ९ न १० अति ११ नीचम् १२ चैलाजिन कुशोत्तरम् १३ ॥११॥ अ०-उ० आसनकी विधि दोश्लोकोंमें कहते हैं आसन योगका बहिरंग साधन है, अंतरंग अभ्यासका सहायक है. पवित्रभूमिमें १।२ अपना ३ आसन ४ अचल ५ बिछाकर ६ सि० अभ्यास करे, कैसा है वो आसन कि ❀ न ७ बहुत ८ ऊंचा ९ न १० बहुत ११ नीचा १२ सि०हो फिर कैसा इस अपेक्षा में कहते हैं कि ❀ कुश, मृगचर्म और वस्त्र ये ऊपर हों भूमिके १३ अर्थात् पृथिवीके ऊपर प्रथम कुशाका आसन, उसके ऊपर मृगचर्मादि, उसके ऊपर सूतवस्त्र १२ सि० बिछावे ❀ टी० कोई भूमि तो स्वभावसेही पवित्र होती है. जैसे श्रीगंगाजीकी रेती "वसुधा सर्वत्र शुद्धा न लेपा यत्रविस्मृता" पृथ्वी सगह पवित्र है परंतु जहां लीपीगई नहो वहां फिर उसको लीप लेना योग्यहै अथवा उत्तराखंडा- दिको पवित्र देशसमझना योग्य है १।२ दूसरेके आसनपर बैठना शास्त्रमें निषिद्ध है इसवास्ते अपना आसन कहा ३।४ स्थिरशब्दसे तात्पर्य यहहै कि यह काम दो चार घडीका वा दोचार महीने का नहीं बरसों का यह काम है अर्थात् जबतक जीवे तब तक यही अभ्यास करता रहे. यह अभ्यास अज्ञानी को ज्ञानका प्राप्त कराने वाला और ज्ञानीको तो जीवन मुक्ति देनेवाला सिवाय इसके और क्या काम श्रेष्ठतर है, कि इसको छोडकर

दूसरा करना चाहिये ५ रुईभरे बिछोनेपर वा वस्त्र बिछाकर उस पर न बैठना, चौकीपर छतकी मुंडेरी उसपर भी बैठकर योगाभ्यास नहीं करना ७। ८। ९ विनाआसन पृथिवीपर बैठकर वा गढ्ढेमेंबैठकर, यह योग्याभ्यास नहीं होसकता १०॥ ११॥ १२. इत्यभिप्रायः॥ ११॥

मू०-यत्रैकाग्रंमनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः॥
उपविश्यासनेयुंज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥१२॥

यतचित्तेन्द्रियक्रियः १ तत्र २ आपने ३ उपविश्य ४ मनः ५ एकाग्रम् ६ कृत्वा ७ आत्मविशुद्धये ८ योगम् ९ युंज्यात् १० ॥१२॥ अ०-जीतीहैं चित्तकी और इंद्रियोंकी क्रिया जिसने १ सि० योगी ❀ तिस आसनपर २। ३ बैठकर ४ मनको ५ एकाग्र करके ६। ७ अंतःकरणकी शुद्धकेलिये ८ सि० इस ❀ योगका अभ्यास करे ९।१० टी० अगले पिछले बातोंको याद करना यह चित्तकी क्रिया है, देखना, श्रवण करना इत्यादि इंद्रियोंकी क्रिया हैं १ मनको सब विषयोंसे हटाकर आत्मा के सन्मुखकरके पिछले मंत्र में जिस प्रकारका आसन कहा है, उसपर बैठकर अभ्यास करे २।३।४।५।६।७।१०॥१२॥

मू०-समंकायशिरोग्रीवंधारयन्नचलंस्थिरः॥
संप्रेक्ष्यनासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन्॥१३॥

कायशिरोग्रीवम् १ समम् २ अचलम् ३ धारयन् ४ स्थिरः ५ स्वम् ६ नासिकाग्रम् ७ संप्रेक्ष्य ८ दिशः ९ च १० अनवलोकयन् ११॥ १३॥ अ०-उ० चित्तके एकाग्र करनेमें देहकी धारणा भी बहिरंगसाधनमें उपयोगी है, उसको भी दोमंत्रोंमें कहते हैं. देहका मध्यभाग. शिर और ग्रीवा इनको १ सम २ अचल ३ धारण करता हुआ ४ दृढ़ प्रयत्नवान् होकर ५ अपने ६ नासिकाके अग्रको ७ देखकर ८ सि० पूर्वादि ❀ दिशाको ९ भी १० नहीं

देखता हुआ ११ सि० आत्मपरायण होकर बैठे ❀ टी० मूलाधारसे लेकर मूर्द्धातक सीधा निश्चल बैठे १ । २ । ३ । ४ । दुःख समझकर प्रयत्नमें कचाई न होने पावे सावधान होकर धीरज सहित दृढ होकर बैठे. जो शरीरपात हो जाय तो होजावे परन्तु विनामनके शान्त हुए वहांसे हटना ठीक नहीं ७ नासाग्रदृष्टि से तात्पर्य यह नहीं, कि नासिकाके अग्रभागको ही देखते रहना. किंतु यह तात्पर्य है कि ऐसे बैठे जैसे नासाग्रदृष्टि होकर बैठते हैं दृष्टि और वृत्ति आत्मामें लगाना योग्य है, नेत्रोंको न बहुत खोलना न मीचना ६ । ७ । ८ इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

मू०-प्रशांतात्माविगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥
मनःसंयम्यमच्चितोयुक्तआसीत मत्पर ॥१४॥

प्रशांतात्मा १ विगतभीः २ ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ३ मनः ४ संयम्य ५ मच्चित्तः ६ युक्तः ७ मत्परः ८ आसीत ९ ॥ १४ ॥

अ०—भलेप्रकार शान्त हुआ है अंतःकरण जिसका १ दूर होगया है भय जिसका २ ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित ३ मनको ४ रोककर ५ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपमें चित्त है जिसका ६ सि० सो ❀ समाहित हुआ ७ मैं सच्चिदान्दस्वरूपही हूँ, परमपुरुषार्थ जिसका ८ सि० ऐसे समझकर ❀ बैठे ९ टी० अष्टांगमैथुनकरके वर्जित, ज्ञानका उपदेश करनेवाले गुरुकी टहलमें तत्पर, भिक्षान्नकाही सदाभोजन करनेवाला ३ अंतःकरणकी वृत्तियोंको उपसंहार करके ४ । ५ समाधान, अप्रमत्त और अनालस्य हुआ ७ परब्रह्मके प्राप्तिको ही परमपुरुषार्थ समझकर ८ पूर्वोक्त आसनपर बैठकर अभ्यास करे ॥ १४ ॥

मू०-युञ्जन्नेवंसदात्मानंयोगीनियतमानसः ॥
शान्तिंनिर्वाणपरमांमत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

योगी १ सदा २ एवम् ३ आत्मानम् ४ युंजन् ५ नियतमानसः
शान्तिम् ७ अधिगच्छति ८ निर्वाणपरमाम् ९ । १० ॥ १५ ॥
भा०-उ० इसप्रकार अभ्यास करनेसे जो होता है सो सुन, हे
अर्जुन ! योगी विरक्त १ सदा २ इसप्रकार ३ शरीरेन्द्रियप्राणांतःकर-
णका ४ समाधान करता हुआ ५ निरुद्ध हुआ है मन जिसका ६
सि० सो ❀ शांतिको ७ प्राप्त होता है सि० कैसी है वो शांति ❀
मोक्षमें निष्ठा है जिसकी अर्थात् मोक्षमें तात्पर्य है जिसका ९ सि०
और वो शान्ति ❀ सच्चिदानंदरूप है १० सि० इसको प्राप्त होता
है ❀ तात्पर्य परमगतिको अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥१५॥

मू०-नात्यश्नतस्तुयोगोऽस्तिनचैकांतमनश्नतः ॥
नचातिस्वप्नशीलस्यजाग्रतोनैवचार्जुन ॥१६॥

अर्जुन १ अतिः २ अश्नतः ३ तु ४ योगः ५ न ६ अस्ति ७
एकान्तम् ८ अनश्नतः ९ च १० न ११ अति १२ स्वप्नशीलस्य
१३ च १४ न १५ जाग्रतः १६ च १७ न १८ एव १९ ॥ १६ ॥
भा०-उ० ध्याननिष्ठयोगीको अब आहारादिका नियम कहते हैं.
दो मंत्रोंमें यहभी बहिरंग साधन उपयोगी है हे अर्जुन ! १ बहुत २
भोजन करनेवालेको ३ भी ४ योग ५ नहीं ६ होता ७ अर्थात्
योग सिद्ध नहीं होता ७ अत्यन्त ८ नहीं खानेवालेको ९ भी
१० नहीं ११ बहु १२ सोनेवालेको १३ भी १४ नहीं १५ जाग-
नेवालेको १६ भी १७ नहीं १८ सि० योगसिद्ध होता ❀
निश्चयसे १९ सि० यही बात है ❀ ॥ १६ ॥

मू०-युक्ताहारविहारस्ययुक्तचेष्टस्यकर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्ययोगोभवतिदुःखहा ॥१७॥

कर्मसु १ युक्तचेष्टस्य २ युक्ताहारविहारस्य ३ युक्तस्वप्नावबोधस्य ४ दुःखहा ५ योगः ६ भवति ७ ॥ १७ ॥ अ०-उ० ऐसे पुरुषको योग सिद्ध होता है, कर्मोंमें १ प्रमित याने मापीहुई है क्रिया जिसकी २ युक्त खाना और चलना है जिसका ३ युक्त सोना और जागना है जिसकी ४ सि० उसको ❀ दुःखों का नाश करनेवाला ५ योग ६ सि० सिद्ध ❀ होता है ७. टी० चार भागमेंसे दो भाग तो अन्नसे पूर्ण करे, एक भाग जलसे पूर्ण करे और एक भाग पवन आनेजानेके लिये खाली रक्खे. तात्पर्य यह कि एकवख्त कुछ क्षुधा रखकर भोजन करना. "द्वौभागौपूरयेदन्नैस्तोयेनैकंप्ररयेत् ॥ मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्" सिवाय शौचस्नानभिक्षाके वृथा डोलना या फिरना बेजोग है क्रियाका प्रमाण बांधना योग्य है अर्थात् इतना दूर जंगल जाना इतने देरमें स्नान करना, अमुक उसय उसमें भी, इतने देरमें भोजन करना, ये सब विधि मानवादि धर्मशास्त्र में से श्रवण करना योग हैं ३ रात्रिके बीचमें डेढपहर सोना, सिवाय उसके सदा जानना योग्य है ॥ १७ ॥

मू०-यदाविनियतंचित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निस्पृहःसर्वकामेभ्योयुक्तइत्युच्यतेतदा ॥१८॥

यदा १ विनयतम् २ चित्तम् ३ आत्मनि ४ एव५ अवतिष्ठते ६ सर्वकामेभ्य ७ निस्पृहः ८ तदा ९ युक्तः १० उच्यते ११ इति १२ ॥१८॥ अ०-उ० किसकालमें योग सिद्ध होता है, इस अपेक्षा में कहते हैं. जिस कालमें १ भलेप्रकार निरुद्धहुआ याने जीता हुआ २ चित्त ३ आत्मा में ४ ही ५ ठहरता है ६ सबकामोंसे ७ दूर होगई है तृष्णा जिसकी ८ सि० सो ❀ तिसकाल में ९ सिद्धयोगी १०

कहा है ११ यह १२ सि० जानना योग्य है ❀ अर्थात् तिसकाल में इस लोककी या परलोककी सब कामना दूर होजावें, और चित्त भलेप्रकार एकाग्र होकर आत्मामें स्थित होवे जिसका, सो महात्मा कालमें सिद्धयोगी कहा जाता है, तात्पर्य जब ऐसा होजाय, कि जैसा इस मन्त्र में कहा है, तब समझना कि मुझको अब योग सिद्ध हुआ ॥ १८ ॥

मू०-यथादीपोनिवातस्थोनेंगतेसोपमास्मृता ॥
योगिनोयतचित्तस्ययुंजतोयोगमात्मनः ॥१९॥

यथा १ दीप निवातस्थः ३ न ४ इंगते ५ सा ६ उपमा ७ स्मृता ८ योगिनः ९ यतचित्तस्य १० आत्मनः ११ योगम् १२ युंजतः १३ ॥१९॥ अ०-उ एकाग्रचित्त की उपमा यह है जैसे १दीपक२ पवन रहित ऐसे जगह जलता हुआ ३ नहीं ४ हलता ५ सो ६ उपमा ७ कही है ८ योगीके ९ जीते हुए चित्त को १० तात्पर्य जिसयोगी का भलेप्रकार अन्तःकरण निरोध है, उस अन्तःकरणको यह उपमा है कि जैसे पवन रहित जगे जलता हुआ दिवा नहीं हलता, ऐसे ही उस योगीका चित्त स्थिर रहता है, सि० फिर कैसा है वो योगी कि जिसका स्थिर चित्तरहता है सो कहते है ❀ आत्माके ११सि० प्राप्तके लिये ❀ आत्मध्यानयोगका १२अनुष्ठान करनेवालेका१३ सि० चित्त स्थिर रहता है ❀ ॥ १९ ॥

मू०-यत्रोपरमतेचित्तंनिरुद्धंयोगसेवया ॥
यत्रचैवात्मनात्मानंपश्यन्नात्मनितुष्यति ॥२०॥

यत्र १ योगसेवया २ निरुद्धम् ३ चित्तम् ४उपरमते ५ यत्र ६ च ७ आत्माना ८ आत्मानाम् ९ एव १० पश्यन् ११ आत्मनि १२ तुष्यति १३ । २० ॥ अ० जिसकालमें १ समाधियोगका अ

ष्ठान करके २ निरुद्ध हुआ ३ चित्त ४ सि० संसारसे ❀ उपराम होता है ५ और जिसकालमें ६ । ७ सि० समाधिकरके शुद्ध किया हुआ जो अन्तःकरण, तिस ❀ अन्तःकरणके ८ परमचैतन्य ज्योतिः स्वरूपआत्माको ९ ही १० देखता हुआ ११ अर्थात् आत्माको प्राप्त हुआ ११ सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसे आत्मामें १२ संतुष्ट होता है १३ तात्पर्य तिसकालमें योगकी सिद्धि होती है ॥ २० ॥

मू०-सुखमात्यन्तिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥
वेत्तियत्रनचैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

यत् १ आत्यंतिकम् २ सुखम् ३ अतीन्द्रियम् ४ बुद्धिग्राह्यम् ५ यत्र ६ च ७ अयम् ८ स्थितः ९ तत् १० वेत्ति ११ तत्त्वतः १२ एव १३ न १४ चलति १५ ।२१॥ अ०-उ० जो १ अत्यन्त २ सुख ३ इंद्रियोंका विषय नहीं ४ अपने अनुभव करके ग्रहण होता है ५ और जिसकालमें ६ । ७ यह ८ सि० विद्वान् आत्मस्वरूपमें ❀ स्थित हुआ ९ तिसको १० अर्थात् तिस सुखका ११ अनुभव करता है ११ सि० आत्म ❀ तत्वसे १२ भी १३ नहीं १४ चलता १५ सि० तिसकालमें योगकी सिद्धि होती हैं ❀॥२१॥

मू०-यंलब्ध्वाचापरंलाभंमन्यतेनाधिकततः ॥
यस्मिन्स्थितोनदुःखेनगुरुणापिविचाल्यते॥२२

यम् १ लब्ध्वा २ अपरम् ३ अधिकम् ४ लाभम् ५ न ६ मन्यते ७ ततः ८ यस्मिन् ९ च १० स्थितः ११ गुरुणा १२ दुःखेन १३ अपि १४ न १५ विचाल्यते १६ ॥ २२ ॥ अ०-जिसको १ अर्थात् ❀ आत्माको १ प्राप्त होकर २ दूसरा ३ अधिक ४ लाभ ५ नहीं ६ मानता है ७ तिससे ८ अर्थात् आत्माके लाभसे ८ और जिसमें

अर्थात् आत्मामें ६ । १० स्थित हुआ ११ बडे १२ दुःखकरके १३ भी १४ नहीं १५ विचलता है ॥ १६ । २२ ॥

मू०-तंविद्याद्दुःखसंयोगवियोगंयोगसंज्ञितम् ॥
सनिश्चयेनयोक्तव्योयोगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

तम् १ योगसंज्ञितम् २ विद्यात् ३ दुःखसंयोगम् ४ सः ५ योगः ६ अनिर्विण्णचेतसा ७ निश्चयेन ८ योक्तव्यः ६ ॥ २३ ॥ अ०-सि० पिछले तीन मंत्रोंमें जो आत्माकी अवस्थाविशेष कही*तिसको १ योगसंज्ञित २ तू जान ३अर्थात् योग है संज्ञा जिसकी यानेजिस अवस्थाविशेषका योग नाम है उसीको तू योग जान १ । २ । ३ सि० पिछले तीन मंत्रोंमें जो आत्माकी अवस्थाविशेष कही उसी का नाम योग है कैसा है वो योग * दुःखके संयोगका वियोग है जिसमें ४ अर्थात् दुःख और विषय सम्बन्धी सुख जहां कोई नहीं केवल निरतिशय आनन्द है विषयसम्बन्ध सुख भी विद्वान् के दृष्टिमें दुःखोंका मूल है क्योंकि अतिशयवाला सुख दुःखरूप है, इस जगह योगशब्दका विपरीतलक्षण समझना क्योंकि इस जगह वियोगका नाम जो योगसंज्ञित है, यह विपरीति अलंकार कहलाता है, जैसे सुन्दरको वेसुन्दर कहना ४ सो ५ योग ६ अनिर्विण्णचित्त करके ७ सि० शास्त्र और आचार्योंसे * निश्चय करके ८अनुष्ठान करना योग्य है६तात्पर्य आत्मामें तत्पर होना योग्य है टी० दुःख-बुद्धि करके प्रयत्न की जो शिथिलता उसको छोडकर अर्थात् चित्तमें यह नहीं चिंतवन करना, कि उसमें तो दुःख प्रतीत होता है, पीछे आनन्दफल किसने देखा है, ऐसा समझकर चित्तको कच्चा न करे, धैर्यसे वारम्वार उत्साहित करे ॥ २३ ॥

मू०-संकल्पप्रभावन्कामांस्त्यक्त्वासर्वानशेषतः॥
मनसैवेंद्रियग्राममविनियम्यसमन्ततः॥ २४॥
शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्याधृतिगृहीतया॥आत्म-
संस्थंमनःकृत्वानाकिंचिदपि चिन्तयेत्॥२५॥

संकल्पप्रभवान् १ कामन् २ सर्वान् ३ अशेषतः ४ त्यक्त्वा ५ मनसा ६ एव ७ समंततः ८इन्द्रियग्रामम् ९ विनियम्य १०॥२४॥ शनैः १ शनैः २उपरमेत् ३धृतिगृहीतया ४ बुद्ध्या ५ मनः ६आत्म-संस्थम् ७ कृत्वा ८ किंचित ९ अपि १० न ११ चिन्तयेत् १२॥२५

उ०-संकल्पसे उत्पन्न होती हैं १ सि० योगकी वैरी जो ❀ कामना सि० तिन ❀ सबको ३ समूल ४ त्यागकर ५ सि० विवेकयुक्त ❀ मनकरके ६ निश्चयसे ७ सब तरफसे इंद्रियोंके समूहको ९ रोककर १० ॥ २४ ॥ सहज १ सहज २अर्थात् अभ्यासक्रमकरके १।२सि० संसारसे ❀उपराम हो ३ अर्थात् देखना सुनना बोलना खाना सोना इत्यादिक्रियाओंसे मनको शनैः शनैः हटाकर आत्मामें दिन दिन प्रति विशेष लगाना योग्य है ३धीरजके सहित ४बुद्धि करके अर्थात् धीरज करके वश की हुई जो बुद्धि, तिसकरके ५ मनको ६ आत्मामें भले प्रकार स्थित ७ करके अर्थात् यह सब आत्माही है आत्मासे पृथक् कुछ भी नहीं इसप्रकार मनको आत्माकार करके ८ कुछ ९ भी १० न ११ चिन्तवनकरे १२ तात्पर्य यही योगकी परमविधि है, टी० चौवींसवें मन्त्रकी चित्तसे किंचिन्मात्र भी चिन्तवन किया, और उससे मनमें कामना उत्पन्न हुई तो वह विषयोंका चिन्तवन करना ही अनर्थका हेतु है १ सर्वान् अशेषतः इन दोनोंपदोंके अर्थमें कुछ भेद नहीं प्रतीतहोता, दोपद कहनेसे तात्पर्य

श्रीमहाराजका यह है, कि इसलोकके वा परलोक के कामना का अणुमात्र भी न रहने पावे. कामनासे अन्तःकरणको निर्लेप पर कर देना योग्य है. ३।४ शब्दादिविषयों से ८ सब इन्द्रियोंका ५ निरोधकरके १० सि० पूर्वोक्तयोगका अनुष्ठान करना योग्य है ❀ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मू०-यतोयतोनिश्चरतिमनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततोनियम्यैतदात्मन्येववशंनयेत ॥२६॥

अस्थिरम् १ चंचलम् २ मनः ३ यतः ४ यतः ५ निश्चरति ६ ततः ७ ततः ८ नियम्य ९ एतत् १० आत्मनि ११ एव १२ वशम् १३ नयेत् १४॥२६॥ अ०-उ० विचारसेभी जो कदाचित् रजोगुण के वशसे मन न ठहरे आत्मामें, तो फिर प्रत्याहार करके ठहरना योग्य है सोई कहते हैं. अस्थिर १ चंचल २ मन ३ जिसजिस ४।५ सि० विषयमें ❀ जावे ६ तहांतहांसे ७।८ रोककर ९ इसको १० अर्थात् मनको १० आत्मामें ११ ही १२ वश १३ करे १४ अर्थातआत्मा में ही स्थिर करे १४ टी० मनका स्वभावही यह है, कि एक जगह नहीं ठहरता, सदाका चंचल है १ । २ इसप्रकार अभ्यास करने यह अस्थिर मन आत्मामें स्थिर होजाता है, इसवास्ते मनपर सदा दृष्टि रखना योग्य है ॥ २६ ।

मू०-प्रशांतमनसंह्येनंयोगिनंसुखमुत्तमम् ॥
उपैतिशान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

एनम् १ योगिनम् २ हि ३ उत्तमम् ४ सुखम् ५ उपैति ६ शांतरजसम् ७ प्रशांतमनसम् ८ ब्रह्मभूतम् ९ अकल्मषम् १० ॥ २७ ॥ अ०-उ० इसप्रकार अभ्यास करनेसे रजोगुणका नाश होता है. रजोगुणका नाश होनेसे योगका जो फल आत्मसुख. वो प्राप्त

होता है. यहकहते हैं, इस योगी को १। २ ही ३ उत्तम ४ सुख ५ प्राप्त होताहै ६ सि० कैसाहै यह योगी ❀ शान्त होगया है रजोगुण जिसका ७ भले प्रकार शान्त होगया है मन जिसका ८ जीवन्मुक्त ९ निष्पाप १० अर्थात् धर्म अधर्म करके वर्जित १० तात्पर्य ऐसे योगी को निरतिशय सुख प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

मू०-युंजन्नेवंसदात्मानंयोगीविगतकल्मषः ॥
सुखेनब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतंसुखमश्नुते ॥२८॥

एवम् १योगी २सदा ३ आत्मानम् ४ युञ्जन् ५ अत्यन्तम् ६ सुखम् ७ अश्नुते ८ विगतकल्मषः ९ सुखेन १० ब्रह्मसंस्पर्शम् ११ ॥२८॥ अ०-इस प्रकार १ योगी २ सदा ३ मनको ४ वश करता हुआ ५ अत्यन्त ६ सुखको ७ अर्थात् निरतिशय सुखको ७प्राप्त होताहै८सि० कैसा है वो योगी? ❀ दूर होगये हैं पाप जिसके ९सि० सो वो फिर किसप्रकार के सुखको प्राप्त होता है, अर्थात् कैसाहै वो सुख ❀ अनायास करके १० ब्रह्मका स्पर्श है जिसमें ११ अर्थात् जीवब्रह्मसे एकता को प्राप्त होता है और जिसको अखंडानन्दसाक्षात्कार ऐसा भी कहते हैं, तात्पर्य जीवन्मुण होजाता है. याने जीवते हुए ही वह नित्य अखंडानन्दनका अनुवभव करता है ११ ॥ २८ ॥

मू०-सर्वभूतस्थमात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि ॥
ईक्षतेयोगयुक्तात्मासर्वत्रसमदर्शनः ॥२९॥

योगयुक्तात्मा १ सर्वत्र २ समदर्शनः ३ आत्मानम् ४ सर्वभूतस्थम् ५ सर्वभूतानि ६ च ७ आत्मनि ८ ईक्षेत ९॥२९॥ अ० उ०-अब उस योगका फल जिस ब्रह्म के एकता को दिखाते हैं, योग करके युक्त है अन्तःकरण जिसका अर्थात् समाहित अन्तःकरण वाला १ सब जगह२सम देखने वाला ३ सि० अपने ❀ आत्मा को ४ सब

भूतोंमें स्थित ५ और सब भूतोंको ६।७ सि० अपने * आत्मामें ८
देखता है ९ टी० ब्रह्माजी से लेकर चींटी पर्यन्त आत्मा की एकता
देखता है६. समविषम भूतोंमें ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर पर्यन्त निर्वि-
शेष ब्रह्म और आत्मा के एकता का ज्ञान है जिसको सो सर्वत्र सम
देखने वाला है ॥२९॥

मू०-योमांपश्यतिसर्वत्रसर्वंचमयिपश्यति ॥३०॥
तस्याहंनप्रणश्यामिसचमेनप्रणश्यति ॥३०॥

यः १ माम् २ सर्वत्र ३ पश्यति ४ सर्वम् ५ च ६ मयि ७ पश्यति
८ तस्य ९ अहम् १० न ११ प्रणश्यामि १२ स १३ च १४ मे १५
न १६ प्रणश्यति १७ ॥ ३० ॥ अ०-उ० जीव ब्रह्म की एकता
देखने का फल कहते हैं. यही मुख्य उपासना परमेश्वर की है. जो १
मुझ सच्चिदानन्द परमेश्वरको २ सर्वत्र ३ देखताहै४और सबको ५।६
मुझमें ७ देखताहै ८ अर्थात् मुझ आत्मा को सब भूतोंमें और सब
भूतोंको मुझ सब भूतों के आत्मा में देखता है ८ तिसको ९ मैं १०
नहीं ११ परोक्ष हूं. १२ अर्थात् जो ऐसे समझता है, उसी को मैं
साक्षात् हूँ वोही मेरा दरशन करता है. आत्मा से पृथक् मैं नहीं १२
और सो १३।१४ अर्थात् विद्वान् १४ मुझको १५ नहीं १६ परोक्ष
है १७ तात्पर्य वो मेरा आत्मा है. वो मुझको सदा अपरोक्ष है. इसी
हेतु से ब्रह्म का जानने वाला ब्रह्म कहलाता है, मुझ में और ज्ञानी
में किंचित भी भेद नहीं ॥३०॥

मू०-सर्वभूतस्थितंयोमांभजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथावर्तमानोपि योगीमयिवर्तते ॥३१॥

एकत्वम् १ आस्थितः २ यः ३ माम् ४ सर्वभूतस्थितम् ५ भजति
६ सः ७ योगी ८ सर्वथा ९ वर्तमानः १० अपि ११ मयि १२ वर्तते

१३ ॥ ३१ ॥ अ०–उ० पूर्वमंत्रोक्तज्ञानी विधिनिषेध का दास नही अर्थात् परतंत्र नही स्वतंत्र है, यह कहते हैं, सि० ब्रह्म के साथ ❀ एकता को १ प्राप्त हुआ २ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप आपने प्रत्यगात्मा को पूर्ण ब्रह्म जानता हुआ २ जो ३ मुझ सच्चिदानंद सबभूतोंमें स्थित ४ । ५ सि० ऐसेको ❀ भजता हैं ६ अर्थात् यह सब वासुदेव है ऐसे जो समझता है ६ सो ७ योगी याने ज्ञानी ८ सर्वथा ९ वर्तमान १० भी ११ मुझ सच्चिदानंदस्वरूपमें १२ वर्तता है १३. टी० विधिनिषेधको उल्लंघन करभी जो विद्वान् का व्यवहार किसी को प्रतीत होताहो तोभी विद्वान् वेदोंके साचीसे ब्रह्ममेंही विहार करता है. विधिनिषेध अज्ञानियोंके वास्ते हैं, विद्वानों का व्यवहार विदेहमुक्ति में क्षति करने वाला नहीं यह बात आनन्दामृतवर्षिणीके तृतीयाध्यायमें भलेप्रकार स्पष्ट की गई है, तत्र द्रष्टव्यम् ॥ ३१ ॥

मू०–आत्मौपम्येनसर्वत्रसमंपश्यतियोऽर्जुन ॥
सुखंवायदिवादुःखसयोगीपरमोमतः ॥३२॥

अर्जुन १ यः २ आत्मौपम्येन ३ सर्वत्र ४ समम् ५ पश्यति ६ सुखम् ७ वा ८ यदि ९ वा १० दुःखम् ११ सः १२ योगी १३ परमः १४ मतः १५ ॥ ३२ ॥ अ०–उ० ज्ञानियोंमें ऐसा ज्ञानी श्रेष्ठ है हे अर्जुन ! १ जो अर्थात् विद्वान् २ आत्माके उपमाकरके ३ सर्वत्र ४ सम ५ देखता है ६ सुखको ७ भी ८ और ९ दुःखको भी १०।११ सो १२ विद्वान् १३ श्रेष्ठ १४ माना है १५ सि० महात्मापुरुषोंने अर्थात् महात्मा ऐसे विद्वान् उत्तम मानते हैं ❀ टी० जैसे इष्टके और अनिष्ट के प्राप्तिमें मुझको दुःखसुख होता है, ऐसेही सबको होता है इसवास्ते जहांतक होसके किसीको शरीरसे मनसे या

प्राणीसे दुःख नहीं देना, सुख देना योग्य है, आप अपनेको तो शूकरकूकर भी सुख चाहते हुए प्रयत्न करते हैं, दूसरेको सुख देना परोपकार करना, यह सज्जनों का काम है. नहीं तो पशुपक्षी और मनुष्य इनमें क्या विशेषता हुई ? अथवा ऐसेही सब जीव हैं अपनेसे दूसरेको नीचा समझना नीचोंका काम है. आत्मदृष्टि करके और देहदृष्टिकरके भी सम देखना योग्य हैं, क्योंकि देह सबके अनित्य हैं और आत्मा सबका नित्य है यह विचार परमार्थका है व्यवहारमें परमार्थ नहीं मिलसक्ता ॥ ३२ ॥

मू०--अर्जुनउवाच॥ योऽयंयोगस्त्वयाप्रोक्तःसाम्येन मधुसूदन ॥ एतस्याहंनपश्यामिचंचलत्वात् स्थितिंस्थिराम् ॥ ३३ ॥

मधुसूदन १ अयम् २ यः ३ योगः ४ साम्येन ५ त्वया ६ प्रोक्तः ७ एतस्य ८ स्थिराम् ९ स्थितिम् १० अहम् ११ न १२ पश्यामि १३ चंचलत्वात् १४ ॥३३॥ अ०–उ० श्रीभगवान्का यह उपदेशसुनकर, अर्जुनने विचार किया कि श्रीमहारज जो कहते हैं वो तो सब सत्य है, परन्तु मन लयविक्षेपरहित होकर आत्माकार होकर दीर्घकाल स्थित रहै, यह मेरे कम समझसे मुझको असंभव प्रतीत होता हैं, इसी हेतुसे कहे हुए श्रीमहाराजके लक्षणोंमें असंव-दोष मानता हुआ अर्जुन प्रश्न करता हैं जिज्ञासा करके दो श्लोकोंमें हे कृष्णचन्द्र ! १ यह २ जो ३ योग ४ समता करके ५ आपने ६ कहा ७ इसकी ८ दीर्घकाल ९ स्थित १० मैं ११ नहीं १२ देखता हूं १३ अर्थात् क्षण दो क्षण या घड़ी दो घडी मन लयविक्षेपरहित होकर समताको प्राप्त होजायगा यह तो संभव हो सक्ता हैं, परन्तु सदा अथवा दिनरात्रिमें पांचचार पहर मन सम याने आत्माकार रहे

यह मेरे कम समझसे मुझको असंभव मालूम होताहै,सि०१३ क्योंकि मन*चंचल होनेसे १४ अर्थात् मन तो चंचल है वो कैसे ठहर सक्ता है १४ ॥३३॥

मू०–चंचलंहिमनः कृष्णप्रमाथिबलवद्दृढम् ॥
तस्याहंनिग्रहंमन्येवायोरिवसुदुष्करम् ॥ ३४॥

कृष्ण १ मनः २चञ्चलम् ३ हि ४ प्रमाथि ५ बलवत ६ दृढं ७ तस्य ८ निग्रहम् ९ वायोः १० इव ११सदुष्करम् १२ अहम् १३ मन्ये १४ ॥३४॥अ०–उ० सिवाय चंचलहोनेके जो मनमें और भी दोष है, उनको भी अर्जुन प्रकट करताहै. हे भगवन्! १मन२चञ्चल ३ सि० है, यह तो * प्रसिद्ध ही है, सि० सिवाय इसके जो इसमें और भी दोष हैं, उनको सुनिये प्रथम तो चञ्चल, दूसरा * प्रथमन-स्वभाववाला ५ अर्थात् शरीर इन्द्रियोंको विक्षेप करनेवाला और परवश करनेवाला है सि० तीसरे यह कि * बलवाला ६ ऐसा है तात्पर्य विवेकीजनोंके बशमें भी नहीं रहता * अर्थात् भलेप्रकार सोचते समझते भी हैं, कि इस काम करनेमें यह दोष और यह दुःख हैं, तो भी मनके वशहोकर उसीकाममें प्रवृत होते हैं ६. सि० चौथे यह कि अनादिकाल शब्दादि विषयोंके वासनामें ऐसा * दृढ ७सि० बँधा हुआ है, कि अनेककर्म उपासनादि करतेभी हैं, तो भी विषयोंसे पृथक् नहीं होता है, हे परमेश्वर! आपकी कृपासे जो हो जायगा वो तो सब सत्य है, परन्तु मैं तो मनका निरोध पवनवत् अति कठिन समझता हूँ, यह अभिप्राय है. इसीको ३.८.९ मे योजना करते हैं * तिसका अर्थात् मनका ८ निग्रह ९ वायुबत् १०।११ अतिकठिन १२ में १३ मानता हूं १४ सि० जैसे पवनका रोकना विषयोंसे कठिन प्रतीत होता है * ॥ ३४ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच॥ असंशयंमहावाहोमनोदुर्निग्रहं चलम्॥ अभ्यासेनतुकौन्तेयवैराग्येणचगृह्यते॥३५॥

महाबाहो १ असंशयम् २ मनः ३ दुर्निग्रहम् ४ चलम् ५ कौन्तेय ६ अभ्यासेन ७ तु ८ वैराग्येण ९ च १० गृह्यते ११ ॥ ३५ ॥ अ०-उ० अर्जुनने जो मनकी गति कही उसका अंगीकार करके श्रीभवान् मनका निरोध जिस उपायसे होता है, वह उपाय बताते हैं हे अर्जुन १ सि० पीछे दो मंत्रोंमें जो तूने मनकी गति कही, सो सत्य है ❀ नहीं है संशय उसमें २ मन ३ दुर्निग्रह ४ सि० है ❀ अर्थात् मन का रोकना कठिन है ४सि० और कैसा है यह मन कि ❀ चलता ही रहता है अर्थात् कभी स्थिर नहीं होता५ सि परन्तु❀हे अर्जुन! ६ अभ्यासकरके ७ तो ८ और वैराग्यकरके ९।१० बशमें होसक्ताहै टी० मनकी दो गति हैं, लय और विक्षेप. अभ्यास करके लय और वैराग्य करके विक्षेप दूर होता है ३ विजातीयका तिरस्कार करके, सजातीयका प्रवाह करना, अर्थात् वृत्तिको आत्माकार करना इसको अभ्यास कहते हैं, और विषयोंमें दोषदृष्टि करना इसको वैराग्य कहते हैं ९और भी बैराग्यके लक्षण जहां तहां मोक्षशास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं ९ वश करनेके मुख्य ये दो उपाय हैं इनको छोड़ जो पृथक् यत्न करते हैं, वे वृथा मृगतृष्णावत् भ्रमते हैं, यह अभ्यास और वैराग्य तो हो नहीं सक्ता, बृथा साधुमहात्मामहापुरुषोंसे वाक्यवादी माथा मारते हैं अर्थात् वारम्वार यही बूझते हैं, कि महाराज मनका निरोध जैसा हो सके ऐसोकोई रीति कहो, हजारों बेरमनके निरोधके उपाय वैराग्यको सुनते हैं,तोभी माथा मारतेहीरहते हैं, कभी क्षणमात्र अनुष्ठान करनेका उनको क्या प्रसंग हैं ? अनुष्ठान करनेवालेको यह याद रहे

कि वैराग्य और अभ्यासमें वैराग्य प्रथम पीछे, अभ्यासपाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है । ३५ ॥

मू०-असंयतात्मनायोगोदुष्प्रापइतिमेमति ॥
वश्यात्मनातुयतताशक्योवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

असंयतात्मना १ योगः २ दुष्प्रापः ३ इति ४ मे ५ मतिः ६ वश्यात्मा ७ यतता ८ तु ९ उपायतः १० अवाप्तुम् ११ शक्यः१२ ॥ ३६ ॥ अ०-नहीं भलेप्रकार जीता है मन जिसने १सि० उसको ❀ योग प्राप्त होना कठिन है २। ३ यह ४ मेरी ५ समझ६ सि० है ❀ अर्थात् यह मेरा निश्चय किया हुआ है ६ सि० और ❀ वशवर्ति है मन जिसका अर्थात् मन जिसके वशमें है उसे ७ यत्न करनेवालेको ८ तो ९ सि० वैराग्य और अभ्यास इनही दोनों ❀ उपायोंसे १० सि० योग ❀ प्राप्त होनेको ११ शक्यहैं १२अर्थात् प्राप्त होसक्ता हैं १२ टी० जीवब्रह्मके एकताका नाम योगहै २तात्पर्य वैराग्य और अभ्यास करके जिसने मन वश किया है. उसको नित्य अखंडानंदकी प्राप्ति होती है, बिना वैराग्यके और बिना अभ्यासके कोई आशा आनन्दछायाकी भी न रक्खे ॥२६॥

म०--अर्जुनउवाच॥अयतिःश्रद्धयोपेतो योगाच्चलित मानसः॥ अप्राप्य योगसंसिद्धिंकांगतिंकृष्ण गच्छति ॥३७॥

श्रद्धया १ उपेतः २ योगात्३चलितमानसः ४ अयतिः ५योग संसिद्धिम् ६ अप्राप्य ७ काम् ८ गतिम् ९ कृष्ण १० गच्छति ११ ॥ ३७ ॥ अ०-शास्त्रके विधिको सुन समझकर बहिरंगनि

त्यादि कर्मोंको त्यागकर, श्रद्धापूर्वक जो कोई मुमुक्षु ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त हो, अर्थात् वेदांतशास्त्रके श्रवणादिमें तत्पर हो और प्रारब्ध-वशात् वा किसी प्रतिबन्धसे ज्ञान न प्राप्त हो और वैराग्याभ्यासमें भी शिथिल होजाय और मन विषयोंके तरफ लगजाय ऐसे पुरुषकी क्या गति होगी ? क्योंकि कर्मोंको त्याग देनेसे तो उसको स्वर्गादिकी प्राप्ति न होगी और ज्ञान न होनेसे वो मुक्त न होगा और श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होनेसे उसको दुर्गति होना न चाहिये क्योंकि ब्रह्मविद्याके क्षणमात्र श्रवण करनेका अत्यन्त महात्म्य है. यह संशय करके अर्जुन प्रश्न करता है. सि० ज्ञानयोगमें ❀ श्रद्धा करके १ युक्त अर्थात् ज्ञानयोगमें श्रद्धावान् २ सि० और किसी प्रतिबन्ध करके अर्थात् किसी हेतु करके ❀ ज्ञानयोगसे ३ चलित होगया है मन जिसका अर्थात् श्रवणादिसे हटकर विषयोंमें लग गया है मन जिसका ४ नहीं यत्न किया है ५ सि० भले प्रकार वैराग्यके अभ्यासमें जिसने❀अर्थात् मन्द वैराग्य से अभ्यास शिथिल है जिसका सो मुमुक्षु ५ योगकी सिद्धिको अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानको ६ नहीं प्राप्त होकर ७ किस ८ गतिको ९ प्राप्त होता है ? १० हे कृष्णचन्द्र महाराज ! ११ ॥ ३७ ॥

मू०-कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिवनश्यति ॥
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

उभयविभ्रष्टः १ छिन्नाभ्रम् २ इव ३ कच्चित् ४ नश्यति ५ न ६ महाबाहो ७ ब्रह्मणः ८ पथि ९ विमूढः १० अप्रितिष्ठः ११ ॥३८॥ अ०-सि० कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग से ❀ उभयभ्रष्ट हुआ १ छिन्नाभ्रवत् २। ३ अर्थात् बादलके टूकेके सरीखा ३ क्या ४ नाश होजाता है ? ५ सि० या ❀ नहीं ६, हे कृष्णचन्द्र ! ७

सि० कैसा है वो अयति ❀ ब्रह्मके ८ मार्गमें ९ विमूढ हुआ १० सि० इस हेतु से निराश्रय ११ सि० है ❀ अर्थात् उसको न कर्मयोग आश्रय रहा, न ज्ञानयोगका ११ टी० जैसे बादलका टूका एकबादलसे पृथक् होकर पवनकेवल से दूसरे बादलके तरफ जाता हुआ बीचमें ही नाश होजाता है २. ब्रह्मके प्राप्तिका उपाय जो वैराग्यका अभ्यास उसमें ८। ९ शिथिल हुआ अर्थात् मन्द बुद्धि हुआ १० ॥ ३८ ॥

मू०–एतन्मेसंशयंकृष्णच्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यःसंशयस्यास्यच्छेत्ता नह्युपपद्यते ॥३९॥

कृष्ण १ अशेषतः २ एतत ३ मे ४ संशय ५ छेत्तुम् ६ हि ७ अर्हसि ८ त्वदन्यः ९ अस्य १० संशयस्य ११ छेत्ता १२ न १३ उपपद्यते १४॥३९॥ अ०–हे कृष्णचन्द्र ! १ समस्त २ इस ३ मेरे ४ संशयको ५ छेदन करनेके वास्ते ६ सि० आप ❀ ही ७ योग्य हो ८ आपसे पृथक् ९ इस १० संशयका ११ दूर करनेवाला अर्थात् नाशकरनेवाला या छेदन करनेवाला १२ नहीं १३ प्रतीत होता है १४ सि० कोई मुझको. ❀ तात्पर्य आप सर्वज्ञ हैं, यह संशय आपही नाश कर सक्ते हैं ॥ ३९ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थनैवेहनामुत्रविनाशस्तस्य विद्यते॥नहिकल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिंतातगच्छति॥४०॥

पार्थ १ तस्य २ विनाशः ३ न ४ एव ५ इह ६ न ७ अमुत्र ८ विद्यते ९ कल्याणकृत १० कश्चित् ११ हि १२ दुर्गतिम् १३ न १४ गच्छति १५ तात १६॥४०॥ अ०–हे अर्जुन ! १ तिसका अर्थात् ज्ञाननिष्ठमुमुक्षु का २नाश ३ न ४ तो ५ इसलोकमें ६ न ७ परलो-

कर्मे ८ होता है ९ अर्थात् पूर्वजन्मसे नीचजन्मकी प्राप्ति उसको नहीं होती ६ तात्पर्य उनकी हानि (क्षति) न इसलोक में न परलोकमें. सि० क्योंकि ❀ शुभकर्म करनेवाला १० कोई ११ भी १२ दुर्गतिको १३ नहीं १४ प्राप्त होता १५ हे तात! १६ सि० यह तो बहुत उत्तम शुभकर्म करनेवाला है, क्योंकि श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होता है और किसी प्रतिबंधसे जो उसको ज्ञान प्राप्त न हो अथवा मुमुक्षुही मन्दप्रयत्न रहे अर्थात् आत्मप्राप्तिके लिये भले प्रकार प्रयत्न न करे और विनाज्ञानके उसका देहपात होजाय, तो उसको विद्वानलोग बुरा नहीं कहते. न परलोकमें उसको नरककी प्राप्ति होती है, न पूर्वजन्मसे हीन जन्मकी प्राप्ति होतीहै, जो उसकी गति होती है, सो अगले मंत्रोंमें कहते हैं. इसी हेतुसे इस मंत्रमें यह कहा कि, उसका इसलोकमें या परलोकमें नाश नहीं होता ॥ ४० ॥

मू०-प्राप्यपुण्यकृताँल्लोकानुषित्वाशाश्वतीःसमाः॥४१॥
शुचीनांश्रीमतांगेहेयोगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

पुण्यकृतान् १ लोकान् २ प्राप्य ३ शाश्वतीः ४ समाः ५ उषित्वा ६ शुचीनाम् ७ श्रीमताम् ८ गेहे ९ योगभ्रष्टः १० अभिजायते ११ । ४१ ॥ अ०-उ० जो योगभ्रष्ट दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता, तो फिर किस गतिको प्राप्त होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं, पुण्यकारी पुरुषोंके १ लोकोंके २ अर्थात् अश्वमेधादि यज्ञोंके करनेवाले जिन लोकोंमें जाते हैं उन लोकोंको १।२ प्राप्त होकर ३ सि० वहां ❀ लाखोंवर्ष ४।५ वासकर ६ पवित्र ७ धनवालोंके ८ घरमें ९ योगभ्रष्ट १० जन्म लेता है ११ तात्पर्य

वेदोक्त मार्गमें चलनेवाले जो श्रीमान् उनके कुलमें योगभ्रष्ट उत्पन्न होता है कुमार्गियों के कुलमें कुपात्र उत्पन्न होते हैं ॥४१॥

मू०-अथवायोगिनामेवकुलेभ्भवतिधीमताम् ॥
एतद्धिदुर्लभतरंलोकेजन्मयदीदृशम् ॥४२॥

अथवा १ धीमताम् २ योगिनाम् ३ एव ४ कुले ५ भवति ६ लोके ७ यत् ८ ईदृशम् ९ जन्म १० एतम् ११ हि १२ दुर्लभतरम् १३ ॥ ४२ ॥ अ०-उ० ब्रह्मको परोक्ष समझकर जिसने थोडाही कभी ब्रह्मविचार किया था, उसकी गतितो पिछले मन्त्र में कही. अब पक्षान्तरसे उसकी गति कहते हैं अथवा यह शब्द पक्षान्तरमेंभी आता है १ तात्पर्य अब इस मंत्रमें उसकी गति कहते हैं कि जिसने बहुत ब्रह्मविचार किया था और अपरोक्ष ज्ञान होनेमें कुछ थोडाही काल रहा था सि० ऐसा सो योगभ्रष्ट ❀ ज्ञानवान् योगियोंके ३ ही ४ कुलमें उत्पन्न होता है ६. सि० इस❀ लोकमें ७ जो ८ ऐसा ९ जन्म १० सि० ❀ यह ११ ही १२ बहुत दुर्लभ है १३ सि० क्योंकि ज्ञानियोंके कुलमें जन्म होना मोक्षका हेतु है कर्मकांडी धनवानोंके कुलमें नानाप्रकारका विक्षेप होनेसे उसी जन्ममें मोक्ष होना कठिन प्रतीत होता है ॥ "नास्य कुलेऽब्रह्मविद्भवति" इतिश्रुतिः ॥ यहां वेद प्रमाण है कि, ज्ञानीके कुल में अज्ञानी नहीं उत्पन्न होता, अर्थात् ज्ञानी ही होताहै उत्पन्न होकर. ❀ तात्पर्य इस लोकमें आत्मतत्त्वका विचार करना यही दुर्लभ है, भोग तो सब लोकोंमें बराबर हैं अर्थात् पशु,पक्षी, आदमी और देवता इनके भी भोग दुःखके देनेमें सब सम हैं केवल आकृतिका भेद है जो राजाको रानीमें आनन्द वोही कङ्गालको अपने स्त्रीमें और कूकरको कूकरीमें खाना सोना मैथुन और भय

इत्यादि सब जीवनमें सम हैं, मनुष्यदेह में एक ब्रह्मज्ञानही विशेष है जिसको ब्रह्मज्ञान नहीं सो पशुपक्षियोंसे भी नीच है; क्योंकि पशुपक्षियोंका तो अज्ञान एक धर्म है, उनको बुरा कहना नहीं बनता इस मनुष्यनिर्भाग्यने मनुष्यदेह पाकर जो ब्रह्मज्ञान न सम्पादन किया फिर क्या अलौकिक पदार्थ सम्पादन किया ॥ "आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुमानवानाम् ॥ ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः" ॥ ४२ ॥

मू०–तत्रतंबुद्धिसंयोगंलभतेपौर्वदेहिकम् ॥
यततेचततोभूयःसंसिद्धौकुरुनन्दन ॥४३॥

तम् १ बुद्धिसंयोगम् २ पौर्वदेहिकम् ३ तत्र ४ लभते ५ कुरुनंदन ६ ततः ७ भूयः ८ संसिद्धौ ९ च १० यतते ११॥४३॥ अ०–तिस १ ज्ञानयोगको २ पूर्वदेह में जिसके जाननेकी इच्छा करके अभ्यास करता था उसीको ३ वहां ४ अर्थात् श्रीमान् ऐसे कर्मकांडियोंके कुल में, अथवा ज्ञानियों के कुल में ४ प्राप्त होता है ५ हे अर्जुन? ६ फिर ७ अधिक ८ मोक्षमें ९ ही १० अर्थात मुक्तिके वास्ते ही ९।१० यत्न करता है ११ ॥४३॥

मू०–पूर्वाभ्यासेनतेनैवह्रियतेह्यवशोपिसः ॥
जिज्ञासुरपियोगस्यशब्दब्रह्माऽतिवर्त्तते ॥४४॥

सः १अवशः २ अपि ३ हि ४तेन ५ एव ६ पूर्वाभ्यासेन ७ ह्रियते ८ योगस्य ९ जिज्ञासुः १० अपि ११शब्दब्रह्म १२ अतिवर्तते १३॥ ४४॥ अ०–उ०फिर अधिक यत्न करनेमें कारण यह है सो १ सि०–योगभ्रष्ट कर्मकांडियोंके कुलमें अथवा ज्ञानियों के कुलमें जन्म लेकर दैवयोगसे ❀ परवश २ भी ३ सि० होजावे

अर्थात् माता पिता पुत्र मित्र धनादिमें आसक्त हो जावे अथवा भेदवादियोंके पंजेमें आजावे * तोभी ४ सोई ५ । ६ पूर्वाभ्यास ७ सि० कि जो अभ्यास करता करता योगभ्रष्ट हुआ था वोही*विषयोंसे विमुख करके ब्रह्मविचारके सम्मुख कर देता है ८ सि० योगभ्रष्टको, हे अर्जुन ! ब्रह्मविचारका ऐसाही माहात्म्य है, सो सुन * ज्ञानयोगका ९ जिज्ञासु १० भी ११ शब्दब्रह्मको १२ उलंघकर वर्तता है १३ अर्थात् कर्मकांडको छोड़ ब्रह्मनिष्ठ होजाता है, ब्रह्मविचार करनेवाला ब्रह्मनिष्ठ होजाय, तो इसमें क्या कहना है. जो अजान अवस्थामें क्षणमात्र भी यह चिंतवन करता है, कि मैं ब्रह्म हूँ, सो विचार महापातकोंको दूर कर देता है, जैसे सूर्य तमको और जो समझकर बरसों चिंतवन करते हैं उनका तो कहना हीं क्या है, अर्थात् सद्गतिमोक्षमें किंचित् भी सन्देह नहीं ।। "क्षणं ब्रह्माहस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ॥ तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्योदयो यथा" ॥

मू०-प्रयत्नाद्यतमानस्तुयोगीसंशुद्धकिल्बिषः ॥ अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम् ॥४५॥

यतमानः १ योगी २ तू ३ प्रयत्नात् ४ अनेकजन्मसंसिद्धः ५ ततः ६ पराम् ७ गतिम् ८ याति ९ ॥ ४५ ॥ अ०-उ० योगभ्रष्ट तीसरे जन्ममें तो अवश्य ही सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं यह कहतेहैं अर्थात् पिछले कहेहुए अर्थको फिर कैमुतिकन्याय करके दृढ करतेहैं.सि०जबकि जिज्ञासु परमपदको प्राप्त होताहै तो फिर*प्रयत्न करनेवाला१योगी१।२जो३प्रयत्नसे४सि०निष्पाप होकर*अनेकजन्मों में भलेप्रकार सिद्धहोकर अर्थात् ब्रह्मवित् होकर५फिर६परम ७गतिको ८ प्राप्त होता है ९ सि० इसमें क्या कहना है, * तात्पर्य ब्रह्मका

जिज्ञासु भी योगभ्रष्ट, मन्दवैराग्य, दूसरेही जन्ममें सद्गतिको प्राप्त होता है और प्रयत्न करनेवाला विद्वान् ज्ञानवान् होकर दूसरे जन्ममें अथवा उसी जन्ममें मोक्ष को प्राप्त हो, तो फिर! इसमें क्या कहना है प्रथम तो योगभ्रष्ट दूसरे ही जन्ममें मुक्त होगा. और अनेक जन्ममें अर्थात् तीसरे जन्ममें मुक्त हो तो इसमें क्या कहना है, न एक अनेक इस प्रकार अनेक शब्दका अर्थ दो या तीन हो सक्ता है और अनेक जन्मका यह भी अर्थ है कि,असंख्यात् जन्मोंसे पुण्य करता जो चला आता है वो उन पुण्योंके प्रतापसे निष्पाप ज्ञानवान् ऐसा होकर पिछले जन्ममें ब्रह्मनिष्ठ होकर वो ही योगभ्रष्ट सद्गतिको प्राप्त हो तो इसमें क्या कहना है? ॥ ४५ ॥

मू०-तपस्विभ्योऽधिकोयोगीज्ञानिभ्योपिमतोऽधिकः॥
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगीतस्माद्योगीभवार्जुन॥४६॥

योगी १ तपस्विभ्यः २ अधिकः ३ज्ञानिभ्यः ४ अपि ५अधिकः ६ मतः ७कर्मिभ्यः ८ च ९ योगी १० अधिकः ११ अर्जुन १२ तस्मात् १३ योगी १४ भव १५ ॥ ४६ ॥ अ०-उ० ब्रह्मज्ञान का साधन अष्टांगयोग, तप, पण्डिताई, ये सब कर्मसे श्रेष्ठ हैं. यह कहते हैं, योगी १ तपस्वी पुरुषोंसे २श्रेष्ठ ३ सि० है, क्योंकि चांद्रायणादिव्रतोंका करना, पंचाग्नि तपना, शीतकालमें प्रातःकाल स्नान करना इत्यादि तप कहाता है, यह बहिरंग साधन है ❀ पंडितोंसे ४ भी ५ सि० योगी ❀ श्रेष्ठ ६ माना है ७ सि० इस जगह ज्ञानीका अर्थ जो पंडित किया उसका तात्पर्य यह है, कि विना अनुष्ठान करनेवाला जो केवल विद्यावान्ही हैं अर्थात् केवल श्रोत्रिय हैं उनको ब्रह्मनिष्ठ नहीं समझना क्योंकि अष्टांगयोग. ज्ञानका अन्तरङ्गसाधन है. जैसे विद्या तप विचार इत्यादि साधन है ❀ अग्निहोत्रादि कर्म-

करनेवालोंसे ८ भी ९ योगी १० श्रेष्ठ ११ सि० है क्योंकि यह भी ज्ञानका बहिरंग साधन है ❀ हे अर्जुन ! १२ तिस कारणसे १३ योगी १४ हो तू १५ अर्थात् धारणाध्यानादिमें तत्पर हो क्योंकि यह ज्ञानका अन्तरंग साधन है ॥ ४६।

मू०-योगिनामपिसर्वेषांमद्गतेनान्तरात्मना ॥
श्रद्धावान्भजतेयोमांसमेयुक्ततमोमतः ॥४७॥

सर्वेषाम् १ योगिनाम् २अपि ३ मद्गतेन ४ अन्तरात्मना ५यः ६ श्रद्धावान् ७ माम् ८ भजते ९ सः १० मे ११ युक्ततमः १२मतः १३ ॥ ४७ ॥ अ०-उ० ज्ञानका उत्तम साधन अन्तरंग भगवद्भक्ति है सब कर्मयोगियोंमें भगवद्भक्त श्रेष्ठ हैं, सोई कहते है, सब १योगियोंके २ मध्यमें भी ३ मद्गत अन्तःकरण समाहित करके ४।५ अर्थात मुझ वासुदेवमें अन्तःकरण समाहित करके ४।५ जो ६ श्रद्धावान् ७ सि० ब्रह्मका जिज्ञासु ❀ मुझको ८ भजता है ९अर्थात अभेद ऐसी उपासना करता है ९ सो १० मुझको ११ युक्ततम १२ सम्मत है १३ अर्थात् वह सब योगियोंसे श्रेष्ठ है १३॥ ४७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७

उ० बीचके छः अध्यायोंमें सातसे बारहतक उपासना करनेके योग्य भगवत्का स्वरूपविशेष निरूपण किया गया है, उपासना करनेके लिये जिस परमेश्वरकी भक्ति करना उसका स्वरूप भी तो पहले समझलेना उचित है जो अपना स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजने समस्त गीताशास्त्र में और विशेष बीचके छः अध्यायों में निरूपण किया है. वह स्वरूप परमेश्वर का समझना

तात्पर्य यह कि पहले परमेश्वरका स्वरूप समझकर फिर उनकी भक्ति करना योग्य है. बारंवार परमेश्वर यह कहते हैं कि, मुझमें मन लगाय मेरा भजन कर. 'माम्, मम, अहम्' इत्यादि प्रयोग अस्मच्छब्दके हैं जिस जगह यह प्रयोग हैं वहां तात्पर्य अस्मत्शब्द-से है. अस्मत् आत्माको कहते हैं. 'त्वम्, त्वां, ते' इत्यादि युष्मच्छब्दके प्रयोग हैं. अस्सत् शब्द के प्रयोग भगवद्विषयक जो गीताशास्त्रमें हैं, उनका तात्पर्य किसीजगे तो मायोपहित चैतन्यमेंहै किसीजगे अविद्योपहित चैतन्यमें, किसीजगह शुद्ध चैतन्यमें, किसी जगह लीला विग्रहमूर्तिमें, किसी जगह सगुण ब्रह्ममें है. सबजगह लीला विग्रहमूर्तिमें अर्थ नहीं समझना, बहुत जगे तो सोपाधिकका और निरुपाधिकका भेद हमने दिखादिया है, किसी किसी जगे स्पष्ट समझकर छोडदिया, वहां विचार करलेना कि इसजगे तात्पर्य निरुपाधिकब्रह्ममें है अथवा सोपाधिकब्रह्ममें और यह भी विचारलेना कि इस जगह जो अस्मच्छब्दका प्रयोगहै, इसका तात्पर्य तत्पदार्थमें है अथवा त्वंपदार्थमें है. अथवा दोनोंके एकतामें है. तब भगवत्का स्वरूप समझमें आवेगा. नहीं तो यह अनर्थ नहीं समझ लेना कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज श्यामसुन्दर स्वरूपसे सिवाय. श्रीसदाशिव शक्ति इत्यादि देवता जीव हैं, श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज ने मूर्तिको ही परब्रह्म कहा है. किन्तु यह समझनाकि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज शुद्धसच्चिदानन्द निराकार अखंड पूर्णब्रह्म हैं. विष्णुशिवसूर्यशक्ति गणेशादि वासुदेव दाशरथि इत्यादि उनकी लीला विग्रहमूर्ति हैं. जो रामकृष्णादिके एकतामें प्रमाण है वोही विष्णु शिवादिके एकता में प्रमाण है ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच॥मय्यासक्तमनाःपार्थयोगंयुंजन्मदाश्रितः॥असंशयंसमग्रंमांयथाज्ञास्यसितच्छृणु॥१॥

पार्थ १ मयि २ आसक्तमनाः ३ मदाश्रयः ४ योगम् ५ युंजन् ६ यथा ७ समग्रम् ८ असंशयम् ९ माम् १० ज्ञास्यसि ११ तत् १२ शृणु १३ ॥ १ ॥ अ०-उ०- पिछले अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि जो मुझमें मन लगाकर मुझको भजता है, वो कर्मयोगियोंमें श्रेष्ठ है इसवास्ते अब अपना वोही स्वरूप कहते हैं, कि जिसकी भक्ति करना योग्य है, हे अर्जुन ! १ मुझमें २ आसक्त है मन जिसका ३ सि० और ❀ मेराही आश्रय लेरक्खा है जिसने ४ सि० और ❀ योगको अर्थात जो योग मैंने छठे अध्यायमें निरूपण किया उसको ५ करता हुआ ६ जैसा संपूर्ण अर्थात् मैं सोपाधिक और निरुपाधिक हूँ वैसाही ८ संदेह रहित ९ मुझको १० अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्दनिराकार निर्विकारका और लीलाविग्रहश्यामसुन्दरादिस्वरूपको १० तू जानेगा ११ सोई १२ सि० आगे कहूंगा सावधान होकर ❀ सुन १३ । १ ॥

मू०-ज्ञानंतेऽहंसविज्ञानमिदंवक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वानेहभूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

इदम् १ ज्ञानम् २ ते ३ अहम् ४ वक्ष्यमि ५ सविज्ञानम् ६ अशेषतः ७ यत् ८ ज्ञात्वा ९ इह १० भूयः ११ अन्यत् १२ ज्ञातव्यम् १३ न १४ अवशिष्यते १५ ॥ २ ॥ अ०-उ०- आगे जो ज्ञान कहना है प्रथम उसकी इस श्लोकमें स्तुति कहते हैं. यह १ सि० जो आगे ❀ ज्ञान २ तेरे अर्थ ३ मैं ४ कहूंगा. ५ सि० सो ❀ विज्ञानके सहित ६ समस्त ७ सि० कहूंगा. ❀ जिसको ८ जानकर अर्थात् जिस ज्ञानसे मुझको जानकर ९ मोक्षमार्गमें १० फिर ११ अन्यपदार्थ १२ जाननेके योग्य १३ नहीं १४ शेष रहेगा १५ तात्पर्य इसीसे कृतार्थ होजायगा परोक्ष (शास्त्रद्वारा

जो परमेश्वरका ज्ञान है, उसको ज्ञान कहते हैं और अनुभव युक्ति-
युक्त साक्षात् अपरोक्ष जो परमेश्वरका संदेहरहित ज्ञान है, उसको
विज्ञान कहते हैं ॥ २ ॥

मू०-मनुष्याणांसहस्रेषुकश्चिद्यततिसिद्धये ॥
यततामपिसिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्त्वतः ॥३॥

मनुष्याणाम् १ सहस्रेषु २ कश्चित् ३ सिद्धये ४ यतति ५ यत-
ताम् ६ अपि ७ सिद्धानाम् ८ माम् ९ तत्त्वतः १० कश्चित् ११
वेत्ति १२ ॥ ३ ॥ अ०-उ० विशेष करके कमसमझलोग यह कहा
करते हैं, कि ईश्वरका ज्ञान सबको है. जो इस प्रजाका कर्ता और
पालक है, वोही परमेश्वर है. उसको समस्तगुणोंकी खान सम-
झना, रूप रंग उसमें नहीं, इस हेतुसे कोई उसको देख नहीं सक्ता
अब विचारो कि यह तो समझ और निश्चय और स्नेह ऐसेऐसेतुच्छ
पदार्थोंमें कि जिनके स्मरण करनेसे समझवालोंको ग्लानि आजाय.
जैसे ये स्त्री, छोकरे, धनान्ध, नीच इत्यादि यह बडे आश्चर्यकी
बात है, कि सद्गुणाकारको छोड़ तुच्छपदार्थ जो धनान्धादि नीच-
पुरुष उनमें मन जावे. तात्पर्य यह है, कि पूर्वोक्त बोली मन्दमति,
आलसी, विषयी, बहिर्मुख, इन्होंकी है परमेश्वरके ज्ञानका गन्ध
उनके पास होकर नहीं निकला, तस्मात् यह सब उनका वाचक
ज्ञान है, क्योंकि उनके मुखमें परमेश्वरही धूल डालकर, भगव-
त्के स्वरूपका ज्ञान अति दुर्लभ निरूपण करते हैं, परमेश्वरका
ज्ञान किसी अन्तर्मुख विरले महात्माकोही है, बहिर्मुख विषयी,
परमेश्वरको कभी नहीं जानसक्ते. सोई इस श्लोक में कहते हैं.
हजारों मनुष्योंमें १ । २ कोई ३ सच्चिदानन्दनके प्राप्तिके लिये ४
प्रयत्न करता है ५ प्रयत्न करनेवालोंमें ६ भी ७ सि० कोई देहसे

पृथक् सूक्ष्मरूप सच्चिदानन्दको जानता है ऐसे * सिद्धोंमेंसे व्यतिरिक्तजीवोंकी तो मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति लेशमात्र भी नहीं और मनुष्यमें भी भरतखण्डसे अन्यद्वीपोंमें रहते हैं. वा श्रुतिस्मृतिके जो द्वेषी हैं, वे आत्मविद्याको भी नहीं जानते. आत्मज्ञान तो बहुत कठिन है और भरतखण्डनिवासी वर्णाश्रमवालोंमें भी प्रायशः द्वैतवादी हैं. प्रत्युत द्वैतवादीभी कम हैं, विशेष करके तो अज्ञानीही बहुत हैं, किंचित् परलोकका उनको विचार नहीं और जो कोई परलोकके विचारमें प्रवृत्तभी होता है, तो उसको नवीनपंथसम्प्रदायोंने ऐसा भुला रक्खा है, उस व्यवस्थाको लिखनेके लिये पृथक् ग्रंथ चाहिये. तात्पर्य इन पूर्वोक्त सब उपाधियोंसे बचकर कोई महात्मा आत्माके प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है और उनमें कोई ईश्वर से अभिन्न ऐसे यथार्थ सच्चिदानन्द आत्माको परमात्मा जानता है ८–१२ जिनको ब्रह्मविद्या प्राप्ति हुई और ब्रह्मवित्पुरुष जिसे मिले. उसके भाग्यकी बडाई जितनी की जावे बो कमसे कम है और जिन्होंने आत्मतत्त्वको जाना; वे तो मन और वाणी से परे पहुँचे, उनका क्या कहना है ।. ३ ॥

मू०-भूमिरापोऽनलोवायुःखंमनोबुद्धिरेवच ॥
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

भूमिः १ आपः २ अनलः ३ वायुः ४ खम् ५ मनः ६ बुद्धिः ७ च ८ अहंकारः ९ एव १० इति ११ इयम् १२ मे १३ प्रकृतिः १४ अष्टधा १५ भिन्ना १६ ॥ ४ ॥ अ०–उ० जिसप्रकार परमेश्वरका स्वरूप यथार्थ जाना जाता है, सोई कहते हैं. प्रथम इस श्लोकमें अपरा प्रकृतिका स्वरूप निरूपण करते हैं, क्योंकि प्रकृतिद्वारा भगवत्का ज्ञान होता है पृथवी, जल, तेज, वायु, और आकाश,

२।३।४।५ सि० इनका अर्थ गन्धादि पंचतन्मात्रा समझना इसजगह पंचीकृतपचस्थूलभूत नहीं समझना और*मन ६ बुद्धि ७ अहंकार ८। ९ भी १०इसप्रकार ११ यह१२मेरी१३ प्रकृति१४ आठ प्रकारके १५ भेदको प्राप्त हुई है १६ सि एक प्रकृति अपरा यही अष्ट प्रकारकी है और तेरहवें अध्यायमें इसीके चौवीस भेद में निरूपण करूंगा * टी० गन्ध १ रस २ रूप ३ स्पर्श ४ शब्द ५ अहंकार ६ महत्तत्त्व ७ अविद्या ८ सबका कारण अविद्याहै अविद्या से महत्तत्त्व. महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे शब्दादि उत्पन्न हुए हैं जैसे विष मिले हुए अन्नको विष कहते हैं इसीप्रकार अविद्योपहित-चैतन्यको अविद्या कहा गया तात्पर्य जगत्का कारण मायोपहित अव्यक्त है, विना चैतन्य रचनादि क्रियाका असम्भव है, विद्याका अर्थ इस जगह मूलज्ञान अर्थात् प्रकृति समझना, आनंदामृतवर्षिणी के द्वितीयाध्याय में इनसबका अर्थ विस्तार पूर्वक और क्रम से लिखा है ॥ ४ ॥

मू०-अपरेयमितस्त्वन्यांप्रकृतिंविद्धिमपराम् ॥
जीवभूतांमहाबाहोययेदंधार्यतेजगत् ॥५॥

इयम् १ अपरा २ इतः ३ तु ४ अन्याम् ५ जीवभूताम् ६ म ७ पराम् ८ प्रकृतिम् ९ बुद्धि १० महावाहो ११ यया १२ इदम् १३ जगत् १४ धार्यते १५ ॥ ५ । अ०-उ० इस श्लोकमें पराप्रकृति निरूपण करते हैं, पीछे जिसके आठ भेद कहे यह १ सि० प्रकृति * अपरा २ अर्थात् निकृष्ट, अशुद्ध, जंड,अनर्थ करनेवाली संसा-रवन्ध को प्राप्त करनेवाली ऐसी है २ इससे तो जुदी ३।४।५ जीवरूपको ६ मेरी ७ परा ८ प्रकृति ९ (तू) जान १० हे अर्जुन! ११ जिसने १२ यह १३ जगत १४ धारण कर रक्खा है १५ टी० शुद्ध प्रकृष्ट, श्रेष्ठ मेरा आत्मरूप ऐसा जान ८ इस जगत को

रचकर इसके भीतर जीवरूप होकर मैंही प्रविष्ट हुआ हूँ १३। १४ १५। "तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" इति श्रुतिः ॥ ५ ॥

मू०—एतद्योनीनिभूतानिसर्वाणीत्युपधारय ॥
अहंकृत्स्नस्यजगतःप्रभवःप्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

सर्वाणि १ भूतानि २एतद्योनीनि ३ इति ४ उपधारय ५अहम् ६ कृत्स्नस्य ७ जगतः ८ प्रभवः ९ तथा १० प्रलयः ११ ॥ ६ ॥ अ०—सब १ भूतोंकी २ यह योनि है ३ यह ४ (तू) जान ५ अर्थात् अपरा और परा ये ही दोनों प्रकृति सब जगत्का कारण है सि० और ❀ म ६ समस्त ७ जगत्का ८ उत्पत्ति करनेवाला ९ और नाश करनेवाला १० । ११ सि० हूँ, ❀ तात्पर्य उपादानकारण प्रकृति है, और निमित्तकारण चैतन्य अर्थात् ईश्वर है इस वास्ते जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ईश्वर है, यह अर्थ आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें स्पष्ट दृष्टान्तसहित लिखा है ॥६॥

मू०—मत्तःपरतरंनान्यत्किंचिदस्तिधनंजय ॥
मयिसर्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणाइव ॥७॥

धनंजय १ मत्तः २ परतरम् ३ अन्यत्४ किंचित् ५न६ अस्ति ७ इदम् ८ सर्वम् ९ मयि १० प्रोतम् ११ सूत्रे १२ मणिगणाः १३ इव १४ ॥ ७ ॥ अ०—उ० जैसे पीछे कहा, इसी हेतुसे मुझसे जुदा कोई पदार्थ नहीं,यह कहते हैं हेअर्जुन! १मुझसे २ श्रेष्ठ ३ जुदा ४ (सृष्टिसंहारका स्वतंत्र कारण ४) कुछ ५ नहीं ६ है ७ यह ८ सब ९ सि० जगत्❀मुझमें अर्थात् सच्चिदानन्द परमेश्वरमें १०गूंथाहुआ है ११ सूत्रमें १२ सि० सूत्रके ही बने हुए ❀ मणिके दाने १३ जैसे १४ सि० तैसा ❀ ॥ ७ ॥

मू०-रसोऽहमप्सुकौन्तेयप्रभाऽस्मिशशिसूर्य्ययोः ॥
प्रणवः सर्ववेदेषुशब्दःखेपौरुषंनृषु ॥ ८ ॥

कौन्तेय १ अप्सु २ रसः ३ अहम् ४ शशिसूर्ययोः ५ प्रभा ६ अस्मि ७ सर्ववेदेषु ८ प्रणवः ९ खे १० शब्दः ११ नृषु १२ पौरुषम् १३ । ८ ॥ अ०-उ० श्रीभगवान् अपनी पूर्णताको विस्तार पूर्वक पांचमन्त्रोंमें कहते हैं, हे अर्जुन ! १ जलमें २ रस ३ मैं हूं ४ चन्द्र-सूर्यमें ५ प्रभा ६ सि० जिसके दीप्ति, चमक, या रोशनी ये नाम हैं सो ❀ मैं हूँ ७ सबवेदोंमें ८ ओंकार ९ सि० मैं हूं ❀ आकाशमें १० शब्द ११ सि० मैं हूं ❀ पुरुषोंमें १२ उद्यम १३ सि० मैं हूँ ❀तात्पर्य तैलादि पदार्थ रसादिपदार्थोंके बिना कुछ नहीं ॥८॥

मू०-पुण्योगन्धःपृथिव्यांचतेजश्चास्मिविभावसौ ॥
जीवनंसर्वभूतेषु तपश्चास्मितपस्विषु ॥ ९ ॥

पृथिव्याम् १ च २ पुण्यः ३ गन्धः ४ विभावसौ ५ तेजः ६ च ७ अस्मि ८ सर्वभूतेषु ९ जीवनम् १० तपस्विषु ११ तपः १२ च १३ अस्मि ॥ १४ ॥ ९ ॥ अ०-पृथिवीमें १ । २ पवित्र ३ गंध ४ सि० मैं हूँ ❀ अर्थात् सुगंध ४ अग्निमें ५ तेज मैं हूँ ६ । ७ । ८ सब भूतोंमें ९ जीव १० सि० मैं हूं ❀ तपस्वीपुरुषोंमें ११ तप मैं हूँ १२ १३ । १४ टी० तप दो प्रकारका है, विचारको भी तप कहते हैं और द्वन्द्वके सहनेको भी तप कहते हैं ॥ ९ ॥

मू०-बीजंमांसर्वभूतानांविद्धिपार्थसनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

पार्थ १ सर्वभूतानाम् २ सनातनम् ३ बीजम् ४ माम् ५ विद्धि ६ बुद्धिमताम् ७ बुद्धिः ८ अस्मि ९ तेजस्विनाम् १० तेजः ११

अहम् १२ ॥ १० ॥ अ०-हे अर्जुन ! १ सब भूतोंका २ सनातन ३ बीज ४ मुझको ५ (तू) जान ६ बुद्धिमानोंमें ७ बुद्धि ८ मैं हूं ९ तेजस्वी पुरुषोंमें १० तेज ११ मैं १२ सि० हूँ ❋ ॥१०॥

मू०-बलंबलवतांचाहंकामरागविवर्जितम् ॥
धर्माविरुद्धोभूतेषुकामोऽस्मिभरतर्षभ ॥ ११ ॥

कामरागविवर्जितम् १ बलवताम् २ च ३ बलम् ४ भरतर्षभ ५ धर्माविरुद्धः ६ भूतेषु ७ कामः ८ अस्मि ९ ॥११॥ अ०-कामराग करके वर्जित १ बलवानोंमें २। ३ बल ४ सि० मैं हूं और ❋ हे अर्जुन ! ५ धर्मसे अविरुद्ध ६ भूतोंमें ७ काम ८ मैं हूँ ९ ॥ ११ ॥

मू०-येचसात्विकाभावाराजसास्तामसाश्चये ॥
मत्तएवेतितान्विद्धिनत्वहंतेषुतेमयि ॥ १२ ॥

ये १ च २ एव ३ सात्विकाः ४ भावाः ५ राजसाः ६ ये ७ च ८ तामसाः ९ तान् १० मत्तः ११ एव १२ इति १३ विद्धि १४ तेषु १५ अहम् १६ न १७ तु १८ ते १९ मयि २० ॥ १२ ॥ अ०-जो १। २। ३ सतोगुणी ४ भाव ५ सि० शमदमादि ❋ रजोगुणी ६ सि० हर्षदर्पादि ❋ और जो ७। ८ तमोगुणी ९ सि० भाव शोकमोहादिः ❋ तिनको १० मुझसे ११ ही १२। १३ (तू) जान १४ सि० क्योंकि मेरे प्रकृति के गुणोंका कार्य है, शमहर्ष शोकादि ❋ तिनमें १५ मैं १६ नहीं १७। १८ सि० वर्तता हूं ❋ अर्थात् जीववत् तिनके आधीन में नहीं १७।१८ सि० परन्तु ❋ वे १९ मुझमें २० सि० मेरे आधीन हुए वर्तते हैं ❋। ॥१२॥

मू०--त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिःसर्वमिदंजगत् ॥
मोहितंनाभिजानातिमामेभ्यःपरमव्ययम् ॥ १३ ॥

एभिः १ त्रिभिः २ गुणमयैः ३ भावैः ४ इदम् ५ सर्वम् ६ जगत् ७ मोहितम् ८ एभ्यः ९ परम् १० माम् ११ अव्ययम् १२ न १३ अभिजानाति १४ ॥ १३ ॥ अ०-इन १ तीन २ गुणमय ३ पदार्थोंकरके ४ यह ५ सब ६ जगत् ७ मोहित ८ सि० होरहा है ❀ इनसे ९ परे १० मुझ ११ अव्ययको १२ नहीं १३ जानता है १४तात्पर्य कोई सत्त्वगुणमें कोई रजोगुण में और कोई तमोगुणमें मोहित हैं. इनसे परे विलक्षण, निर्गुण, शुद्ध, सच्चिदानन्द, निराकार, निर्विकार ऐसे परमेश्वरकोभी नहीं जानते. परमेश्वरको भी सगुणही समझते हैं ॥ १३ ॥

मू०-दैवीह्येषागुणमयीममामायादुरत्यया ॥
मामेवयेप्रपद्यन्ते मायामेतांतरन्तिते ॥१४॥

एषा १ मम २ माया ३ गुणमयी ४ देवी ५ हि ६ दुरत्यया ७ ये ८ माम् ९ एव १० प्रपद्यन्ते ११ एताम् १२ मायाम् १३ ते १४ तरन्ति १५ ॥ १४ ॥ अ०-उ० अनादि ऐसी अविद्या विना शुद्धसच्चिदानन्द भगवद्भजनके दूर न होगी यह कहते हैं-यह १ मेरी २ माया ३ त्रिगुणवाली ४ अलौकिक अर्थात् अद्भुत ऐसी ५ही ६ सि० है ❀ (हि इसशब्दका तात्पर्य यह है, कि यह माया ऐसी है कि, जो बात समझनेके योग्य है, उसकोभी दिखासक्ती है और जो न समझमें आवे, उसकोभी दिखासक्ती है. यह बात संसारमें प्रसिद्ध है. इसीहेतुसे जगत् भ्रान्त हो रहा है विना परमेश्वरकी कृपा हुए यह माया) दुस्तर ७ सि० विद्वानोंने ऐसा निश्चय किया है, कि जो अर्थात् ब्रह्मतत्वके जिज्ञासु ८ मुझको ९ ही १० भजते हैं ११ इस १२ मायाको १३ वे १४ तरेंगे १५अर्थात् मायाको माया समझकर मुझ त्रिगुणरहित ऐसे शुद्ध

सच्चिदानन्द को प्राप्त होंगे १५ टी० दैवी देवसम्बधी अर्थात् ब्रह्मा विष्णु राम कृष्ण इत्यादि और वैकुंठादि जिसका परिणाम है, उसको दैवी माया कहते हैं यह विनाज्ञाननिष्ठाके दूर नहीं होती. मुमुक्षु निर्गुण शुद्धसच्चिदानन्दकाही जो चिंतवन करेंगे, सगुणपदार्थोंमें प्रीति नहीं करेंगे वेही निर्गुणको प्राप्त होंगे और जो सगुणपदार्थों में प्रीति करेंगे, उनकी त्रिगुणवाली माया दूर न होगी क्योंकि जिस पदार्थ को त्यागना था, उसमें प्रीति करी फिर कैसे यह तीन गुण दूर होसक्के हैं ? एवशब्दसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि, मायाशब्दका अर्थ इस जगह शुद्धब्रह्म है. मायोपहित वा लीला विग्रह ऐसा सगुण नहीं मायोपहित ईश्वर सगुणब्रह्मका जो आराधन करते हैं, तो अवश्यही मायाका भी आराधन उसके साथ होता है, जिसका विशेष चिंतवन रहेगा वो पदार्थ कैसे दूर होगा ? और जो सगुणब्रह्मकाही आराधना करना है तो निष्काम होकर शुद्ध ब्रह्मकी जिज्ञासा करके आराधना करे तो भी वो मार्ग कर्ममुक्तिका है और जिनको शुद्धब्रह्मकी जिज्ञासा ही नहीं, उनकी अविद्या कभी दूर न होगी ॥ १४ ॥

मू०-नमांदुष्कृतिनोमूढाःप्रपद्यन्तेनराधमाः ॥
माययाऽपहृतज्ञानाआसुरंभावमाश्रिताः॥१५॥

नराधमाः १ माम् २ न ३ प्रपद्यन्ते ४ मूढाः ५ दुष्कृतिनः ६ मायया ७ अपहृतज्ञानाः ८ आसुरम् ९ भावम् १० आश्रिताः ११ ॥१५॥ अ०-उ०- जो निर्भाग न निर्गुणब्रह्मका आराधन कहतेहैं और न सगुणब्रह्मका उसमें यह कारणहै—नरोंमें अधम १ मुझको २ नहीं ३ भजते हैं ४. सि० हेतु इसमें यह है कि ❀ विवेकरहितहैं ५ सि० इसमें क्या हेतु है कि ❀ दुष्ट अर्थात् खोटे ऐसे कर्मोंको कर-

...वाले हैं ६ अर्थात् शास्त्रोक्त मार्गमें नहीं चलते. श्रुति स्मृति और परमेश्वर इनकी आज्ञाको छोड़ नानाप्रकारके कल्पित पन्थोंमें शिर मारते हैं ६. सि० इसमें जो हेतु है सो सुन ❀ मायाकरके ७दूर होगया है ज्ञान जिसका अर्थात् तमोगुणमें और रजोगुण में सत्वगुण उनका तिरोभाव हो रहता है ८. सि० इसमें यह हेतु है कि ❀ असुरभावका ९।१० आश्रयकर रक्खा है उन्होंने ११ सि० सोलहवें अध्याय में काम क्रोध दंभ दर्पादि असुरोंका स्वभाव कहेंगे ❀ अर्थात् भगवत्से विमुख सदा कामादि अनर्थोंमें फँसे रहते हैं. जो पूर्वसंस्कारसे उनमें किसी समय सत्त्वगुणका आविर्भाव होता है, फिर कुसंगकरके दोषसे भगवत्के सन्मुख नहीं होते हैं और न धर्म करते हैं ११सि० इसी हेतुसे उनको विवेक नहीं होता और इसी हेतुसे वे लोग सबसे अधम हैं ❀ ॥ १५ ॥

मू०-चतुर्विधाभजतमांजनाःसुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानीचभरतर्षभ ॥१६॥

अर्जुन १ चतुर्विधाः २ सुकृतिनः ३ जनाः ४ माम् ५ भजन्ते ६ भरतवर्षभ ७ आर्तः ८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासुः १० ज्ञानी ११ च १२॥१६॥ अ०-उ० जो निष्कामसगुणब्रह्मका भी आराधना न होसके तो सकामही परमेश्वरका आराधन करना योग्य है. जो न निष्काम भजन करे और न सकाम. उन्होंसे सकामपुरुषही भगवत्का आराधनकरनेवाले श्रेष्ठ हैं, इसीवास्ते चारोंप्रकारके मेरे भक्त सुकृती कहे जाते हैं. वे चार प्रकारके भक्त तारतम्यता के साथ, उत्तरोत्तर ये हैं--हे अर्जुन ! १ चार प्रकार के २ सुकृतीजन ३।४ मुझको ५ भजते हैं ६ हे अर्जुन ! ७ सि० वे यह हैं. ❀

आर्त ८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासु १० और ज्ञानी ११ । १२ टी०
विपत्समयमें परमेश्वरका स्मरण करना उसको आर्तभक्त कहते हैं,
जैसे द्रौपदी गजेन्द्रादि ८. पुत्र और राज्यादिकी कामना करके
जो परमेश्वरका आराधन करते हैं वे अर्थार्थी, जैसे ध्रुवादि
९. ब्रह्मतत्वकी जिज्ञासा करके निष्काम जो नारायणका पूजन
और भजन करते हैं वे जिज्ञासु, जैसे उद्धव सुदामादि १० शुद्ध
सच्चिदानन्द निराकार निर्विकार नित्यमुक्त परमात्माको आपसे
अभिन्न अपरोक्ष जानते हैं वे ज्ञानी, जैसे शुकदेव, जनक,
याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ और सनकादि ११. चारों प्रकारके भक्तोंको
उत्तरोत्तर श्रेष्ठ समझना ॥ १६ ॥

मू०-तेषांज्ञानीनित्ययुक्तएकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियोहिज्ञानिनोऽत्यर्थमहंसचममप्रियः ॥१७॥

तेषाम् १ ज्ञानी २ विशिष्यते ३ नित्ययुक्तः ४ एकभक्तिः ५
अहम् ६ ज्ञानानिः ७ अत्यर्थम् ८ प्रियः ९ हि १० सः ११ च
१२ मम १३ प्रियः १४ ॥ १७ ॥ अ०–उ० पूर्वोक्त भक्तों में ब्रह्म
ज्ञानी चारहेतु करके सबसे श्रेष्ठ है, यह कहते हैं–तिनके १ सि०
मध्यमें ❀ ज्ञानी २ विशेष है ३ सि० प्रथम तो तीनों अवस्थाओं
सच्चिदानन्दस्वरूपसे च्युत नहीं होता, इसवास्ते ज्ञानीको ❀
नित्युक्त ४ सि० कहते हैं अर्थात् सदा आनन्दस्वरूपब्रह्मका उसको
स्मरण रहता है, दूसरे यह कि एक अद्वैतमेंहीहै भक्ति जिसकी अर्थात्
सिवाय सच्चिदानन्द पदार्थके और कोई पदार्थ दृश्य अर्थात् जड़
उसके दृष्टिमें नहीं जिसके दृष्टिमें दूसरा पदार्थ है बुरा वा भला, वो
सन्देह उसमें कभी न कभी मन जायगा इसीवास्ते ज्ञानीको ❀ एक
भक्ति ५ सि० कहते हैं ❀ अर्थात् ज्ञानी परमानन्दकाही उपासक है

परमानन्दरूप भगवान् ही उसके साधन हैं ५ और परमानंदही फल है सि० औरोंके फलमें और साधनोंमें भेद है, तीसरा यह कि ❀ मैं ६ ज्ञानीको ७ अत्यन्त बहुत ८ ही ९ प्यारा १० सि० हूं क्योंकि परमानन्द बहुत प्यारा होता है यह लोकमेंभी प्रसिद्ध है, ज्ञानी मुझको परमानन्दस्वरूप जानता है आनन्दजनक जड़ दृश्यरूपवाला मुझको नहीं जानता, चौथे यह कि सो ज्ञानी ११।१२ मुझको १३ सि० भी अत्यन्त ❀ प्यारा १४ सि० है, क्योंकि परात्पर पूर्णब्रह्म अखण्ड अद्वैत ऐसा मुझको समझता है सिवाय सच्चिदानन्द के और पदार्थका अत्यन्त अभाव जानता है इसी हेतुसे वो मुझको प्रिय है. एक पदार्थ तो आनंदजनक और एक पदार्थ निजानन्दरूप है, विचारो दोनोंमें कौनसा श्रेष्ठ है? ॥ १७ ॥

मू०-उदाराःसर्वएवैतेज्ञानीत्वात्मैवमेमतम्॥
आस्थितःसहियुक्तात्मामामेवानुत्तमांगतिम्॥१८

एते १ सर्वे २ एव ३ उदराः ४ ज्ञानी ५ तु ६ मे ७ आत्मा ८ एव ९ मतम् १० हि ११ सः १२ युक्तात्मा १३ माम् १४ एव १५ आस्थितः १६ अनुत्तमाम् १७ गतिम् १८ ॥ १८ ॥ अ-उ० भगवद्विमुखोंसे सबभक्त सकाम और निष्काम श्रेष्ठ हैं और ज्ञानी तो साक्षात् नारायणस्वरूप है यह कहते हैं, आगे बारहवें अध्यायमें श्री श्रीमहाराज कहेंगे, कि निर्गुणब्रह्मके उपासक तो मुझको प्राप्त ही हैं जो मेरा स्वरूप है, सोई उनका है, वे १ सि० पूर्वोक्त आर्तादि तीनों भक्त ❀ सब २ ही ३ श्रेष्ठ ४ सि० हैं परन्तु ❀ ज्ञानी ५ तो ६ मेरा ७ आत्मा हो ८। ९ सि० है ❀ अर्थात् ज्ञानी मुझसे दास वत् जुदा नहीं, स्वामिसेवकवत् पृथक् नहीं, वो वनवृक्षवत् मेरा ही स्वरूप है ८। ९ सि० यह मेरा ❀ निश्चय १० सि० है ❀ क्योंकि

११ सि० वो यह समझता है, कि मैं पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द नित्य मुक्त हूँ इसवास्ते॰सो ज्ञानी १२ युक्तात्मा यांने समाहित १३ सि० है और ॰ मुझको १४ ही १५ आश्रयकर रक्खा है १६ सि० कैसा हूँ मैं कि. नही है सिवाय मुझको उत्तमगति कोई सावयवपदार्थ. सो मैं ही अनुत्तमगति हूं यह समझकर मुझ॰अनुत्तमगतिको १७।१८ सि० आश्रयकर रक्खा है अर्थात् मुझसे पृथक् कुछ और फल नहीं मानता परात्परफल सच्चिदानन्द हूं ॰ ॥१८॥

मू०-बहूनांजन्मनामंतेज्ञानवान्मांप्रपद्यते ॥
वासुदेवःसर्वमिति समहात्मासुदुर्लभः ॥१९॥

बहूनाम् १ जन्मनाम् २ अन्ते ३ इति ४ सर्वम् ५ वासुदेवः ६ ज्ञानवान् ७ माम् ८ प्रपद्यते ९ सः १० महात्मा ११ सुदुर्लभः १२ ॥ १९ । अ०-उ० फिर भी ज्ञानीकी स्तुति करते हुए यह कहते हैं, कि ऐसा ज्ञानी भक्त दुर्लभ है-बहुत जन्मोंके १।२अंतमें ३सि०सकाम निष्काम उपासना करते २ पिछले जन्ममेंकि जिस शरीरमें मोक्षहोना है, उस जन्ममें मुझको जो मेरा भक्त ऐसा समझताहै कि॰यह४सब ५ सि० जगत् चराचर अस्ति भातिप्रियरूप॰वासुदेव ६ सि०है,इसप्र- कार॰ज्ञानवान् ७ हुआ॰मुझको ८भजताहै९सि जो भक्त॰ सो १० महात्मा ११ बहुत दुर्लभहै १२अपरिच्छिन्नदृष्टि हैं. प्रायशः सब आत्मा को और परमात्माको परिच्छिन्न समझते हैं,प्रत्युत कोई कोई निर्भाग्य ज्ञानियों की प्रत्यक्ष वा किसी बहानेसे या मिसकरके असूया (बुराई) करते हैं,इस श्रीमहाराजके वाक्यका आदर नहीं करते अपने आप अपनी जिह्वासे बारम्बार यहकहें, कि में पापी,पापात्मा पापकरता हूँ

जो दूसरा कहै कि तुम पापी गुलाम हो, तो उसी समय लडनेको उद्यत होजावें ऐसे लोगोंकी जो गति होगी सो दृष्टान्तसे स्पष्ट किये देते हैं ❀ इतिहास-एकराजा भेदवादी भगवत्‌का उपासक सबसे यह प्रश्न किया करता था कि, महाराज ! जो पापी भगवत्से विमुख हैं उनका तो उद्धार श्रीनारायण अपने आप करेंगे क्योंकि उनका नाम पतितपावन, अधमोद्धारण करुणाकर ऐसा है और जो भगवद्भक्त-कर्मकांडी, ज्ञानी, योगीसे हैं वे भक्ति ज्ञान कर्मयोगादिके आश्रयसे कृतार्थ होंगे तो अब नरकमें कौन जावेंगे ? चौरासी लाख योनियों में कौन भ्रमेंगे इस प्रश्नका उत्तर बहुत पंडितोंको न आया, एक ज्ञानी महात्मा राजाके पास पहुँचे राजाने उनको बहुत सन्मानकरके यही प्रश्न उनसे भी किया, प्रथम महात्माने यह कहा कि हे राजन् ! तुम बडे सुकृती धर्मात्मा समझवाले भगवद्भक्त ऐसे हो, राजाने कहा कि महाराज ! ऐसे तो आप ही हैं मैं तो अधम पापात्मा हूँ, महात्मा उसी समय वहां खडे होगये और राजाके तरफसे कहनेलगे कि आज कैसे अधम पापात्मासे सम्भाषण हुआ, राजाको इन शब्दोंके सुनतेही क्रोध आगया और कहनेलगा, कि तू कैसा ज्ञानीहै जो लोगों को गालियां देता है. महात्माने कहा कि बच्चा गालियां नहीं देता, तेरे प्रश्नका उत्तर देता हूं, तात्पर्य मेरे कहनेका समझ कि तुझ सरीखे लोग नरकमें जावेंगे आपतो अपने मुखसे सहस्रवार अपनेको पापी कहता है "पापोहंपापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः" ॥ जो हमनेएक वार कहा तो उसका इतना बुरा मानता हैं क्योंकि अभी तो तू हम को सुकृती धर्मात्मा भगवद्भक्त कहता था. अभी तू तडाक यह कहने लगा, अब तू यह अपने आपहीको विचार, कि मैं पतित हूँ जो तू पतित है. तो औरोंके कहनेका क्यों बुरा मानताहै और जो धर्मात्मा

है तो शुद्धात्माको पापात्मा क्यों कहता है?अपनेको शुद्धात्माही समझ राजाका अज्ञान इतनेही स्वल्प उपदेशसे जातारहा और जाना कि दास और पतित जो अपनेको कहते हैं यह ऊपरहीकी बोलचाल है, दास पतित बनना कठिन हैं, मुखसे तो यह कहे कि " सियाराममय सब जगजानी। करौं प्रणाम सप्रेम सुवानी" और ज्ञानियोंकी बुराई करें, धन्य है ऐसी समझकी, भला अर्थ समझा पूर्णताका यह इतिहास भले प्रकार विचारने योग्य है ॥ १६ ॥

मू०-कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाःप्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ॥
तंतंनियममास्थायप्रकृत्यानियताःस्वया ॥२०॥

अन्यदेवताः १ पपद्यन्ते २ तैः ३ तै ४ कामैः ५ हृतज्ञानाः ६ स्वया ७ प्रकृत्या ८ नियताः ९ तम् १० तम् ११ नियमम् १२ आस्थाय १३ ॥२०॥ अ०-उ० सब भक्त निर्गुणब्रह्मकी निष्काम उपासना क्यों नहीं करते. अपनेसे अन्यदेवताका क्यों आराधन करते हैं, इस अपेक्षामें यह कहते हैं, चारमन्त्रोंमें, परमेश्वरका भजन करके वैकुण्ठादिमें जावेंगे वहांके दिव्यशब्दादि विषयोंका और स्त्र्यादिपदार्थों का भलेप्रकार भोग करेंगे, अथवा इसी लोकमें स्त्रीपुत्रधनादिकी प्राप्ति होगी और प्रायशः वर्त्तमानकालमें भी देवतोंकी उपासनामें शब्दादिविषयोंको त्यागना नहीं पड़ता,प्रत्युत फूलबँगला हिण्डोरा रासलीला नृत्यगानादिको उत्तमकर्म समझते हैं-सि० इन इन कामनाकरके जो आत्मासे भिन्न*अन्यमूर्तिमान् देवताका १ भजन करते हैं २ सि० इस में हेतु यहहैकि*तिन ३ तिन ४कामनाकरके ५हरागया है आत्मज्ञान जिनका ६ सि०वे*अपने ७प्रकृति करके८प्रेरे हुए९तिस१०तिस११

नियमको १२ आश्रयकरके १३ सि० अन्यदेवताका भजन करते हैं ॥ तात्पर्य रजोगुण और तमोगुणके वश होकर जो जो नियम और भेद उपासनामें हैं, सबका अङ्गीकार करके आत्मासे अन्य देवताको ही पूजते हैं, जैसे कहते हैं कि "घरका जोगी जोगना, आनगांवका सिद्ध" ऐसेही वे उपासना हैं. शास्त्रका भी प्रमाण सुनो वासुदेवंपरित्यज्ययेऽन्यदेवमुपासते ॥ तृषितोजाह्नवीतीरेकूपंखनविदुर्मतिः जो देव सबमें बसरहा है और साक्षात् चैतन्यानन्द अनुभव होता है, उसको छोड अन्यदेवकी जो उपासना करते हैं, ऐसे हैं कि जैसे प्यासा मूर्ख श्रीगंगाजीका जल छोड, गंगातीर कूप खोदता है ऐसेही परमानन्दस्वरूप चैतन्यदेव आत्माको छोड तुच्छ विषयानंदके लिये प्रयत्न करते हैं ॥ २० ॥

मू०-योयोयांयांतनुंभक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति ॥
तस्यतस्याचलांश्रद्धांतामेवविदधाम्यहम् ॥२१॥

यः १ यः २ भक्तः ३ श्रद्धया ४ याम् ५ याम् ६ तनुम् ७ अर्चितुम् ८ इच्छति ९ तस्य १० तस्य ११ अचलाम् १२ श्रद्धाम् १३ ताम् १४ अहम् १५ एव १६ विदधामि १७ ॥ २१ ॥ अ०-उ०-सकाम आत्मासे अन्यदेवताओंके भक्तोंको पिछले मंत्रमें परतंत्र (प्रकृतिके और कामनाके वश) कहा अब अपने अधीन कहते हैं जो कोई यह शंका करे कि जब परमेश्वर अन्तर्यामी सबके प्रेरक हैं, तो फिर अन्यदेवताओंके भक्तोंको भी वासुदेव भगवान् पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्द ऐसे आत्माके सन्मुख क्यों नहीं करदेते ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहेंगे, कि जैसे जिसको इच्छा होती है, उसके अनुसार उसकी श्रद्धा दृढ करदेता हूँ. निष्काम जो मेरा आराधन करते हैं उनको सन्मार्गमें लगादेता हूं मुझको चिंतामणिवत् समझना. प्रसिद्ध वाक्य है "जैसेको हरि तैसे" सोई कहते हैं

इस मंत्रमें जो १ जो२ सि० विष्णु शिव राम कृष्ण इन्द्रादिका
भक्त ३ श्रद्धाकरके ४ जिस ५ जिस ६ मूर्तिको ७ पूजा करनेकी ८
इच्छा करता है, ९ तिसतिसके विषय १० ।११ दृढ़ १२ श्रद्धा १३
सि० जो है ❀ तिसको १४ मैं १५ ही १६ स्थिर करता हूं १७ सि०
अन्तर्यामीरूप होकर वेदशास्त्राचार्यद्वारा ❀ तात्पर्य जो जिस
मूर्तिमान् देवतामें प्रीति करता है, परमेश्वर भी आचार्यरूप
होकर उसीको दृढ करदेते हैं. निष्कामभक्तोंको परमेश्वर सुधारते
हैं. सुख मानकर वहिर्मुख हुए बहिःसुखकी इच्छा करते हैं,
कामी विषयी कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

मू०–सतयाश्रद्धयायुक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभतेचततःकामान्मयैवविहितान्हितान् ॥२२॥

सः १ तया २ श्रद्धया ३युक्तः ४ तस्य ५ आराधनम् ६ ईहते ७
ततः ८ च ९ कामान् १० लभते ११ मया १३ एव १४ विहितान्
१५ हि १६॥२२॥ अ०–उ० पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतिकोही सिद्धान्त
समझकर, उनमें श्रद्धा करके सकाम परमेश्वरका आराधन करनेसे
जो कभी किसी किसीको फलभी प्रत्यक्ष होजाताहै, अर्थात्मूर्तिमान्
परमेश्वरका दर्शन होजाना अथवा स्त्री, पुत्र, राज्य, स्वर्ग और
वैकुंठादिकी प्राप्ति होजाना यह सकल उसके कामनाके अनुसार
मैं ही देता हूँ, क्योंकि कामियोंको रूपरसादि विषयही प्रिय होते हैं
जो यह फल प्रत्यक्ष किसीको भी न होय, तो फिर वेदशास्त्रादिमें
उनका विश्वास न रहेगा सो उनका विश्वास वेदशास्त्रादिमें बनार-
हेगा, तो कभी न कभी सिद्धान्तके श्रुतिस्मृतियोंमें भी उनका वि-
श्वास होजायगा, फिर मेरा निष्काम आराधन करके कृतार्थ होजा-
वेंगे. उनको प्रत्यक्ष फल दिखानेमें यह मेरा तात्पर्य है. इस वास्ते
उनकी वोही श्रद्धा स्थिर करता हूँ-सो १ तिस२श्रद्धा करके ३ युक्त४

तिसका ५ सि० ही ❀ आराधन ६ करता है ७ तिससे ८ ही ९ कामनाको १० प्राप्त होता है ११ सि० कैसी है वे कामना, कि ❀ तिनको १२ मैंने १३ ही १४ रची है १५ निश्चयसे १६. तात्पर्य सकामभक्त पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतियोंमें श्रद्धाकरके जिस भक्तकी जिस देवतामें प्रीति है, उसकाही आराधन करता है. उससे ही मनवांछित फलको प्राप्त होता है. वास्तवमें वे कामना परमेश्वरकी रची हुई हैं. परमेश्वरने ही वो फल उसको दिया है परन्तु वे उस मूर्तिका दिया हुआ समझते हैं, उसीको परात्पर समझलेते हैं इसीवास्ते वे जन्ममरणसे नहीं छूटते, इस बातको अगले श्लोकमें भले प्रकार स्पष्ट करेंगे ॥ २२ ॥

मू०—अन्तवत्तुफलंतेषांतद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान्देवयजोयान्तिमद्भक्तायान्तिमामपि॥२३॥

अल्पमेधसाम् १ तेषाम् २ तत्, ३ फलम् ४ अन्तवत् ५ तु ६ भवति ७ देवयजः ८ देवान् ९ यान्ति १० मद्भक्ताः ११ माम् १२ अपि १३ यांति १४ ॥ २३ ॥ अ०—उ० सच्चिदानन्दआत्मासे अन्य मूर्तिमान् परमेश्वरको परमेश्वर मानकर जो उसका आराधन करता है उससे निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दकी उपासना करने वाले कौनसे अधिक फलको प्राप्त होते हैं ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं, कि हां बेसन्देह फलमें बडा अन्तर है. वो अन्तर यह है—परिच्छिन्न है दृष्टि जिनकी अर्थात् वे कमसमझवाले जो परमेश्वर को एकदेशी समझते हैं १ तिनको २ सि० जो फल होता है. मूर्तिमान् परमेश्वरदर्शनादि, बैकुंठादिकी प्राप्ति, स्त्रीपुत्रराज्यादिकी प्राप्ति ❀ सो ३ सि० यह सब ❀ फल ४ अंतवाला ही ५।६ है ७ तात्पर्य अनित्य है ७ सि० क्योंकि ❀ (देवताओंके पूजनेवाले

८ देवताओंको ६ प्राप्त होते हैं १० सि० और ❀ मुक्त सच्चिदानंद निराकार आत्माके भक्त ११ मुक्त सच्चिदानन्द निराकारको १२ ही १३ प्राप्त होते हैं १४. तात्पर्य विचार करो फलमें कितना बड़ा अन्तर है जो यह शंका करे, कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज नित्य हैं उन्होंसे अन्यदेवता अनित्य है. तो फिर यह विचारना चाहिये कि देवताओंकी मूर्ति अनित्य है, वा उनका स्वरूप जो सच्चिदानन्द सो अनित्य है और श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी मूर्ति श्याम सुन्दरस्वरूप नित्य है, वा उनका स्वरूप सच्चिदानन्द नित्य है। दोनोंकी मूर्तियोंको जो नित्य कहे, तो भी नहीं बनसक्ता और दोनोंके सच्चिदानन्दस्वरूप को जो अनित्य कहे, तो भी नहीं बनसक्ता, क्योंकि वेदशास्त्रोंका यह सिद्धान्त है "यद्दृश्यं तदनित्यम्" जो दृश्य है सो सब अनित्य है, तदुक्तं "गोगोचरजहँलगमनजाई॥ सो सब माया जानो भाई" और मां शब्दकी देवशब्दसे लिक्षणता है. तात्पर्य यह बात स्पष्ट है कि, श्रीकृष्णचंद्रमहाराज पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद निराकार है सो नित्य हैं मूर्ति परमेश्वरकी मायिक होती है. पद्मपुराणमें लक्ष्मीजीसे श्रीनारायण गीतामहात्म्य कहते हैं "मायामयमिदंदेविवपुर्मेनतुतात्त्विकम्" अ० हे देवि ! मेरा यह शरीर मायामय है, वास्तवमें नही. देवशब्दका तात्पर्य मूर्तियोंमें है मांशब्दका तात्पर्य सच्चिदानंद निराकार में है ॥ २३ ॥

मू०-अव्यक्तंव्यक्तिमापन्नंमन्यंतेमामबुद्धयः ॥
परंभावमजानन्तोममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

अबुद्धयः १ माम् २ अव्यक्तम् ३ व्यक्तिम् ४ आपन्नम् ५ मन्यन्ते ६मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानन्तः १० अव्ययम् ११ अनुत्तमम् १२ ॥ २४ ॥ अ०-उ० निर्गुणब्रह्मके उपासनामें और सगुण

ब्रह्मलीलाविग्रहमूर्ति आदिके उपासनामें यत्न तो सम प्रतीत होता है, और फल निर्गुण उपासनाका आप विशेष और नित्य कहते हो फिर लीलाविग्रहमूर्तियोंके उपासक भी आपके निरुपाधिकशुद्धस्वरूप सच्चिदानन्दनिराकारब्रह्मात्माकी उपासना क्यों नहीं करते हैं, यह शंका करके इस मन्त्रमें श्रीमहाराज यह कहेंगे कि कम समझ होनेसे मुझ परात्पर निर्विकार शुद्ध सच्चिदानन्दको नहीं जानते, मूर्तिमा-नही मुझको समझते हैं, हे अर्जुन ! यह बडे कष्टकी बात है इस प्रकार बिचार करते हुए श्रीभगवान् यह कहते हैं –अविवेकी याने विचाररहित १ मुझ २ निराकारको ३मूर्तिमान् ४ । ५ मानतेहैं ६ मेरे ७ पर ऐसे ८ प्रभावको ९नहीं जानते १० सि० कैसा है मेरा परप्रभाव कि प्रथम तो ❀ निर्विकार ११ सि० और फिर❀अनुत्तम १२ अर्थात् उसके सिवाय और कोई पदार्थ उत्तम नहीं १२ टी०मूर्ति को ४प्राप्त हुआ ५ ॥ २४ ॥

मू०–नाहंप्रकाशःसर्वस्ययोगमायासमावृतः ॥
मूढोऽयंनाभिजानातिलोकोमामजमव्ययम्॥२५॥

सर्वस्य १ अहम् २ प्रकशः ३न ४ योगमायसमावृतः ५ अयम्६ मूढः ७ लोकः ८ माम् ९अजम्१० अव्यम् ११ न १२अभिजानाति १३ ॥ २५ ॥ अ०–सबको १ मैं २ प्रगट ३ नहीं ४ अर्थात् सब मुझको नहीं जानसक्ते मेरे भक्त ही मुझको जान सक्ते है ४. सि० क्योंकि ❀ योग माया करके ढका हुआ हूं ५ अर्थात मेरी योगमाया अचिंत्य है, उसमायाके सन्बन्धसे अभक्त अर्थात अश्रद्धावान् मुझको नहीं पहँचान सक्ते ५ सि० इसी हेतुसे ❀ यह६ मूढ७ जन८ मुझ ९ अज १० अव्ययको ११ नहीं १२ जानता है १३ ॥ २५ ॥

मू०--वेदाहंसमतीतानिवर्तमानानिचार्जुन ॥
भविष्याणिचभूतानिमांतुवेदनकश्चन ॥ २६ ॥

अर्जुन १ समतीतानि २ वर्तमानानि ३ च ४ भविष्याणि ५ च ६ भूतानि ७ अहम् ८ वेद ९ माम् १० तू ११ कश्चन १२ न १३ वेद १४ ॥२६॥ अ०-उ० पीछे यह कहा, कि मैं योगमायाकरके ढका हुआ हूं सो वो योगमाया मुझको ज्ञानमें प्रतिबंध नहीं जीवको ही मोहनेवाली है जैसे बाजीगरकी माया बाजीगरको नहीं मोहती है, औरोंको ही मोहती है. यह कहते हैं-हे अर्जुन ! १ पीछे २ और वर्तमान ३। ४ और अगले ५। ६ भूतोंको ७ म ८ जानता हूँ, ९ और मुझको १०।११ कोई१२ नहीं १३जानता १४अर्थात् सच्चिदानन्दसे पृथक् प्रथम तो कोई पदार्थ नहीं, है, और जो भ्रान्तिजन्य हैं, भी, तो वे जड़ हैं, कैसे चैतन्यको जानसक्ते हैं १२तात्पर्य आत्मासे पृथक् जो ईश्वरको कोई जाना चाहे, वो मूर्खतम है, क्योंकि स्पष्ट श्रीमहाराज कहते हैं कि मुझको कोई नहीं जानता. इस वाक्य का यही अभिप्राय है कि आत्मासे भिन्न मुझको कोई नहीं जानता॥

मू०--इच्छाद्वेषसमुत्थेनद्वंद्वमोहेनभारत ॥
सर्वभूतानिसंमोहं सगयांतिपरंतप ॥२७॥

परंतप १ सर्गे २ इच्छाद्वेषसमुत्थेन ३ द्वंद्वमोहेन ४ भारत ५ सर्वभूतानि ६ संमोहम् ७ यांति ८ ॥२७॥ अ०-उ० जीवोंका जो अज्ञान दृढ होरहा है और उनको विवेक नहीं होता उसमें कारण यह है, कि स्थूलशरीरकी उत्पत्ति होतेही अनुकूलपदार्थोंमें याने प्रिय पदार्थोंमें तो इच्छा होती है और प्रतिकूल पदार्थोंमें द्वेष उत्पन्न हो जाता है इच्छा और द्वेष क्यों उत्पन्न होते हैं, इसमें हेतु यह है

कि शीतोष्णादिद्वंद्वके निमित्त जो भ्रान्ति हैं अर्थात विवेक नहीं इस वास्ते इच्छा द्वेष उत्पन्न होते हैं, तात्पर्य शोष्णादिके दूर करनेकेलिये जो प्रयत्न करना है. सोई भ्रांति है. क्योंकि शीतोष्णादिकी प्राप्ति और उनका दूर होना प्रारब्धवशात् अवश्यंभावि है. जैसे दुःखके लिये कोई यत्न नहीं करता, सुखके रत्नामें सुखके प्राप्तिके लिये दिन रात तत्पर रहते हैं, परन्तु दिनरातके तरह दुःख सुख बनाही रहता है जिनको यह बिचार नहीं, वे अविवेकी अपने अविवेकसे अज्ञानी बनरहे हैं. यही बात इस मन्त्रमें कहते हैं–हे अर्जुन ! स्थूल शरीर की उत्पति हुए सन्ते अर्थात् स्थूल शरीरकी उत्पतिके पीछे २ इच्छा द्वेषकरके उत्पन्न हुआ द्वन्द्वनिमित्त जो मोह ३। ४ अर्थात् विवेक न होनेसे ३। ४ हे अर्जुन ! जो सब जीव ६अज्ञानको ७प्राप्त हैं,८ तात्पर्य द्वन्द्वके निमित्त जो प्रयत्न करना, यह अविवेकहै, विना इसका त्याग किये परमेश्वरका ज्ञान और अपना ज्ञान न होगा, इच्छा और द्वेष यह दोनों संसारकी जड हैं. इनका त्याग अवश्य करना चाहिये ॥ २७ ॥

मू०-येषांत्वन्तगतंपापंजनानांपुण्यकर्मणाम् ॥
तेद्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजंतेमांदृढव्रताः ॥२८॥

येषाम् १ तु २ पुण्यकर्मणाम् ३ जनानाम्४ पापम् ५ अन्तगतम् ६ ते ७ द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः ८ दृढव्रताः ९ माम् १० भजंते ११ ॥ २८ ॥ अ०–उ० शुभकर्म करनेसे रजोगुण और तमोगुण कम होगया है जिनका उनको द्वंद्वके निमित्त भी मोह कम होता है वे मेरा भजन करसक्ते हैं और उनको मेरे स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है, यह कहते हैं–जिन १। २ पुण्यकारी ३ जनोंका ४ पाप ५ नष्ट होगया है ६ वे ७ द्वंद्वके निमित्त जो मोह उससे छूटे हुए ८ और दृढ़

हैं व्रतनियम जिनके ६ सि० वे ❀मुझको १० भजते हैं ११ टी० निष्काम शास्त्रोक्त सद्गुरुने उपदेश किया उसमें दृढ विश्वास रखना उसीके अनुसार अनुष्ठान करना, यह दृढव्रत है जिनका ॥२८॥

मू०-जरामरणमोक्षायमामाश्रित्ययतन्तिये ॥
तेब्रह्मतद्विदुःकृत्स्नमध्यात्मंकर्मचाखिलम्॥२९॥

ये १ माम् २ आश्रित्य३ जरामरणमोक्षाय ४ यतंति ५ ते६तत् ७ ब्रह्म८विदुः ६ कृत्स्नम् १० अध्यात्मम् ११ अखिलम् १२कर्म १३ च १४ ॥ २६ ॥ अ०-उ० जिस वास्ते भजन करते हैं सो कहते हैं और भगवत्का भजन करनेवाले जाननेके योग्य जो पदार्थ हैं उन सबको जानकर कृतार्थ होजाते हैं यह भी दो श्लोकोंमें कहते हैं-जो १ सि० परमनंदके जिज्ञासु❀मुक्तपरमेश्वरको २ आश्रयकर ३ जरा मरण छूटनेकेवास्ते ४ अर्थात् जन्ममृत्यु, जरा, व्याधि इनका नाश होनेके लिये ४ प्रयत्न करते हैं ५ वे ६ तिस ७ ब्रह्मको ८जानते हैं ६ सि० अथवा जानेंगे कि जिस ब्रह्मके जाननेसे मुक्ति होती है और ❀समस्त१० अध्यात्मको ११समस्त १२ कर्मको भी १३ । १४सि० जानते हैं❀तात्पर्य भलेप्रकार कर्म और अध्यात्मब्रह्मको जानते हैं इन शब्दोंका अर्थ श्रीमहाराज आठवें अध्यायमें निरूपण करेंगे । २६॥

मू०-साधिभूताधिदैवंमांसाधियज्ञंचयेविदुः ॥
प्रयाणकालेपिच मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

युक्तचेतसः १ ये २ माम् ३ साधिभूताधिदैवम् ४ साधियज्ञम् ५ च ६ विदुः ७ ते ८ प्रयाणकाले ६ अपि १० च ११ माम् १२ विदुः १३ ॥ ३० ॥ अ०-उ० भगवद्भक्त अन्तकाल में भी बेसन्देह भगवान्का चिंतवन करके परमेवरको प्राप्त होंगे, भगवद्भक्तों में योग भ्रष्ट की भी शंका न करना क्योंकि उनके अन्तःकरणका प्रेरक अंत-

धर्मी और उनका स्वामी अपनेमें मन आप लगालेगा, सिवाय इसके वे आप परमेश्वरकी कृपामें समाहित चित्त होते हैं सोई कहते हैं-समाहितहै चित्त जिनका १ ऐसेजो २ मुझको ३ सहित अधिभूत और अधिदैवके ४ और सहित अधियज्ञके ५।६ जानते हैं ७ वे ८ अन्तकालमें भी ९।१०।११ मुझको १२ जानेंगे १३. तात्पर्य मेरे स्मरण का ज्ञान अन्तःकालमें उनको बना रहेगा, क्योंकि उनका चित्त सावधान है. अधिभूतादि शब्दोंका अर्थ श्रीमहाराज आपही आठवें अध्यायमें निरूपण करेंगे ॥ ३० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगोनाम ऽसप्तमोध्यायः॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ८

मू०-अर्जुनउवाच॥किंतद्ब्रह्मकिमध्यात्मंकिंकर्मपुरुषोत्तम ॥ अधिभूतंचकिंप्रोक्तमधिदैवंकिमुच्यते ॥ १ ॥

पुरुषोत्तम १ तत् २ ब्रह्म ३ किम् ४ अध्यात्मम् ५ किम् ६ कर्म ७ किम् ८ अधिभूतम् ९ किम् १० च ११ प्रोक्तम् १२ अधिदैवम् १३ किम् १४ उच्यते १५॥१॥ अ०-उ०- पिछले अध्याय में श्रीभगवान्‌ने कहा, कि जो मुझ परमेश्वर का आश्रय लेकर मुक्ति के लिये यत्न करते हैं, वे ब्रह्मादि सप्तपदार्थोंको मुझ सहित अन्तःकाल में भी जानेंगे, क्योंकि मुक्ति विना ब्रह्मज्ञानके नहीं होती, यह वेदोंमें कहा है "ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः-" इति श्रुतिः। इसवास्ते अर्जुन ब्रह्मादि सप्तपदार्थोंके जानने की इच्छा करके प्रश्न करता है- हे पुरुषोत्तम ! १ सो २ ब्रह्म ३ क्या है ४ अर्थात् जिसके जाननेसे मुक्ति होती है, वो सोपाधिक ब्रह्म है वा निरुपा-

धिक, शुद्ध सच्चिदानन्द, निराकार, ऐसा है ? जो सच्चिदानन्दको जाननेसे ही मुक्ति होती है, तो उसका अर्थ कृपा करके मुझे समझाना चाहिये. मैं तो अबतक इसी श्यामसुन्दरमूर्ति को परात्पर परब्रह्म समझताथा और आपही हैं पूर्णब्रह्म, परन्तु सोपाधिक और निरुपाधिकका भेद मैं जानना चाहता हूँ कि किस प्रकार तो आप सोपाधिक हैं और किस प्रकार निरुपाधिक हैं ? यह मेरा तात्पर्य है अर्थात् शुद्धरूप आपका क्या है ४ सि० और इसी प्रकार ❀ अध्यात्म ५ क्या है ? ६ कर्म ७ क्या ? ८ अधिभूत ९ । १० किसको ११ कहते हैं ? १२ और अधिदैव १३ किसको १४ कहते हैं. तात्पर्य अर्जुनका प्रश्न यह है, कि इन शब्दोंके अर्थ शास्त्रमें कैकैप्रकारके अर्थात् बहुत हैं. जैसे ब्रह्म शुद्धकोभी कहते हैं और मायोपहितको और सगुणनिर्गुणको भी ब्रह्म कहते हैं. अब मैं यह जानना चाहता हूं कि वो ब्रह्मपदार्थ क्या है जिसके जाननेसे मुक्त होता है ? इसप्रकार कर्म और जीवादिपदार्थों का अर्थ है अर्जुनका. तात्पर्य यह है कि मुक्तिका हेतु जो ब्रह्मा- दिपदार्थों का ज्ञान वो मैं जानना चाहता हूँ ॥१॥

मू०–अधियज्ञःकथंकोऽत्रदेहेऽस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकालेचकथंज्ञेयोऽसिनियतात्मभिः ॥२॥

मधसूदन १ अत्र २ देहे ३ अधियज्ञ ४ कः ५ कथम् ६ अस्मिन् ७ नियतात्मभिः ८ प्रयाणकाले ९ च १० कथम् ११ ज्ञेयः १२ असि १३ ॥ २ ॥ अ०–हे भगवन् ! १ इस २ देहमें ३ अधियज्ञ ४ कौन है अर्थात् जो जो कर्म शरीर मन वाणी से होते हैं उनका फल दाता इस शरीर में कौन है ५ सि० स्वरूप बूझकर उसके रहने का प्रकार बूझता है कि ❀ किस प्रकार ६ इसमें अर्थात् इस देह

७ सि० वो स्थित है ? और ❀ समाधान है अन्तःकरण जिनका ऐसे पुरुषों करके ८ देहावसानके समय ९। १० किस प्रकार ११ जाननेके योग्य १२ [आप] हो १३ अर्थात् समाधान अन्तःकरणवाले अन्तकालमें आपको किसप्रकार जानते हैं ? ९ ।१०। ११ ।१२ अर्थात् अन्तकाल में क्या उपाय सबसे श्रेष्ठ करना योग्य है कि जिस उपायकरनेसे मुक्त होजावे. तात्पर्य जिनका चित्त समाधान है, उनके उपासनामें तो संदेह नहीं. क्योंकि चित्तका निरोध होना ही उपासनाका फल है. अर्जुनका प्रश्न यह है कि उसको अन्तकालमें क्या करना चाहिये ? इस हेतुसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपासनासे वढकर उपाय बूझता है, इन प्रश्नोंका अर्थ इन ही प्रश्नोंके उत्तर में सब स्पष्ट होजावेगा ॥ २ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ अक्षरंब्रह्मपरमंस्वभावोऽध्यात्ममुच्यते॥भूतभावोद्भवकरोविसर्गःकर्मसंज्ञितः॥३॥

परमम् १ ब्रह्म २ अक्षरम् ३ उच्यते ४ स्वभावः ५ अध्यात्मम् ६ भूतभावोद्भवकरः ७ विसर्गः ८ कर्मसंज्ञितः ९। ३॥ अ०-उ० ब्रह्म अध्यात्म और कर्म इन तीन प्रश्नोंका उत्तर इस श्लोकमें है-परम १ ब्रह्मको २ शुद्ध, सच्चिदानन्द, अक्षर, अखंड, नित्य, मुक्त, निराकार, परात्पर ३ कहतेहैं ४ और जीवको ५ अध्यात्म ६ सि० कहते है ❀ भूतों की उत्पत्ति और उद्भव करने वाला ७ सि० जो देवताओं का उद्देश करके द्रव्य का ❀ त्याग ८ सि० तो कर्म संज्ञित है ९ टी० कर्म है संज्ञा जिसकी उसको कर्म संज्ञित कहते हैं, तात्पर्य-यज्ञ में है ९ "चैतन्यंयदधिष्ठानंलिंगदेहश्चयः पुनः ॥ चिच्छायालिंगदेहस्थातत्संघोजीवउच्यते" ॥ अधिष्ठान जो

चैतन्य और सूक्ष्मशरीर और सूक्ष्मशरीरमें उसी चैतन्यका प्रतिबिम्ब, इन सबके संघातको जीव कहते हैं ५ ॥ ३ ॥

मू०-अधिभूतंक्षरोभावःपुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोहमेवात्र देहेदेहभृतांवर ॥ ४ ॥

क्षरः १ भावः २ अधिभूतम् ३ पुरुषः ४ च ५ अधिदैवतम् ६ देहभृतांवर ७ अत्र ८ देहे ९ अधियज्ञः १० अहम् ११ एव १२ ॥ ४ ॥ भ०-उ० तीन प्रश्नोंका उत्तर इसमंत्रमें है नाशवान् १ पदार्थको २ अधिभूत ३ सि० कहते हैं ❀ पुरुषको ४।५ अधिदैव ६ सि० कहते हैं ❀ हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! ७ इस ८ देहमें ९ अधियज्ञ १० मैंही ११ । १२ सि० हूं ❀ टी० देहादि पदार्थ नाशवन् हैं १।२ जिसकरके यह सब जगत् पूर्ण होरहा है, अथवा सब शरीरमें जो विराजमान है उसको वैराजपुरुष या हिरण्यगर्भ भी कहते हैं. सूर्यमंडलके मध्यवर्ती और व्यष्टि सब देवताओंका अधिपति समष्टि देवता है ४ पीछे अर्जुनने यह भी प्रश्न किया था कि किस प्रकार वो अधियज्ञ इस देहमें स्थित है और अधियज्ञ किसको कहते हैं ? श्रीभगवान्‌ने कहा कि अंतर्यामी अधियज्ञ मैं हूं इसी कहनेसे यह जान लेना कि ईश्वर अन्तर्यामी देहमें आकाशवत स्थित है जो सबका साक्षी, और बुरे भले कर्मोंके फलका देनेवालाहै और वो असंगहै यह समझना चाहिये तात्पर्य यहहै कि ऐसा ईश्वरको समझनेसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै॥४॥

मू०-अन्तकालेचमामेवस्मरन्मुक्त्वाकलेवरम् ॥
यःप्रयातिसमद्भावंयातिनास्त्यत्रसंशयः ॥५॥

अन्तकाले १ च २ माम् ३ एव ४ स्मरन् ५ यः ६ कलेवरम् ७ मुक्त्वा ८ प्रयाति ९ सः १० मद्भावम् ११ याति १२ अत्र १३

संशयः १४ न १५ अस्ति १६ ॥ ५ ॥ अ०-उ० सातवें प्रश्नका उत्तर इस मन्त्रमें है अर्थात् मुक्तिका मुख्य उपाय यह है-अंतकाल-में १। २ मुक्त अन्तर्यामी का ३ ही ४ स्मरण करता हुआ ५ जो अर्थात् ब्रह्मका जिज्ञासु ६ शरीरको ७ त्याग कर ८ सि० अर्चिरादि मार्ग करके ❀ जाता है ९ सो १० कारणब्रह्मको ११ प्राप्त होता है १२ इसमें १३ संशय १४ नहीं १५ है १६ ॥ ५ ॥

मू०-यंयंवापिस्मरन्भावंत्यजत्यन्तेकलेवरम् ॥
तंतमेवैतिकौन्तेयसदातद्भावभावितः ॥ ६ ॥

यम् १ यम् २ भावम् ३ स्मरन् ४ वा ५ अपि ६ अंते ७ कलेवरम् ८ त्यजति ९ कौन्तेय १० तम् ११ तत् १२ एव १३ एति १४ सदा १५ तद्भावभावितः १६ ॥ ६ । अ०-उ० अन्तकालमें जिस पदार्थका चिंतवन करेगा, उसीको प्राप्त होगा यह कहते हैं-जिस १ जिस २ पदार्थका ३ स्मरण करता हुआ ४।५।६ (जीव) अन्तकालमें ७ शरीरको ८ त्यागता है ९, हे अर्जुन ! १० तिस तिसको ११ । १२ ही १३ प्राप्त होता है १४ सि० क्योंकि ❀ सदा १५ तिसका चिंतवन करके वश होगया है चित्त जिसका १६ अर्थात् सदा जिसका चिंतवन रहेगा, वोही पदार्थ उसके मनमें बस जायगा, इस हेतुसे अन्तकालमें भी उसको वोही स्मरण होगा १६ तात्पर्य-"बद्धो बद्धाभिमानी स्यान्मुक्तामुक्ताभिमानिनः । किंवदन्तीहसत्येयंयामतिः सागतिभवत् " यह कहानी सच्ची है कि जिसको यह अभिमान है, अर्थात् यह मानता है, कि मैं बद्ध हूँ, परतंत्र हूँ, परमेश्वर का दास हूं वो ऐसा ही होगा और जो आत्माको स्वतंत्र असंग मुक्त मानता है वो स्वतंत्र मुक्त होगा जैसी जिसकी समझ है उसको वोही गति होगी,इसहेतुसेपरमानंदके उपासकपरमानन्दकोही प्राप्तहोंगे मूर्तियों के उपासकमूर्तियोंको और स्त्री छोकरोंके उपासक--स्त्री छोकरोंको ॥६॥

मू०-तस्मात्सर्वेषुकालेषुमामनुस्मरयुध्यच ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

तस्मात् १ सर्वेषु २ कालेषु ३ माम् ४ अनुस्मर ५ युध्य ६ च ७मयि ८ अर्पितमनोबुद्धः ९ माम् १० एव ११ एष्यसि १२ असंशयः १३ ॥ ७ ॥ अ०-उ० जब कि यह नियम है, कि सदा जिस पदार्थ का चिंतवन रहेगा, अन्तकालमें वो अवश्य यादमें आवेगा इसवास्ते सदा परमेश्वरका ही चिंतवन करना चाहिये और बिना अन्तःकरण शुद्ध हुए परमेश्वरका स्मरण नहीं होसक्ता, इसवास्ते अन्तःकरणके शुद्धिके लिये स्वधर्म का अनुष्ठान करना चाहिये यह कहते हैं-तिस कारणसे १ सबकालमें २ । ३ मुझ अन्तर्यामीका ४ स्मरण कर ५ सि० जो न हो सके तो ❀ युद्धकर ६ सि० क्योंकि युद्ध करना ही क्षत्रियोंका धर्म है युद्धकरनेसे क्षत्रियोंका अन्तःकरण शुद्ध होता है ❀ और ७ मुझमें ८ अर्पितकी है मन और बुद्धि जिसने ९ सि० ऐसा होकर तू ❀ मुझको १० ही ११ प्राप्त होगा १२ सि० इसमें ❀ संशय नहीं १३ तात्पर्य प्रथम अन्तःकरण शुद्ध करके और फिर मुझमें मन लगाकर तू मुझको ही प्राप्त होगा इसमें संशय मतकर, कि युद्ध करनेसे अन्तःकरण शुद्धहोगा वा नहीं? बे संदेह अन्तःकरण शुद्ध होगा और फिर मेरा सदा स्मरण करके मुझको प्राप्त होगा परमेश्वरमें जो मन नहीं लगाता है इसमें यही हेतु है, कि अंतःकरण शुद्ध नहीं प्रथम उपाय मुक्तिका यही है, कि निष्काम होकर भलेप्रकार कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ ७ ॥

मू०-अभ्यासयोगयुक्तेनचेतसाऽनन्यगामिना ॥
परमंपुरुषंदिव्यंयातिपार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

पार्थ १ अनुचिंतयन २ परमम् ३ पुरुषम् ४ दिव्यम् ५ याति ६

अभ्यासयोगयुक्तेन ७ चेतसा ८ अनन्यगामिना ९ ॥ ८ ॥ अ०-उ परमेश्वर के स्मरण करने में दो प्रकार के साधन हैं एक अन्तरंग और दूसरा बहिरंग यज्ञादि निष्कामकर्मों का अनुष्ठान करना बहिरंग साधन है और शमादि अंतरंग साधन हैं क्रम से दोनों प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करना आवश्यक है. इसी वास्ते पहले मंत्रमें बहिरंग साधन कहा अब इस मंत्रमें अन्तरंग साधन कहते हैं -हे अर्जुन ? १सि०शास्त्रसे और गुरुसे जैसा स्वरूपपरमेश्वरका निश्चय कियाहै उसी प्रकार परमेश्वरका*चिंतवन करता हुआ २ परम ३ पुरुष ४ दिव्य को ५ प्राप्त होता है अर्थात् कारण ब्रह्मको अर्चिरादिमार्गकरके प्राप्त होता है ६ सि० उसका अन्तरंग साधन यह हैकि स्त्री धनादि पदार्थोंसे मन हटाकर परमेश्वरमें लगाना योग्य है जब जब किसी पदार्थमें मन जावे उसीसमय वहां से हटाकर परमेश्वरमें लगाना इस को अभ्यासयोग कहते हैं. इस * अभ्यास योग करके युक्त ७ सि० जो चित्त ऐसे *चित्तकरके ८ सि परमेश्वरका चिन्तवन होसक्ता है और दूसरा विशेषण उस चित्तका यह है कि पीछे इस अभ्यासयोगके * नहीं रहता है अन्यपदार्थमें जानेका स्वभाव जिसका ९ तात्पर्य स्वाभाविक किसी पदार्थमें सिवाय परमेश्वर के मन नही जाता है ऐसे चित्त करके कि जिसके ये दो विशेषण कहे हैं, हे अर्जुन ! परमेश्वर का चिन्तवन करता हुआ परमेश्वरको ही प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

मू०-कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः॥ सर्वस्यधातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात् ॥ ९ ॥

कविम् १ पुराणम् २ अनुशासितारम् ३ अणोः४ अणीयांसम्

५ सर्वस्व ६ धातारम् अचिन्त्यरूपम् ८ आदित्यवर्णम् ९ तमसः १० परस्तात ११ यः १२ अनुस्मरेत १३ ॥ ९ ॥ अ०-उ० उस परम पुरुषके ये विशेषण हैं और इसमन्त्रका पिछले मन्त्रके साथ सम्बन्ध है-सि० कैसा है वो परमपुरुष ❀ सर्वज्ञ १ अनादि सिद्ध २ नियन्ता याने प्रेरक ३ सूक्ष्मसे ४ अतिसूक्ष्म ५ सब का ६ पालनेवाला ७ सि० अचिन्त्यशक्तिमान् होनेसे और अप्रमाणमहिमा और गुण प्रभाव होनेसे ❀ अचिन्त्यरूप ८ आदित्यवत् स्वप्रकाश-रूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप अग्निसूर्यवत् उसका प्रकाश नहीं समझना, केवल शुद्ध, ज्ञान, ज्ञप्ति, चित्त, चिती, चैतन्यमात्र ९ सि० ऐसा अनुभव करना चाहिये फिर इसीको व्यतिरेकमुख करके कहते हैं ❀ अज्ञानसे १० परे ११ सि० पूर्वोक्त ऐसे पुरुषको ❀ जो १२ सि० शुद्धब्रह्मका जिज्ञासु❀स्मरण करता है१३तात्पर्य सो उसी दिव्यपरम-पुरुषको प्राप्त होता है, पिछले मन्त्रके साथ इसका अन्वय है, फिर शुद्धि सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको ज्ञानद्वारा प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

मू०-प्रयाणकालेमनसाचलेनभक्त्यायुक्तोयोगबलेन चैव॥ भ्रुवोर्मध्येप्राणमावेश्यसम्यक्सतंपरंपुरुष-मुपैतिदिव्यम् ॥१०॥

प्रयाणकाले १ अचलेन २ मनसा ३ योगबलेन ४च ५एव ६ प्राणम् ७ भ्रुवोः ८ मध्ये ९ सम्यक् १० आवेश्य ११ भक्त्या १२ युक्तः १३ सः १४ तम् १५ परम् १६ दिव्यम् १७ पुरुषम् १८ उपैति ॥ १९ ॥ १० ॥ अ०-उ० इसप्रकार सच्चिदानन्द पुरुषका जो स्मरण करताहै, सो तिसही सच्चिदानन्दको प्राप्तहोताहै यह कहते हैं, अन्तकाल में १ अचल २ मन करके ३ योगके बल से ४। ५।६

प्राणको ७ दोनों भ्रूके ८ बीचमें ९ भलेप्रकार १० ठहरायकर ११ भक्ति करके १२ युक्त १३ सि० जो पुरुष, पीछे कहा है, उस प्रकार का सच्चिदानन्द का स्मरण करता है ❀ सो १४ तिस १५ पर १६ सि० ऐसे ❀ दिव्य पुरुषको १७। १८ प्राप्त होता है १९. टी० सिवाय सच्चिदानन्दनिराकारके किसी पदार्थ में याने स्त्रीपुत्रधन मानापमानादिमें मन न जावे २।३ आसन प्राणायामादिके बलसे ४ सुषुम्नामार्ग करके प्राणको स्थिर करके ७।८।९।१०।११। उस समय सच्चिदानन्दका ध्यान करना यही भक्ति है. ऐसी भक्ति करताहुआ १२।१३ परमपुरुष सच्चिदानंदको ही प्राप्त होगा अर्थात् सच्चिदानन्दरूप होजायगा ॥ १० ॥

मू०-यदक्षरंवेदविदोवदंतिविशंतियद्यतयोवीतरागाः॥
यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यंचरंतितत्तेपदंसंग्रहेणप्रवक्ष्ये॥११॥

वेदविदः १ यत् २ अक्षरम् ३ वदन्ति ४ वीतरागाः ५ यतयः ६ यत् ७ विशन्ति ८ यत् ९ इच्छन्तः १० ब्रह्मचर्यम् ११ चरन्ति १२ तत् १३ पदम् १४ ते १५ संग्रहेण १६ प्रवक्ष्ये १७ ॥ ११ ॥

टी०-उ० महावाक्योंके अर्थ विचारनेमें जो समर्थ हैं अर्थात् निर्मल और तीव्र बुद्धिवाले जो अन्तर्मुख हैं, वे तो उत्तम अधिकारी हैं, उनके मुक्तिके वास्ते ब्रह्मविद्याका श्रवण करना यही उपाय मुख्य है और जो मन्दबुद्धि हैं और मन्दवैराग्य हैं, गृहस्थ छोडकर जिन्होंसे ब्रह्मविज्जनोंका सेवन नहीं होसक्ता, अथवा ब्रह्मविद्याके पढ़ानेवाले गुरु किसी कारणसे उनको प्राप्त नहीं होते अथवा ब्रह्मविद्याके पढ़नेकी सामग्री (पुस्तकादि) नहीं मिलती है जिनको, वे पुरुष मोक्षमार्गके मन्द और मध्यम अधिकारी हैं उनके लिये परम करुणाकर श्रीभगवान् ऐसा अच्छा उपाय बताते हैं, कि उसका अनुष्ठान करनेसे शीघ्र बेसंदेह ज्ञानद्वारा मुक्तिको प्राप्त

होंगे. प्रथम उस मुक्त पदकी स्तुति करते हैं. फिर आगे के श्लोकोंमें उसके प्राप्तिका उपाय कहेंगे-वेदके जाननेवाले १ जिसको २ अक्षर ३ कहते हैं ४ और दूर होगया है राग जिनका ऐसे ५ सि० संन्यासी याने ज्ञाननिष्ठ महात्मा ६ जहां ७ प्रवेश करते हैं ८ सि० और जिसकी ९ इच्छा करते हुये १० सि० ब्रह्मचारी गुरुदेवजीके घर रहकर ❀ ब्रह्मचर्यव्रत ११ करते १२ सो १३ पद १४ तेरे अर्थ १५ संक्षेपकरके १६ कहूँगा अर्थात् उसपदके प्राप्तिका उपाय तुझसे कहूंगा कि जिस पदको वेदोंका तात्पर्य और सिद्धांत जाननेवाले अक्षरब्रह्म कहते हैं और सब पदार्थोंमें दूर होगया है राग जिनका, याने न इसलोकके किसी पदार्थमें राग है न परलोक के किसी पदार्थ में. ऐसे विरक्त साधु महात्मा विज्ञानी महापुरुष जिस परमपदमें प्रवेश करते और जिस पदकी इच्छाकरके ब्रह्मचारी काश्यादिक्षेत्रोंमें जाकर और वहां गुरुदेवकी टहलकरके सांगोपांग वेदोंका अध्ययन करते हैं अर्थात् वेदशास्त्र भलेप्रकार पढते हैं, विचार करते हैं, ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित रहते हैं ऐसे पदके प्राप्तिका उपाय तुझसे कहूंगा सावधान होकर सुन ॥११॥

मू०-सर्वद्वाराणिसंयम्यमनोहृदिनिरुद्ध्यच ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणाम्॥१

सर्वद्वाराणि १ संयम्य २ मनः ३ हृदि ४ निरुद्ध्य ५ च आत्मनः ७ प्राणम् ८ मूर्ध्नि ९ आधाय १० योगधारणाम् आस्थितः १२ ॥ १२ ॥ अ०-उ० उत्तमउपासना सनातन यह है, सोई दोमन्त्रोंमें कहते हैं-सब इन्द्रियोंके द्वारोंको १ रोककर २ मनको ३ हृदयमें ४ रोककर ५ । ६ अपने ७ प्राणको ८ मूर्धामें ९ ठहरायकर १० योगधारणाका ११ आश्रय किया हुआ

परमगतिको प्राप्त होता है. ❀ अगले मंत्रके साथ इस का अन्वयहै. टी० चक्षुरादिका रूपादिके साथ संवंध नहीं होने देना, इसी इन्द्रियोंका रोकना कहते हैं अर्थात् देहयात्राके सिवाय दर्शनादिक्रिया नहीं करना १ । २ अंतःकरणको बहिर्मुख नहीं करना. अर्थात् बाहरके शब्दादिपदार्थोंका संकल्पविकल्प नहीं करना. सिवाय आत्माके किसी पदार्थ (भूतभविष्यत्) का चिंतवन करना. सिवाय आत्माके और किसीपदार्थमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं करना अर्थात् आत्माही सत्य है. तात्पर्य सिवाय आत्मके और किसीको सत्य नहीं समझना और देहादिके साथ तादात्म्यसंबंधकरके अहंकार नही करना. इसको अन्तःकरणका निरोध कहते हैं ३।४।५ प्राणायामके अभ्याससे प्राणकी गतिको मस्तकमें निश्चय करना. तात्पर्य प्राणका निरोधकरना चाहिये, प्राणके निरोधकरनेसे ही अन्तःकरणका निरोध होता है. मनकी और प्राणकी एक गति हैं ७ । ८ ।९ । १० यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगके अंग हैं. इसयोगका अवश्य आश्रय रखना चाहिये. अवश्य अनुष्ठान करना उचित है, जितना अपना सामर्थ्य हो. इसका अनुष्ठान किये विना मन प्राणका निरोध कठिन है. जब कि प्राणमनका निरोध न हुआ तो आत्मानंदका साक्षात्कार होना बहुत कठिन हैं. और जीवन्मुक्तिका होना तो बहुतही दुर्लभ है. पूर्वसंस्कारसे ईश्वरकी कृपासे वा महात्माजनोंका अनुग्रह होनेसे आत्मानन्दका साक्षात्कार होवेगा, तो यह दूसरी बात है. मार्ग तो अपरोक्ष ज्ञानका यही है. इसके पीछे विचार है और इसका फल प्रत्यक्ष है जिसको यह योग थोडासा भी प्राप्त हुआ है, उसको बहुत पढने सुननेकी अपेक्षा नहीं ॥ १२ ॥

मू०-ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

ओम् १ इति २ एकाक्षरम् ३ ब्रह्म ४ व्याहरन् ५ माम् ६ अनुस्मरन् ७ यः ८ देहम् ९ त्यजन् १० प्रयाति ११ सः १२ परमाम् १३ गतिम् १४ याति १५ ॥ १३ ॥ अ०-उ० ओम् इस (शब्द) का उच्चारण करना वेदोंमें बहुत जगह लिखा है और इसका बड़ा प्रत्यक्ष परिचय है-ओम् १ यह २ एक अक्षर ३ सि० ब्रह्मका वाचक होनेसे ❀ ब्रह्मस्वरूप है सि० और इसको दीर्घस्वरसे ❀ उच्चारण करता हुआ ५ सि० और इसका वाच्य जो ईश्वर मैं हूँ ❀ मुझ सच्चिदानन्द ईश्वरका ६ स्मरण करता हुआ ७ जो अर्थात् ब्रह्म जिज्ञासु ८ शरीरको ९ छोडकर १० सि० अर्चिरादिमार्गकरके ❀ जाता है ११ सो १२ परम १३ गतिको १४ प्राप्त होता है १५ अर्थात् ऐसे उपासकको फिर जन्म नहीं होता. ब्रह्मलोकमें जाकर ज्ञानद्वारा परमानंदस्वरूप आत्माको प्राप्त होता है १६. तात्पर्य जैसे घंटेका शब्द एकबेर तो बढा चलाजाता है फिर सहज २ कम होकर जहांसे उठाथा वहांही समाजाता है. इसीप्रकार ओंकारका दीर्घस्वर से उच्चारण करना चाहिये. थोडे देर पीछे स्थित होकर मकारमें थमजानायह उपासना बहुत बढकी है "ओंकारःसर्ववेदानांसारस्तत्त्वप्रकाशः ।। तेनचित्तसमाधानंमुमुक्षूणांप्रकाश्यते" ।। असंख्यात श्लोकोंमें ओंकारका अर्थहै, वेदशास्त्रोंमें बहुतजगहजोनामोच्चारण का महात्म्य लिखा है, वहां तात्पर्य इसीनामके उच्चारण करनेसे है और तारकमंत्र यही है चारोंवेद, षट्शास्त्र, और पुराणादि इसकी टीका हैं इसका जप करनेकी विधिमहात्माओंसे श्रवणकर अवश्यही अनुष्ठान करना चाहिये अन्तकालमें एकबार उच्चारण

करनेसे जो परमगतिको प्राप्त होता है, तो फिर क्या कहना है कि जो पहलेसे अभ्यास करनेवाले परमगतिको प्राप्तहों यह ओंकार सब वेदोंका सार महत्वका प्रकाश करनेवाला और चित्तका समाधान करनेवाला ऐसा है ।. १३ ॥

मू०-अनन्यचेताः सततंयोमांस्मरतिनित्यशः ॥
तस्याहंसुलभःपार्थनित्ययुक्तस्ययोगिनः ॥१४॥

अनन्यचेताः १ यः २ माम् ३ सततम् ४ नित्यशः ५स्मरति ६ पार्थ ७ तस्य ८ नित्ययुक्तस्य ९ योगिनः १० अहम् ११ सुलभः १२॥ १४ ॥ अ०-उ० इसप्रकार अन्तकालमें धारण करके मेरा स्मरण नित्य प्रतिदिन अभ्यास करनेवाला ही कर सक्ता है बिना अभ्यासके अन्तकालमें मेरा स्मरण कठिन है यह बात पहले भी कह चुके हैं श्रीभगवान् फिर भी उसीका स्मरण कराते हैं—नहीं है अन्यपदार्थमें मन जिसका १ अर्थात् सिवाय परमेश्वरके और किसी पदार्थ (पुत्र मित्र स्त्री धनादि) में नहीं है चित्त जिसका १ सि० ऐसा ब्रह्मका जिज्ञासु*जो २मुझको ३निरन्तर ४प्रतिदिन ५स्मरता है ६ हे अर्जुन ! ७ तिस ८ नित्ययुक्त ९ योगीको १० मैं सुलभ ११। १२ सि० हूं औरको नहीं*टी०प्रातःकालसे सायंकाल पर्यंत और सायंकालसे प्रातःकाल पर्यन्त अन्तर पडे अर्थात् आठों पहर के बीच में निद्रा, शौच, स्नान और भोजनादि प्रमितक्रिया के बिना सिवाय नारायणके और किसी पदार्थका चिन्तवन न हो ४ जबतक जीवे (कोईएकदिनवा महीनावावर्षवाशतवर्ष) तबतक उसके बीचमें सिवाय सच्चिदानन्दके और कहीं मन मुख्य होकर नजावे ५ ऐसे समाहितचित्तको मैं सुलभ हूं अर्थात् अन्तकालमें मेरी प्राप्ति उसको बेसंदेह सुखपूर्वक होगी ॥ १४ ॥

मू०--मामुपेत्यपुनर्जन्मदुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवन्तिमहात्मानःसंसिद्धिंपरमांगताः॥१५॥

महात्मानः १ माम् २ उपेत्य ३ पुनः ४ जन्म ५ न ६ आप्नुवन्ति ७ परमाम् ८ संसिद्धिम् ९ गताः १० दुःखालयम् ११ अशाश्वतम् १२ ॥१५॥ अ-उ० आपके प्राप्तिमें क्या लाभ है ? इस प्रश्न के उत्तरमें यह कहते हैं—महात्मा अर्थात् विरक्त वैराग्यवान् १ मुझको २ प्राप्त होकर अर्थात् सच्चिदानन्दरूप होकर ३ फिर ४ जन्मको ५ नहीं ६ प्राप्त होते हैं ७ सि० क्योंकि वे जीवते ही ❀ परम ८ सिद्धिको ९ अर्थात् जीवन्मुक्तिको ८।९ प्राप्त होगये हैं १० सि० कैसा है वो जन्म ? ❀ दुखोंका स्थान याने खान है ११ सि० कैसा भी यह नहीं कि ऐसाही बना रहे, क्योंकि दूसरा विशेषण उसका यह है कि ❀ अनित्य है अर्थात् क्षणभंगुर है, दूसरे क्षणमें दूसरा जन्म होते देर नहीं लगती ॥ १२ ॥ १५ ॥

मू०--आब्रह्मभुवनाल्लोकाःपुनरावर्तिनोऽर्जुन॥
मामुपेत्यतुकौन्तेयपुनर्जन्मनविद्यते ॥ १६ ॥

अर्जुन १ आब्रह्मभुवनात् २ लोकाः ३ पुनरावर्तिनः ४ कौन्तेय ५ माम् ६ उपेत्य ७ तु ८ पुनः ९ जन्म १० न ११ विद्यते १२॥१६॥ अ०-उ० ब्रह्मलोकादिकी प्राप्तिमें क्या आपकी प्राप्ति नहीं, सच्चिदानन्दरूप होनेमें ही आपकी प्राप्ति है, इस अपेक्षा में श्रीमहाराज कहते हैं कि, नहींहै—सि० क्योंकि ❀ हे अर्जुन ! १ ब्रह्मलोकसे लेकर २ सि० जितने सावयव ❀ लोक ३ सि० हैं सब ❀ पुनरावर्तनवाले हैं ४ अर्थात् सब लोकमें (वैकुण्ठादिमें भी) जाकर लौट आता है

मनुष्यलोकमें और जो ब्रह्मके साथ मुक्तसच्चिदानन्दरूपको प्राप्तहोता है, सो शुद्धसच्चिदानन्द निराकारका उपासक ही प्राप्त होताहै उस से सिवाय लौट आते हैं, क्योंकि वे मुक्त शुद्धसच्चिदानंदके उपासक नहीं अर्थात् ज्ञाननिष्ठ नहीं, वे भेदवादी हैं ४ सि०और*हे अर्जुन! ५ मुक्त शुद्धसच्चिदानंदके उपासक तो * मुक्त सच्चिदानंदरूपको ६ प्राप्त होकर ७। ८ दूसरे जन्मको १० नहीं ११ प्राप्त होते हैं १२ तात्पर्य ब्रह्मलोक ब्रह्माजीका है, उसमें केवल ब्रह्माजीके उपासक जाते हैं और राम कृष्ण विष्णु शिवआदिके उपासक गोलोक वैकुण्ठादि लोकोंमें जाते हैं, वे नित्य हैं, यह सब अर्थवाद है और स्थूलबुद्धि-वालोंके लिये स्थूल अर्थात् रोचक वाक्य हैं, क्योंकि सब देवताओंके उपासक अपने स्वामीके लोकको सबसे बड़ा और नित्य कहते हैं, प्रत्युत यह कहते हैं,कि इससे सिवाय कोई दूसरा लोकहै नहीं सिवाय इसके गोलोकादिका वर्णन वेदोंमें तो है नहीं, पुराणोंमें सुना जाता है स्वर्गका वर्णन वेदोंमें बहुत जगह है पूर्वमीमांसावाले वेदका प्रमाण देकर स्वर्गको नित्य अनादि ऐसा कहते हैं, अब बिचारना चाहिये कि स्वर्ग को श्रीभगवान्ने क्यों अनित्य कहा, जो श्रुति है, वे रोचक वाक्य हैं. उनको अर्थवाद समझना चाहिये अब बिचारो कि वेदके श्रुतिकोतो अर्थवाद और रोचक माना फिर पुराणोंके वाक्यों को रोचक और अर्थवाद माननेमें क्यों शंका करते हो?प्रत्युत पुराणों का वाक्य तबतक प्रमाणके योग्य नहीं. कि जबतक उस वाक्यके अनुसार श्रुति न पावे, क्योंकि कितने पुराण सन्दिग्ध हैं, स्पष्ट यह बात हम कहते हैं कि भागवत दो प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे एक बेसंदेह मनुष्यकृत है, जबकि एक पंडितने एक पुराण बनाकर अठारहसहस्र श्लोकोंका प्रचार करदिया, तो क्यों न संशय पड़ेगा ?उन पुराणोंमें

कि जो श्रुतिके अनुसार न होगा, तात्पर्य ब्रह्मलोक पूर्णब्रह्म नारायणका लोक है, पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदके उपासक उस लोकमें जाते हैं, जब वोही अनित्य हैं तो औरोंके अनित्यतामें क्या संदेह है, ब्रह्मलोकमें जाकर कोई तो ब्रह्माजीके साथ मुक्त होजाते हैं और कोई लौट आते हैं, यह बात भी इसी अध्यायमें आगे कहेंगे ॥ १६ ।

मू०--सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः॥
रात्रिंयुगसहस्रान्तांतेहोरात्रविदोजनाः ॥१७॥

अहोरात्रविदः १ जनाः २ ते ३ ब्रह्मणः ४ यत् ५ अहः ६ सहस्रयुगपर्यंतम् ७ विदुः ८ रात्रिम् ९ युग सहस्रान्ताम् १० ॥१७॥

अ०-उ० ब्रह्मलोकादि इसहेतुसे अनित्य हैं-दिनरातके जाननेवाले अर्थात् कालकी संख्या करनेवाले १ सि० जो ❀ पुरुष २ वे ३ ब्रह्माजीका ४ जो ५ दिन ६ सि० है, उसको ❀ सहस्रयुगपर्यन्त ७ (४३२०००००००) कहते हैं ८ अर्थात् सत्युग (१७२८०००) त्रेता (१२९६०००) द्वापर (८६४०००) कलियुग (४३२०००) इन चारोंयुगोंका जोड़ (४३२००००) वर्ष होते हैं (४३२००००) को १००० से गुणाजावे तो चार अर्ब बत्तीस करोड (४३२०००००००) वर्ष होते हैं, चार अर्ब बत्तीस करोड वर्षका ब्रह्माजीका एक दिन होता है, सि० और रात्रिभी इतनीही बर्षोंकी होती हैं ❀ रात्रिको ९ सि० भी❀युगसहस्रान्ता १० सि० कहते हैं, इस प्रकार महीनों और वर्षोंकी कल्पना करके शतवर्षकी अवस्था (आयुष्य) ब्रह्माजीका है, जिसदिन ब्रह्माजी प्रयाण करते हैं उसी दिन सबलोक सावयव नाश होजाते हैं. दिनरात ब्रह्माजीकी आठ अर्ब चौसठकरोड़ वर्षोंकी होती हैं, (८६४०००००००) इस संख्याके निरूपणकरनेका तात्पर्य वैराग्यमें है ❀ टी० हजारयुगों

र जिसका अन्त है उसको सहस्रयुगपर्यंत कहते हैं. और हजार युगोंका अन्त है जिसका उसको युगसहस्रान्ता कहते हैं७, सहस्र युगशब्दका तात्पर्य सहस्रचौकडीमें है ॥ १७ ॥

मू०—अव्यक्ताद्व्यक्तयःसर्वाःप्रभवंत्यहरागमे ॥
रात्र्यागमेप्रलीयंतेतत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

अहरागमे १ सर्वाः २ व्यक्तयः३अव्यक्तात ४ प्रभवन्ति ५ रात्र्यागमे ६ अव्यक्तसंज्ञके ७ तत्र ८ एव ९ प्रलीयन्ते १० ॥१८॥ भा०-उ० हय मनुष्यलोक और कईलोक इससे ऊपरके और नीचेके ब्रह्माजीके रातमेंही नष्ट होजाते हैं. और रातभर कारणरूप हुए सब अविद्यामें रहते हैं. सि० फिर ❀ दिनके आगम में १ अर्थात् ब्रह्माजीका दिन उदय होतेही १ सब २ व्यक्ति ३ अर्थात् सब भूत आकाशादिकार्यके सहित ३ अव्यक्तसे ४ अर्थात् कारणरूपसे ४ प्रकट होजाते हैं ५ और रात्रिके आगममें ६ अव्यक्त संज्ञा है जिसकी ७ तिसमें ८ ही ९ लीन होजाते है १० टी० स्थावर जंगम सब ब्रह्माजीके स्वप्नअवस्थामें लय होजाते हैं और जाग्रदवस्था उसी स्वप्नमेंसे सब प्रकट होजाते हैं, तात्पर्य यह संसार ब्रह्मलोकादि और ब्रह्मादिके सहित सब स्वप्न है, यह समझकर सिवाय सच्चिदानन्दआत्माके अन्य किसी पदार्थमें प्रीति न करना, क्योंकि सब अनित्य हैं, अनित्यपदार्थ वर्तमानकालमें भी दुःखका हेतु है ॥ १८ ॥

मू०—भूतग्रामःसएवायंभूत्वाभूत्वाप्रलीयते ॥
रात्र्यागमेवशःपार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

अयम् १ भूतग्रामः २ सः ३ एव ४ अवशः ५ अहरागमे ६ भूत्वा ७ पार्थ ८ रात्र्यागमे ९ प्रलीयते १० भूत्वा ११ प्रभवति १२ ॥ १९ ॥ भा०-उ० यह नहीं समझना कि नूतन सृष्टिमें नये

जीव उत्पन्न होते हैं, क्योंकि जीव नित्य और अनादि हैं. और संसार अनादि सांत है, इसवास्ते यह श्लोक वैराग्यके लिये कहते हैं– यह १ भूतों का समूह२ सि० जो पूर्वकालमें लय होगया था ❀ सो ३ ही ४ परतंत्र होकर अर्थात् अविद्याके वशहोकर ५ दिनके आगममें ६ सि० प्रकट ❀ होकर ७ हे अर्जुन! ८ रात्रिके आगममें ९ लय होजाता है. १० सि० और फिर दिनके आगममें स्थूलसूक्ष्म ❀ होकर ११ प्रकट होता है १२. टी० भूत्वा भूत्वा ऐसा दोबार कहनेसे यह अभिप्राय है जबतक ज्ञान नहीं होता, तबतक यह चक्र चलाही जाता है. इस वास्ते अवश्य ज्ञानमेंही यत्न करना चाहिये अथवा इस श्लोकका अन्वय ऐसा करना, कि हे अर्जुन! यह भूतोंका समुदायजो प्रथम कल्पमें था, सोई अवश हुआ रात्रिके आगममें होकर फिर लय होकर फिर होकर लय होजाता है, और दिनके आगममें प्रकट होजाता है, तात्पर्य इस अन्वयका भी वोही है. अक्षरोंका जोड और प्रकारका है ॥ १९ ॥

मू०-परस्तस्मात्तुभावोन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः॥
यःससर्वेषुभूतेषुनश्यत्सुनविनश्यति ॥२०॥

तस्मात १ अव्यक्तात् २ तु ३ यः ४ सनातनः ५ भावः ६ अव्यक्तः ७सः ८ परः ९ अन्यः १० सर्वेषु ११ भूतेषु १२ नश्यत्सु १३ न १४ विनश्यति १५॥२०॥ अ०–उ०सावयवलोकोंको अनित्यकहकर शुद्धसच्चिदानन्द स्वरूपको परात्पर नित्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं और उसीको परमगति अपना धाम और अपनेसे अभिन्न कहते हैं. अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूपपरमेश्वरसे जुदा कोईधाम नहीं और न कोई जुदा मुक्तिपदार्थहै. पूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानन्दनि

आत्माको जानना यही मुक्ति है और यही परमधाम है और परमेश्वरका दर्शन अर्थात् प्राप्ति है. इससे भिन्न सब भ्रांति है कहते हैं दोश्लोकोंमें और तीसरे श्लोकमें प्रथम यह पद है कि स परः वहां तक अन्वय है-सि० चराचरका कारण जो अव्यक्त ७ ❀ तिससे अर्थात् पूर्वोक्त १ अव्यक्तसे २ भी ३ जो सनातन ५ पदार्थ ६ अव्यक्त ७ सि० है ❀ सो ८ श्रेष्ठ ९ और विलक्षण १० सि० है. कैसा है, वो कि ❀ सब भूतोंके ।१२ नाश हुएपरभी १३ नहीं १४ नष्ट होता है १५ टी० पाधिक याने मायोपहितब्रह्मको कारण अव्यक्त ऐसा कहते हैं और शुद्धसच्चिदानन्दाखण्डनित्यमुक्ताद्वैतैकरसनिराकार को शुद्ध अव्यक्त कहते हैं. ज्ञानकालमें उपाधिका नाश होजाता है, फिर ल अद्वैतमायारहित अखण्डसच्चिदानन्द रहजाता है, इसीको अव्यक्त निराकार ऐसा कहते हैं ॥ २० ॥

मू०-अव्यक्तोक्षरइत्युक्तस्तमाहुःपरमांगतिम् ॥
यंप्राप्यनानिवर्त्तन्ते तद्धामपरमंमम ॥ २१ ॥

अव्यक्तः १ अक्षरः २ इति ३ उक्तः ४ तम् ५ परमाम् ६ गतिम् ७ आहुः ८ तत् ९ मम १० परमम् ११ धाम १२ यम् १३ प्राप्य १४ न १५ निवर्तन्ते १६ ॥ २१ ॥ अ०-उ० शुद्धअव्यक्त सच्चिदानन्दको अद्वैत सिद्ध करते हैं, सच्चिदानन्दसे जुदा कोई और पदार्थ नहीं अव्यक्तको सि० ❀ अक्षर २ कहते हैं ३ । ४ और तिसको ५ सि० ही ❀ परमा ६ गति ७ अर्थात् मोक्ष, मुक्ति ७ कहते हैं ८ और सोई ९ मेरा १० परम ११ धाम १२ सि० है, कैसा है वो धामकि ❀ जिसको १३ प्राप्त होकर १४ नहीं १५ लौटकर आते है १६ अर्थात् फिर सच्चिदानन्द जीवको उपाधिका

संबंध नहीं होता, क्योंकि ज्ञानसे उपाधिका अत्यन्त अभाव होजा
ता है १६ तात्पर्य सब दुःखोंकी निवृत्तिको और परमानन्दके प्राप्ति
को ही परमगति और मुक्ति और परमधाम ऐसा कहते हैं गोलोक
सत्यलोक, वैकुंठ, अयोध्या, वृन्दावन और कैलासादि सब इस
अव्यक्त सच्चिदानन्दपरधामके नामहैं इस प्रकार समझकर जो वैकुंठा
दि को नित्य परात्पर कहे, तो उसका कहना सत्यहै. औरजो उनसे
सावयव और सच्चिदानन्दसे भिन्न कहे, अर्थात् वैकुण्ठादिको तो श्रे
मंदिर बतावे और विष्णु आदि देवतोंको उन मंदिरादि लोकों
स्वामी भिन्न बतावे, यह अर्थवाद है, अधिकारी प्रति स्थूल रोचक
वाक्य हैं, इस मन्त्रमें अर्थ स्पष्टहै कि परमात्मा से परमात्मा
धाम भिन्न नहीं. क्योंकि परमात्मा निराकार है. आश्रय साकार
को चाहता है. परमेश्वर अपने को अव्यक्त, अमूर्त, अक्षर, असं
अविनाशी ऐसा कहते हैं. ऐसा अर्थ स्पष्ट सुन देखकर भी जो
फिर परमेश्वरको और उनके धामको सावयव याने साकार ऐसे
परमार्थमें बतावे मूर्खतम विनापुच्छका पशु जिसका भगद्वाक्य
विश्वास नहीं ॥ २१ ॥

मू०—पुरुषःसपरःपार्थ भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यान्तःस्थानिभूतानियेनसर्वमिदंततम् ॥२२

पार्थ १ सः २ परः ३ पुरुषः ४ भक्त्या ५ लभ्यः ६ तु ७ अन
न्यया ८ यस्य ९ भूतानि १० अन्तःस्थानि ११ येन १२ इदम्
१३ सर्वम् १४ ततम् १५ ॥ २२ ॥ अ०—उ० परमगतिकी प्राप्ति
का उपाय सबसे श्रेष्ठ मुख्य ज्ञानलक्षण अनन्यपराभक्ति है. इसीसे
उत्तमपुरुष और परमपुरुष परमात्मा कहते हैं "पुरुषान्न परं
किंचित्साकाष्ठासापरागतिः ॥" श्रुतिने यह कहा कि पुरुषसे
श्रेष्ठ कुछ नहीं यही पुरुष परात्पर अवधि है और यही परम

है-हे अर्जुन! १ सो २ परम ३ पुरुष ४ अर्थात् परब्रह्मपूर्णनारायण सच्चिदानन्द ४ भक्ति करके ५ प्राप्त होता है, ६ सि० यह तु शब्द विलक्षण अर्थमें आता है, इसजगह विलक्षणता यह है, कि भजन कीर्तन सेवा प्रदक्षिणा इत्यादि भक्तिका अर्थ नहीं, क्योंकि आगे उसके अनन्यया यह विशेषण है. श्रीभगवान् कहते हैं कि परमात्मा भक्तिकरके प्राप्त होता है, परन्तु कैसी भक्ति करके कि * अनन्य करके ही ७।८ तात्पर्य सिवाय सच्चिदानन्दके अन्य अर्थात् दूसरा कोई और पदार्थ जिसकी वृत्तिमें नहीं रहा ऐसीवृत्ति करके परमात्मा प्राप्त होता है, घंटा बजाना, परिक्रमा करना यह तो बालक और मूर्ख बहिर्मुख विषयीभी कर सक्ते हैं, सुन्दर पदार्थमें सबका ही मन लग जाता है, सिवाय इसके यह बात स्पष्ट है. कि श्रीभगवान् अर्जुनको उपदेश करते हैं, श्यामसुन्दरस्वरूप तो अर्जुनको प्राप्त ही है. सच्चिदानंद निराकार आत्माकाही उसको ज्ञान नह. उसी को परमपुरुष श्रीभगवान् बताते हैं. जिसके ९ भूत १० सि० आकाशादि * भीतर स्थित हैं ११ अर्थात् सब जगत् सोपाधिक सच्चिनन्द ऐसे कारण ईश्वरमें स्थिति हैं ११ सि० और * जिस करके १२ यह १३ सब १४ अर्थात् जगत् १४ व्याप्तहै १५ अर्थात् सब जगतमें सच्चिदानन्द अस्ति भाति प्रिय ऐसा होकर पूर्ण होरहा है।

मू०-यत्रकालेत्वनावृत्तिमावृत्तिंचैवयोगिनः॥
प्रयातायांतितंकालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

यत्र१ काले २ तु ३ प्रयाताः ४ योगिनः ५ अनावृत्तिम्६ आवृत्तिम् ७ च८ एव ९ यांति १० भरतर्षभ ११ तम् १२ कालम् १३ वक्ष्यामि १४ ॥ २३ ॥ अ०—उ० ज्ञानी जीते ही ब्रह्माजीसे स्वतंत्र होकर मुक्त होता है और ब्रह्माका उपासक ब्रह्माजीके साथ परतंत्र

होकर मुक्त होता है और कर्मनिष्ठावाले और भेदउपासनावाले सदा स्वतंत्र रहते हैं, स्वर्गादिमें जाकर सालोक्यादि मुक्तिको प्राप्त होकर फिर जन्ममरणमें घूमते हैं, सो इन परतंत्रमुक्तिवालोंका मार्ग मुझसे सुन, आगे दो श्लोकोंमें कहूँगा, बिना ब्रह्मज्ञान जो इनका हाल होता है बहिर्मुख विषयी पामर इनका तो कुछ प्रसंगही नहीं, वे तो संसारमें डूबे रहते हैं–जिसमार्गमें १। २। ३ जाते हुए ४ योगी* ५ अनावृत्ति ६ और आवृतिको ७। ८। ९ प्राप्त होते हैं १० हे अर्जुन! ११ तिस १२ मार्गको १३ कहूँगा मैं, १४ सि० तुमसे आगे दो श्लोकोंमें अभिप्राय मेरा उन मार्गोंके कहनेसे यह है, कि जबतक बने स्वतंत्र होना चाहिये * "पराधीनस्वप्नेहु सुखनाहीं। सोच बिचारदेखहुमनमाहीं" टी० कर्मनिष्ठ और भेदवादी आवृत्तिमार्ग होकर परतन्त्र और पराधीन हुए स्वर्गाधीन होकर स्वर्गादिमें जाते हैं ब्रह्मके उपासक अनावृत्तिमार्ग होकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं, ज्ञानी महात्मा स्वतंत्र होकर सबसे पहले मुक्त होते हैं, वे किसीके घर नहीं जाते निजानन्दको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

मू०–अग्निर्ज्योतिरहःशुक्लःषण्मासाउत्तरायणम् ॥
तत्रप्रयातागच्छन्तिब्रह्मब्रह्मविदोजनाः ॥२४॥

अग्निः१ ज्योतिः २ अहः ३शुक्लः ४षण्मासाः ५उत्तरायणम्६ तत्र ७ प्रयाताः ८ब्रह्मविदः ९ जनाः १० ब्रह्म ११गच्छन्ति १२ ।२४॥

अ०–उ० सच्चिदानंदब्रह्मनिराकारके उपासकोंका अनादिमार्ग कहते हैं अर्थात ब्रह्मपदके ये मञ्जिल २ हैं–अग्नि १ ज्योति २ दिन ३शुक्लपक्ष ४ छः महीने उत्तरायण ५। ६ इस मार्गमें ७ जाते हुए ८ ब्रह्मके जाननेवाले ९ अर्थात् ब्रह्मोपासक ९ जन १० सि० क्रमक्रमसे अर्थात उत्तरोत्तर मंजिल दरमंजिल * ब्रह्मको ११

प्राप्त होंगे १२ अर्थात् फिर उनको जन्म न होगा, ज्ञानद्वारा परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त होंगे १२ टी० अग्निके देवताको, फिर ज्योतिके, फिर दिनके, फिर शुक्लपक्षके, फिर उत्तरायणके देवताको प्राप्त होंगे, तात्पर्य यह है कि पहले अग्निके देवताके पास ब्रह्मोपासक पहुंचेंगे फिर वो देवता ज्योतिके देवताके पास पहूंचादेगी, इसीप्रकार आगे भी कल्पना करलेना, इसीप्रकार ब्रह्मलोकमें पहुंचेंगे. फिर ब्रह्माजीके साथ मुक्त होजावेंगे, अग्न्यादिशब्द देवतोंका उपलक्षण है, तात्पर्य देवतोंसे है. यह मार्ग सनातन श्रौतोपासनाका है इसप्रकारकी उपासना इनदिनोंमें बहुत कम करते हैं प्रत्युत इसके जाननेवाले भी कम हैं हेतु इसमें यह है कि रूप, रंग, नृत्य ये हैं जिस उपासनामें उस उपासनामें आसक्त होरहे हैं यथार्थ उपासना और भक्ति यह है, कि जिसभक्तिकी वेदशास्त्रोंमें बड़ाई है ॥ २४ ॥

मू०-धूमोरात्रिस्तथाकृष्णःषण्मासादक्षिणायनम् ॥
तत्रचांद्रमसंज्योतिर्योगीप्राप्यनिवर्तते ॥२५॥

तथा १ धूमः २ रात्रिः ३ कृष्णः ४ षण्मासाः ५ दक्षिणायनम् ६ तत्र ७ योगी ८ चांद्रमसम् ९ ज्योतिः १० प्राप्य ११ निवर्तते १२ ॥ २५ ॥ अ०-उ० कर्मनिष्ठावालोंका आवृत्तिमार्ग कहते हैं, अर्थात् वो रस्ता, कि जिस रस्ते जाकर लौट आते है, जैसे अनावृत्तिमार्गवाले ब्रह्मवित् अग्न्यादिदेवताओंको पहले प्राप्त होकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं फिर उनको जन्म नहीं प्राप्त होता-तैसे १ सि० कर्मनिष्ठ अर्थात् आवृत्तिमार्गवाले धूमादिदेवताओंको पहले प्राप्त होकर फिर स्वर्गलोकको प्राप्त होकर लौट आते हैं. उनकी मंजिल यह है ॥ धूम २ रात्रि ३ कृष्ण पक्ष ४ छः महीने दक्षिणायन ५ । ६ इन रस्तोंमें ७ सि० जाता हुआ ॥ कर्मयोगी ८ चांद्रमस ९ ज्योतिको

१० अर्थात् स्वर्गको १० प्राप्त होकर ११ लौट आता है १२ सि० मनुष्यलोकमें ❀ टी० पहले धूमके पास जाता है, फिररात्रिके फिर कृष्ण पक्षके, फिर दक्षिणायनके, इसप्रकार उत्तरोत्तर क्रम २ से मंजिल दरमंजिल स्वर्ग में पहुंचता है, तात्पर्य जो निवृत्तिमार्ग स्थित होकर अन्तरंग उपासना करते हैं, अर्थात् सच्चिदानन्द, अक्षर, निराकार, ऐसा आत्माका जो आराधन करते हैं, वे क्रम २ से ब्रह्म लोकमें पहुँचकर मुक्त होंगे. कर्मनिष्ठ वहांका भोग भोगकर लौट आवेंगे, निषिद्ध कर्मकरनेवाले नरकमें जाकर फिर मनुष्योंमें जन्म लेंगे और अति निषिद्धकर्मकरनेवाले चौरासीलक्षयोनियोंमेंभ्रमेंगे।२५

मू०--शुक्लकृष्णेगतीह्येतेजगतः शाश्वतेमते ॥
एकयायात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्ततेपुनः ॥२६॥

शुक्लकृष्णे १ एते २ गती ३ हि ४ जगतः ५ शाश्वते ६मते ७ एकया ८ अनावृत्तिम् ९ याति १० अन्यया ११ पुनः १२आवर्तते १३ ॥ २६ ॥ अ०–शुक्ल और कृष्ण १ ये २ दोगति ३। ४ जगत की ५ अनादि ६ मानीहैं ७, सि० क्योंकि संसार अनादिहै इसवास्ते इनदोनों मार्गोंको भी महात्मा अनादि मानते हैं हि यह शब्द स्पष्ट करता है कि यह बात वेदशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है❀ एककरके ८ अर्थात् शुक्ल मार्ग करके ८ अनावृत्तिको ९ प्राप्त होता है, १० अर्थात् फिर उसको जन्म नहीं होता ब्रह्माजीके साथ मुक्त होजाताहै तब तक ब्रह्मलोकमें दिव्यभोग भोगता है और ब्रह्मज्ञान श्रवण करता है १० सि० और ❀ अन्यकरके ११ अर्थात् दूसरे कृष्णमार्ग करके ११ फिर १२ जन्ममरण को प्राप्त होता है १३ तात्पर्य–कृष्णमार्ग-करके जो स्वर्गादिमें जाता है, वो लौट आताहै और जो शुक्लमार्गकरके

जाता है, वो मुक्त होता है. टी० जगत् कहनेसे सब जगत् नहीं समझना. इस जगतमें ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ जो पुरुषहैं उनकी ये दो गति हैं. सब जगत् की नहीं. भेदवादी उपासकादिका कर्मनिष्ठपुरुषोंमें अन्तर्भाव है. ज्ञान प्रकाशस्वरूप है इसवास्ते उसको शुक्ल कहा और कर्म तम जडरूप है इसवास्ते उसका मार्ग कृष्ण कहा. स्पष्ट बात है कि ज्ञानमार्ग अज्ञानको दूर कर सकता है. तात्पर्य यह है कि ज्ञानी प्रकाशवाले रस्ते जाते हैं और अज्ञानी (कर्मी) अन्धकारके रस्ते जाते हैं अब विचारना चाहिये कि इन दोनों मार्गोंमेंसे श्रेष्ठ ज्ञानमार्ग है, वा कर्ममार्ग है ॥२६॥

मू०-नैतसृतीपार्थजानन्योगीमुह्यतिकश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषुकालेषुयोगयुक्तोभवार्जुन ॥२७॥

पार्थ १ कश्चन २ योगी ३ एते ४ सृती५जानन् ६ न७ मुह्यति ८ अर्जुन ९ तस्मात् १० सर्वेषु ११ कालेषु १२ योगयुक्तः १३ भव १४ ॥ २७ ॥ अ०-उ० पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्दका ध्यानकरनेवाला योगी इन दोनों मार्गोंमें प्रीति नहीं करता तात्पर्य यह कि ब्रह्मलोकादिमें जानेकी इच्छा नहीं करता. ब्रह्माजीसे पहलेही मुक्त हुआ चाहता है-हे अर्जुन ! १ कोई २ योगी ३ इनदोनों ४ मार्गोंको ५ जानता हुआ ६ नहीं ७ मोहको प्राप्त होता है ८ सि० बहिर्मुखविषयी सब पदार्थोंके भोगनेकी इच्छा करते हैं. जैसे इस लोक के भोग वैसेही परलोकके, क्योंकि दोनों अनित्य दुःखदायी हैं जो कोई ब्रह्मलोकमें जानकर मुक्त होंगे उनको क्या दुःख है, इसका उत्तर यह कि जैसे व्यवहारमें राज्य करनेमें द्रव्य ऐश्वर्य और ईश्वरता की प्राप्ति में और उन साधनों में भी तो सुख मानते हैं और कहते हैं कि राज्य करनेमें क्या दुःख है ऐसा ही यह प्रश्न है. विचारकरो कि एकके मकानमें उसकी आज्ञा में

रहना दुःख है वा सुख है. जिन्होंने सदा स्त्रीधन राजाकी सेवा टहल की है उनको सेवामेंही सुख प्रतीत है. इसीहेतु से परमेश्वरके भी दास बना चाहते हैं ❀ हे अर्जुन ! ६ तिसकारणसे १० सब कालमें ११ । १२ योगयुक्त १३ हो तू १४. टी० सच्चा योगी कोई भी ब्रह्मलोकादि की इच्छा नहीं करता, क्योंकि, इनमार्गों को जानता है और समझजाता है, कि जगह २ धक्के खाकर ब्रह्मलोक में पहुंचता है. फिर वहां ब्रह्माजी बूझते हैं कि तू कौन है, ऐसी तडाक नीच आदमी सहते हैं. महात्मा ऐसे जगे नहीं जाते जहां कोई तू तड़ाक करे. इसी वास्ते हे अर्जुन ! उत्साह और धीरजकी कमर बांध. दिनरात्रि गंगाप्रवाहवत् शुद्धसचिदानन्दका ध्यान कर, पूर्णसचिदानन्दकोही प्राप्त होगा ॥ २७ ॥

मू०-वेदेषुयज्ञेषुतपस्सुचैवदानेषुयत्पुण्यफलंप्रदिष्टम् ॥ अत्येतितत्सर्वमिदंविदित्वायोगीपरंस्थानमुपैति- चाद्यम् ॥ २८ ॥

यत् १ पुण्यफलम् २ वेदेषु ३ यज्ञेषु ४ तपस्सु ५ च ६ एव ७ दानेषु ८ प्रदिष्टम् ९ योगी १० इदम् ११ विदित्वा १२ तत् १३ सर्वम् १४ अत्येति १५ च १६ आद्यम् १७ परम् १८ स्थानम् १९ उपैति २० ॥ २८ ॥ अ०-उ० श्रद्धा बढनेके लिये योगकी स्तुति करते हैं. श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! सुन ध्याननिष्ठयोगीका माहात्म्य-जो १ पुण्यफल २ वेदोंमें ३ सि० और ❀ यज्ञोंमें ४ और तप ५।६।७ सि० और ❀ दानमें ८ सि० वेदशास्त्र और महात्माओंने ❀ कहा है, ९ अर्थात् सांग और सोपांगविधिवत् वेदोंके अध्ययन करनेमें जो पुण्यका फल होता है, कि जैसा शास्त्र ने कहा है, ९, ध्याननिष्ठयोगी १० यह ११ जानकर १२ अर्थात् जो पीछे कहा, वो सब फल मुझको हुआ यह समझकर अथवा

[उक्त]प्रश्नोंका अर्थ भलेप्रकार जानकर और उनका भले प्रकार [अ]नुष्ठान करके १२ तिस १३ सबको १४ उलंघ जाता है. १५ अर्थात् यह फल अवान्तरबीचका फल, जिसको गौण कहते [हैं] उसको उलंघकर उससे श्रेष्ठ फलको प्राप्त होता है १५. फिर १६ आदि १७ पर १८ स्थानको १६ प्राप्त होता है २० अर्थात् [का]रणब्रह्मको प्राप्त होता है २० ॥ २८ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे महापुरुषयोगोनाम ऽष्टमोध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः९

मू०-श्रीभगवानुवाचाइदंतुतेगुह्यतमंप्रवक्ष्याम्यनसूयवे। ज्ञानंविज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात ॥ १॥

इदम् १ तु २ ज्ञानम् ३ विज्ञानसहितम् ४ गुह्यतमम् ५ ते ६ [प्रव]क्ष्यामि ७ अनसूयवे ८ यत् ९ ज्ञात्वा १० अशुभात् ११ [मो]क्ष्यसे १२ ॥ १ ॥ अ०-उ० इस अध्यायमें अचिंत्य प्रभाव और अपनी अचिन्त्यशक्ति निरूपण करके, तत्पदार्थकी त्वंप[दा]र्थकेसाथ लक्ष्यार्थमें एकता दिखाकर, उसके प्राप्तिका सुलभ [उ]पाय निरूपण करेंगे और वो उपाय सबके वास्ते साधारण है, सि० जो इस अध्यायमें कहना है ❀ १। २ ज्ञान ३ अनु[भ]वके साथ ४ गुह्यतम् ५ तेरे अर्थ ६ कहूंगा ७, सि० कैसा है तू कि ❀ असूयारहित है ८ अर्थात् किसीके गुणमें अवगुण नहीं आरोपण करता है सि० किसीके गुणोंमें अवगुण आरोपण करना बड़ा अनर्थ है, दूसरेके गुणोंमें जो अवगुणोंका आरोप करेगा वो ब्रह्मविद्याका अधिकारी नहीं, इसविशेषणसे अर्जुनको ब्रह्मविद्या

का अधिकारी दिखाया, कैसा है वो ज्ञान कि ❀ जिसको ६ जान कर १० अशुभ (संसार) से ११ [तू] छूट जायगा १२ टी० तु यह शब्द ऐसी जगह विशेष आता है कि जहां पूर्वोक्तसे विलक्षण विशेष निरूपण होगा. धर्मतत्त्व गुह्य है और उपासना का तत्त्व गुह्यतर है, और ज्ञानका तत्त्व गुह्यतम है केवल तेरे कल्याणके अर्थ तुझसे कहूंगा. मेरा कुछ मतलब नहीं ६. ऐसा कौन है जो गुणोंमें अवगुण निकाले. सुनो, ज्ञाननिष्ठामें जो तर्क करते हैं श्रद्धा नहीं करते. जानबूझ ब्रह्मविद्याका उलटा अर्थ करते हैं तात्पर्य ब्रह्मविद्याका अधिकारी जानकर तुझसे कहूंगा. तू मेरा भक्त है, इसज्ञानके आश्रयसे तू मुक्त होगा. कोई कोई जो यह कहते हैं, कि बिना अद्वैतब्रह्मज्ञानकेभी मोक्ष होजाताहै सो नहीं किन्तु इसीज्ञानसे, कि जो विज्ञानकेसहितमैं कहूंगा. जिससे आत्मा अद्वैत जानाजाता उससे मोक्ष होगा, द्वैतज्ञानमें तेरे संदेह नहीं साक्षात् द्वैतउपासनाका फल मैं प्रत्यक्ष हूँ आत्माका यथार्थ ज्ञान तुझको नहीं, वो मैं विलक्षण कहूँगा. इस वास्ते 'तु' यह पद इस श्लोकमें है ॥१॥

मू०–राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥१॥

इदम् १ राजविद्या २ राजगुह्यम् ३ पवित्रम् ४ उत्तमम् ५ प्रत्यक्षावगमम् ६ धर्म्यम् ७ कर्तुम् ८ सुसुखम् ९ अव्ययम् १० ॥ २ ॥
अ०–उ० इस श्लोकमें ब्रह्मज्ञानके सब विशेषण हैं–यह सि० ब्रह्मज्ञान ❀ सब विद्याओंका राजा है अर्थात् अठारह विद्या जो प्रसिद्ध यह सबका राजा है २ सि० और ❀ गुप्तपदार्थोंका राजा है ३ सि० क्योंकि कोई विरले महात्मा जानते हैं और यह ❀ पवित्र ४ सि० क्योंकि निरवयवपदार्थ है. चतुर्थाध्याय

श्रीभगवान्‌ने कहा है. कि ज्ञानके सदृश और कोई पदार्थ पवित्र नहीं और सबसे * श्रेष्ठ ५ सि० है, क्योंकि अनेक जन्मोंके पापों को, अनादिकालकी अविद्याको, एकक्षणमें नाश कर देता है, * दृष्ट फलवाला है ५ सि० क्योंकि आत्माको जीते हुए ही अनुभव कर देता है अर्थात् ज्ञानीको परात्परपरमानंदनित्यमुक्तकीप्राप्ति जीते ही होती हैं, क्योंकि ज्ञानियोंको जीवनमुक्त कहते हैं और * सब धर्मोंका फल यही है, सब धर्मकर्मउपासना इसीके वास्ते हैं ७ सि० और * करनेको अर्थात् अनुष्ठान करनेके लिये ८ सुखवाला है. ९ तात्पर्य सुखपूर्वक इसका अनुष्ठान होसक्ता है, क्योंकि अपना आत्मा सुखरूप है, सुखको सब जानते हैं,सुखपदार्थके जाननेमें कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता केवल इतना और समझना चाहिये कि मेरे हृदय में जो यह सुख प्रतीत होता है, इसका अखंड अद्वैतपुंज मैंहूँ, वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहाहै, कि हे राम! फूलके मलनेमें बिलंब और यत्न होताहै, ज्ञानकी प्राप्ति उससे भी जल्दी होती है, क्योंकि स्वयंशुद्धआत्मा सदा प्राप्त है, केवल अज्ञान दूर होना चाहिये और अज्ञान दूर होनेमें पलभी काल नहीं लगता. मूर्ख बका करते हैं, कि अजी! ज्ञान बडा कठिन है, देखो श्रीभगवान् उनके मुख पर क्या धूल डालते हैं, जड़पदार्थोंके जाननेमें ज्ञानकी इच्छा होती है, ज्ञानस्वरूपके जाननेमें क्या प्रयत्न चाहिये, जैसे कोई कहे कि मैं अपनी आंख नहीं देखताहूं उस मूर्खसे कहना चाहिये, कि जिससे तू सबको देखताहै वो तेरी आँख और जैसे कोई बोले और कहेकि मेरे मुखमें जीभहै वा नहीं ऐसेही अज्ञानी कहते हैंकि ब्रह्मज्ञान हमको है वा नहीं.सो निश्चयसे उस को ज्ञान नहीं और न होगा, क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मासेसे पृथक् पदार्थको ब्रह्मजाना चाहतेहैं, वो कैसे प्राप्त होगा?सि०और इसकाफल

❀ अविनाशी १० सि० हैं, क्योंकि आत्मा नित्यहै, आत्मासे पृथक् सब पदार्थ अनित्य हैं. प्रत्ययुत परमार्थ दृष्टि करके अभाव-रूप हैं ॥२॥

मू०-अश्रद्दधानाःपुरुषाधर्मस्याऽस्यपरंतप ॥
अप्राप्यमांनिवर्तन्तेमृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

परंतप १ अस्य २ धर्मस्य ३ अश्रद्दधानानः ४ पुरुषाः५माम् ६ अप्राप्य ७ मृत्युसंसारवर्त्मनि ८ निवर्तन्ते ९ ॥ ६ ॥ अ०-उ० जब कि यह ब्रह्मज्ञान सबगुणसम्पन्न है, तो बहुतलोग कर्मकांडी द्वैतवादी इसका क्यों नहीं आदर करते! यह शंका करके कहते हैं-हे अर्जुन १ इस २ धर्मके ३ अश्रद्धावाले ४ पुरुष अर्थात् जो ब्रह्मज्ञानमें श्रद्धा नहीं करते वे५मुझको६न प्राप्त होकर७जन्ममरणरूप संसारमार्गमें ८ भ्रमाकरतेहैं९तात्पर्य-अन्तःकरणमैला होनेसे,और कम समझसे ब्रह्मवि-द्याका कर्मकांडी, द्वैतवादी, उपासकादि, श्रवण नहीं करते इस हेतुसे वे इस परमधर्मका अनुष्ठान नहीं करते और जो श्रवण भी करते हैं और पढ़ते भी हैं. तो उसका अर्थ उलटा समझते हैं तात्पर्य-शास्त्र का अभिप्राय नहीं समझते, रोचक अर्थवाद वाक्योमें विश्वास करते हैं, सिद्धान्तमें श्रद्धा नहीं करते, इस हेतुसे उलटा ही फल उनको मिलता हैं, अर्थात् वेदोक्तअनुष्ठान करनेसे परमफल (मुक्ति) होना चाहिये सो वे आप अपने मुखसे यह कहते हैं, कि हम बृन्दावनके गीदड, शृगाल होजावें, परन्तु मुक्ति हम नहीं चाहते. इस वाक्यको विचारो कि जिनकी मुक्तिफलमें श्रद्धा नहीं, तो ज्ञाननिष्ठा तो मुक्ति का साधन है, उसमें उनकी श्रद्धा कब हो सक्ती है ? चतुर्थाध्यायमें कह चुके हैं, कि ज्ञानको श्रद्धावान् प्राप्त होता है, यह जो लोग बहि-

मुखहैं और रूपरसादिहीमें सुख समझते हैं,अन्तःसुख नहीं जानते यह बहिर्मुख होनाही ज्ञाननिष्ठामें अश्रद्धाका कारण है और यह न समझना चाहिये कि भक्ति उपासनाके आश्रय सम्बन्ध आडमिस-बहानेसे जो रूपका देखना और शब्दका सुनना है, यह विषय विषवत् नहीं,इससे कुछ क्षति नहींहोती किन्तु विषय सब बराबरहैं केवल इतना भेद है कि जैसे लोहेकी बेड़ी और सोनेकी बेडी, तात्पर्य लौकिक प्रसिद्ध विषयोंसे वे अच्छे हैं यह बात कुछ बुरा माननेकी नहीं विचार देखो कि रामलीलादिके देखनेवाले प्रायशः विषयी बहिर्मुख पामर होते हैं, वा प्रेमी वैराग्यवान विवेकी या साधनसंपन्न ऐसे हैं और शतपचास लोग जो नये श्रद्धापूर्वक ऐसी भक्तिमें लगेंगे ऐसे भक्तिको पुण्यजनक, मोक्षप्रदा. परात्पर ऐसे समझकरभी जो लगेंगे, वा लगते हैं, तो वे परिणाममें बहिर्मुखही रहते हैं वा अन्तर्मुख शमदमादि साधन संपन्न होजाते हैं तात्पर्य यहहै कि जो ऐसा २ रस चाखते हैं. उनको ज्ञाननिष्ठा आपही फीकी लगेगी. यह व्यवस्था सुनी हुई है अनुमानद्वारा मैंने नहीं लिखी किन्तु अपने आंखोंसे देखी हुई और बरती हुई लिखी है ऐसे आदमियोंके सामने ज्ञानका नाम भी लेना दुःखका मूल हैं ॥ ३ ॥

मू०–मयाततमिदंसर्वंजगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानिसर्वभूतानिनचाहंतेष्ववस्थितः ॥४॥

मया १ अव्यक्तमूर्तिना २ इदम् ३ सर्वम् ४ जगत् ५ ततम् ६ सर्वभूतानि ७ मत्स्थानि ८ अहम् ९ तेषु १० न ११ च १२ अवस्थितः १३ ॥४॥ अ०–उ० ज्ञाननिष्ठाके अनधिकारियोंको फलके सहित कहकर और अर्जुनको ज्ञाननिष्ठामें श्रद्धावान् असूयारहित समझकर अर्जुनको सन्मुखकरके ब्रह्मज्ञान कहते हैं मु० १अव्यक्तमूर्तिकरके अर्थात् सोपाधिक सच्चिदानन्दकरके २ यह ३सब ४जगत्

५व्याप्त होरहा है, ६ तात्पर्य इन्द्रिमनका विषय जो जो पदार्थ है, सबमें निराकार सत्, चित्, आनन्द, पूर्ण होरहा है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि जिसमें सत्ता, चैतन्यता और आनंदता न हो सबभूत (सूक्ष्मस्थूल) ७ मुक्तसोपाधिक सच्चिदानन्दमें स्थित हैं अर्थात् कल्पित हैं ८सि० जैसे शक्तिमें रजत * मैं ६ तिनमें १०नहीं तैसा ही स्थित हूं ११। १२ अर्थात् मैं असंग हूँ मेरा किसीके साथ संबंध नहीं जैसे यह कहते हैं कि घटमें आकाश है सो नहीं, वास्तव में घट ही आकाशमें है जो भीतर भी प्रतीत होता है तोभी निर्वि-कार असंग है १२ ॥ ४ ॥

मू०-नचमत्स्थानिभूतानिपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्नचभूतस्थो ममात्माभूतभावनः ॥५॥

भूतानि१ न २ च ३ मत्स्थानि ४ न ५ च ६ भूतस्थः ७ मे ८ योगम् ९ ऐश्वरम् १० पश्य ११ मम १२ आत्मा १३ भूतभृत् १४ भूतभावनः १५ ॥ ५ ॥ अ०—उ० परमानंदस्वरूपनित्य मुक्त निराकारपरमात्मामें यह त्रिगुणात्मक जगत् स्थूलसूक्ष्म और इन दोनोंका कारण अज्ञानकल्पित है यह भी जिज्ञासूके समझाने के लिये अध्यारोपमें कहा जाता है, वास्तवमें तीनकालमें यह जगत् नहीं, अखण्ड अद्वैत नित्य मुक्त ऐसा है कल्पितशब्द भी कल्पित है, जो यह कहो कि इस कल्पनारूप क्रियाका कर्त्ता,कर्म और अधि-करण कौनहै तो सुनो.यह सब अविद्याहै अर्थात् कर्त्ताकर्म अधिकरण यह सबअविद्या है,तात्पर्य कल्पना करनेवालीभी अविद्या, कल्पना भी अविद्याजोपदार्थ कल्पना किया जाताहै सोभी अविद्या,जिसमें कल्पना होतीहैं सो भी अविद्या, जिसकरके, जिसके लिये, जिससे होती है कल्पना वो सब अविद्या है, अविद्याका लक्षण क्या है, सुनो " अविद्यायाअविद्यात्वमिदमेवहिलक्षणम् " अविद्याका अवि-

ग्राही रूपहैं और जो कोई यह प्रश्नकरे, कि चैतन्यरूप आत्मामें अज्ञान होना असंभव है उसीसे फिर बूझना जब तुम आपही कहतेहो, हमतो प्रथम कहचुके हैं कि तीनकालमें अज्ञान है नहीं और जो यह कहो कि अज्ञान हमको और बहुत लोगोंको प्रतीत होताहै तो विचारना चाहिये कि आत्मा चैतन्य है वा जड है. प्रत्यक्षमें प्रमाण और युक्तियोंकी क्या आकांक्षाहै और तुम कैसे कहतेहो कि ज्ञानरूप अज्ञान नहीं बनसकता यह बातें अलौकिक हैं. सि० सोई परमेश्वर इसमंत्रमें कहते हैं कि वास्तवमें ❀ भूत १ न २।३ मुझमें स्थित हैं ४ और न ५।६ सि० मैं ❀ भूतोंमें स्थित हूं ७ सि० हे अर्जुन! ❀ मेरे ८ सि० इस❀योग और ईश्वरताको ९।१० देख११अर्थात् विचारकर ११ सि० कि ❀ मेरा १२ आत्मा १३ अर्थात मैं ही सि० असंग नित्य मुक्त निर्विकार हूँ और मैं ही ❀भूतोंको धारण करता हूं १४ भूतोंका पालनकरता हूं १५टी० भूतोंको जो धारण करे उसको भूतभृत कहते हैं. जो भूतोंका पालन करे उसको भूतभावनकहते हैं और योगशब्द जो इस मंत्रमें है, इसका अर्थ अचिन्त्यशक्ति है जगतके रचना स्थिति लयके विषय बुद्धिको बहुत श्रम देना न चाहिये केवल अपने कल्याणपर दृष्टि रखना योग्य है जीवको स्पष्ट प्रतीत यह होता है कि मैं अज्ञानकरके जगत्में फँस रहाहूं अपनी व्यवस्था और अपने घरकी व्यवस्था मुझको मालूम नहीं फिर परमेश्वरकी व्यवस्था और उसकी लीलाकी व्यवस्था मैं कैसे जानसकूंगा, तात्पर्य अज्ञान के निवृत्तिका उपायकरना चाहिये जो बूझो कि क्या उपाय है स्पष्ट बात है कि अज्ञान ज्ञानसे दूर होता है जो बूझे ज्ञान किस को कहते हैं, उत्तर इसका बहुत सीधा और सहज है परंतु अधिकारीके समझमें आता है और इस गीताशास्त्रमें जगहजगह ज्ञानका

उपदेश है प्रथम ज्ञानमें श्रद्धा करना योग्य है और जितेन्द्रिय होकर तत्पर होना चाहिये सद्गुरुकी कृपासे ज्ञान प्राप्त होजायगा जो श्री भगवान्‌ने ऊपर निरूपण किया सब समझमें आजायगा केवल इसबातमें विद्या और चर्चाका कामनहीं तीनों साधन जो पीछे कहे वे प्रथम हैं पीछे विद्या और चर्चाभी चाहिये ॥ ५ ॥

मू०–यथाकाशस्थितोनित्यं वायुः सर्वत्रगोमहान् ॥
तथासर्वाणिभूतानिमत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

यथा १ महान् २ सर्वत्रग ३ वायुः ४ नित्यम् ५ आकाशस्थितः ६ तथा ७ सर्वाणि ८ भूतानि ९ मत्स्थानि १० इति ११ उपधारय १२॥ ६ ॥ अ०–उ० दो श्लोकोंमें जो अर्थ पीछे निरूपण किया, उसको दृष्टांत देकर स्पष्ट करते हैं–जैसे १ अप्रमाण २ सब जगत् में ३ वायु ४ सदा ५ आकाशमें स्थित है६ तैसे ही७सब ८ भूत ९ मुझमें स्थित हैं १० यह ११ जान तू १२ ॥६॥

मू०–सर्वभूतानिकौन्तेयप्रकृतिंयांतिमामिकाम् ॥
कल्पक्षयेपुनस्तानि कल्पादौविसृजाम्यहम् ॥७॥

कौंतेय १ कल्पक्षये २ सर्वभूतानि ३ मामिकाम् ४ प्रकृतिम् ५ यांति ६ कल्पादौ ७ पुनः ८ तानि ९ अहम् १० विसृजामि ११ ॥ ७ ॥ अ०–उ० जगत् जैसे स्थितहै सो व्यवस्था कहकर सृष्टि की और लयकीभी व्यवस्था कहते हैं- अर्थात् श्रीभगवान् यह कहते हैं कि जैसे जगत्‌के स्थितिकालमें मैं असंग हूं ऐसेही सृष्टि और प्रलयकालमें भी मैं असंग हूँ. हे अर्जुन ! १ कल्प के क्षयमें २ अर्थात् प्रलयकालमें २. सबभूत ३ सि० सिवाय ब्रह्मवित् के ३ मेरी ४ प्रकृतिको ५ अर्थात् अपरा जो त्रिगुणात्मिका माया उसको

प्राप्त होता है ६ सि० सूक्ष्मरूप होकर मायामें लय होजाते हैं और ॐ कल्पके आदिमें ७ अर्थात् जगत्के सृष्टिसमय ७ फिर ८ तिनको ९ मैं १० रच देता हूं अर्थात् प्रकट करदेता हूँ ११. इत्यभिप्रायः ॥ तात्पर्य माया और उसका कार्य और परा प्रकृति जीवरूप सब परतंत्र हैं, स्वतंत्र कोई नहीं. सब ईश्वराधीन हैं. इसवास्ते सदा ईश्वरका आराधन करना योग्य है जो स्वतंत्र और मुक्त होना चाहेते हो तो ॥ ७ ॥

मू०-प्रकृतिंस्वामवष्टभ्यविसृजामिनःपुनः ॥
भूतग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात ॥८॥

स्वाम् १ प्रकृतिम् २ अवष्टभ्य ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ भूतग्रामम् ६ पुनः ७ पुनः ८ विसृजामि ९ प्रकृतेः १० वशात् ११ अवशम् १२ ॥ ८ ॥ अ०-उ० आप निराकार निरवयव जगत्को कैसे रचते हो, यह शंका करके कहते हैं—अपनी १ प्रकृतिको २ वश करके ३ अर्थात मायाके साथ संबंध करके ३. इस ४ समस्त ५ भूतोंके समूहको ६ बारम्बार ७।८ मैं रचता हूँ. ९ सि० कैसा है यह भूतग्राम अर्थात् जगत् ॐ प्रकृतिके १० वशसे ११ परतंत्र है १२, तात्पर्य यह जगत् अपने कर्मोंके वशमें है, स्वतंत्र नहीं इत्यभिप्रायः ॥ टी० त्रिगुणात्माक जो अज्ञान है वो शुद्धसत्त्व प्रधान हुआ माया कहा जाता है, उस मायाके संम्बधन्ध से जगत् रचता हूं. और उसके मैं वश नहीं, वो मेरे अधीन है. और वोही अज्ञान मलिनसत्त्वप्रधान हुआ अविद्या कहा जाता है, यह समस्त जगत् अविद्याके अधीन हो रहा है, अर्थात् अवश याने परतंत्र होरहा है उनके कर्मोंके अनुसार वारम्वार उनको मैं रचता हूँ वारम्वार कहने से यह तात्पर्य है कि यह जगत अनादि है. असं-

ख्यातवार उत्पन्न हुआ और नाश हुआ यह सब जगत् अविद्या के वशमें है और अविद्या ईश्वरके वश मेंहै ॥८॥

मू०-नचमांतानिकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषुकर्मसु ॥९॥

धनजंय १ तानि २ कर्माणि ३ माम् ४ नच ५ निबध्नंति ६ उदासीनवत् ७ आसीनम् ८ तेषु ९ कर्मसु १० असक्तम् ११ ॥ ९॥ अ०-उ० जव कि रचना, पालना और संहार करना इन क्रियोंको आप करते हो, तो जीववत आपको वे कर्म बंधन कैसे नहीं करते यह शंका करके कहते हैं-हे अर्जुन ! १ सि० जगतकी रचना इत्यादि जो कर्म हैं ❀ वे २ कर्म ३ मुझको ४ नहीं ५ बन्धन करते हैं ६ सि० क्योंकि मैं ❀ उदासीनवत् ७ स्थित हूँ ८ तिनकर्मोंमें ९ । १० आसक्त नहीं ११ टी० असक्त और आसीन, ये दोनों मां शब्दके विशेषण हैं उदासीन भी होना और कर्म भी करना. इसका तात्पर्य कर्मके फलविषे उदासीन रहना यह है कर्मफलके विषय उदासीन होकर जो जीव कर्म करे तो वो भी कर्मसे बद्ध नहीं होता फिर मैं कैसे बद्ध हो सक्ता हूँ ॥ ९ ॥

मू०-मयाध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥
हेतुनानेनकौंतेयजगाद्विपरिवर्तते ॥१०॥

प्रकृतिः १ मया २ अध्यक्षेण ३ सचराचरम् ४ सूयते ५ कौंतेय ६ अनेन ७ हेतुना ८ जगत् ९ विपरिवर्तते १० ॥ १० ॥ अ०-उ० जगत्के रचनादि क्रियामें विषमदोष प्रतीत होता है. यह शंकाकरके कहते हैं-प्रकृति १ मुझ २ अध्यक्षरूपकरके ३ अर्थात मुझनिमित्तमात्रकारणकरके ३ सचराचर ४ सि० जगत को ❀ उत्पन्न करती ५ हे अर्जुन ! ६ इस हेतुकरके ८ जगत् ९ बारंबार उत्पन्न

होता है, १० टी० जगत् के रचनादिक्रियामें प्रकृति उपादान करण है और मैं निमित्तकारण हूँ, वो प्रकृति मेरी अचिन्त्य शक्ति है, मुझसे भिन्न नहीं. इस वास्ते मैं अभिन्न निमित्तोपादानकारण हूँ यह बात दृष्टांतके सहित भले प्रकार आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्याय में लिखी है, निमित्तकारण होना और उदासीन रहना, यह दोनों बनसक्ते हैं. जैसे प्रकाश व्यवहार में निमित्तकारण है विना प्रकाश कुछ व्यवहार भी नहीं होसक्ता और प्रकाश में जो बुरा भला कर्म करे, वो प्रकाश को नहीं लगेगा, क्रिया करने वालेको लगेगा, इसी प्रकार यह विषम दोष मायामें है, ईश्वरमें नहीं, यह बात भले प्रकार विचारने के योग्य है, जो ईश्वर जगत्का कर्ता कहाजावे तो वो जड़ है और जो जगतको अनीश्वर कहाजावे तो वेदशास्त्रादि सब व्यर्थ हुए जाते हैं तात्पर्य यह है, कि ईश्वर जगत् के अभिन्न निमित्तोपादानकारण है, इसमें कोई दोष नहीं, विना चैतन्यका आश्रय पाने सम्बंधलिये स्वतंत्र माया जगत्को नहीं रचसक्ती और प्रकाशवत् ईश्वर को निमित्तमात्र होने में कुछ दोष नहीं ॥ १० ॥

मू०-अवजानन्तिमांमूढामानुषींतनुमाश्रितम् ॥
परंभावमजानन्तो ममभूतमहेश्वरम् ॥११॥

मूढाः १ माम् २ अवजानंति ३ मानुषीम् ४ तनुम् ५ आश्रितम् ६ मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानंतः १० भूतमहेश्वरम् ११॥११॥

भ०-उ० जैसा स्वरूप मैंने पीछे कहा, वैसा बहुत जीव मुझको नहीं जानते हैं, मनुष्योंके बराबर मुझको समझकर मेरा अनादर करते हैं, मेरे वाक्यमें जो श्रद्धा नहीं करते यही मेरी अवज्ञा है, मुझ निराकारको हठकरके अज्ञान से मोहकेवश होकर साकार कहते हैं, विवेक रहित अर्थात् नित्य क्या है और अनित्य क्या है इस प्रकार

आत्मा अनात्माका जिनको विचार नहीं ऐसे मूढ १ मुझको अनादृत करते हैं २। ३ अर्थात् मेरी अवज्ञा याने तिरस्कार करते हैं २। ३ सि० कौन से मेरे स्वरूपका अनादर करते हैं कि जो ❀ मनुष्य सम्बन्धी ४ शरीरका ५ सि० मैंने ❀ आश्रय किया है ६ अर्थात् दुष्टोंके नाश करने को और साधुजनों की याने अपने भक्तों की रक्षा करने को मनुष्यकेसा आकारवाला जो मैं प्रतीत होता हूं, उस स्वरूप को मूर्ख मनुष्य राजपुत्र इत्यादिही समझते हैं, यही मेरी अवज्ञा है, (१ से ६ तक) मेरे ७ परम ८ सि० ऐसे ❀ प्रभावको ९ नहीं जानते १० सि० अर्थात् मुझको ऐसा नहीं समझते कि यह ❀ भूतोंके महेश्वर हैं ११ तात्पर्य अध्यारोपापवादन्याय करके निष्प्रपंचवस्तु जो सच्चिदानन्द उसमें त्रिगुणात्मकजगत्प्रपंच निरूपण किया है, महात्मा और वेदोंने जिज्ञासूके समझाने वास्ते जैसे तत्पदका वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ और त्वंपदका वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ अध्यारोप में निरूपण किया है, और ईश्वर को जगत्का अभिन्न निमित्तोपादानकारण वर्णन किया है, फिर लक्ष्यार्थ में दोनों पदोंको एकता जैसे कही तिनसन्बन्ध और लक्षणादि करके इस प्रकार जो जीव ईश्वर को नहीं जानते अथवा जान बूझ अनादर करते हैं याने शास्त्रीयज्ञान हो भी जाता है शास्त्र के पढने सुनने से तो भी उसमें श्रद्धा नहीं करते अध्यारोप और पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतियोंका प्रमाण देदेकर वृथा वादकरते हैं यही ईश्वर की आज्ञा याने अनादर है और अपने मनुष्य शरीर को जो सच्चिदानन्द आत्माहै. उसके परम प्रभाव को नहीं जानते, वर्णाश्रमवाला, औरोंका दास, सिद्धान्तमें भी सदा समझते हैं, यह सच्चिदानन्दकी अवज्ञा याने तिरस्कार है इतिहास से इस बातको स्पष्ट करते हैं, इतिहास–एक साहूकार बालक लड़केको घरमें छोड़ परदेश

चला गया लड़का तरुण होकर अपने पिताकी तलाश करने के वास्ते निकला और ढूंढता ढूंढता पिताके पास पहुँच गया, न पिताने पहुँचाना न लड़केने, और उस लड़केको टहल करने के लिये नौकर रख लिया लड़केने कहाभी उस देवदत्त साहूकारका नाम लेकरकि मैं अमुक देवदत्त साहूकारका लड़का हूँ, अपने पिताकी तलाश करने को आया हूं, उनका पता नहीं लगता, कोई कहीं बताता है और कोई कहीं और मैं महादीन होगया, यह साहूकारने सुना भी और कुछ विश्वास भी हुआ, परंतु मूर्खसहवासियोंके उपदेशसे उसमें विश्वास न किया कि, यह मेरा लड़का है सदासे उसी लड़के की तलाशमें था दिन रात्रि चाहता था कि किसी प्रकार मेरा लड़का मुझको मिले, एक आदमी सच्चा सद्गुणाकर विद्यावान् उसलड़के को पहिचानता था उसी जगहका रहने वाला था; जहां साहूकारका पहला घर था, दैवयोग से वो आदमी साहूकार के पास जा पहुँचा, लड़केको देखा पहिचाना परन्तु साहूकारकी प्रीति उस लड़के में पुत्रवत न देखी. इस हेतुसे और अन्यकारणसे भी साहूकारसे यह न कहा कि इस लड़केमें तेरी प्रीति पुत्रवत् क्यों नहीं और न कभी साहूकारने बूझा था, इसवास्ते कुछ भी न कहा. एकदिन एकान्तमें साहूकारने उस आदमीसे अपने लडकेके स्नेहकी व्यवस्था कहकर लड़केका पता बूझा और लड़केके कहनेके अनुसार कुछ विश्वास हुआ था और मूर्ख सहवासियोंके कहनेसे लड़केमें विश्वास नहीं कियाथा, यह सब व्यवस्था कही. उस आदमीने कहाकि तेरा लड़का निसंदेह यही है, साहूकार यह सुनकर पुत्रानंदमें मग्न होगया लड़केको छातीसे लगाकर बहुत सन्मान किया. और उन सहवासी उपदेश करनेवाले मंत्रियोंको मूर्ख और लालची समझा, उस आदमीके साथ बहुत स्नेह किया अपना सुहद हितकारी समझा। इस दृष्टान्तके

एक एक पदमें दार्ष्टान्त है, भलेप्रकार विचारो जैसे साहूकारने मूर्ख मन्त्रियोंके उपदेशसे लड़केका तिरस्कार किया इसीप्रकार अज्ञानी जीवोंने तिरस्कार किया है सच्चिदानंद आत्माका मूर्खोंके उपदेशसे जो कोई कहे कि साहूकारके सहवासी मंत्री उपदेष्टातो मूर्ख अनजान थे उनका क्या दोषथा उत्तर उसका यह है कि मूर्खोंको मंत्री और उपदेष्टा बनाना किसने कहा है, दार्ष्टांतमें साहूकारके उपदेश करनेवालों की जगह लोभी लालची कमसमझ विषयी बहिर्मुख. प्रवृतिमार्गवाले, ऐसे उपदेश करनेवालोंको समझना चाहिये, जैसे साहूकारके सहवासी मन्त्रियोंने जानबूझकर अपने खाने पीनेका हर्ज समझकर लड़केमें विश्वास न होने दिया, इसी प्रकार प्रवृत्ति मार्गवाले उपदेष्टा, आचार्य, गुरु ये अपने विषयानन्द में ब्रह्म ज्ञानको विघ्नका हेतु समझकर. आत्मा में विश्वास नहीं होने देते, नाना प्रकार की युक्ति और तर्क सिखाते हैं. तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें मोहनभोग और तस्मै आदिपदार्थ खानेको और फूलबंगलाहिंडोरा नृत्यादि देखनेको, रागादि सुननेको, स्त्री छोडके राजादि धनी विषयीजन चेलीचेलाकरनेको नहीं मिलते हैं, इसहेतुसे ब्रह्मज्ञानको भुसेका कूटना बताते हैं ऐसे पुरुषोंके लक्षण और कर्मफलके सहित अगले मंत्रमें श्रीभगवान् निरूपण करेंगे ॥ ११ ॥

मू०-मोघाशामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः ॥
राक्षसीमासुरींचैवप्रकृतिंमोहिनींश्रिताः ॥१२॥

मोघाशाः १ मोघकर्माणः २ मोघज्ञानाः ३ विचेतसः४राक्षसीम् ५ आसुरीम् ६ च७ एव ८ प्रकृतिम् ९ मोहिनीम् १० श्रिताः ११ ॥१२॥ अ०-उ० जबतक शुद्धसच्चिदानंदस्वरूप पूर्णब्रह्म आत्माको नहीं जानता है तबतक उनका कर्म, ज्ञान और आशा, ये सब निष्फल हैं क्योंकि जो पदार्थ अनित्य है अथवा दीवारमें प्रेतवत्

प्रतीत होता है, ऐसे पदार्थोंकी आशा रखना और उनके लिये प्रयत्न करना, ये सब निष्फल हैं अनित्यफलकी जो प्राप्ति भी होजावे सोभी निष्फल है प्रत्युत पहिलेसे सिवाय दुःखकी हेतु है प्राप्त होकर जो पदार्थ जाता रहे. उससे उसपदार्थका न मिलना अच्छा है पिछले मन्त्रमें जो मूढ शब्द है, उसके इसमन्त्रमें विशेषण हैं. सि० कैसे हैं वे मूढ कि * निष्फल है आशा जिनकी १ अर्थात् सच्चिदानन्द-रूप आत्मासे अन्य ईश्वरके मिलनेकी जो आशा रखतेहैं यह आशा उनकी निष्फल है १ सि० क्योंकि आत्मासे भिन्न परमार्थमें कोई ईश्वर नहीं और * निष्फल हैं कर्म जिनके २ अर्थात आत्मासे पृथक् ईश्वर वा स्वर्गवैकुण्ठादिके प्राप्तिके लिये जो प्रयत्न करतेहैंवोभी निष्फल है सि० इसमें भी वोही पहला हेतु है और*निष्फलहैं ज्ञान जिनके ३ अर्थात् आत्मासे भिन्न जो जो पदार्थ उन्होंने सच्चे समझ रक्खे हैं सब झूठे हैं, क्योंकि आत्मा अद्वैत एक है इस विशेषणसे यह भी समझना चाहिये कि वे बालकवत् मूढ अज्ञानी नहीं, अनात्म-शास्त्रका उनको बहुत ज्ञान है आत्माको तो यथार्थ नही जानते अनात्मपदार्थ बहुत जानते हैं, आत्माके यथार्थ न जाननेमें और मोघाशादि ये होनेमें दोहेतुहैं, १।२।३ सि० प्रथम यह कि वे * विक्षिप्त चित्त हैं ४ अर्थात् बहिर्मुख विषयी मूर्खवत रूपरसादिविष-योंकी इच्छारखतेहैं, अन्तःसुखमें वृत्ति नहीं लगाते यहहेतु हेतुगर्भित विशेषण है ४ सि० अर्थात् इसहेतुमें दूसरा हेतु यहहै कि*राक्षसी ५ और आसुरी माया ६।७।८।९ सि० इनका और * मोहमयी का १० आश्रय कर रक्खा है. ११ अर्थात् जैसे असुर और राक्षस देहाभिमानी होते हैं, ऐसे ही अज्ञानी अनात्मदर्शी होते हैं क्यों कि जिसको अन्तरात्मानन्द प्राप्त न होगा वो बेसंदेह विषयानन्दकी

कामना रक्खेगा. कामनासे क्रोधादि असुर राक्षसोंकेसा स्वभाव अवश्य होगा ११ तात्पर्य इन दोनों मन्त्रों का ज्ञाननिष्ठामें प्रयत्नकरनेके लिये है अनात्मदर्शियों की निष्ठा हटानेमें और उनकी निन्दाकरनेमें तात्पर्य नहीं. क्योंकि प्रवृत्तिमार्ग भी अधिकारीप्रति मोक्ष मार्ग है ॥ १२ ॥

मू०--महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजन्त्यनन्यमनसोज्ञात्वाभूतादिमव्ययम्॥१३॥

पार्थ १ महात्मानः २ तु ३ अनन्यमनसः ४ दैवीम्५ प्रकृतिम् ६ आश्रिताः ७ भूतादिम् ८ अव्ययम् ९ माम् १० ज्ञात्वा ११ भजन्ति १२ ॥ १३ ॥ अ०-उ० ऐसे पुरुष परमेश्वरका आराधन करते हैं, हे अर्जुन ! १ महात्मापुरुष २ । ३ अनन्यमन हुए ४ दैवी प्रकृतिका ६ आश्रय किये हुये ७ आकाशादिभूतोंका कारण ८ अविनाशी ९ मुझको १० जानकर ११ सेवते हैं. १२ टी० संसारकी दुःखरूप और मुक्तिको मुख्यपुरुषार्थ समझकर, संसार के विषयोंसे उपराम हुए मोक्षमें जो प्रयत्न करते हैं वे महात्मा हैं २ सिवाय श्रीनारायणके और किसी जगह पुत्रमित्रस्तुतिमानादि में नहीं है मन जिनका ४ सोलहवें अध्यायमें छब्बीस लक्षण दैवीसंपत्के कहेंगे, उन साधनोंकरके सम्पन्न अर्थात् धीरजवाले, इन्द्रियोंके विषयोंसे विमुखकरनेवाले, ऐसे लक्षण हैं जिनमें वे परमेश्वरको ही सेवते हैं. स्त्री छोकरोंको और बहिर्मुख धनी कामी ऐसे जनोंको नहीं सेवते ॥ १३ ॥

मू०--सततंकीर्त्तयन्तोमांयतंतश्चदृढव्रताः ॥
नमस्यंतश्चमांभक्त्यानित्ययुक्ताउपासते ॥१४॥

सततम् १ कीर्तयंतः२माम् ३ उपासते ४ नित्ययुक्ताः ५ भक्त्या माम् ७ च ८ नमस्यंतः ९ यजंतः १० च ११ दृढव्रताः १२॥१४॥

भा०-उ० महात्मा इसप्रकार भजनकरते हैं, जैसा इन दो मंत्रोंमें वर्णन करते हैं सि० महात्मा ❀ निरंतर १ कीर्तनकरते हुए २ मुझको ३ सेवते हैं अर्थात् मोक्षशास्त्रका पढना,पढाना और जिज्ञासुओंको सुनाना, विष्णुसहस्रनामगीतादिका पाठ करना, नामोच्चारण करना, गुरुमन्त्र और गायत्री जपना और सबसे श्रेष्ठ यह है कि गायत्रीका जप करना यह मेरी उपासना है, इसप्रकार महात्मा मेरी उपासना करते हैं,४सि० कैसे हैं वे किसदा❀युक्तहुए ५ प्रेमलक्षणाभक्ति करके ६ मुझको ७।८ नमस्कार करते हैं ९ अर्थात् सदा यही स्मरण करते हैं, कि विश्वम्भर नारायण हमारे स्वामी हैं. यह समझकर बहुत प्रीतिनम्रताके साथ 'ओंनमो नारायणाय' इत्यादिमंत्र पढकर वारंवार करते हैं ९ सि० फिर कैसे हैं कि मोक्षमार्ग में सर्वांग लगाकर सदा ❀ यत्न करतेहैं १०।११ सि० जैसे धनस्त्रीकी चाहवाले पैसेकेलिये और स्त्रीके लिये प्रयत्न करते हैं और फिर कैसे हैं कि ❀ दृढवृतहैं जिनके १२ तात्पर्य ब्रह्मचर्यादिव्रतमें ऐसे दृढ हैं कि जहां तक बने स्वप्नमें भी वीर्यको स्खलित नहीं होने देते. बुद्धिपूर्वक वीर्यका त्याग करनातो महापामरों पाजियोंका कामहै यद्यपि गृहस्थोंके वास्ते अपनी स्त्रीका संग करना कहीं कहीं लिखा है परंतु वहांभी तात्पर्य उनका वीर्यके निरोधमें है, जो पुरुष वीर्यका निरोध नहीं कर सकता उससे मोक्षमार्गमें प्रयत्न करना कठिन है, क्योंकि, घरकी पूंजीको तो वृथा व्यय करता है, फिर यह कैसे विश्वासहो कि यह कुछ बाहरसे कमाईकरके इकट्ठा करेगा, यह वीर्य एक अमोलप्रकाशमान रत्न है जिसके भीतर यह बनारहेगा, वो भगवत्स्वरूपको देखसकेगा.

और जो यह रत्न खोदिया तो परमेश्वरके दर्शन के नैराश्य होवें इसी प्रकार खोटा धन अपने खर्च में नहीं लाना, किसीको किसी प्रकार दुःख नहीं देना. प्रारब्ध परमेश्वरपर विश्वास रखना और भी बहुत ऐसे अनेक दृढव्रत नियम हैं. जिनमें यह सब परमेश्वरकी भक्ति है ॥ १४ ॥

मू०-ज्ञानयज्ञेनचाप्यन्येयजन्तोमामुपासते ॥
एकत्वेनपृथक्त्वेनबहुधाविश्वतोमुखम् ॥१५॥

ज्ञानयज्ञेन १ माम् २ यजंतः ३ उपासते ४ अन्ये ५ च ६ अपि ७ एकत्वेन ८ पृथक्त्वेन ९ बहुधा १० विश्वतोमुखम् ११ ॥ १५ ॥ अ०-सि०कोई महात्मा तो ❀ ज्ञानयज्ञकरके १ मुझको २ पूजते हुए ३ उपासनाकरते हैं ४ अर्थात् मुझसच्चिदानंदको सब भूतोंमें जानते हैं ४ सि० क्योंकि साधुमहात्माभगवद्भक्तोंका जो पूजन करना, उनकी सेवा या उपासना करना, उनको भगवद् समझना यह मेरी उत्तम उपासनाहै. क्योंकि जैसे मेरे रामकृष्णादि निमित्त अवतार हैं, वैसेही साधुमहात्मा मेरे भक्त नित्य अवतार हैं, और कोई ५।६।७ सि० लक्ष्यार्थमें जीवईश्वरको एक समझकर ❀ अभेद (अद्वैत भावना) करके ८ अर्थात् "सोहंब्रह्माहमस्मि" यही निरंतरनिदिध्यासन करते रहतेहैं, ७ सि० और कोई पृथक् भावनाकरके ९ अर्थात् परमेश्वरसच्चिदानन्दघनसर्वज्ञताभक्तवत्सलताकरुणादि अनेक गुणशक्तियों करके युक्त नित्यमुक्त प्रभु सगुणाब्रह्म हैं. यद्यपि मैं भी सच्चिदानन्दहूँ, परन्तुकनकादित्रिगुणमयमायामें फँसरहाहूं, उस पूर्णब्रह्मसगुणाकारकी कृपासे छूटूंगा और अपने परमानन्दस्वरूपको प्राप्तहूंगा यह दोनों बातें विनाभगवत्कृपा प्राप्त न होंगी, यह समझबूझकर पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदकी उपासना

करते हैं. ९ सि० और कोई ❀ बहुत प्रकारका १० सि० मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति, गणेश, अग्नि, चन्द्र और रामकृष्णादिको मेराही रूप साक्षात् मुझ सच्चिदानन्दको मूर्तिमान् समझकर मेरी उपासना करते है, और कोई ❀ विराटविश्वरूप ११ मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं अपने अपने अधिकारमें ये सब महात्मा हैं, पूर्णब्रह्म, शुद्ध, सच्चिदानन्द, निराकार, नित्यमुक्त ऐसे मेरे स्वरूपको अवश्य काल पाकर प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥

मू०–अहंक्रतुरहंयज्ञःस्वधाहमहमौषधम् ॥
मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहंहुतम् ॥१६॥

क्रतुः १ अहम् २ यज्ञः ३ अहम् ४ स्वधा५ अहम् ६ औषधम् ७ अहम् ८ मंत्रः ९ अहम् १० एव ११ आज्यम् १२ अहम् १३ अग्निः १४ अहम् १५ हुतम् १६ अहम् १७ ॥ १६ ॥ भ०–उ० पिछले मंत्रमें दश अंकवाला जो (बहुधा) पद है उसकी व्याख्या चार मन्त्रोंमें करते हैं–श्रौतयज्ञ १ सि० अग्निष्टोमादि ❀ अहम् २ अर्थात् मैं हूँ २ स्मार्तयज्ञ (अतिथि, अभ्याग) इनकी पूजा इत्यादि पंचयज्ञ ३ मैं हूं ४. पित्रोंको जो अन्न दिया जाता है मंत्रसे सो ५ मैं हूं ६. मनुष्यादि जो यवादि भक्षण करते हैं सो ७ मैं हूँ ८यज्ञमें जो पढे जाते हैं ॐनमः शिवाय इत्यादिमन्त्र९ मैं ही हूँ १०।११ होमादि का साधन १२ मैं हूं १३ अग्नि १४ मैं हूँ १५ होम १६ मैं हूँ १७ तात्पर्य ये सब अन्तःकरणशुद्धिके कारण हैं और मोक्षके साधनहैं ॥

मू०–पिताहमस्यजगतोमाताधाताापितामहः ॥
वेद्यंपवित्रमोङ्कार ऋक्साकयजुरेवच ॥ १७ ॥

अस्य १ जगतः २अहम् ३ पिता ४ माता ५ धाता ६ पितामहः ७ वेद्यम् ८ पवित्रम् ९ ॐकारः १० ऋक्सामयजुः ११ एव १२ च १३ ॥ १७ ॥ अ०-इस जगत्का १।२ मैं ३ पिता ४ माता विधाता ६ पितमह ७ सि० हूं ❀ जाननेकेयोग्य ८ पबित्र (शुद्ध) ९ प्रणव १० ऋक्सामयजुष यह वेदत्रयी भी ११ । १२।१३ सि० मैं हूं, ❀ टी० उत्पन्न करनेवाला, पालन करनेवाला, कर्मोंके फलको देनेवाला, वेदादि प्रमाणोंका विषय, प्रमेय, चैतन्य मैं ही हूँ, सब वेद मुझको ही प्रतिपादन करते हैं, चकारसे अथर्ववेदभी जानना चाहिये ऋगादि वेद और ॐ प्रणवभी मैं हो हूं और प्रमाता और प्रमाणभी मैं ही हूं इति तात्पर्यार्थः ॥१७॥

मू०-गतिर्भर्ताप्रभुःसाक्षीनिवासःशरणंसुहृत ॥
प्रभवःप्रलयःस्थानंनिधानंबीजमव्ययम् ॥१८॥

गतिः १ भर्ता २ प्रभुः ३ साक्षी ४ निवासः ५ शरणम्६सुहृत ७ प्रभवः ८प्रलयः ९ स्थानम् १० निधानम् ११ अव्ययम् १२बीजम् १३ ॥ १८ ॥ अ०-कर्मोंका फल १ पोषण करनेवाला २ समर्थ याने स्वामी ३ शुभाशुभ देखनेवाला ४ भोगस्थान ५रक्षाकरनेवाला ६ बेप्रयोजन हितकरनेवाला ७ जगत्का आविर्भाव है जिससे ८ संहर्ता ९ सर्वभूत स्थित है जिसमें १० लयका स्थान ११अविनाशी १२ बीज १३ सि० मैं हूं ❀ ॥ १८ ॥

मू०-तपाम्यहमहंवर्षंनिगृह्णाम्युत्सृजामिच ॥
अमृतंचैवमृत्युश्चसदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

अहम् १ तपामि २ वर्षम् ३ उत्सृजामि ४ च ५ निगृह्णामि ६ अमृतम् ७ च ८ एव ९ मृत्युः १० च ११ सत् १२ असत् १३ च

१४ अहम् १५ अर्जुन १६ ॥१६॥ अ०-सि० ग्रीष्मऋतु में सूर्य में स्थित होकर ❀ मैं एक सि० जगत् को ❀ तपाता हूं २ वर्षा को ३ वर्षाता हूं ४ और २ सि० जब कभी प्रजा पुण्य करना छोड देती है तब वर्षा का ❀ निग्रह कर लेता हूँ अर्थात् पानी नहीं वर्षाता हूँ ६ अमृत अर्थात् जीवनाभी और मृत्यु अर्थात् भूतों का अदर्शन भी ७ । ८ । ९ । १० सि० मैं ही हूँ और ❀ स्थूल १२ सूक्ष्म प्रपञ्च १३।१४ मैं १५ सि० हूँ ❀ हे अर्जुन ! १६ तात्पर्य बहुत महात्मा इस प्रकार मुझको जानकर सर्वात्मदृष्टि करके मेरी उपासना करते हैं ॥१६॥

मू०-त्रैविद्यामांसोमपाः पूतपापायज्ञैरिष्ट्वास्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ॥ तेपुण्यमासाद्यसुरेन्द्रलोकमश्नं-तिदिव्यान्दिविदेवभोगान् ॥ २० ॥

त्रैविद्याः १ सोमपाः २ पूतपापाः ३ यज्ञैः ४ माम् ५ इष्ट्वा ६ स्वर्गतिम् ७ प्रार्थयन्ते ८ ते ९ पुण्यम् १० लोकम् ११ आसाद्य १२ दिवि १३ दिव्यान् १४ देवभोगान् १५ अश्नन्ति १६॥२०॥ अ०-उ० जो कामना करके वेदोक्त भी कर्म करते हैं, उनका जन्म मरण विना ज्ञाननिष्ठा के दूर न होगा, प्राकृतों का याने मूढ़ों का तो कुछ प्रसंग ही नहीं, यह दो श्लोकों में कहते हैं,सि० जो ❀ तीन वेद के जानने वाले १ अमृत के पान करने वाले २ पवित्रजन ३ सि० श्रौतस्मार्त ❀ यज्ञोंकरके ४ मेरा ५ पूजनकरके ६ स्वर्ग की प्राप्ति ७ चाहते हैं ८ वे ९ पुण्यकाल १० सि० जो ❀ स्वर्ग-लोक उसको ११ प्राप्त होकर १२ स्वर्ग में १३ दिव्य अर्थात् अलौकिक जो इस लोक में नहीं, स्वर्गमें ही हैं १४ उन देवभोगोंको १५ भोगते हैं १६ टी० ऋक् साम और यजुष्, इन तीन वेदों के

जानने वाले अर्थात् अथवर्ण वेद में ब्रह्मविद्या विशेष है. उसको नहीं जानते १ यज्ञ के शेष भागको अर्थात् यज्ञ में से वचा हुआ जो अन्न उसको अमृत कहते हैं, उस अन्न के भोजन करने वालों का अन्तः करण शुद्ध होजाता है जो निष्काम होकर करेंगे, नहीं तो स्वर्ग को प्राप्त होंगे इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥ बनज नौकरी आदि लौकिक कर्म करने वालों से वैदिक कर्म करने वाले अच्छे हैं, इस हेतु से वैदिककर्म करने वाले पवित्र कहे जाते हैं ३. वेदोक्त कर्मों का जो करना है उसी को कर्मकांडी ईश्वर जानते हैं, अर्थात् कर्म ही स्वर्ग फलका दाता ऐसा समझते हैं ४।५।६ तात्पर्य वेदोक्त कर्मों का निष्काम जो अनुष्ठान करना है अथवा भगवद्भक्ति और ज्ञाननिष्ठा के संबन्धी जो कर्म हैं उनका करना बन्धन का हेतु नहीं, अन्तः करण की शुद्धि और जीवनमुक्ति होनेका हेतु है, और मुक्ति के लिये भेद उपासना भी अच्छी है, वैकुंठादिलोकों की प्राप्ति के लिये और सावयवभगवन्मूर्तिकी प्राप्ति के लिये जो मूर्तिमान् भगवंत की सकाम उपासना करते हैं, उनका भी इन्हीं लोगों में अन्तर्भाव है, जो कि जिनका बीस या इक्कीस इन दोनों श्लोकों में प्रसंग है, जो फल अनित्य कर्मकांडियों को होगा, वोही फल भेदवादियोंको होगा मूर्तिमान् परमेश्वर की उपासना भी निष्काम करना चाहिये, स्व देखने के वास्ते न करे, उनका फल अनित्य और दुःख का हेतु होगा, जैसे प्रथम किसी समय दशरथ, कौशल्या, गोपी, यशोदा और नन्दादिको हुआ और जो उसको दुःख न समझे, वो सन्देह करे ॥ २० ॥

मू०–तेतंभुक्त्वास्वर्गलोकंविशालंक्षीणेपुण्येमर्त्य-
लोकंविशंति।एवंत्रयीधर्ममनुप्रपन्नागतागतं
कामकामालभंते ॥ २१ ॥

ते १ तम् २ विशालम् ३ स्वर्गलोकम् ४ भुक्त्वा ५ पुण्ये ६ क्षीणे मर्त्यलोकम् ८ विशंति ९ एवम् १० त्रयीधर्मम् ११ अनुप्रपन्नाः १२ कामकामाः १३ गतागतम् १४ लभन्ते १५॥२१॥ अ०-वे अर्थात् शब्दस्पर्शादिविषयोंके कामनावाले वेदोक्तकर्म करनेवाले सकामपुरुष१ तिस २ विशालस्वर्गको ३ । ४ भोगके ५ अर्थात् अपने कर्मों के फलको स्वर्गमें भोगके ५ पुण्य ६ नाशहोतेही ७ मनुष्य लोकमें ८ प्राप्त होंगे ९ इस प्रकार १० वेदोक्त धर्मका ११ आचरण करनेवाले १२ भोगोंकी कामना करनेवाले १३ गतागतको १४ प्राप्त होते हैं १५ तात्पर्य स्वर्गादिमें गये फिर वहां से धक्के खाकर मनुष्य लोकमें आये फिर भी वेही कर्म किये और जब खोटे कर्म बनगये तब नरक में गये. वे लोग कभी नरकमें कभी स्वर्गमें कभी मनुष्य योनिमें कभी पशुपक्षीके योनियों में सदा भटकते फिरा करते हैं, सदा शुद्धसच्चि-दानंद भगवत्से विमुख होकर भोगों के वशमें फँसे रहते हैं, जब कि ऐसे लोगोंकी यह व्यवस्था है तो जो सदा लौकिक बखेडों में ही लगा रहताहै, उसकी व्यवस्था क्या कही जावे ? और यह एक बारीक बात सोचने के योग्य है, किस काम वैदिककर्म करने वालोंकी तो यह व्यवस्था है, पुराणोक्त सकामकर्म और सकाम उपासना जो करते हैं, उनको क्या फल होगा, अपने अपने बुद्धिके अनुसार विचार करना चाहिये. प्रकट करके लिखदेने में बहुत लोग कि जो मोक्ष-मार्गका आश्रय लेकर भोग भोगते हैं, वे दुःख पावेंगे. बुद्धिमान् मनमें समझ लेते हैं, इस शास्त्रमें जिस जगह सकाम कर्मका प्रसंग है तो उस जगह अर्थसे सकाम उपासनाकोही वैसाभी समझना चाहिये और जिस जगह स्वर्गादि फलका प्रसंग है वहां वैकुंठादि फलको भी वैसा ही समझना चाहिये ॥ २१ ॥

मू०-अनन्याश्चिंतयंतोमांयेजनाःपर्युपासते ॥
तेषांनित्याभियुक्तानांयोगक्षेमंवहाम्यहम्॥२२॥

ये १ जनाः २ अनन्याः ३ माम् ४ चिंतयंतः ५ पर्युपासते तेषाम् ७ नित्याभियुक्तानाम् ८ योगक्षेमम् ९ अहम् १० वहामि ११॥२२॥ अ०-उ० जो ज्ञाननिष्ठपुरुष अभेदभावना करके मेरी उपासना करते हैं, उनको इस लोकके और परलोकके पदार्थ (मुक्ति पर्यंत) देकर मैं ही रक्षा करता हूं यह कहतेहैं—जो १ जन २अर्थात् कर्म फलके संन्यासी अभेदउपासक २ अनन्य ३ मेरा ४ चिंतवन करते हुए ५ उपासना करते हैं ६ अर्थात् सदा वे यह चिंतवन करते रहते हैं कि शरीर इन्द्रिय प्राण और अंतःकरण इनसे परे सच्चिदानंदस्वरूप, तीनों अवस्थाका साक्षी, जो यह हमारा आत्माहै, यही पूर्णब्रह्म है, कि जिसको महावाक्य प्रतिपादन करतेहैं, इससे अन्य जुदा और कोई सच्चिदानंद ब्रह्म नहीं. इस प्रकार अनन्य हुए निदिध्यासन करतेहैं. शरीरादिविजातीय पदार्थोंका तिरस्कार करके सजातीयपदार्थ सच्चिदानंद ऐसे आत्मामें निर्मल अन्तःकरणकी वृत्तिका गंगावत् प्रवाह किया है जिन्होंने ६ तिन ७ नित्य आत्मनिष्ठोंको ८ योगक्षेम ९ मैं सोपाधिक सच्चिदानंद मायोपहितईश्वर १० प्राप्त करताहूँ ११ टी० अप्राप्तपदार्थको प्राप्त करना उसको योग कहते हैं और प्राप्त पदार्थ की रक्षा करना उसको क्षेम कहते हैं, आत्मनिष्ठ पुरुषोंको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति मेरी कृपासे होती है और मैंही उसकी रक्षा करता हूँ, और करूंगा यह मेरी प्रतिज्ञा है, तब तक कि जब तक ज्ञाननिष्ठाका भले प्रकार परिपाक न होगा, जो कोई यह शंका करे कि जो भगवद्भक्त नहीं उसको क्या पदार्थ रुपये आदि नहीं मिलते हैं और उनके क्या पदार्थों की रक्षा

तो ? उत्तर इसका यह है कि जो भगवद्भक्त नहीं, वे दिन रात्रि
प पदार्थोंके योगक्षेममें प्रयत्न करते हैं फिरभी संदेह रहता है.
और परमानंदरूप मुक्तिसे तो वे सदा विमुख रहते हैं. और जो
भगवद्भक्त हैं, उनको मुख्यफल परमानंदस्वरूप (मुक्ति) तो अव-
श्यही मिलेगी. परन्तु गौणफल (शरीरयात्राके लिये) अन्न वस्त्रादि
उनको बेयत्न प्राप्त होते हैं और उनकी रक्षा अंतर्यामी करता है, वे
सदा बेसंदेह रहते हैं. जैसे कोई फलकी इच्छा करके बागमें गया
फलतो उसको अवश्यही मिलेगा और रस्तेमें फुलवारीका
देखना, सुगंधका सूंघना, इत्यादिगौणफल उसको अपने आप
मिलजाते हैं और मुख्य फलभी प्राप्त होता है, भक्त और अभक्तके
योगक्षेममें इतना भेद है ॥२२॥

मू०-येप्यन्यदेवताभक्तायजन्तेश्रद्धयान्विताः ॥
तेपिमामेवकौंतेययजन्त्यविधिपूर्वकम ॥२३॥

कौन्तेय १ ये २ अपि ३ भक्ताः ४ श्रद्धया ५ अन्विताः ६
अन्यदेवताः ७ यजंते ८ ते ९ अपि १० माम् ११ एव १२ यजंति
१३ अविधिपूर्वकम् १४ ॥ २३ ॥ अ०-उ० जो भक्त आत्मासे
ब्रह्मा विष्णु महेश रामकृष्णादि देवतोंको समझकर भेदभावना
करके, व्यासादिके वाक्योंमें विश्वासकरके रामकृष्ण इन्द्रादिकी
उपासना करते हैं, वेभी परमेश्वरकाही भजन करते हैं, परन्तु
उनकी निष्ठा उनकी अज्ञानतापूर्वक है, उसकी स्थिरता नहीं. यह बात
इस मंत्रमें श्रीभगवान् स्पष्ट वर्णन करते हैं—हे अर्जुन ! १ जो २।३
भक्त ४ श्रद्धाकरके ५ युक्त ६ अन्यदेवताका अर्थात् सच्चिदानन्द
स्वरूप आत्मासे अन्य (पृथक्) सावयव वा निरवयवदेवताका
७ यजन पूजा सेवा ध्यान करते हैं ८वे ९भी १० मेराही ११।१२ यजन

करते हैं १३. सि० परन्तु ❀ अज्ञानपूर्वक १४ सि० भजन करते हैं. ❀ तात्पर्य उनके भजनमें तो संदेह नहीं, परन्तु वो उन्होंका किया हुआ मेरा भजन अज्ञानपूर्वक है. क्योंकि वास्तव न मेरा स्वरूप उन्होंने जाना, न अपना. परन्तु जो वो भजन निष्काम होगा, तो वेभी ज्ञानद्वारा अवश्य मुक्त होंगे और उनका योगक्षेमभी मैंही करूँगा. जो निष्कामभजन करता है उसको विदेहमोक्षपर्यंत पदार्थ मैं देता हूँ. और रक्षा करता हूं तो भी पशुवृत्ति त्यागना अवश्य चाहिये. जैसे पशु मनुष्योंका दास बना रहता है ऐसे ही अन्यदेवताका उपासक देवताका पशु बना रहता है जो आपको ब्रह्म नहीं जानता वो निराकार सच्चिदानन्द होकर साकार रूपका दास बनकर साकारोंके अधीन रहता है और आपभी साकार बनता है. इससे परे और क्या अज्ञान होगा पूर्ण अनन्य ऐसे को परिच्छिन्न, तुच्छ एकदेशी ऐसा मानना जड़ और चैतन्य, द्रष्टा और दृश्यको एक समझना इससे परे और क्या अज्ञान होगा. तदुक्तम्–"अन्यो सावहमन्योस्मीत्युपास्ते योन्यदेवताम् ॥ नसवेदनरोब्रह्मसदेवानांयथापशुः" तात्पर्यार्थ इस मंत्रका ऊपर लिखा गया है ॥ २३ ॥

मू०-अहंहिसर्वयज्ञानांभोक्ताचप्रभुरेवच ॥
नतुमामभिजानंतितत्त्वेनातश्च्यवंतिते ॥२४॥

सर्वयज्ञानाम् १ भोक्ता २ च ३ प्रभुः ४ एव ५ च ६ अहम् ७ हि ८ माम् ९ तत्त्वेन १० न ११ तु १२ अभिजानन्ति १३ अतः १४ ते १५ च्यवंति १६॥२४॥ प्र०–उ० पिछलेमंत्रमें कहा कि भेदवादी अज्ञानपूर्वक मेरा भजन करते हैं. इस मंत्रमें फिर उसी बातको सि करते हैं सब यज्ञोंका १ भोक्ता २।३ सि० और ❀ स्वामी ४।५

मैं ७ ही ८ सि० हूं * मुझको ९ तत्त्वसे १० नहीं ११। १२ जानते. १३ इसवास्ते १४ वे १५ गिरपडते हैं १६ तात्पर्य श्रौत स्मार्त सब यज्ञोंका भोगनेवाला और मालिक मैं सच्चिदानन्द हूँ मुझको यथार्थ नहीं जानते अर्थात् यह नहीं समझते कि फल दाता अंतर्यामी सच्चिदानंद (मायोपहितहुआ) वोही एक शुद्धसच्चिदानन्दरूप यज्ञोंका स्वामी और फलका दाता है और (अविद्योपहित हुआ) वोही उसफलका भोक्ताहै. और वो मुझसच्चिदानंदरूप आत्मा से कोई जुदा वास्तव सच्चिदानंद नहीं. इसप्रकार जोईश्वरका स्वरूप नहीं जानते वे इस हेतुसे जन्म मरणके चक्रमें घूमते हैं, इसमंत्रमें प्रभु शब्द तत्पदका वाच्यार्थ है और भोक्ताशब्द त्वंपदका वाच्यार्थ है लक्ष्यार्थमें दोनोंकी एकता श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं कि प्रभुभी और भोक्ताभी दोनों मैं ही हूँ. अहंशब्दका लक्ष्यार्थमें तात्पर्य है. अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं, कि मैं शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप मायोपहितहुआ तो सब यज्ञोंका स्वामी फलदाता हूँ और अविद्योपहित हुआ उसी फलका मैंही भोक्ताहूं औरअब विचारकरना चाहिये,कि जप,स्वाध्याय, इन्द्रियप्राणादिका निरोध इत्यादि जो यज्ञ चतुर्थाध्यायमें श्रीभगवानने निरूपण कियेहैं उनका भोक्ता ईश्वर है वा जीव है ॥२४॥

मू०-यांतिदेवव्रतादेवान्पितॄन्यांतिपितृव्रताः ॥
भूतानियांतिभूतेज्यायांतिमद्याजिनोपिमाम्॥२५॥

देवव्रताः १ देवान् २ यांति ३ पितृव्रताः ४ पितॄन् ५ यांति ६ भूतेज्याः ७ भूतानि ८ यांति ९ मद्याजिनः १० माम् ११ अपि १२ यांति १३॥२५॥ अ०--उ० भेदभावनाकरके वा अभेद भावना करके जो परमेश्वरका आराधन करते है, उन दोनोंका फल इसमंत्रमें कहते हैं देवताओंके उपासक १ देवतोंको २ प्राप्त होते हैं ३. पित्रोंके उपासक ४ पित्रोंको ५ प्राप्त होतेहैं ६ भूतोंके उपासक ७ भूतोंको ८ प्राप्त

होते हैं, ९ मेरे उपासक १० मुझको ११ ही १२ प्राप्त होते हैं १३.
टी० ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण इत्यादि इनके और इन्द्रादि-
मूर्तिमान देवतोंके आराधन करनेवाले १ सलोकतासरूपता समीपता
और सायुज्यता इन चार मुक्तियोंको प्राप्तहोते हैं२विनायक मातृगण
भूतोंके पूजनेवाले भूतोंमें जा मिलेंगे और इस कलियुगमें जो मीरा-
गूंगादिपीरोंका (भूतप्रेतोंका) पूजन करते हैं वे उनको ही प्राप्त
होंगे अर्थात् मरकर सब भूत प्रेत बनेंगे ७ और मुझ शुद्धसच्चिदा-
नंदस्वरूप आत्माके यजन करनेवाले अर्थात् ज्ञाननिष्ठावाले १० मुझ
नित्यमुक्त परमानंदस्वरूप निराकारनिर्विकारको ११ अवश्य, निश्चय
से १२ प्राप्त होंगे १३ अर्थात् नित्यमुक्त परमानंदस्वरूपही होजावेंगे.
माम् शब्दका अर्थ जो सावयवमूर्तिमान् वासुदेव कियाजावे तो इस
गीता शास्त्रको योगशास्त्रब्रह्मविद्या कहना नहीं बनता क्योंकि इस
अर्थमें यह ग्रन्थ स्पष्ट एकदेशी प्रतीत होता है. मूर्तिमान् वासुदेव
श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजके उपासकोंका यह ग्रन्थ हुआ औरोंको इससे
क्या प्रयोजन रहा यह बात नहीं किन्तु माम् शब्दका अर्थ सच्चि-
दानन्द निराकारहै, सो वोनित्यहै, उससे पृथक् सब अनित्यहैं इतनेमें
हीतात्पर्यार्थ समझ लेना,श्रीमहाराजने अठावें अध्यायमेंस्पष्टकहदिया
है, कि ब्रह्मलोकसे वडा और कोई लोक नहीं क्योंकि उसका
निरूपण वेदों में है जब उसीको अनित्य कहा तो औरों को
कैमुतिकन्यायसे अनित्य समझ लेना चाहिये और ब्रह्मशब्द का
अर्थ बड़ा वृहत् है इस प्रकार नहीं समझना कि ब्रह्मलोक
केवल ब्रह्मजीके लोक को कहते हैं ब्रह्माजी से विष्णु, महेश बड़े
हैं, उनके लोक जुदे हैं, सो नहीं किन्तु पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर के
सावयवलोक का नाम ब्रह्मलोक है और और वो एकही है सत्यलोक

वैकुण्ठ, कैलासादि यह पुराणोंकी प्रक्रिया है ॥ २५ ॥

मू०-पत्रंपुष्पंफलंतोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छति ॥
तदहंभक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः ॥२६॥

यः १ पत्रम् २ पुष्पम् ३ फलम् ४ तोयम् ५ मे ६ भक्त्या ७ प्रयच्छति ८ तत् ९ भक्त्या १० उपहृतम् ११ प्रयतात्मनः १२ अहम् १३ अश्नामि १४ ॥ २६ ॥ अ०-उ० मैं परमेश्वरका दास हूं, इसप्रकार भेदभावना करके श्रद्धापूर्वक परमेश्वरकी जो भक्ति करते हैं, उनको ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिका सुलभउपाय श्रीभगवान् बताते हैं-जो १ सि० भक्त ❀ पत्र २ फूल ३ फल ४ जल ५ मेरे अर्थ ६ भक्ति करके ७ अर्पण करता है ८ सो ९ भक्तिकरके १० अर्पण किया हुआ ११ सि० पदार्थ थोड़ा भी रूखासूखा❀शुद्धान्तः करणवाले का अर्थात् अपने भक्तका १२ मैं १३ सि० आदरपूर्वक प्रीतिके साथ ❀ खाता हूँ अर्थात् ग्रहण करता हूं १४ तात्पर्य पत्र तुलसी बिल्वपत्रादि और जल सदाशिवजीपर जो चढ़ाते हैं, उससे महेश्वर प्रसन्न होते हैं, श्रीमहाराज कहते हैं कि मैं फल भोजन करता हूं, फूल सूंघता हूँ, पत्र ग्रहणकरता हूं, जलपान करता हूं, जैसे गुलदस्ते में फूल भी होते हैं, उसको हाथमें ग्रहण करके फूलोंको सूंघते हैं और पत्रोंको देखते हैं " दुर्योधनकी मेवा त्यागी शाक विदुरघर खाया " इसप्रकार किसी जगह पत्रका भोजन भी होता है ॥ २६ ॥

मू०-यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत् ॥
यत्तपस्यसिकौन्तेयतत्कुरुष्वमदर्पणम् ॥२७॥

कौन्तेय १ यत् २ करोषि ३ यत् ४ अश्नासि ५ यत् ६ जुहोषि ७ यत् ८ ददासि ९ यत् १० तपस्यसि ११ तत् १२ मदर्पणम्

१३ कुरुष्व १४ ॥ २७ ॥ अ०-उ० परमकरुणाकर श्रीभगवान् उससे भी और सुलभ उपाय बताते हैं, पत्रादि करके जो श्रीनारायणका पूजन करता है सो परतंत्र है, यह स्वतंत्र उपाय सुन-हे अर्जुन ! १ जो २ (तू) करता है ३, जो ४ (तू) खाता है ५ जो ६ (तू) होमकरता हैं ७ जो ८ (तू) देता है ९ जो १०(तू) तपकरता है ११ सो १२ सि० सब ❀ (तू) मुझको अर्पण १३ कर १४ तात्पर्य लौकिक वैदिक शुभाशुभ जो तू कर्म करता है अर्थात् जो तू खाता है, पहरता है, होम करता है, देता है, तप करता है, हे अर्जुन ! सब मुझको अर्पण कर, तात्पर्य निष्काम हो, फलकी इच्छा मतकर "आत्मात्वंगिरिजामतिः सहचराः प्राणाः शरीरंगृहं पूजातेविषयोपभोगरचनानिद्रासमाधिस्थितिः ॥ संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणिसर्वागिरोयद्यत्कर्मकरोमितत्तदखिलंशंभोतवाराधनम्" ॥ यह शरीर आपका घर शिवालय है, इस शरीरमें सदाशिवरूप सच्चिदानन्द आत्मा आप हो, बुद्धि श्रीपार्वतीजी हैं, आपके साथ चलनेवाले नौकर प्राण हैं, ये जो मैं विषयानन्दके वास्ते विषयभोक्ता हूं, याने जो खाता हूं, पीता हूं. देखता हूं, सुनता हूं, सूंघता हूं, बोलता हूँ, स्पर्श करता हूँ यही मैं आपकी पूजा करता हूं, निद्रा मेरी समाधि है फिरना मेरा आपकी प्रदक्षिणा है, जो कुछ मैं बोलता हूं यह सब आपकी स्तुति करता हूं जो जो और भी कर्म मैं करता हूं, हे चन्द्रशेखर ! सब प्रकार आपका ही मैं आराधन करता हूं आप आशुतोष हो, जल्दी मुझपर कृपाकरो जिस आपकी कृपासे मैं विदेह मुक्तिको प्राप्तहूँगा॥

मू०-शुभाशुभफलैरेवंमोक्ष्यसेकर्मबन्धनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्मा।विमुक्तोमामुपैष्यसि॥२८॥

एवम् १ शुभाशुभफलैः २ कर्मबन्धनैः ३ मोक्ष्यसे ४ संन्यासयोगयुक्तात्मा ५ विमुक्तः ६ माम् ७ उपैष्यसि ८ ॥ २८ ॥ अ०-उ० निष्कामकर्म करनेवाले निष्फल नहीं रहते उनको अनंत अविनाशी परमानन्द फल प्राप्त होता है. इस हेतुसे हे अर्जुन ! इस प्रकार तू मेरी भक्ति करता हुआ बेसन्देह मुझ अविनाशी परमानन्दरूपको प्राप्तहोगा, यह इसश्लोकमें कहते हैं-सि० जैसे अब निरूपण किया * इस प्रकार १ सि० मेरी भक्ति करता हुआ शुभ अशुभ फल हैं जिनके २ सि० तिन * कर्मबंधनों से ३ (तू) छूट जायगा ४ सि० फिर पीछे * संन्यासयोगकरके युक्त है, आत्मा याने अन्तःकरण जिसका ५ सि० ऐसा होकर तू * जीवन्मुक्त होकर ६ अर्थात् शरीरपातके पीछे ६. मुझ परमानन्दस्वरूप नित्यमुक्त पूर्णब्रह्मशुद्धानन्त आत्माको ७ (तू) प्राप्त होगा ८ तात्पर्य निष्काम उपासना करनेसे चित्त शुद्ध होकर एकाग्र हो जाता है, फिर कर्म उसको अपने आप बंधनविक्षेपरूप प्रतीत होने लगते हैं. उन सब कर्मोंका त्यागकरके विरक्तसंन्यासी होजाता है. तब विरक्त अवस्थामें ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होती है, फिर जीते जी उस परात्परपरमानन्दका अनुभव लेता है और जीवन्मुक्त हुआ विचरता है. प्रारब्ध कर्म नाश होनेके पीछे देहपात होजाता है. मूलाज्ञान कार्यसहित नष्ट होजाता है. यही सब अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति है. इसीका नाम कैवल्यमुक्ति है ॥ २८ ॥

मू०-समोहंसर्वभूतेषुनमेद्वेष्योस्तिनप्रियः ॥
येभजंतितुमांभक्त्यामयितेतेषुचाप्यहम् ॥२९॥

सर्वभूतेषु १ अहम् २ समः ३ न४ मे ५ द्वेष्यः ६ अस्ति ७ न ८ प्रियः ९ तु १० ये ११ माम् १२ भक्त्या १३ भजंति १४ ते १५

मयि १६ तेषु १७ च १८ अपि १९ अहम्२०॥२९॥ अ०-उ० कोई कोई प्राणी अपने को बडा समझवाला समझकर भगवद्भक्ति-रहित यह कहा करता है "बिनामुक्ति तारो तो तारबो तिहारो है" यह आलसी विषयी बहिर्मुखों की बात है, इस वाक्य से यद्यपि महिमा भगवत् की पाई जाती है परंतु भक्ति का माहात्म्य जाता है, तात्पर्य इस वाक्य का भगवन्माहात्म्य में समझना चाहिये इस जगह भक्ति के माहात्म्य का प्रसंग है, क्योंकि भगवान् अपने को रागद्वेषादि रहित (सम) कहते हैं, दूसरे का भला बुरा बिना रागद्वेष नहीं हो सक्ता, विना भक्ति भगवान् यदि किसी का भला करें तो बड़ी बिषमता की बात है, अन्य जीव फिर भक्ति क्यों करेंगे, तात्पर्य भगवद्भक्ति करना आवश्यक है, सोई कहते हैं- सब भूतों में अर्थात् भक्तों में और अभक्तों में १ मैं २ बराबर ३ सि० हूं ❀ न ४ सि० कोई ❀ मेरा ५ वैरी ६ है ७, न ८ सि० कोई मेरा ❀ प्यारा ९ सि० है, ❀ परंतु १० जो ११ मुझको १२ भक्तिकरके १३ भजते हैं, १४ अर्थात मेरी भक्ति (सेवा) करते हैं १४, वे १५ मुझमें १६ सि० हैं❀औरतिनमें १७।१८। १९ मैं २० सि० हूँ ❀ अर्थात् वे मेरे हृदय में हैं २० मुझको उनको उद्धार करने का स्मरण सदा बना रहता है और तिनके हृदय में मैं सदा बिराजमान रहता हूं, मेरी भक्ति का प्रताप है, जैसे अग्नि सम है, उसीका किसीसे रागद्वेष नहीं, परन्तु जो अग्नि के पास जाता हैं, उसका शीत दूर होता है, जो अग्नि का सेवन नहीं करता, उसका शीत दूर नहीं होता, इसी प्रकार जो भगवत की भक्ति करते हैं वे ही मुक्त होंगे, तात्पर्यार्थ यह हुआ कि जनों में विषमता दोष है, क्योंकि कोई भक्ति करता है, कोई

नहीं, ईश्वरमें यह दोष नहीं, जो दो पुरुष भक्ति करें उनमें से एक भक्त हो, एक न हो, तो ईश्वरमें विषमता आवे, जो कोई यह शंका करे कि अजामिलादि बहुत जीव विनाभक्ति मुक्त हुए यह उनका कहना झूंठ है, उनके पहले जन्मों की कथा श्रवण करना चाहिये, वे लोग योगभ्रष्ट थे ॥ २९ ॥

मू०-अपिचेत्सुदुराचारोभजतेमामनन्यभाक् ॥
साधुरेवसमंतव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः ॥३०॥

चेत् १ अनन्यभाक् २ सुदुराचारः ३ अपि ४ माम् ५ भजते ६ सः ७ साधुः ८ एव ९ मंतव्यः १० हि ११ सः १२ सम्यग्व्यवसितः १३ ॥ ३० ॥ अ०-उ० भगवद्भक्तिका माहात्म्य और उसका अतर्क्य प्रभाव यह कहते हैं, कदाचित १ अनन्य भजनकरने वाला २ अर्थात् सब तरफ से मनको रोककर केवल श्रीनारायणका जो आराधन करता है, २ सि० वो लोकदृष्टिमें यदि ❀ अत्यन्त दुराचारी भी है ३ । ४ अर्थात वो स्नानादि अचार नहीं भी करता परंतु अनन्य हुआ ३ । ४ मुझको ६ भजता है ६ अर्थात् सदा नारायणका ध्यान या श्रीकृष्णादिके चरित्रोंका स्मरण करता रहता है, अथवा ज्ञाननिष्ठ महापुरुष आत्मानंदमें मग्न रहता है ६ सो ७ साधु ८ ही ९ मानना योग्य है १० सि० कभी उसको बुरा नहीं समझना मुखसे बुरा कहना तो बडाही अनर्थ है, ❀ क्योंकि ११ सो १२ भले प्रकार बहुत अच्छे निश्चयवाला है १३ अर्थात भीतरका निश्चय उसका अच्छाहै १३, ...पर्य निश्चय यह बात है कि पार हुए पीछे नौकाका क्या काम है, आचार पूजापत्री तबतक है कि जब तक श्रीमहाराजके चरणकमलों में वा आत्मस्वरूपमें, मन अनन्य होकर नहीं लगा ॥ "ज्ञाननिष्ठोविरक्तोवामद्भक्तोवानपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वाच-

वेदविधिगोचरः" ॥ इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि, ज्ञाननिष्ठ,विरक्त, वा मेरा भक्त बेपरवाह सब दिखावटके चिह्नोंको आश्रमों को त्याग कर सिवाय भगवद्भजन वा आत्मनिष्ठाके सब वेदशास्त्रके विधिको नमस्कारकर पंचमाश्रम परमहंस अवस्थामें विचरे. वेदमें भी यह लिखा है, कि जिसको वर्णाश्रमका अभिमान है, वो बेसंदेह श्रुति-स्मृतिका दास है, और जो वर्णाश्रमरहित अपने को सर्वथा श्रीनारायणका दास वा सच्चिदानंदपूर्णब्रह्मआत्मा ऐसा जानता है, वो श्रुतिमार्गका उल्लंघन करके वर्तता है, अर्थात् यह समझता है कि वेदकी विधि तबतक है, कि जबतक स्त्री पुत्र धन राजादिका दास है;अन्य नारायणका दास नहीं, और आत्मनिष्ठ नहीं और यह प्रगट रहे कि, यह कथा सच्चे पुरुषोंकी है विनाभक्ति वा विना ज्ञानभ्रष्ट भी ऐसेही होते हैं तथाहि-"वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः ॥ वर्णाश्रम विहीनश्च वर्तते श्रुतिमूर्धनि" ॥ ३० ॥

मू०-क्षिप्रंभवतिधर्मात्मा शश्वच्छांतिंनिगच्छति॥
कौन्तेयप्रतिजानीहि नमेभक्तःप्रणश्यति॥३१॥

धर्मात्मा १ भवति २ क्षिप्रम् ३ शश्वत् ४ शांतिम्५निगच्छति ६ कौन्तेय ७ प्रतिजानीहि ८ मे ९ भक्तः १० न ११ प्रणश्यति १२ ॥ ३१ ॥ अ०-उ० अर्जुन ! सुन भक्तिका महात्म्य अनन्य भक्त दुराचारभी ❀ धर्मात्मा १ है, २ शीघ्र (जलदी)३नित्य४शांतिको ५ अर्थात् उपरम उपशमको ५प्राप्तहोगा६हे अर्जुन ! ७ सि० इसबातको ❀ तू प्रतिज्ञाकर८सि० कि ❀ मेरा ९ भक्त १० अर्थात् परमेश्वरका दुराचारभी भक्त १० नहीं ११ भ्रष्ट होता है१२अर्थात् अधोगतिको नहीं प्राप्त होता है १२ उपासनाकांडका यह सूत्र है ॥ अथातोभक्ति

जिज्ञासा ॥ पीछे धर्मके भक्तिकी जिज्ञासा होती है इस हेतुसे प्रतीत होता है कि पहले जन्मोंमें वो धर्म कर चुका इसीवास्ते श्रीमहाराज ने भी उसको धर्मात्मा कहा और अपने भक्तसे (भुजा उठाकर) कहते हैं, किकुतर्कियोंके सभामें यह प्रतिज्ञाकरके भगवद्भक्तदुराचारभी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है, भक्तिमार्गवालोंका यह डंका बजाताहै॥३१॥

मू०-मांहिपार्थव्यपाश्रित्ययेऽपिस्युःपापयोनयः॥
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेपियांतिपरांगतिम्॥३२॥

पार्थ १ ये २ अपि ३ पापयोनयः ४ स्युः ५ ते ६ अपि७माम् ८ हि ९ व्यपाश्रित्य १० तथा ११ शूद्राः १२ स्त्रियः १३ वैश्याः १४ पराम् १५ गतिम् १६ यांति १७ ॥ ३२ ॥ अ०-उ० आचारभ्रष्टको जो मेरी भक्ति पवित्रकर दे तो इसमें क्या आश्चर्य तू मानता है, हे अर्जुन ! मेरी भक्ति रजोगुणी तमोगुणी जन्मके पापियोंको कृतार्थ कर देती है हे अर्जुन ! १ जो २ निश्चयसे३ जन्मके पापी ४ सि० भी * हैं ५अर्थात् पापियोंके कुलमें याने अन्त्यज म्लेच्छवर्ण संकरों में उत्पन्न हुए हों ५ वे ६ भी ७ मेरा ८ही ९ आसराकरके १०सि० परमगतिमुक्तिको प्राप्त होंगे, पहले बहुत होगये, अबहैं, और होंगे और जैसे ये मेरा आश्रम लेकर मुझको प्राप्त होते हैं,*तैसे ही ११ शूद्र १२ स्त्री १३ वैश्य १४ परमगतिको १५।१६ प्राप्त होते हैं.१७ तात्पर्य रजोगुणी, तमोगुणी, मूर्ख, पंडित, लुगाई ये सबलोग मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होते हैं. और मेरी कृपा और भक्तिके प्रतापसे ज्ञानवान् होकर सब परमानन्दस्वरूपआत्माको प्राप्त होते हैं, मेरी भक्तिमें सबका अधिकार है, भक्तिजनही मुझको प्यारे हैं. मेरा भक्ति व्यवहारमें कोई जाति कहलाता हो, शूद्र म्लेछ वा वर्णसंकर जो वो मेरा भक्त है, तो परमार्थमें उसको साधु संन्यासी सम-

भजना चाहिये क्योंकि उत्तम पदका भागी वोही है ज्ञातृपुरुष (विद्वान्) व्यवहारमें भी उसको श्रेष्ठ जानते हैं परमार्थमें तो वो बेसन्देह सबसे श्रेष्ठ है. बारहवें अंकसे सत्रहवें अंकतककी टीका लिखते हैं-मैत्रयी, गर्गी, मदालसा, मीरां, करमेती इत्यादि हजारों परमपदको प्राप्त हुईं, वर्तमानकालमें बहुत स्त्री, उदार, दाता, तपस्वी, ज्ञानी भक्त, प्रसिद्धहैं जिनके सहायसे और मुख्य जिनके वास्ते यह टीका बनी वे बीबीवीरा, और बीबीजानिकी, ये दोनों स्त्री ब्राह्मणी हैं, जानिकीको दो विशेषण विद्वानोंने दिये हैं "ब्राह्मणवंशाविद्वज्जनैर्वन्दिता" अर्थात् ब्राह्मणोंके वंशमें विद्वज्जन वे उसको भक्तिके और विरक्तिके प्रतापसे बन्दना करते हैं और श्रीसम्प्रदायचन्द्रिका अर्थात् श्रीसंप्रदायके प्रकट और प्रसिद्ध करनेके लिये यह जानिकी चांदनीके सदृश है; गुजरातदेशमें जो अहमदाबादनगर वहांकी रहनेवाली शंकरलाल विष्णुनागर ब्राह्मणकी बेटी. मानकलाज्ञ प्रसिद्धसांकललाल की पत्नी, श्रीमान् उत्तमगुणोंकी खान, अब श्रीवृन्दावनचन्दमें वास करती है, घरमें इनका नाम पार्वती था. श्रीसम्प्रदायके जब ये शरणागत हुईं तब विधिवत् द्वितीयनाम बीबीजानिकी रक्खा गया. बीबोबीराका द्वितीय नाम बीबीभूनिया भी प्रसिद्ध है. इन्होंने श्रीबीरबिहारीजी और बीरेश्वरमहादेवजीका मन्दिर बनाकर सर्वस्व दानकरदिया यह भी वृन्दावनमें वास करती हैं. हरीराम सारस्वत ब्राह्मणकी बेटी शिवदत्तकी पत्नी है, सर्वस्वदानसे विशेष कोई दान नहीं, सर्वस्वदानका फल अक्षय है और जीतेजी प्रत्यक्ष होता है, इसमें इतिहास यह है-श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्य महाराजजी एक स्त्रीके घर भिक्षाके लिये गये. उस समय स्त्रीके घरमें कुछ न था, स्त्री बड़ी पछताई, श्रीमहाराजको करुणा आई

और कहा कि तेरे घरमें जो दाना अन्नका कोई या फलसूखा पडा हो ढूंढकर ला, एक आमला उस स्त्रीको मिला अति संकोचके साथ महाराजके भिक्षावस्त्रमें दियाजो कि उस स्त्रीके घरमें सिवाय उस आमलेके कुछ न था. श्रीमहाराजने सर्वस्वदानकी कल्पना कर लक्ष्मीजीका आवाहन किया,श्रीजी आई. महाराजने कहा इस स्त्रीको विशेष द्रव्य दो महारानीजीने कहा हमको देनेमें इनकार नहीं परंतु सप्तजन्म यह दरिद्री रहेगी ऐसे इसके कर्म हैं. और यह मार्यादाभी आपकी बांधी हुईहै. महाराजने कहा इसने इससमय सर्वस्वदान किया इसका प्रत्यक्ष शीघ्र मनवांछित फल होना चाहिये. देवीजी बोलीं कि सत्य है जो आज्ञा हो. महाराजने कहा कि इसका घर सोनेके आमलोंसे भर दो उसीसमय सोनेके आमले उसके घरमें वरसे, घर भरगया. श्रीमहाराज उस स्त्रीको सर्वस्वदानका महात्म्य कहकर परमपदकी प्राप्तिका वर दान दे गये. बिचारो भक्तिमार्गमें तर्कका अवसर नहीं, स्त्री शूद्रादि भक्तिकरके सब परम पदके अधिकारी हैं. भक्ति का फल प्रत्यक्ष देखनेके लिये बीबीजानकी और बीबीबीराकी कथा लिखी गई "भक्तिभक्तभगवंतगुरु, चतुर्नामवपुएक ॥ तिनके पदबंदन किये, नाशतविघ्नअनेक" अथवा "तिनकेजसबर्णनकिये,नाशत विघ्न अनेक" चारोंका प्रभाव इस टीकामें लिखागया. ग्रंथके बीचका यह मंगलाचरण है. आनन्दचन्द्र प्रभाग्रंथ वार्तिकभाषा में बीबीबोरा और बीबीजानकीने मिलकर बनाया है, संख्या में दशहजार श्लोकोंसे कम नहीं सिवाय होगा, अ, क, ह, इत्यादि अक्षरोंके संख्यापार अकारसे हकारपर्यन्त कोई सौ प्रामाणिकमहानुभावोंकी कथा (उसमें सियाव वैराग्य विद्या भक्ति इत्यादिकोंसे वशेष) लिखी हैं उस ग्रंथ से और शाब्दादिप्रमाणोंकरके यह स्पष्ट प्रतीत होता है

कि स्त्री शूद्रादि सब लोग लुगाईमात्र भक्ति के प्रतापसे परगति को प्राप्त होते हैं जिससे परे अन्यश्रेष्ठ कोई गति नहीं उसको ही परमगति कहते हैं ॥ ३२ ॥

मू०--किंपुनर्ब्राह्मणाःपुण्याभक्ताराजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखंलोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम् ॥३३

तथा १ ब्राह्मणाः २ राजर्षयः ३ पुण्यः ४ भक्ताः ५ पुनः ६ किम् ७ असुखम् ८ अनित्यम् ९ इमम् १० लोकम् ११ प्राप्य १२ माम् १३ भजस्व १४ ॥ ३३ ॥ अ०--उ० व्यवहार में जो ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाते हैं यह मेरी भक्ति करके परमगतिको प्राप्त हों तो इसमें क्या कहना है अर्थात यह बात बेसंदेह है, इसमें व्यवहार परमार्थ दोनोंका सम्मतहै परंतु बिना मेरी भक्ति हे अर्जुन! जो तू चाहे कि मैं व्यवहार में क्षत्रिय कहलाता हूं इस हेतुसे परमगतिको प्राप्त होजाऊंगा इसका लेशमात्र भी भरोसा मत रख मैं तुझको समझता हूं कि यह व्यावहारिकजातिका अभिमान छोड जल्द मेरा भजन कर शरीरका भरोसा नहीं. शरीर का नामः दुःखालय है अर्थात् यह शरीर दुःखोंका घर है इसमें सुखकी आशा छोड वर्तमान में जैसा है तू वैसा ही भजन कर तात्पर्य इस श्लोक का लिखा गया अब अक्षरार्थ लिखते हैं--श्री भगवान् कहतेहैं कि जैसे व्यवहारमें जो शूद्र वर्णसंकरादि कहलाते हैं वे मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होंगे अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं, तैसे १ सि० ही व्यवहारमें जो ❀ ब्राह्मण २ सि० और ❀ राजऋषि (क्षत्रिय) ३ सि० कैसे हैं ये कि व्यवहार में भी उनको जन्मतेही ❀ पवित्र ४ सि० कहते हैं, यह मेरे ❀ भक्त ५ सि० होकर अर्थात् मेरी भक्ति करके परगतिको प्राप्त हों तो ❀ फिर ६

स्या ७ सि० कहना है, इस बातकाही अर्जुन निश्चय रख वेसन्देह तू भक्ति करके परमगतिको प्राप्त होगा, इस वास्ते ॐ अनित्य ८ सि० और ॐ असुख ९ अर्थात नहीं है किसी कालमें सुख जिसमें ऐसे ६ इस १० शरीर को ११ प्राप्तहोकर १२ मेरा १३ भजन कर १४ अर्थात् मुझको भज १४. तात्पर्य अनित्य होने से तू तो देर मत कर और असुख होने से यह मत समझ कि जिसकालमें सुख होगा तब भजन करूंगा तो इसमें कभी सुख होताही नहीं,सुख भजनमें ही है व्यवहार के जातिका आश्रय छोड़, भक्ति का आश्रय ले, जिस भक्तिके प्रताप से व्यवहारमें जो शूद्र वर्ण संकर कहे जाते हैं वे भी परमगतिको प्राप्त होते हैं और तू तो व्यवहार में भी उत्तम कहलाता है, तू क्यों देर करता है जल्द भजन कर, यह मतलब है महाराज का ॥ ३३ ॥

म०--मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसियुक्त्वैवमात्मानंमत्परायणः ॥३४॥

मन्मनाः १ भव २ मद्भक्तः ३ मद्याजी ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ एवम् ७ आत्मानम् ८ युक्त्वा ९ मत्परायणः१० माम् ११ एव १२ एष्यसि १३ ॥ ३४ ॥ अ०--उ० भजनका प्रकार दिखलाते हुए फलपूर्वक इस प्रसंग को समाप्त करते हैं--मुझमें है मन जिसका १ सि० ऐसा ॐ हो तू २ अर्थात् मुझमें ही मन लगा २. मेरा भक्त ३ सि० हो और ॐ मेरा भजन करने वाला ४ सि० हो तू ॐ अर्थात् मेरी पूजा कर ४. सि० और ॐ मुझको ५ नमस्कार कर ६ इस प्रकार ७ मनको ८ सि० मुझमें ॐ लगा करके ९ मुझ

परायण हुआ १० मुझको ११ हीं १२ प्राप्त होगा तू १३. अर्थात् मुझ परमानन्द स्वरूपको प्राप्त होगा १३ ॥ ३४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगे नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ भूयएवमहाबाहोशृणु मे परमं वचः॥यत्तेहंप्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥

महाबाहो १ भूयः २ एव ३ मे ४ वचः ५ शृणु ६ यत् ७ परमम् ८ ते ९ प्रीयमाणाय १० हितकाम्यया ११ अहम् १२ वक्ष्यामि १३। १॥अ०-उ० सातवें और नववें अध्यायमें संक्षेप करके तो मैंने अपनी विभूतियोंका निरूपण किया. अब विस्तार पूर्वक कहता हूँ, हे अर्जुन! १ फिर भी २ । ३ मेरा ४ वचन ५ सुन ६ सि० कैसा है वचन कि * जो ७ परमार्थनिष्ठावाला ८ अर्थात् मेरा वचन सुनने से परमार्थ में निष्ठा होजाती है, वारंवार तुझसे इस लिये कहता हूँ कि मेरे वचन सुनने में तेरी प्रीति है ८ तुझ प्रीतिमान् के अर्थ ९ । १० अर्थात् तू मेरे वचन में श्रद्धा करता है, इस वास्ते तेरे अर्थ अर्थात् तुझसे १० हितकी कामना करके ११ अर्थात् तू मेरा प्यारा है, मैं यह चाहता हूँ कि तेरा पीछे भला हो इस वास्ते भी १२ मैं कहूँगा १३ ॥ १ ॥

मू०-नमे विदुःसुरगणाःप्रभवंनमहर्षयः ॥
अहमादिर्हिदेवानांमहर्षीणांचसर्वशः ॥ २ ॥

१ प्रभवम् २ न ३ सुरगणाः ४ विदुः ५ न ६ महर्षयः ७ हि सर्वशः ६ देवानाम् १० महर्षीणाम् ११ च १२ अहम् १३आदिः ॥२॥ अ०-उ० सिवाय मेरे, मेरे प्रभाव को कोई नहीं जानता वास्ते भी कहूँगा-मेरे १ प्रभाव को २ न ३ देवतों के समूह ४ जानते हैं ५ न महर्षि ७ क्योंकि ८ सब प्रकार से ६ देवतों का ० और महर्षियों का भी ११ । १२ मैं १३ आदि १४ सि० हूँ ❀ तात्पर्य प्रभु की अचिन्त्य शक्ति को और सामर्थ्य को जब देव नहीं जानते तो फिर मनुष्य कब जान सक्ते हैं, क्योंकि कारण से कार्य होता है, इसवास्ते कार्य कारण को नहीं जान सक्ता परन्तु कार्य से कारण का अनुमान होसक्ता है, तात्पर्य सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मासे पृथक् कोई परमेश्वर को नहीं जान सक्ता ॥ २ ॥

मू०--योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढःसमर्त्येषु सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३ ॥

यः १ माम् २ अजम् ३ अनादिम् ४ च ५ लोकमहेश्वरम् ६ वेत्ति ७ सः ८ मर्त्येषु ६ असंमूढः १० सर्वपापैः ११ प्रमुच्यते १२ ॥ ३ ॥ अ०-उ० मुझको इसप्रकार जो जानता है सो तो जानता है और वो ज्ञानी बेसन्देह मुक्त होगा १ मुझको २ अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को मुझसे अभिन्न २ जन्मरहित ३ अनादि ४ । ५ सि० और सच्चिदानन्द सोपायोधिकमापहित हुआ ❀ लोकों का महेश्वर ६ सि० है, इस प्रकार जो मुझको ❀ जानता है ७ सो ८ मनुष्यों में ६ अज्ञानरहित है १० अर्थात् उसीका अज्ञान दूर हुआ १० सि० वोही ❀ सब पापों करके ११ अर्थात् समस्तकर्मों के फल (अगले पिछले) से ११ बेसन्देह मुक्त होगा १२, (जो इस श्लोक का अर्थ ऐसे किया जाय कि मुझ

वासुदेव को अज अनादि लोकों का महेश्वर जानता है सो मनुष्यों में ज्ञानी है, सब पापोंकरके मुक्त होगा) इस अर्थमें यह शङ्का है, कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मूर्तिमान् को उपासकजन भी अजादि महेश्वर कहते हैं और ज्ञाननिष्ठा वाले भी यही कहते हैं,वे कौन हैं कि जो श्रीमहाराजको जन्मादि वाला जीव कहते हैं प्राकृत मूर्ख स्त्री बालक और नास्तिक इन्हों का इस जगह कुछ प्रसंग नहीं,कर्मी कर्म ही को फलदाता जानते हैं, कर्म से पृथक कोई ईश्वर नहीं मानते, विचारो कि यह उपदेश श्रीभगवान् का किसीको है तात्पर्य मायोपहितसच्चिदानंदकोअविद्योपहितसच्चिदानन्दसे अर्थात् ईश्वर को जीवसे जो लक्ष्यार्थ में अपृथक् समझतेहैं कि मायोपहित हुआ यही अविद्योपहित जीव सच्चिदानंद महेश्वर है इसी हेतु से अज अनादि है जब ऐसा सच्चिदानंद आत्माको जानेंगे तब वे मुक्त होंगे जो ज्ञान इस श्लोक में कहाहै, वो कुछ सहज नहीं समझना. पिछले श्लोकमें श्रीभगवान् कह चुके हैं कि, मेरे प्रभाव को ऋषि और देवताभी नहीं जानते, मनुष्य तो क्या जानेंगे, बेसंदेह जो ईश्वर से अभिन्न निर्विकार आत्माको सच्चिदानंद जानेगा, वोही भगवत् के प्रभाव को जानेगा. और जो आपको भक्त, ऋषि, देवता, मनुष्य इत्यादि ऐसा जानेंगे, वे नहीं जानेंगे इस प्रकार समझना चाहिये ॥ ३ ॥

मू०-बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहःक्षमासत्यंदमःशमः ॥
सुखंदुःखंभवोभावो भयंचाभयमेवच ॥ ४ ॥

बुद्धिः १ ज्ञानम् २ असंमोहः ३ क्षमा ४ सत्यम् ५ दमः ६ शमः ७ सुखम् ८ दुःखम् ९ भवः १० भावः ११ भयम् १२ च १३ अभयम् १४ एव १५ च १६ ॥ ४ ॥ अ०-उ० अब तीन श्लोकों में सोपाधिक अपने स्वरूपकी ईश्वरता प्रगट करते हैं-सारासार को भले प्रकार जानने वाली अन्तःकरणकी वृत्ति १ आत्मा का निश्चय

करनेवाली आत्माकारक अन्तःकरणकी वृत्ति २ जिसकाममें प्रवृत्त होना विवेकपूर्वक होना और उस जगह चित्त व्याकुल न होना, सदा चैतन्य रहना ३ पृथवीवत् सहनशील होना ४ यथार्थ (सन्देहरहित) बोलना ५ इन्द्रियोंका निरोध ६ अन्तःकरणका निरोध ७ अनुकूल पदार्थमें जो अन्तःकरणकी वृत्ति ८।९ उद्भवहोना १० उद्भवनहोना ११ त्रासहोना १२ १३ त्रास नहोना १४।१५।१६ सि० अगले श्लोकके साथ इसका संबंधहै अगले श्लोकमें श्रीभगवान् कहेंगे कि, यह शमादि पृथक् २ भाव मुझ सोपाधिक ईश्वरसे होते हैं अथात् शुद्धसच्चिदानंदआत्मा निर्विकार है इस प्रकार निरुपाधिक और सोपाधिक सच्चिदानन्दको जानना भगवत्का जानना है ❀॥४।

मू०-अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोयशः ॥
भवन्तिभावाभूतानांमत्तएवपृथग्विधाः ॥५॥

अहिंसा १ समता २ तुष्टिः ३ तपः ४ दानम् ५ यशः ६ अयशः ७ पृथग्विधाः ८ भावाः ९ भूतनाम् १० मत्तः ११ एव १२ भवंति १३ ॥१५॥ अ०-हिंसारहित १ रागद्वेषरहित २ सि० दैवयोगसे अपने आप जो पदार्थ प्राप्त होजाय उसीमें ❀ सन्तोष ३ इन्द्रियोंका निग्रह ४ सि० न्यायसे कमाया हुआ अन्न सुपात्रोंको ❀ देना ५ सत्कीर्ति अर्थात् सज्जनोंमें कीर्तिहोना ६. अकीर्ति अर्थात् जो लोग भगवतसे विमुख हैं और भगवद्भक्तोंसे बैर रखते हैं इस हेतुसे उनकी जो बुराई होती है, उसको अकीर्ति कहते हैं ७ ये सब कीर्ति अकीर्ति नाना प्रकारके भाव ८।९ सि० बुद्धिज्ञानादि ❀ प्राणियोंके १० मुझको ११ ही १२ होते हैं १३. तात्पर्य सोपाधिकचैतन्यसे ये सब होते हैं " हनि लाभ जीवन मरण, यशअपयश विधिहाथ"

पुराणों में कथा है कि पृथवी पर भगवत्सम्बन्धी स्त्री पुरुषोंके मुखसे जब तक जिसका यश श्रवण करने में आता है तब तक वे कीर्तिमान् स्वर्ग में निवास करते हैं । ५ ॥

मू०-महर्षयः सप्तपूर्वेचत्वारोमनवस्तथा ॥
मद्भावामानसाजातायेषांलोकइमाःप्रजाः ॥६॥

पूर्वे १ चत्वारः २ सप्त ३ महर्षयः ४ तथा ५ मनवः ६ मद्भावाः ७ मानसाः ८ जाताः ९ येषाम् १० लोके ११ इमाः १२ प्रजाः १३ ॥६॥ अ०–सि० मैथुनीसृष्टिसे ❀ पहले १ सि० जो हुए ❀ चार २ सि० सनकादि और ❀ सात ३ सि० भृग्वादि ❀ महर्षि ४ तैसेही ५ मनु ६ सि० स्वायम्भुवादि ❀ मेराही है प्रभाव जिनमें ७ सि० मुझ हिरण्यगर्भात्माके ❀ संकल्पमात्र से ८ उत्पन्न हुए हैं ९ अर्थात् उनके शरीरोंको मायामय समझना ९ सि० उनका प्रभाव यह है कि ❀ जिनकी १० लोकमें ११ यह १२ प्रजा १३ सि० है ❀ तात्पर्य प्रजा दो प्रकार की है निवृत्तिमार्गवाली एक, प्रवृत्तिमार्गवाली दूसरी. निवृत्तिमार्ग के आचार्य सनकादि १ प्रवृत्तिमार्गके आचार्य भृग्वादि हैं, य दोनों मार्ग अनादि हैं सनकादि महाराजने प्रवृत्तिमार्ग के तरफ कभी किसी कालमें दृष्टि भी नहीं की जबसे उनका आविर्भाव हुआ तबसेही बालजितेन्द्रिय ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित परमहंस हुए विचरते रहते हैं, जिस जगह जाते हैं सब देवता विष्णुमहेशादि उनके सामने खडे होजाते हैं और यह सामर्थ्य रखते हैं कि चाहे जिस देवताको शाप देदें, अनुग्रह करदें, यह प्रताप ज्ञाननिष्ठा और निवृत्तिका समझना मोक्षमार्ग निवृत्तिमार्गवाले सन्यासी परमहंसों से ही मिलता है, जो आप प्रवृत्तिबद्ध हैं वे दूसरे को कैसे मुक्त करेंगे ॥६॥

मू०-एतांविभूतिंयोगंचममयोवेत्तितत्त्वतः॥
सोविकंपेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः॥ ७॥

एताम् १ मम २ विभूतिम् ३ योगम् ४ च ५ यः ६ तत्त्वतः ७ वेत्ति ८ सः ९ अविकम्पेन १० योगेन ११ युज्यते १२ अत्र १३ न १४ संशयः १५ ॥ ७ ॥ अ०-उ० यथार्थज्ञानका मुक्ति फल है सो दिखलाते हैं, इस १ मेरे २ विभूतिको ३ और योगको ४।५ जो यथार्थ ६।७ जानता है ८ सो ९ निश्चल १० योगकरके ११ युक्त हो जाता है १२ अर्थात् संशयविपर्ययरहित होजाता है १२ इसमें १३ नहीं है १४ संशय १५ ॥७॥

मू०-अहं सर्वस्यप्रभवोमत्तःसर्वंप्रवर्तते॥
इतिमत्वाभजंतेमांबुधाभावसमन्विताः॥८॥

सर्वस्य १ प्रभवः २ अहम् ३ मत्तः ४ सर्वम् ५ प्रवर्तते ६ इति ७ मत्वा ८ भावसमन्विताः ९ बुधाः १० माम् ११ भजन्ते १२॥८॥ अ०-उ० संशयविपर्ययरहित भगवद्भक्त ऐसा भगवत्को मानकर भजन करते हैं, फिर भगवत्की कृपासे उनको आत्मज्ञान होजाता है, यह बात चार श्लोकोंमें कहते हैं, सबकी १ उत्पत्ति है, जिससे २ सि० सो मन्वादि ❀ मैं ३ सि० हूं ❀ मुझसे ४ सि० ही बुद्ध्यादिपदार्थ ❀ सब ५ चेष्टा ६ सि० करते हैं अर्थात् सबका प्रेरक अन्तर्यामी मैं हूँ, ७ ❀ यह समझकर ८ श्रद्धापूर्वक ९ विद्वान् १० मुझको ११ भजते हैं ॥ १२ ॥८॥

मू०-मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयंतःपरस्परम्॥
कथयंतश्चमांनित्यंतुष्यंतिचरमंतिच॥ ९॥

मच्चित्ताः१मद्गतप्राणाः२परस्परम् ३ बोधयन्तः ४ नित्यम्

माम् ६ कथयंतः ७ च ८ तुष्यंति ९ च १० रमन्ति ११ च १२ ॥ ९ ॥ अ०-उ० प्रीतिपूर्वक भजन करने वालोंका लक्षण यह है उत्तरोत्तर उनकी वृत्ति इस प्रकार भगवत्स्वरूप में बढती है. एक अंकमें प्रथम भूमिका वालोंका लक्षण है,मुझ सच्चिदानन्द में है चित्त जिनका १ मुझमें लगा दिया है प्राण जिन्होंने २ अर्थात् अपना जीवन मेरे अधीन समझते हैं २ सि० परस्पर आपसमें ३ बोध करते हैं ४ अर्थात् दोचार भक्त तत्त्वके जिज्ञासु मिलकर विचार करतेहैं श्रुति स्मृति युक्ति इन प्रमाणों करके परस्पर बोधन करते हैं ४ सि० कोई श्रुति प्रमाण देता है, कोई स्मृति युक्ति करके सिद्ध कर देते हैं,जब सब भक्तोंका और श्रुति स्मृति युक्तियोंका शंका समाधान पूर्वक एकपदार्थ (भगवत्तत्त्व) में सम्मत्त हो जाताहै, उसको जान- कर जिज्ञासुओंसे ❀ नित्य (सदा) ५ मुझको ६ कहते हैं अर्थात् भक्तों को भगवत्स्वरूपका उपदेश करते रहते हैं ७ । ८ सि० और उसी भगवत्स्वरूप के आनन्दमें ❀ सन्तोष करते हैं ९ । १० अर्थात वो निरतिशय आनन्द है, उस आनन्द से परे विषयानन्द को तुच्छ समझते हैं, सि० सदा उसी आनन्द में ❀ रमते हैं ११ । १२ अर्थात उसमें प्रीति रखते हैं, सच्चिदानन्दस्वरूप में मग्न रहते हैं ॥ ९ ॥

मू०-तेषांसततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामिबुद्धियोगंतंयेनमामुपयांतिते ॥१०॥

सततयुक्तानाम् १ प्रीतिपूर्वकम् २ भजताम् ३ तेषाम् ४ तम् ५ बुद्धियोगम् ६ ददामि ७ येन ८ माम् ९ ते १० उपयान्ति ११ ॥१०॥ अ०-उ० निरंतर युक्त हुए १ प्रीतिपूर्वक २ सि० जो मेरा ❀ भजन करते हैं ३, उनको ४ वो ५ ज्ञानयोग ६ देऊँगा

७ सि० कि ❀ जिसकरके ८ मुझको ६ वे १० प्राप्तहोंगे ११ उनको ज्ञानयोग देता हूं ४।५।६॥७।१०॥

मू०-तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः॥
नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेनभास्वता॥११॥

तेषाम् १ एव २ अनुकम्पार्थम् ३ अहम् ४ अज्ञानजम् ५ तमः ६ नाशयामि ७आत्मभावस्थः८भास्वता ६ ज्ञानदीपेन १० ॥११॥ भ०-तिनके १।२ भलेके लिये ३मैं४अज्ञानसे उत्पत्ति है जिसकी ऐसा जो तम ५।६ अर्थात् संसार ६ सि० तिसका ❀ नाश करदेता हूँ ७ बुद्धि की वृत्तिमें स्थित होकर ८प्रकाशरूप ज्ञानदीपककरके ६।१० तात्पर्य जो निरन्तर पूर्वरीति करके मेरा भजन करते हैं उनको निरतिशय परमानंदकी प्राप्तिके लिये मूलाज्ञान और तूलाज्ञानका मैं नाश करदेता हूं, निर्मलबुद्धिकी वृत्तिमें स्थित होकर ऐसा प्रकाश करताहूं कि, सब संसार उसको मिथ्या प्रतीत होने लगता है और आत्मा शुद्धस्वरूप, सच्चिदानन्द, निराकार, निर्विकार, अपरोक्ष होजाता है. ऐसा ज्ञानरूप दीपक उसके हृदयमें प्रज्वलित करता हूं कि अपने आप सब पदार्थ नित्य अनित्य भलेप्रकार फुरने लगते हैं, फिर विवेक वैराग्यादि साधनचतुष्टयसम्पन्न होकर आत्मज्ञान द्वारा परमानन्द को प्राप्त होजाता है ॥ ११ ॥

मू०-अर्जुनउवाच॥परंब्रह्मपरंधामपवित्रंपरमंभवान्॥
पुरुषंशाश्वतंदिव्यमादिदेवमजंविभुम् ॥ १२ ॥

अर्जुनउवाच ॥ भवान् १ परम् २ ब्रह्म ३ परम् ४ धाम ५ परमम् ६ पवित्रम् ७ पुरुषम् ८ शाश्वतम् ६ दिव्यम् १० आदिदेवम् ११ अजम्१२विभुम् १३॥१२॥ भ०- अर्जुन कहता है,सि० हे कृष्णचन्द्रमहाराज ! आप१❀परंब्रह्म २।३ परंधाम ४।५ परमपवित्र ६।७

सि० हो. व्यासादि आपको ऐसा कहते हैं और ❀ पुरुष ८ नित्य ९ दिव्य १० आदिदेव ११ अज १२ व्यापक १३ सि० कहते हैं. इस श्लोकका अगले श्लोकके साथ सम्बन्ध है ❀ ॥ १२ ॥

मू०-आहुस्त्वामृषयःसर्वेदेवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितोदेवलोव्यासः स्वयंचैवब्रवीषिमे ॥१३॥

सर्वे १ ऋषयः २ देवर्षि ३ नारद ४ तथा ५ असितः ६ देवल ७ व्यासः ८ त्वाम् ९ आहुः १० स्वयम् ११ च १२ एव १३ मे १४ ॥ ब्रवीषि १५ ॥१३॥ अ०-उ० इस श्लोकका पिछले श्लोकके साथ संबंध है. सब १ ऋषि २ देवर्षि नारदजी ३ । ४ और ५ असित ६ देवल ७ व्यासजी ८ आपको ९ सि० ऐसा ❀ कहते हैं १० सि० कि जैसा पिछले श्लोकमें परब्रह्मसे लेकर विभुतक निरूपण किया ❀ और आपभी ११ । १२ । १३ मुझसे १४ सि० अपने आपको वैसा ही ❀ कहते हो १५. सि० कि जैसे आपको व्यासादि कहते हैं ❀ ।। १३ ॥

मू०-सर्वमेतदृतंमन्येयन्मांवदसिकेशव ॥
नहितेभगवन्व्यक्तिंविदुर्देवानदानवाः ॥१४॥

केशव १ यत २ माम् ३ वदसि ४ एतत् ५ सर्वम् ६ ऋतम् ७ मन्ये ८ भगवन् ९ हि १० ते ११ व्यक्तिम् १२ न १३ देवाः १४ विदुः १५ न १६ दानवाः १७ ॥ १४ ॥ अ०-उ० हे केशव ! १ जो २ मुझसे ३ आप कहते हो ४ यह ५ सब ६ सत्य ७ मैं मानता हूं ८ हे भगवन् ९ बेसंदेह (यथार्थ) १० आपके ११ स्वरूपको वा प्रभावको १२ न १३ देव १४ जानते हैं १५ न १६ दानव १७ तात्पर्य परमात्माका शुद्धस्वरूप विषयवत् कोई भी नहीं जानसक्ता भगवत्का उपाधिसहित स्वरूप विषयवत् जानाजाता है. आत्मा स्वयंप्रकाश है ॥ १४ ॥

मू०-स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम ॥
भूतभावनभूतेश देवदेवजगत्पते ॥ १५ ॥

पुरुषोत्तम १ भूतभावन २ भूतेश ३ देवदेव ४ जगत्पते ५ स्वयम् ६ एव ७ आत्मना ८ आत्मानम् ९ त्वम् १० वेत्थ ११॥१५

भा०-हे पुरुषोत्तम ! हे भूतभावन ! २ हे भूतेश ! ३ देवदेव ! ४ हे जगत्पते ! ५ आपही ६ । ७ आत्मा करके ८ आत्मा को ९ आप १० जानते हो ११. तात्पर्य जैसे सूर्य स्वयं प्रकाश है.सूर्य के देखने में किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं,ऐसेही भगवत् का शुद्धस्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा करके ही जानाजाता है,मन वाणी और उनके देवतों के बिषय नहीं, फिर मनुष्यों का विषय तो कैसे होसक्ता है. टी० भूतों के उत्पन्न करने वाले २ भूतों के ईश्वर ३ देवतों के भी देवता ४ जगत् के स्वामी ५ ये सब हेतु गर्भित विशेषण हैं ॥१५॥

मू०-वक्तुमर्हस्यशेषेणदिव्याह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि १६

आत्मविभूतयः १ दिव्याः २ हि ३ अशेषेण ४ वक्तुम ५ अर्हसि ६ याभिः ७ विभूतिभिः ८ इमान् ९ लोकान् १० व्याप्य ११ त्वम् १२ तिष्ठसि १३ ॥ १६ ॥ अ०-उ० जब कि अपने स्वरूप को और अपने ऐश्वर्यको आपही जानतेहो, इस वास्ते आपसे ही आपकी विभूति सुना चाहता हूँ, अपना ऐश्वर्य १ दिव्य २। ३ समस्त ४ कहनेको ५ योग्य हो अर्थात् जो जो आपकी दिव्य विभूति हैं वे समस्त मुझसों कहिये ६ जिन विभूति करके ७।८ इस लोक को ९ । १० व्याप्तकर ११ आप १२ स्थित हो १३ तात्पर्य जिन जिन विभूति करके इस लोकमें आप व्याप्त होरहेहो मैं उनका चिन्तवन करना चाहता हूँ इस वास्ते मुझसे कहो ॥ १६ ॥

मू०-कथंविद्यामहयोगिस्त्वांसदापरिचिंतयन्॥
केषुकेषुचभावेषुचिंत्योसिभगवन्मया॥१७॥

योगिन् १ कथम् २ त्वाम् ३ सदा ४ परिचन्तयन् ५ अहम् ६ विद्याम् ७ भगवन् ८ मया ९ केषु १० केषु ११ च १२ भावेषु १३ चिन्त्यः १४ असि १५ ॥ १७ ॥ अ०-हे योगीश्वर! १ किसप्रकार २ आपको अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्दको ३ सदा ४ चिंतवन करता हुआ ५ मैं६जानूं ७ तात्पर्य इस प्रकार मुझको उपदेश कीजिये कि जिस प्रकार आपका शुद्ध स्वरूप जाना जाय, हे कृष्णचन्द्र! ८ मुझकरके ९ किन किन पदार्थों में १० । ११ । १२ । १३ चिंतवन करने योग्य १४ हो आप १५ अर्थात् किस किस पदार्थ के चिंतवन करने से अन्तःकरण शुद्ध होकर आपका यथार्थ रूप जाना जाता है उन पदार्थों को मैं जानना चाहता हूं (१० से १५ तक तात्पर्य अन्तःकरण की शुद्धि का उपाय अर्जुन बूझता है ॥१७॥

मू०-विस्तरेणात्मनोयोगंविभूतिंचजनार्दन॥
भूयःकथयतृप्तिर्हिशृण्वतोनास्तिमेऽमृतम्॥१८॥

जनार्दन १ विस्तरेण २ आत्मनः ३ योगम् ४ विभूतिम् ५ च ६ भूयः ७ कथय ८ हि ९ अमृतम् १० शृण्वतः ११ मे १२ तृप्तिः १३ न १४ अस्ति १५ ॥ १८ ॥ अ०-उ० जब मेरा चित्त बहिर्मुख हो, तबभी आपका चिंतवन करता रहूं इस वास्ते हे प्रभो १ विस्तार करके २ अपना योग ३।४ और विभूति५ ६ फिर ७ कहो ८क्योंकि९अमृतरूप १० सि० आपका बचन*सुनने से ११ मेरी १२ तृप्ति १३ नहीं १४ होती है १५. टी० दुष्ट जनों को दुःखदे, वा भक्तजनों को आनन्ददे, वा भक्तजन जिससे मोक्ष याचना करे, उसको जनार्दन कहते हैं, यह नाम श्रीकृष्णचन्दमहा-

राजका है १ सर्वज्ञतादि अचिन्त्यशक्तियोंको योग कहते हैं ५. एश्वर्य को विभूति कहते हैं. जैसे राजा, हाथी घोडे, सेना इत्यादि ऐश्वर्यसे जाना जाताहै. ऐसेही ईश्वर अपने विभूतियोंकरके जाने जाते हैं और जैसे राजाके मंत्रियोंका आश्रय लेनेसे राजा मिलजाताहै, इसीप्रकार परमेश्वर जो आगे विभूति वर्णन करेंगे, उनके आश्रयसे शुद्ध सच्चिदानंद परमेश्वर प्राप्त होजाते हैं. श्रीकृष्णचंद्र इस अध्याय में वासुदेव और रामचन्द्रादि इनको अपनी विभूति कहेंगे इसबात का तात्पर्य अपनी बुद्धि के अनुसार समझना चाहिये ॥ १८ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ हंततेकथयिष्यामिदिव्या ह्यात्मविभूतयः॥प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठनास्त्यंतो विस्तरस्यमे ॥१९॥

श्रीभगवान् उवाच. हन्त १ प्राधन्यतः २ दिव्यः ३ हि ४ आत्मविभूतयः ५ ते ६ कथयिष्यामि ७ कुरुश्रेष्ठ ८ मे ९ विस्तरस्य १० अन्तः ११ न १२ अस्ति १३ ॥ १९ ॥ अ०-सि० जिज्ञासु जब प्रश्न करताहै, पीछे उसके गुरु जिस समय कृपा करके उत्तर देनेको चाहते हैं तो उस प्रश्नके आदरार्थ और जिज्ञासुके प्रसन्नताके लिये ऐसा बोलते हैं कि हन्त ❋ श्रीकृष्णचंद्रमहाराज कहते हैं हन्त अर्थात् हां जो तुमने बूझा यह हमने अङ्गीकार किया अच्छा बूझा है अब उसका उत्तर सुनो १ प्रधान प्रधान २ सि० जो जो ❋ दिव्य ३।४ मेरे विभूति ५ सि० हैं तिनको ❋ तुझसे ६ कहूंगा ७. हे अर्जुन ! ८ मेरी ९ विस्तारका १० अर्थात् मेरे विभूतियोंके विस्तारका १० अन्त नहीं १२ है १३ ॥ १९ ॥

मू०-अहमात्मागुडाकेशसर्वभूताशयस्थितः ॥ अहमादिश्चमध्यंच भूतानामंतएवच ॥२०॥

गुडाकेश १ सर्वभूताशयस्थितः २ आत्मा ३ अहम् ४ भूतानाम् ५ आदिः ६ च ७ मध्यम ८ च ९ अन्तः १० एव ११ च १२ ॥२०॥ अ०-हे गुडाकेश ! सि० गुडाकेश यह जो शब्द है इस शब्दका अर्थ घनकेश भी है अर्थात् गुज्ञान बाल हों जिसके उसको घन-केश कहते हैं, यह नाम अर्जुनका हैं. अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं क ❀ हे अर्जुन ! १ सि० चैतन्य हो, अपनी विभूति सुनाता हूं, प्रथम सबसे श्रेष्ट विभूतिको सुन, सर्व भूतोंके हृदय में विराजमान ५ आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्दरूप ३ मैं ४ सि० हूं, सदा इसीका ध्यान करना चाहिये और जो इसमें मन न लगे और समझमें न आवे तो स्थूलविभूतियोंको सुन ❀ भूतोंका ५ आदि ६ और ७ मध्य ८ और ९ अन्त १० मैं ही ११ । १२ सि० हूँ ❀ तात्पर्य यह समझ कि ये सब भूत मुझसे ही हुए, मुझमें ही स्थित हैं मुझमें ही लय होंगे, तात्पर्य ऐसा चिंतवन करना यही परमेश्वरकी उपासना हैं ॥ २० ॥

मू०—आदित्यानामहंविष्णुर्ज्योतिषांरविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मिनक्षत्राणामहंशशी ॥ २१॥

आदित्यानाम् १विष्णुः २ अहम् ३ ज्योतिषाम् ४ अंशुमान् ५ रविः ६मरुताम् ७ मरीचिः ८ अस्मि ९ नक्षत्राणाम् १० शशी ११ अहम् १२ ॥२१। अ०—आदित्योंमें १ विष्णुनामवाला २ आदित्य मैं ३ सि० हूँ ❀ ज्योतियोंमें ४ किरणवाले ५ श्रीसूर्यनारायण पूर्ण ब्रह्म शुद्धसच्चिदानन्द ६ सि० मैं ❀ हूँ मरुद्गणोंमें ७ मरीचि ८ मैं हूं ९ नक्षत्रोंमें १० चन्द्र ११ मैं १२ सि० हूँ ❀ ॥ २१ ॥

मू०—वेदानांसामवेदोऽस्मिदेवानामस्मिवासवः ॥
इन्द्रियाणांमनश्चास्मिभूतानामस्मिचेतना॥२२॥

वेदानाम् १ सामवेदः २ अस्मि ३ देवानाम् ४वासवः५अस्मि६ इन्द्रियाणाम् ७ मनः ८ च ९ अस्मि १० भूतानाम् ११ चेतना १२ अस्मि १३ ॥२२॥ अ०–वेदोंमें १ सामवेद २ में हूं ३ देवतोंमें ४ इन्द्र ५ मैं हूँ ६ इंद्रियोंमें ७ मन ८।९ मैं हूं १० प्राणियोंमें ११ ज्ञानशक्ति १२ मैं हूँ १३ ॥२२॥

मू०-रुद्राणांशंकरश्चास्मिवित्तेशोयक्षरक्षसाम् ॥
वसूनांपावकश्चास्मिमेरुःशिखरिणामहम् ॥२३॥

रुद्राणाम् १ शंकरः २ च ३ अस्मि ४ यक्षरक्षसाम् ५वित्तेशः ६ वसूनाम् ७ पावकः ८ च ९ अस्मि १० शिखरिणाम् ११ मेरुः १२ अहम् १३ ॥२३॥ अ०–रुद्रोंमें १ श्रीसदाशिवजीमहाराजशंकर भगवान् शुद्धसच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म २ मैं हूं ३ । ४ यक्षराक्षसोंमें ५ कुबेर ६ बसूनमें ७ अग्नि मैं हूँ ८ । ९ । १० शिखरियोंमें ११सुमेरु १२ मैं १३ सि० हूँ ❀ ॥ २३ ॥

मू०-पुरोधसांचमुख्यंमांविद्धिपार्थ बृहस्पतिम् ॥
सेनानीनामहंस्कन्दः सरसामस्मिसागरः॥२४॥

पार्थ १ पुरोधसाम् २ बृहस्पतिम् ३ माम् ४ मुख्यम् ५ विद्धि ६ सेनानीनाम् ७ च ८ स्कन्दः ९ अहम् १० सरसाम् ११ सागरः १२ अस्मि १३ ॥ २४ ॥ अ०–हे अर्जुन ! १पुरोहितोंमें २ बृहस्पति ३ मुझको ४ मुख्य ५तू जान ६ और सेनाके सरदारोंमें ७।८ देवसेनापति स्वामिकार्तिक ९ मैं १० सि हूँ ❀ स्थिर जलोंमें याने तालोंमें ११ समुद्र १२ मैं हूं १३ ॥ २४ ॥

मू०-महर्षीणांभृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानांजपयज्ञोस्मिस्थावराणांहिमालयः ॥२५॥

महर्षीणाम् १ भृगुः २ अहम् ३ गिराम् ४ एकम् ५ अक्षरम् ६ अस्मि ७ यज्ञानाम् ८ जपयज्ञः ९ अस्मि १० स्थावराणाम् ११ हिमालयः १२ ॥ २५ ॥ अ०—महर्षियोंमें १ भृगु २ मैं ३ सि० हूं ❀ वाणीमें ३ अर्थात् जो बोलनेमें आवे उसमें ४ एक ५ अक्षर ६ अर्थात् प्रणव ओम् ६ मैं ७ सि० हूँ ❀ यज्ञोंमें ८ जपयज्ञ ९ मैं १० सि० हूं ❀ स्थावरोंमें ११ हिमालय पर्वत १२ मैं हूं ❀ ॥ २५ ॥

मू०-अश्वत्थःसर्ववृक्षाणांदेवर्षीणांचनारदः॥
गंधर्वाणांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः॥२६॥

सर्ववृक्षाणाम् १ अश्वत्थः २ देवर्षीणाम् ३ च ४ नारदः ५ गंधर्वाणाम् ६ चित्ररथः ७ सिद्धानाम् ८ कपिलः ९ मुनिः १०॥ २६ ॥ अ०—सब वृक्षोंमें १ पीपल २ देवऋषियोंमें ३ नारदजी ४ । ५ गंधर्वोंमें ६ चित्ररथ ७ सिद्धोंमें ८ कपिल मुनि ९ । १० सि० मैं हूं ❀ ॥ २६ ॥

मू०-उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतंगजेन्द्राणां नराणांचनराधिपम् ।२७।

अश्वानाम् १ उच्चैःश्रवसम् २ माम् ३ विद्धि ४ अमृतोद्भवम् ५ गजेन्द्राणाम् ६ ऐरावतम् ७ नराणाम् ८ । ९ नराधिपम् १० ॥२७॥ अ०—घोडोंमें १ उच्चैःश्रवानामवाला घोडा २ मुझको ३ तू जान ४, सि० कैसा है वो घोड़ा कि जब ❀ अमृतके अर्थ समुद्र मथा गया था उस समय समुद्रमेंसे निकला हुआ ५ सि० यह विशेषण उच्चैःश्रवाका भी है और ऐरावतका भी है ❀ हाथियोंमें ६ ऐरावतको ७ सि० मेरी विभूति जान ❀ और नरोंमें ८ । ९ राजाको १० सि० मेरी विभूति तू जान ❀ ॥ २७ ॥

मू०--आयुधानामहंवज्रंधेनूनामस्मिकामधुक् ॥
प्रजनश्चास्मिकंदर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः॥२८॥

आयुधानाम् १ अहम् २ वज्रम् ३ धेनूनाम् ४ कामधुक् ५ अस्मि ६ प्रजनः ७ च ८ कन्दर्पः ९ अस्मि १० सर्पाणाम् ११ वासुकिः १२ अस्मि १३ ॥ २८ ॥ अ०—हथियारों में १ मैं २ वज्र ३ सि० ॥ गौवों में ४ कामधेनु ५ मैं हूँ ६ प्रजा के उत्पत्ति का जो हेतु ७। ८ कामदेव ९ मैं हूँ १० विषवाले सर्पों में ११ वासुकि १२ मैं हूं १३॥२८॥

मू०-अनन्तश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहम् ॥
पितृणामर्यमाचास्मियमःसंयमतामहम् ॥२९॥

नागानाम् १ अनन्तः २ च३ अस्मि४यादसाम् ५ वरुणः ६ अहम् ७ पितृणाम् ८ अर्यमा ९ च १० अस्मि ११ संयमताम् १२ यमः १३ अहम् १४ ॥ २९ ॥ अ०—निर्विषनागोंमें १ शेष जी २।३ मैं हूं ४ जलचरों में ५ वरुण ६ मैं हूं ७ पितरों में ८ अर्यमानाम पितर ९।१० मैं हूँ ११ दंड करने वालों में १२ यमराज १३ मैं १४ सि० हूँ ॥ २९ ॥

मू-०प्रह्लादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहम् ॥
मृगाणांचमृगेंद्रोंहं वैनतेयश्चपक्षिणाम् ॥३०॥

दैत्यानाम् १ प्रह्लादः २ च ३ अस्मि ४ कलयताम् ५ कालः ६ अहम् ७ मृगाणाम् ८ च ९ मृगेन्द्रः १० अहम् ११ पक्षिणाम् १२ वैनतेयः १३ च १४ ॥३०॥ अ०—दैत्यों में १ प्रह्लाद २। ३ मैं हूं ४ संख्यावाले पदार्थों में ५ काल ६ मैं ७ सि० हूं ॥ चौपायों में ८।९ सिंह १० में ११ सिं०हूँ पक्षियों में १२ गरुडजी १३ । १४ सि० मैं हूं ॥ ३० ॥

मू०—पवनःपवतामस्मि रामःशस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणांमकरश्चास्मिस्रोतसामस्मिजाह्नवी ३१

पवताम् १ पवनः २ अस्मि ३ शस्त्रभृताम् ४ रामः५अहम् ६ झषाणाम् ७ मकरः ८ च ९ अस्मि १० स्रोतसाम् ११ जाह्नवी १२ अस्मि १३ ॥ ३१ ॥ अ०—वेगवालों में १ वायु २ मैं हूं ३. शस्त्र-धारियों में ४ श्रीरामचन्द्रजीमहाराज शुद्धसच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म५मैं ६ सि० हूं ❀ मछलियोंमें ७ मकर नामवाली मच्छी ८ मैं हूं ९। १० बहानेवाले जलों में ११श्रीगंगाभागीरथी १२ मैं हूं॥१३॥३१॥

मू०—सर्गाणामादिरंतश्चमध्यंचैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहम् ॥३२॥

अर्जुन १ सर्गाणाम् २ आदिः ३ मध्यम् ४ च ५ अंतः ६ अहम् ७ विद्यानाम् ८ अध्यात्मविद्या ९ प्रवदताम् १० वादः ११ अहम् १२ ॥ ३२ । अ०—हे अर्जुन ! १ जगत् का २ आदि ३ मध्य और अन्त ४ । ५।६। मैं ७ सि० हूं ❀ विद्या के बीच में ८ आत्मविद्या(वेदान्तशास्त्र) ९ सि० वेदान्तशास्त्र में केवल आत्मा के बन्ध मोक्षका विचार है, इसी वास्ते इसको अध्यात्मविद्या कहते हैं, मोक्ष शास्त्र यही है, विना शास्त्र के पढे सुने आत्मानात्मका ज्ञान कभी नहीं होता, अज्ञान संशय विपर्यय इसी शास्त्र के पढने सुनने से नाश होते हैं, इस शास्त्र का सेवन करना साक्षात् भगवत का प्रत्यक्ष सेवन करना है ❀ चर्चा करने वालों में १० वाद ११ मैं १२ सि० हूं टी० चर्चा तीन प्रकार की है जल्प, वितंडा और वाद, जो केवल अपने ही पक्ष में श्रुत्यादिकोंका प्रमाण देकर युक्तियोंके सहित अपने ही पक्ष को सिद्ध करता जाय,दूसरे पक्षपर

दृष्टि न दे, उसको जल्प कहते हैं और जो दूसरे के पक्षमें दोषही कहता चला जाय, अपने पक्षके दोषोंका स्मरण न करे, उसको वितंडा कहते हैं और जो अपने और दूसरे पक्षको शंकाप्रमाणोंके साथ प्रतिपादन करे, गुरु शिष्यको बोधके लिये, उसको वाद कहते हैं, वाद परमार्थ निर्णयके लिये होता है उसका फल परमानन्दहै, जल्पवितंडा वाक्यवादहैं, उनका फल दुःख है, जिसका पक्ष चर्चामें दब जायगा, बेसन्देह वो दुःख पावेगा और जिसने विद्याके बलसे झूठी बातको सिद्धकिया, वो बेसन्देह पाप का भागी होकर परलोकमें दुःख पावेगा न्यायशास्त्रादिविद्या अन्य पदार्थ है और परमार्थका यथार्थ निर्णय अन्यपदार्थ है. क्या हुआ जो किसीने अनजानके सामने अपना झूंठापक्ष सिद्ध करदिया किसी दिन विद्वानोंके सामने दबजायगा. चर्चाका सार सत्यार्थ है ॥ ३२ ॥

मू०–अक्षराणामकारोस्मिद्वंद्वःसामासिकस्यच॥
अहमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ॥३३॥

अक्षराणाम् १ अकारः २ अस्मि ३ समासिकस्य ४ द्वन्द्वः ५ च ६ अहम् ७ एव ८ अक्षयः ९ काल १० धाता ११विश्वतोमुखः १२ अहम् १३ ॥ ३३ ॥ अ० अक्षरोंमें १ अकार २ मैं हूं ३ समासोंमें ४ द्वन्द्वसमास ५ मैं ही हूँ ६।७।८ अक्षय ९ काल १० सि० भी मैं हूँ. पीछे काल वो कहाथा कि जो संख्यामें आताहैं पल, घडी, दिन,रात्रि, वर्ष और युगादिको क्षयकाल कहते हैं. यहां अक्षय यह कालका विशेषण है. अथवा परमेश्वरका नाम कालका भी काल है ❀ कर्मफल विधाता ११ विराट् १२ मैं १३ सि० हूं ❀ ॥३३॥

मू०–मृत्युःसर्वहरश्चहमुद्भवश्चभविष्यताम् ॥
कीर्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा३४

मृत्युः १ सर्वहरः २ च ३ अहम् ४ भविष्यताम् ५ उद्भवः ६ च ७ नारीणाम् ८ कीर्तिः ९ श्रीः १० वाक् ११ च १२ स्मृतिः १३ मेधा १४ धृतिः १५ क्षमा १६॥३४॥ अ०—मृत्यु १ सबका हरनेवाला २ मैं ३ । ४ सि० हूँ ❀ होने वाले पदार्थोंमें ५ अर्थात् बढ़ाई होनेके योग्य जो पदार्थ हैं, उनमें मोक्षके प्राप्तिका हेतु उद्भव, उत्कर्ष अभ्युदयभी ६ । ७ सि० मैं हूँ ❀ स्त्रियोंमें ८ कीर्ति अर्थात् महात्मा पुरुषों में शम दम औदार्य दानादिगुणोंकी ख्याति होना वा कीर्ति ९ सि० भगवत् की विभूति है ❀ लक्ष्मी कांति वा शोभा १० मधुरवाणी ११ । १२ बहुत दिनोंकी बात याद रहना १३ ग्रन्थधारणाशक्ति १४ क्षुत्पिपासादि समयमें चित्तमें क्षोभ न होना १५ अपमानादि समय में क्षोभ न होना, १६ सि० ये सब परमेश्वरकी विभूति हैं, जिनके आभासमात्रसम्बन्धसे स्त्री पुरुष श्रेष्ठ कहलाते हैं ❀ ।३४॥

मू०-बृहत्सामतथासाम्नांगायत्रीछन्दसामहम् ॥
मासानांमार्गशीर्षोहमृतूनांकुसुमाकरः ॥३५॥

साम्नाम् १ तथा २ बृहत्साम ३ छन्दसाम् ४ गायत्री ५ अहम् ६ मासानाम्७मार्गशीर्षः८अहम्९ऋतूनाम्१०कुसुमाकरः ११॥३५॥ अ०–उ० वेदोंमें सामवेद मैं हूँ, यह श्रीभगवान्ने पीछे कहा,अब कहते हैं कि सामवेदमें १ भी २ बृहत्सामऋचा ३ सि०मैं हूं ❀ छन्दों में ४ गायत्री ५ मैं ६ सि० हूं ❀ महीनोंमें ७ अगहन (मार्गशीर्ष) ८ ९ सि० हूं ❀ ऋतुमें १० वसन्तऋतु ११ सि० मैं हूं ❀ मीन और मेषका सूर्य जब तक वर्तता है, इन्हीं दोनों महीनों को बसन्त कहते हैं, इसी ऋतुमें यह टीका बनी है ॥ ३५ ॥

मू०-द्यूतंछलयतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम् ॥
जयोऽस्मिव्यवसायोऽस्मिसत्त्वंसत्त्ववतामहम् ३६॥

छलयताम् १ द्यूतम् २ अस्मि ३ तेजस्विनाम् ४ तेजः ५ अहम् ६ जयः ७ अस्मि ८ व्यवसायः ९ अस्मि १० सत्त्ववताम् ११ सत्त्वम् १२ अहम् १३ ॥ ३६ ॥ अ०-छलकरनेवालोंमें १ जुवां २ मैं हूँ ३ तेजस्वी पुरुषोंमें ४ तेज ५ मैं ६ सि० हं. जीतनेवालोमें ❀ जय ७ मैं हूं ८ सि० निश्चय करनेवालोंमें ❀ आत्मनिश्चय ९ मैं हूँ १० सत्त्वगुणी पुरुषोंमें ११ सत्त्वगुण १२ मैं हूं १३ टी० छलिया लोगोंके लिये जुवां अपनी विभूति परमेश्वरने कही है १।२ ॥३६॥

मू०-वृष्णीनांवासुदेवोऽस्मिपांडवानांधनंजयः ॥
मुनीनामप्यहंव्यासःकवीनामुशनाकविः ॥३७॥

वृष्णीनाम् १ वासुदेवः २ अस्मि ३ पांडवानाम् ४ धनंजयः ५ मुनीनाम् ६ अपि ७ अहम् ८ व्यासः ९ कवीनाम् १० उशना ११ कविः १२ ॥ ३७ ॥ अ०-वृष्णियोंमें १ वासुदेव २ मैं हूं ३ अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज शुद्धसच्चिदानन्दपूर्णब्रह्म वसुदेवजीके मूर्तिमान् पुत्र, कि जो अर्जुनको उपदेश करते हैं यही वासुदेव हैं ३ पांडवनमें ४ अर्जुन ५ सि० जिसको भगवान् उपदेश करते हैं ❀ मुनीश्वरोंमें ६।७ मैं ८ श्रीवेदव्यासजी ९ सि० हूं ❀ कविपुरुषोंमें १० शुक्राचार्य ११ कवि १२ सि० मैं हूं ❀ ॥ ३७ ॥

मू०-दंडोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीषताम् ॥
मौनंचैवास्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहम् ॥३८॥

दमयताम् १ दंड, २ अस्मि ३ जिगीषताम् ४ नीतिः ५ अस्मि ६ गुह्यानाम् ७ मौनम् ८ च ९ एव १० अस्मि ११ ज्ञानवताम् १२ ज्ञानम् १३ अहम् १४ ॥ ३८ ॥ अ०-निरोधकरनेवालों में १ दंड २ मैं हूं ३ जीतनेकी इच्छा जिनको है उनमें ४ नीति ५ मैं हूँ

गुप्तपदार्थोंमें ७ चुपरहना ८। ६। १० मैं हूँ ११ ज्ञानवालोंमें १२ ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) १३ मैं १४ सि० हूं ॐतात्पर्य दूसरेका स्वरूप और ऐश्वर्य जाननेसे किसीको क्या मिलना है अपना स्वरूप और अपना ऐश्वर्य जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

मू०—यच्चापिसर्वभूतानांबीजंतदहमर्जुन ॥
नतदस्तिविनायत्स्यान्मयाभूतंचराचरम् ॥३९॥

सर्वभूतानाम् १ यत् २ च ३ अपि ४ बीजम् ५ तत्६अहम्७ अर्जुन ८चराचरम् ९भूतम् १०मया ११बिना १२ यत् १३ स्यात्१४ तत् १५ न १६ अस्ति १७ ॥ ३९ ॥ अ०—सब भूतोंका १ जो २।३।४ बीज ५ सो ६ मैं ७ सि० हूँ ॐ हे अर्जुन ! ८ चराचर ९ सत्तामात्र १० मेरे ११ विना १२ जो १३ हो १४ सो १५ नहीं १६ है १७ तात्पर्य ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, जिसमें सत् चित और आनन्द ये तीन अंश भगवान्के नहीं ॥ ३९ ॥

मू०—नांतोस्तिममदिव्यानांविभूतीनांपरंतप ॥
एषतूद्देशतःप्रोक्तोविभूतेर्विस्तरोमया ॥ ४० ॥

परंतप १ मम २ दिव्यानाम् ३ विभूतीनाम् ४ अन्तः ५ न ६ अस्ति ७ एषः ८ तु ९ विभूतेः १० विस्तरः ११ उद्देशतः १२ मया १३ प्रोक्तः १४ । ४० । अ०—हे अर्जुन ! १ मेरे २ दिव्य ३ विभूतियोंका ४ अन्त ५ नहीं ६ है ७ सि० और जो वर्णन किया ॐ यह ८ तो ९ विभूतियोंका १० विस्तार ११ संक्षेपसे १२ मैंने १३ कहा है १४ ॥ ४० ॥

मू०—यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वंश्रीमदूर्जितमेववा ॥
तत्तदेवावगच्छत्वंममतेजोंशसंभवम् ॥ ४१ ॥

यत् १ यत् २ सत्त्वम् ३विभूतिमत् ४श्रीमत् ५ वा ६ ऊर्जितम् ७ एव ८ तत् ९तत् १० एव ११ मम१२ तेजों शसंभवम् १३ त्वम् १४ अवगच्छ १५ ॥ ४१। अ०-उ० जो तू मेरे ऐश्वर्यका विस्तार जानना चाहता है तो इसप्रकार जान जो १ जो २ पदार्थ ३ ऐश्वर्यवान् ४ श्रीमान् ५ वा ६ सि० किसी ७ अन्यगुणकरके ❀श्रेष्ठ ही ८ सि० कहलाता है❀तिस ९तिसको १०ही ११ मेरे १२तेजके अंशसे उत्पन्न हुआ १३ तू १४ जान १५ तात्पर्य संसारमें जो जो पदार्थ श्रेष्ठ हैं वे वे सब भगवत्की विभूति हैं जो जिस गुणकरके श्रेष्ठ समझा जाता है वो गुण भगवत्काही अंश है। " आनन्दो ब्रह्म " इस श्रुतिसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आनन्द ब्रह्म है, तो फिर जो जो पदार्थ विशेष आनन्दजनक हैं सो भगवत् की विभूति हैं। ४१ ॥

मू०-अथवाबहुनैतेनकिंज्ञातेनतवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनास्थितोजगत ।४२॥

अर्जुन १ अथवा २ एतेन ३ बहुना ४ ज्ञातेन ५ तव ६ किम् ७ अहम् ८ इदम् ९ कृत्स्नम् १०जगत् ११ एकांशेन १२ विष्टभ्य १३ स्थितः १४ ॥ ४२ ॥ अ०-हे अर्जुन ! १ अथवा २ इस ३ बहुत ४ सि० पृथक् पृथक् ❀ ज्ञानकरके ५ तुमको ६ क्या ७ सि० काम है ऐसे समझ कि ❀ मैं ८ इस ९ समस्त १० जगत् को ११ एक अंशसे १२ धारणकरके १३ स्थित हूँ १४ तात्पर्य यह कि, सब जगत्के एक अंशमें कल्पित है; भगवत्से जुदा नहीं, जगत् में जो आनन्द प्रतीत होता है, यही प्रभुका अंश है अंशोका ज्ञान जल्द होता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः११.

मू०-अर्जुनउवाच ॥ मदनुग्रहायपरमंगुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्॥यत्त्वयोक्तंवचस्तेनमोहोयं विगतोमम॥१॥

अर्जुन उवाच-मदनुग्रहाय १ परमम् २ गुह्यम् ३ अध्यात्मसंज्ञितम् ४ यत् ५ वचः ६ त्वया ७ उक्तम् ८ तेन ९ अयम् १० मम ११ मोहः १२ विगतः १३ ॥ १ ॥ अ०-उ० पिछले अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि यह जगत् समस्त मेरे एक अंशमें कल्पित है यह सुन अर्जुनको इच्छा हुई कि, विश्वरूप श्रीभगवान्को देखना चाहिये इसवास्ते अर्जुन श्रीभगवान्की स्तुति करता हुआ बोलताहै चार मंत्रोंमें मेरेपर अनुग्रह करनेके वास्ते १ अर्थात् मेरा शोक दूर करनेके लिये २ परमार्थनिष्ठावाला ३ गुप्त ४ आत्मा और अनात्मा इनका ज्ञान हो जिससे ५ सि० ऐसा ❀ जो ६ वचन ७ आपने ८ कहा९ तिसवचनकरके १०यह ११ मेरा १२ मोह १३गया १४ अर्थात् इन (भीष्मादि) को मैं मारता हूं, ये मारे जाते हैं, इस प्रकार जो शुद्ध निर्विकार आत्मा को कर्ता कर्म समझना था यह मेरी भ्रांति आपकी कृपासे से दूर हुई ११। १२।१३ तात्पर्य मेंने जाना कि आत्मा शुद्धसच्चिदानन्द निर्विकार है. कर्ता कर्म इत्यादि सब भ्रान्तिसे प्रतीत होता है जैसे शुक्तिमें रजत. रज्जु में सर्प.आकाशमें नीलता, नावमें बैठे हुए को मन्दिरोंका चलना प्रतीत होता है,इसीप्रकार आत्मा विकारवान् प्रतीत होता है वास्तव आत्मा निर्विकार है यह मैं समझा ॥ १ ॥

मू०-भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया ॥ त्वत्तःकमलपत्राक्षमाहात्म्यमपिचाव्ययम्॥२॥

कमलपत्राक्ष १ त्वत्तः २ मया ३ विस्तरशः ४ भूतानाम् ५ भवाप्ययौ ६ हि ७ श्रुतौ ८ महात्म्यम् ९ च १० अपि ११ अव्ययम् १२ ॥२॥ अ०–हे भगवन् ! १ आपसे २ मैंने ३ विस्तारपूर्वक ४ भूतोंकी ५ उत्पत्ति और लय ६ । ७ सि० इन दोनोंको ❀ सुना ८ अर्थात् सब भूतोंकी उत्पत्ति आपसे ही है और सब भूत तुह्मारे ही स्वरूपमें लय होजाते हैं, यह भीं मैंने सुना और समझा ८ और माहात्म्य ९ । १० भी ११ सि० आपका ❀ अक्षय १२ सि० सुना ❀ तात्पर्य आप जगत्को रचते भी हो, पालन संहार भी करते हो, शुभाशुभ कर्मोंका फलभी देते हो, बन्ध मोक्ष सब आपके अधीन हैं जैसी भक्तों की इच्छा होती है, उनके वास्ते वैसेही नानारूप धारण करतेहो वैसेही चरित्र करते हो, ऐसे विषमव्यवहारमें भी आप सदा अकर्ता, निर्विकार, निर्लेप, उदासीन ऐसे रहते हो, यह आपका माहात्म्य है, करने को न करने को और औरका और करनेको जो समर्थ उसीको ईश्वर कहते हैं, ऐसे आपही हैं, आपके कृपासे मैंने अब आपका माहात्म्य सुनकर आपको जाना ॥ २ ॥

मू०-एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानंपरमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामितरूपमैश्वरंपुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

परमेश्वर १ यथा २ आत्मानम् ३ आत्थ ४ त्वम् ५ एतत् ६ एवम् ७ पुरुषोत्तम ८ ते ९ ऐश्वरम् १० रूपम् ११ द्रष्टुम् १२ इच्छामि १३ ॥ ३ ॥ अ०–हे परमेश्वर ! १ जैसा २ आत्माको ३ कहतेहो ४ आप ५ यह ६ इसी प्रकार है ७ अर्थात् बेसन्देह आप अचिंत्यशक्तिमान् हैं ७ हे प्रभो ! ८ आपके ९ ऐश्वररूपके १० । ११ देखनेकी १२ इच्छा करता हूँ १३ अर्थात् आपका ऐश्वर्य और विश्वरूप देखा चाहता हूँ, याने ज्ञान, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, शक्ति,

तेज इनकरके युक्त और आपका रूप देखना चाहता हूँ १३.तात्पर्य-परमार्थदृष्टिमें आप निराकार पूर्ण हैं. इसी स्वरूपको मूर्तिमान् देखना चाहता हूँ. यद्यपि यह बात असम्भावित है, परन्तु आप समर्थ हो, दिखसक्ते हो ॥ ३ ॥

मू०-मन्यसेयदितच्छक्यंमयाद्रष्टुमितिप्रभो॥ योगेश्वरततोमेत्वंदर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

प्रभो १ योगेश्वर २ यदि ३ मया ४ तत् ५ द्रष्टुम् ६ शक्यम् ७ मन्यसे ८ ततः ९ मे १० त्वम् ११ अव्ययम् १२ आत्मानम् १३ दर्शय १४ इति १५॥४॥ अ०-उ० यदि आपकी दृष्टि से उसरूपके देखने को मैं अधिकारी हूँ तो दिखाइये, हे समर्थ! १ हे योगेश्वर! २ यदि ३ मुझकरके ४ सोरूप ५ देखनेको ६ शक्य ७ सि० है. ऐसा आप ❀ समझते हो ८ अर्थात् उस रूपको मैं इन नेत्रों करके देखसकूंगा ८, तो ९ मुझे १० आप ११ निर्विकार १२ आत्मा को १३ दिखाइये, १४ यह १५ सि० मेरा तात्पर्य है ❀ ॥ ४ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच॥पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोथसहस्रशः॥नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिच॥५॥

श्रीभगवान् उवाच-पार्थ १ शतशः २ अथ ३ सहस्रशः ४ दिव्यानि ५ मे ६ रूपाणि ७ पश्य ८ नाना ९ विधानि १० च ११ नाना १२ वर्णाकृतीनि १३ ॥ ५ ॥ अ०-श्रीभगवान् बोलते हैं, हे अर्जुन! १ सैकडों हजारों२।३।४दिव्य५मेरे६रूपोंको ७ देख ८ नाना प्रकारके ९ भेद हैं जिसमें १० और ११ नानाप्रकारके १२ वर्ण नीलपीतादि और आकृति हैं जिसमें १३ सि० ऐसा रूप देख वो विश्वरूप एकही था परंतु नाना प्रकारके जो उसमें भेद थे इस वास्ते श्लोक में रूपका बहुवचन है रूपाणि इति ❀ ॥ ५ ॥

०-पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौमरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणिभारत ॥ ६ ॥

भारत १ आदित्यान् २ वसून ३ रुद्रान् ४ अश्विनौ५मरुतः६ ७ तथा ८ बहूनि ६ अदृष्टपूर्वाणि १० आश्चर्याणि ११ पश्य ॥६॥अ० हेअर्जुन !१ बारह सूर्योंको २ आठवसुओंको ३ ग्यारुद्रोंको ४ दोनों अश्विनीकुमारोंको ५ उंचास मरुतगणोंको ६ देख और ८ बहुत ६ सि० पदार्थ जो तुमने और औरोंने पहले कभी नहीं देखे हैं १० सि० ऐसे ❀ आश्चर्यरूपोंको ११ देख १२सि० में देखता हूं ❀ ॥ ६ ॥

०-इहैकस्थंजगत्कृत्स्नंपश्याद्यसचराचरम् ॥
ममदेहेगुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

गुडाकेश १ इह २ एकस्थम् ३ अद्य ४ मम ५देहे६सचराचरम् कृत्स्नम् ८ जगत् ६ पश्य १० यत् ११ च १२ अन्यत् १३ द्रष्टुम् इच्छसि १५ ॥ ७ ॥ अ०-उ० समस्त भूत भविष्यत् वर्तमान कालकी व्यवस्था तुझको दिखाता हूं जो असंख्यात जन्मोंमें तू या और कोई नहीं देखसक्ता वो सब तनकदेरमें दिखाता हूं हे अर्जुन! इसी जगह २ मुझ एकमें स्थित३अभी४मेरे५देहमें६स्थावरजंगम संपूर्ण८जगतको ६ अर्थात् कार्यकारणके सहित समस्तजगत्को६देख १०और जो११।१२ अन्य पदार्थोंका देखनेकी१३।१४तू इच्छा करता १५अर्थात् इस जगत्का आश्रय क्याहै,कैसे उत्पन्न हुआहै कैसीइसकी स्थिति है. कैसा लय होताहै, उपादान इसका क्या है, कैसा कैसा यह रूप बदलता है, इस लड़ाईमें किसीकी जीत होगी. हे अर्जुन ! जो तेरी इच्छा हो, सब देख. जो मैं अपने इच्छासे दिखाता हूं सो

देख और जो तेरी इच्छा हो सो भीं देख ले. ऐसा समय मिलना कठिन हैं १४. टी० गुडा नाम निद्राका है निद्रा अर्जुनके वशमें थी, इस हेतुसे गुडाकेश अर्जुनका नाम है ॥ ७ ॥

मु०-नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा ॥
दिव्यँददामितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥८॥

अनेन १स्वचक्षुषा २ माम् ३ एव ४ द्रष्टुम् ५न ६ शक्यसे ७ ते ८ तु ९दिव्यम् १० चक्षुः ११ददामि १२ मे १३ योगम् १४ऐश्वरम् १५ पश्य १६ ॥ ८ ॥ अ०-उ० अर्जुनने कहा था कि वो रूप मैं देख सक्ता हूं या नहीं ? श्रीभगवान् कहते हैं कि इन नेत्रोंसे तो तू नहीं देखसकेगा, दिव्यचक्षु मैं देता हूं तिनकरके देखेगा, इन अपने नेत्रों करके १।२ तू मुझको ३ बेसन्देह ४ देखनेकी ५ नहीं ६ समर्थ है ७ परन्तु तुझको ८। ९ दिव्यचक्षु १०। ११ देता हूं १२ मेरे १३ योगको १४ सि० और * ऐश्वर्यको १५ देख १६ टी० किसी लोकमें जो देखने सुननेमें न आवे उसको दिव्य या अलौकिक कहते हैं १० जो वात संभव न हो वो बात समझमें आजावे जिस करके उसको योग कहते हैं १४ जीवसे जो बात न होसके ईश्वर हीमें वो बात पावे और जिसकरके जीवसे जुदा ईश्वर पहिचाना जावे उसको ऐश्वर्य कहते हैं कि जिसको ईश्वरका असाधारण लक्षणभी कहतेहैं ईश्वरका एक साधारण औरएक असाधारण लक्षणहै. साधारण वोकि जो ईश्वरमें भी पावे जैसे कंसादिका मारना, गोवर्धनका उठाना बहुरूप हो जाना, इत्यादिकर्म तो जीवभी करसक्ताहै, रावणादिकी कथा कैलासका उठालेना इत्यादि बहुत प्रसिद्धहैं परंतु विश्वरूप जीव नहीं दिखा सक्ता, यह ईश्वर का असाधारण लक्षण है १५ ॥ ८ ॥

मू०-संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्महायोगेश्वरोहरिः॥दर्शयामासपार्थायपरमंरूपमैश्वरम् ॥९॥

संजय उवाच-राजन्! १ महायोगेश्वरः २ हरिः ३ एवम् ४ उक्त्वा ५ ततः ६ पार्थाय ७ परम् ८ ऐश्वरम् ९ रूपम् १० दर्शयामास ११ ॥ ९ ॥ अ०-उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है, हे राजन्! १ महायोगेश्वर २ कृष्णचन्द्र ३ इसप्रकार ४ सि० पूर्वोक्त ❀ कहकर ५ फिर ६ अर्जुनको ७ परम ८ ऐश्वर्य ९ रूप १० दिखाते भये ११ टी०श्रीभगवान्ने परम ऐसा अद्भुतरूप अर्जुनको दिखाया ८।९॥९॥

मू०-अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥ अनेकदिव्याभरणंदिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

अनेकवक्त्रनयनम् १ अनेकाद्भुतदर्शनम् २ अनेकदिव्याभरणम् ३ दिव्यानेकोद्यतायुधम् ४ ॥ १० ॥ अ०-उ० उस विश्वरूपके ये विशेषण हैं, अनेक मुख और नेत्र हैं जिसमें १ अनेक अद्भुत आश्चर्य करनेवाले दर्शन हैं जिसमें२ अनेक दिव्य गहने हैं जिसमें ३ दिव्य शस्त्र उठाये हुए हैं जिसमें ४ तात्पर्य ऐसा. रूप श्रीमहाराजका था कि, जो अर्जुनने देखा ॥ १० ॥

मू०-दिव्यमाल्यांबरधरंदिव्यगंधानुलेपनम् ॥ सर्वाश्चर्यमयंदेवमनंतंविश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

दिव्यमाल्यांबरधरम् १ दिव्यगंधानुलेपनम् २ सर्वाश्चर्यमयम् ३ देवम् ४ अनन्तम् ५ विश्वतोमुखम् ६ ॥ ११ ॥ अ०-दिव्य माल्य और वस्त्र धारण कररक्खे हैं जिसने १दिव्यगन्धका लेपन है जिसका २ सब आश्चर्यरूप है ३ प्रकाशरूप ४ नहीं है अन्तजिसका ५ सब तर्फ हैं मुख जिसमें ६ ॥ ११ ॥

मू०–दिविसूर्यसहस्रस्तभवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदिभाःसदृशीसास्याद्भासस्यस्यमहात्मनः॥१२

यदि १ दिवि २ सूर्यसहस्रस्य ३ भाः ४ युगपत् ५ उत्थिता ६ भवेत् ७ तस्य ८ महात्मनः ९ भासः १० सा ११ सदृशी १२ स्यात् १३ ॥ १२ ॥ अ० उ० उस विश्वरूप का प्रकाश ऐसा था जो १ आकाश में २ हजार सूर्योंकी ३ प्रभा४ एकबारही५उदित ६ हो ७ सि० तो ❀ तिस महात्माके ८। ९ प्रभाके १० सो ११ सि० प्रभा ❀ बरावर १२ हो १३ सि० न हो, यह अभिप्राय है क्यों कि यह अनुपमरूप है ❀ ॥ १२ ॥

मू०–तत्रैकस्थंजगत्कृत्स्नंप्रविभक्तमनेकधा ॥
अपश्यद्देवदेवस्यशरीरेपाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥

तत्र १ एकस्थम् २ अनेकधा ३ प्रविभक्तम् ४कृत्स्नम् ५ जगत् ६ तदा ७ पांडवः ८ देवदेवस्य ९ शरीरे १० अपश्यत् ११ ॥१३॥ अ०–तिसविश्वरूपमें १एकके ही विषय स्थित २ अनेक प्रकारका ३ जुदा जुदा ४ समस्त ५ जगत्को ६ तिसकालमें ७ अर्जुन ८ देवतोंके भी जो देवता उन देवदेवके ९ शरीरमें १० देखता भया११ टी० पितर मनुष्य गन्धर्वादिको ३ । ४ जगतमें जितने पदार्थ हैं, अर्जुनको सब भगवत्के शरीरमें दीखते थे ५ । ६ इत्यभिप्रायः॥१३॥

मू०–ततःसविस्मयाविष्टोहृष्टरोमाधनंजयः ॥
प्रणम्यशिरसादेवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥

ततः १ सः २ धनंजयः ३ विस्मयाविष्टः ४ हृष्टरोमा ५ कृतांजलिः ६ देवम् ७ शिरसा ८ प्रणम्य ९ अभाषत १० ॥ १४ ॥

अ०-उ० जब अर्जुनने ऐसा स्वरूप देखा पीछे उसके १ सो २ अर्जुन ३ आश्चर्य करके युक्तहुआ ४ अर्थात आश्चर्य मानता हुआ ४. रोमावली प्रफुल्लित होगई हैं जिसकी ५ की है अंजलि जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोड़कर ६ सि० उसी * देव को ७ शिरसे ८ प्रणाम करके ९ अर्थात् शिर झुकाकर नमस्कार करके ९. बोलताभया १० अर्थात् यह बोला कि जो आगे सत्रह श्लोक में कहना है १० ॥ १४ ॥

मू०-अर्जुनउवाच ॥ पश्यामिदेवांस्तवदेवदेहेसर्वांस्तथाभूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणमीशंकमलासनस्थमृषींश्चसर्वानुरगांश्चदिव्यान् ॥ १५ ॥

अर्जुन उवाच-देव १ तव २ देहे ३ सर्वान् ४ देवान् ५ तथा ६ भूतविशेषसंघान् ७ कमलासनस्थम् ८ ईशम् ९ ब्रह्माणम् १० ११ सर्वान् १२ ऋषीन् १३ दिव्यान् १४ उरगान् १५ च १६ पश्यामि १७ ॥१५॥ अ०-उ० जैसा विश्वरूप अर्जुनके देखने में आया, उसको अर्जुन कहता है सत्रहश्लोकमें. हे देव ! १ आपके २ शरीरमें ३ सबदेवतोंको ४ । ५ और भूतों के विशेषसमुदायों-को ६ । ७ अर्थात् राजादिकोंको ६ । ७ कमलके आसनपर बैठे हुए देवतोंके स्वामी जो ब्रह्माजी उनको ८ । ९ । १० और सब १२ सि० वसिष्ठादि * ऋषियोंको १३ दिव्य १४ सि० तक्षकादि * नागों को १५ भी १६ मैं देखता हूँ १७ टी० आपके नाभिमें जो कमल उसपर ब्रह्माजीको विराजमान देखता ८ । १० ॥ १५ ॥

मू०-अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रंपश्यामित्वांसर्वतोनंतरूपम् । नांतंनमध्यंनपुनस्तवादिंपश्यामिविश्वेश्वरविश्वरूप॥१६॥

विश्वेश्वर १ विश्वरूप २ तव ३ न ४ आदिम् ५ पुनः ६ न ७ मध्यम् ८ न ९ अन्तम् १० पश्यामि ११ सर्वतः १२ अनन्तरूपम् १३ त्वाम् १४ अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् १५ पश्यामि १६ ॥ १६ ॥ अ०–हे विश्वके ईश्वर! १ हे विश्वरूप! २ आपका ३ न ४ आदि ५ और ६ न ७ मध्य ८ न ९ अंत १० देखता हूं ११ सब तर्फसे १२ अनन्तरूपवाला १३ आपको १४ अनेक हाथ पेट मुख और नेत्र हैं जिनके १५ सि० ऐसा आपको ❀ देखता हूं १६ ॥ १६ ॥

मू०-किरीटिनंगदिनंचक्रिणंचतेजोराशिं सर्वतोदीप्तिमंतम् ॥ पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यंसमंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

त्वाम् १ समंतात् २ किरीटिनम् ३ गदिनम् ४ चक्रिणम्५ च६ तेजोराशिम् ७ सर्वतः ८ दीप्तिमन्तम् ९ दुर्निरीक्ष्यम् १० दीप्तानलार्कद्युतिम् ११ अप्रमेयम् १२ पश्यामि १३ ॥ १७ ॥ अ०–आपको १ सबतर्फसे २ मुकुटवाला ३ गदावाला ४ चक्रवाला ५ और ६ तेजका पुञ्ज ७ सबतरफसे ८ दीप्तमान् ९ दुःखकरके देखा जाता है १० अर्थात् उसका देखना बहुत कठिन प्रतीत होता है १० चैतन्य ऐसे अग्नि और सूर्यके प्रभावत् प्रभा है उसकी ११ प्रमाण नहीं होसक्ता उसका कि इस स्वरूपकी इतनी चौडाई लम्बाई है सि० ऐसा आपको ❀ देखता हूं १३ पश्यामि यह क्रिया सबके साथ लगती है, जितने त्वां इस एक अंगवाले पदके विशेषण हैं उनके ॥ १७ ॥

मू०-त्वमक्षरंपरमंवेदितव्यंत्वमस्यविश्वस्यपरंनिधानम् ॥ त्वमव्ययःशाश्वतधर्मगोप्तासनातनस्त्वंपुरुषोमतोमे

त्वम् १ परमम् २ अक्षरम् ३ वेदितव्यम् ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य ७ परम् ८ निधानम् ९ त्वम् १० अव्ययः ११ शाश्वतधर्मगोप्ता १२ सनातनः १३ पुरुषः १४ त्वम् १५ मे १६ मतः १७ ॥ १८ ॥ अ०-उ० आपकी यह योगशक्ति देखनेसे तो मैं अब यह अनुमान करता हूं कि, आप १ परम् २ ब्रह्म ३ सि० हो, मुमुक्षुकरके ❀ जानने के योग्य ४ आप ५ सि० ही हो ❀ इस विश्वका ७ पर ८ आश्रय ९ सि० भी आपही हो और ❀ आप १० नित्यधर्मके ११ नित्य पालन करनेवाले १२ सनातन पुरुष १३।१४ आप १५ सि० ही हो ❀ मेरे १६ समझसे १७ सि० वेदभी ऐसाही प्रतिपादन करते हैं ❀ ॥ १८ ॥

मू०-अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुंशशिसूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामित्वांदीप्तहुताशवक्त्रंस्वतेजसा विश्वमिदंतपंतम् ॥१९॥

त्वाम् १ पश्यामि २ अनादिमध्यान्तम् ३ अनन्तवीर्यम् ४ अनंतबाहुम् ५ शशिसूर्यनेत्रम् ६ दीप्तहुताशवक्त्रम् ७ स्वतेजसा ८ इदम् ९ विश्वम् १० तपन्तम् ११ ॥१९॥ अ०-उ० आपको १ सि० ऐसा❀देखताहूँ मैं २ सि० कि जिसके विशेषण ये हैं❀नहीं है आदि मध्य अंत जिसका ३ अनंत पराक्रम हैं जिसके ४ अनंत भुजा हैं जिसकी ५ चन्द्रसूर्यनेत्र हैं जिसके ६ जलती हुई याने लपट उठती हुई अग्नि मुखमें है जिसके ७ अपने तेज करके ८ इस विश्व को ९।१० तपाते हुए ११ सि० मुझको दीखते हो ❀ ॥१९॥

मू०-द्यावापृथिव्योरिदमन्तरंहिव्याप्तंत्वयैकेनादिशश्च सर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतंरूपमुग्रंतवेदंलोकत्रयंप्रव्यथितंमहात्मन् ॥ २० ॥

महात्मन् १ द्यावापृथिव्योः इदम् ३ अन्तरम् ४ एकेन ५ त्वया ६ हि ७ व्याप्तम् ८ सर्वाः ६ दिशः च ११ तव १२ इदम् १३ अद्भुतम् १४ उग्रम् १५ रूपम् १६ दृष्ट्वा १७ लोकत्रयम् १८ प्रव्यथितम् १६ ॥ २० अ०–हे भगवन्! १ आकाशपृथिवीका २ यह ३ अन्तर ४ अकेले ५ आपकरके ६ ही ७ व्याप्त ८ सि० है और ❀ पूर्वादि दशोंदिशा ६ । १० । ११ सि० भी आपकरके व्याप्त होरही हैं ❀ अर्थात् सब जगत् में आपही पूर्ण होरहे हो ११ आपका १२ यह अद्भुत १४ क्रूर १५ रूप १६ देखकर १७ तीनोंलोक १८ भयको प्राप्त हुए हैं १६ तात्पर्य ऐसा मैं आपको देखता हूं ॥२०॥

मू०–अमीहित्वांसुरसंघाविशंतिकेचिद्भीताः प्रांजलयोगृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वामहर्षिसिद्धसंघाः स्तुवंतित्वांस्तुतिभिःपुष्कलाभिः ॥२१॥

अमी १ सुरसंघाः २ त्वाम्३हि ४ विशन्ति५केचित् ६ भीताः ७ प्रांजलयः ८ स्वस्ति ६ इति १०उक्त्वा ११ गृणन्ति १२ महर्षिसिद्धसंघाः १३ पुष्कलाभिः १४ स्तुतिभिः १५ त्वाम् १६ स्तुवंति १७ ॥ २१ ॥ अ०–वे १ देवतोंके समूह २ तुम्हारे में ही ३ । ४ प्रविष्ट होते हैं ५ अर्थात् आपको देवतों ने अपना आश्रय समझ रक्खा है, आपके शरण प्राप्त हैं. सि० और उनमें से ❀ कोई ६ भयको प्राप्त हुए ७ दोनों हाथ जोडरक्खे हैं जिन्होंने ८ स्वस्ति ६ यह १० सि० शब्द ❀ कहकर अर्थात् आपका कल्याण हो भला हो ११ सि० यह कहते हुए आपकी ❀ प्रार्थना कररहे हैं १२ अर्थात् आपकी जयहो जयहो आप हमारी रक्षाकरो यह कहरहे हैं१२.सि० और ❀ बडे२ऋषीश्वर सिद्धों के समूह १३ बडे बडे १४ स्तोत्रों करके १५ आपकी १६ स्तुति कर रहे हैं १७ ॥ २१ ॥

मू०-रुद्रादित्यावसवोयेचसाध्याविश्वेऽश्विनौमरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघावीक्षंतेत्वांविस्मिताश्चैवसर्वे ॥ २२ ॥

रुद्रादित्या वसवः १ साध्याः २ च ३ ये ४ विश्वे ५ अश्विनौ ६ मरुतः ७ च ८ ऊष्मपाः ९ च १० गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा ११च १२ सर्वे १३ एव १४ विस्मिताः १५ त्वाम् १६वीक्षंते१७ ॥२२॥ भा०-ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, आठ वसु १ और साध्यदेवता २।३ जो ४ सि० हैं ❀ विश्वेदेव ५ अश्विनीकुमार ६ और उंचास मरुद्गण ७।८ और पितर ९ १० और गन्धर्व (हूहूहाहादि) यक्ष (कुबेरादि) असुर (विरोचनादि) सिद्ध (कपिलदेवादि) इनसब के समूह ११। १२ सि० कहांतक कहूं❀सब१३ही १४ आश्चर्य युक्तहुए १५ आपको १६ देखते हैं १७ सि० इसप्रकारका रूप मैं आपका देखता हूँ ❀ टी० ऊष्मपा पितरोंका नाम इसवास्ते है कि, वे गरम गरम भोजनके भागी हैं, जबतक अन्न गरम रहता है और जबतक ब्राह्मण चुपचाप भोजन करते रहें बोलें नहीं तबतक ही पितर भोजन करते हैं ९ तदुक्तम्-"यावदुष्णंभवेदन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः॥पितरस्तावद श्नन्तियावन्नोक्ताहविर्गुणाः" ॥२२॥

मू०-रूपंमहत्तेबहुवक्त्रनेत्रंमहाबाहोबहुबाहूरुपादम् ॥ बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालंदृष्ट्वालोकाःप्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३

महाबाहो १ ते २ महत् ३ रूपम् ४दृष्ट्वा ५लोकाः६ प्रव्यथिताः ७ तथा ८ अहम् ९ बहुवक्त्रनेत्रम् १० बहुबाहूरुपादम् ११ बहूदरम् १२ बहुदंष्ट्राकरालम् १३ ॥ २३ ॥ भा०-हेमहाबाहो ! १आपका २

बड़ा ३ रूप देखकर ४ लोक ५ भयको प्राप्त होरहे हैं ६ सि० और जैसे और लोक भयभीत होरहे हैं ❀ तैसे ही ७ मैं ८सि०भी भयको प्राप्त हूँ क्योंकि वो रूपही आपका ऐसा है कि. जिसको ये विशेषण हैं ❀ बहुत मुख और नेत्र हैं जिसके ९ बहुत भुजा जंघा चरण हैं जिसके १० बहुत पेट हैं जिसके ११बहुत विकर ाल कठिन दाढ हैं जिसकी १२ तात्पर्य ऐसा आपका का रूप है कि जिसको देखकर मैं भी डरता हूं ॥

मू०-नभःस्पृशंदीप्तमनेकवर्णंव्यात्ताननन्दीप्तविशाल-
नेत्रम् ॥ दृष्ट्वाहित्वांप्रव्यथितांतरात्माधृतिंनविंदा-
मिशमंचविष्णो ॥ २४

विष्णो ! १ त्वाम् २ नभःस्पृशम् ३ दीप्तम् ४ अनेकवर्णम् ५ व्यात्ताननम् ६ दीप्तविशालनेत्रम् ७ दृष्ट्वा ८ हि ९ प्रव्यथितांतरात्मा १० धृतिम् ११ शमम् १२ च १३ न १४ विन्दामि १५॥२४॥

अ०-हे विष्णो ! १ आपको २ आकाशके साथ स्पर्श करता हुआ ३ अर्थात् समस्त आकाशमें व्याप्त ३ तेजरूप ४ अनेकवर्णवाला ५ फैला हुआ है मुख जिसका ६प्रज्वलित होरहे हैं, याने बल रहे हैं बडेबडे नेत्र जिसके ७ सि० ऐसा आपको ❀ देखकर ८ ही ९ बहुतभयको प्राप्त हुआ है अन्तःकरण मेरा १० धृति ११ और उपशमको १२ । १३ नहीं १४ प्राप्त होता हूँ १५ तात्पर्य मुझको न धीरज बँधता है, न मनमें संतोष होता है, ऐसा स्वरूप आपका देखके मेरा चित्त घवड़ाता है ॥ २४ ॥

मू०-दंष्ट्राकरालानिचतेमुखानिदृष्ट्वैवकालानलसन्निभानि ॥
दिशोनजानेनलभेचशर्मप्रसीददेवेशजगन्निवास ॥

देवेश १ जगन्निवास २ ते ३ मुखानि ४ कालानलसन्निभानि ५ दृष्ट्वा ६ एव ७च८ दंष्ट्राकरालानि ९ दिशः १० न ११ जाने १२ शर्म १३ च १४ न १५ लभे १६ प्रसीद १७ ॥ २५ ॥ अ०-हे देवतोंके ईश्वर ! हे जगत्के आश्रय ! २ आपके ३ मुख ४ प्रलयाग्निके सम ५ देखकर ६ । ७।८ सि० कैसे हैं वे आपके मुख ❀ कठिन डाढ़ हैं जिनमें ९ ऐसे मुखोंको देख पूर्वादि दशोंदिशाको १० नहीं ११ जानता हूँ मैं १२ अर्थात् मुझको यह नहीं प्रतीत होता कि पूर्व किधर, उत्तर किधर, पृथिवी कहां, आकाश कहां है १२, और सुखको १३ । १४ नहीं १५ प्राप्त हूँ १६ अर्थात् मेरा अन्तःकरण विक्षेपको प्राप्त हुआहै ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६ प्रसन्न हूजिये १७ सि० आप ❀ ॥ २५ ॥

मू०-अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्यपुत्राः सर्वेसहैवावनिपालसंघैः ॥ भीष्मोद्रोणःसूतपुत्रस्तथासौसहास्मदीयैरपियोधमुख्यैः ॥ २६ ॥

अमी १ च २ सर्वे ३ धृतराष्ट्रस्य ४ पुत्राः ५ अवनिपालसंघैः ६ सह ७ भीष्मः ८ द्रोणः ९ तथा १० असौ ११ सूतपुत्रः १२ अस्मदीयैः १३ अपि १४ योधमुख्यैः १५ सह १६ त्वाम् १७ एव १८ ॥ २६ ॥ अ०-उ० श्रीभगवान्ने कहा था कि, इस संग्राम में जो जीतेगा, हे अर्जुन ! सोभी देख,वोही बात अर्जुन देखता हुआ कहता है पांच श्लोकोंमें—और ये १ । २ सब ३ धृतराष्ट्रके ४ पुत्र ५ राजाओंके समूहसहित ६ । ७ भीष्मपितामह ८ द्रोणाचार्य ९ और १० वो ११ कर्ण १२ सि० और ❀ हमारे १३ भी १४ मुख्य योधाओं के साथ १५ । १६ तुझमें १७ ही १८ सि० प्रवेश करते

❀ अर्थात् आपके मुखमें प्रवेश करते हैं. इस श्लोकका अगले श्लोकके साथ सम्बन्ध है. तात्पर्य कुछ यह नहीं कि, दुर्योधनादिही आपके मुखमें प्रविष्ट होते हैं किन्तु हमारी ओरके भी सब राजा आपके मुखमें दौडदौड प्रवेश करतेहैं यह आश्चर्य मैं देखता हूँ ॥२६॥

मू०-वक्त्राणितेत्वरमाणाविशंति दंष्ट्राकरालानिभयानकानि ॥ केचिद्विलग्नादशनांतरेषुसंदृश्यंतेचूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

त्वरमाणाः १ ते २ वक्त्राणि ३ विशन्ति ४ दंष्ट्राकरालानि ५ भयानकानि ६ केचित् ७ चूर्णितैः ८ उत्तमांगैः ९ दशनांतरेषु १० विलग्नाः ११ संदृश्यन्ते १२ ॥ २७ ॥ अ०-सि० यह सब योधा ❀ दौड़ते हुए १ आपके २ मुखोंमें ३ प्रविष्ट होते हैं ४ सि० कैसे हैं वे मुख कि ❀ कठिन डाढ दांत हैं जिनमें ५, भयानकरूप ६ सि० जो मुखमें प्रविष्ट होते हैं उनमें ❀ कोई ७ सि० तो ऐसे हैं कि ❀ चूर्ण होगये हैं शिर जिनके ८।९ सि० वे ❀ दांतों के बीचमेंही १० लटके हुए ११ दीखते हैं १२ तात्पर्य जैसा अन्न भोजन हुए बाद दांतोंमें रहजाता है (जिसको तिनकेसे निकालते हैं) इस प्रकार बहुतशूरवीर श्रीमहाराजकेदांतोंकी सन्धिमेंउलझे हुएदीखतेहैं ॥२७॥

मू०-यथानदीनांबहवोंबुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखाद्रवन्ति ॥ तथातवामीनरलोकवीराविशंतिवक्त्राण्यभिविज्वलंति ॥ २८ ॥

यथा १ नदीनाम् २ बहवः ३ अम्बुवेगाः ४ समुद्रम् ५ एव अभिमुखाः ७ द्रवन्ति ८ तथा ९ अमी १० नरलोकवीराः ११ १२ अभिविज्वलन्ति १३ वक्त्राणि १४ विशंति १५ ॥ २८ ॥ अ०-

अर्जुन दृष्टान्त देते हैं कि, इसप्रकार आपके मुखमें प्रविष्ट होते हैं- जैसे १ नदीके २ बहुत ऐसे ३ जलके वेग ४ समुद्रके ५ ही ६ सन्मुख ७ दौड़ते हैं ८ तैसे ९ ये १० नरलोकवीर ११ आपके १२ सब तरफसे जलते हुए मुखोंमें १३। १४ प्रविष्ट होते हैं १५ तात्पर्य आपका मुखतो सब तरफसे, प्रज्वलित होरहा है उसमें दौडदौड गिरते हैं, महाराजके मुखमें सब तरफसे अग्नि जलती हुई प्रतीत होती है. जैसे कहते हैं कि दीपक जलरहा है. ऐसे यहां कहा कि महाराजका मुख प्रज्वलित होरहा है ॥ २८ ॥

मू.-यथाप्रदीप्तंज्वलनंपतंगाविशन्तिनाशायसमृद्ध-वेगाः॥ तथैवनाशायविशन्तिलोकास्तवापिवक्त्रा-णिसमृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

यथा १ समृद्धवेगाः २ पतंगाः ३ नाशाय ४ प्रदीप्तम् ५ ज्वलनम् ६ विशंति ७ तथा ८ एव ९ समृद्धवेगाः १०लोकाः ११नाशाय १२ अपि १३ तव १४ वक्त्राणि १५ विशंति १६ ॥ २९ ॥अ०-उ० नदीके दृष्टान्तसे तो यह प्रगट किया कि परवशहुए आपके मुखमें प्रविष्ट होते हैं. अब पतंगके दृष्टान्तसे यह दिखाता है कि, जानबूझ आपके मुखमें प्रवेश करते हैं बहुत शूर-जैसे १ समृद्ध वेग है जिनका २ अर्थात् शीघ्र चाल है जिनकी दौडते उडते हुए २ छोटे छोटे कीट ३ मरनेके लिये ४ प्रदीप्त ५ अग्निमें ६ अर्थात् जलती हुई अग्नि या दीपक उसके अग्निमें ६ प्रवेश करते हैं ७ तैसे ८ ही ९ बड़ावेग है जिनका १० सि० ऐसे ❀ लोग शूरवीर ११ मरनेके लिये १२ ही १३ आपके १४ मुखमें १५ प्रवेश करते हैं१६॥२९॥

मू०-लेलिह्यसेग्रसमानःसमंताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्यजगत्समग्रंभासस्तवोग्राः प्रतपंतिविष्णो ॥ ३० ॥

ज्वलद्भिः १ वदनै २ समग्रान् ३ लोकान् ४समंतात्५ग्रसमानः ६ लेलिह्यसे ७ विष्णो ८ तव ९ उग्राः १० भास ११ तेजोभिः १२ समग्रम् १३ जगत् १४ आपूर्य १५ प्रतपंति १६ ॥ ३० ॥ अ०-दीप्तिमान् १ मुखोंकरके २ सब लोकोंका ३ । ४ अर्थात् महामहा इन शूरबीरोंका ४ सब तरफसे ५ ग्रास करतेहुए ६भलेप्रकार भक्षण कररहे हो ७ हे पूर्णब्रह्म व्यापक ! ८ । ९ तीव्र १० प्रभा ११ सि० आपने ❀ तेजसे १२ समस्त १३ जगत्को १४ व्याप्त करके १५ जलारही है १६ अर्थात् आपके तेजके किरण सबजगत्में फैलकर जला रहे हैं. सब जगत्को चटनीके तरह चाटरहे हो, आप ऐसे मुझ को दीखते हो १६ ॥ ३० ॥

मू०-आख्याहिमेकोभवानुग्ररूपोनमोस्तुतेदेवप्रसीद॥ विज्ञातुमिच्छामिभवंतमाद्यंनहि प्रजानामितव- प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

भवान् १ उग्ररूपः २ कः ३ मे ४ आख्याहि ५ नमः ६ अस्तु ७ देववर ८ प्रसीद ९ भवन्तम् १०आद्यम् ११विज्ञातुम् १२इच्छामि १३ तव १४ प्रवृत्तिम् १५ नहि १६ प्रजानामि १७॥ ३१ ॥ अ०-आप १ उग्ररूप २ कौन ३ सि० हो, यह ❀ मुझसे ४ कहो ५ सि० मेरा आपको ❀ नमस्कार हो ७ हे देवतोंमें श्रेष्ठ ! ८ प्रसन्न हो ९ आप आद्य हो १० । ११ अर्थात् सबसे पहले आप हो १० । ११ सि० इसबातको ❀ भलेप्रकार जाननेकी १२ इच्छा करत्ता हूं १३ अर्थात् आदिपुरुष जो आपहो उन आपको भले-

प्रकार जाना चाहता हूं १३ आपकी १४ प्रवृत्तिको १५ नहीं १६ जानता हूँ १७ अर्थात् यह ऐसा स्वरूप आपने क्यों धारण किया है १५। १६। १७॥ ३१॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ कालोस्मिलोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिहप्रवृत्तः॥ऋतेपित्वांनभविष्यंतिसर्वेऽयवस्थिताःप्रत्यनीकेषुयोधाः ॥ ३२ ॥

श्रीभगवान् उवाच. लोकक्षयकृत् १ प्रवृद्धः २ कालः ३ अस्मि ४ लोकान् ५ समाहर्तुम् ६ इह ७ प्रवृत्तः ८ त्वाम् ९ ऋते १० अपि ११ ये १२ सर्वे १३ योधाः १४ प्रत्यनीकेषु १५ अवस्थिताः १६ न १७ भविष्यन्ति १८ ॥ ३२ ॥ अ०-उ० हे अर्जुन! जो तू बूझता है तो सुन कि, जो मैं हूं और जिस वास्ते मैंने यह रूप धारण किया है तीन श्लोकोंमें कहते हैं-लोकोंका नाश करनेवाला १ अतिउग्र २ काल ३ मैं हूँ ४ लोकोंका नाश करनेको ५। ६ इसलोकमें ७ प्रवृत ८ सि० हुआ हूं तूने जो बूझा था कि, आप कौन हैं और किस वास्ते आपकी यह प्रवृति है सो समझ और सुन ॐ तेरे ९ विना १० भी ११ ये सब १३ योद्धा १४ दोनों सेना में १५ सि० जो स्थित हैं १६ नहीं १७ होंगे १८ अर्थात् तू जो यह शंका करता है कि, मैं इनका मारनेवाला हूं ये सब तेरे बिना मारे भी मरेंगे. जो ये सब दीखते हैं मुझ कालरूपसे कोई भी नहीं बचेगा १७। १८ तात्पर्य क्षत्रिय जातिमें तू मेरा भक्त है तुझको मैं यह एक यश देता हूं ॥ ३२ ॥

मू०-तस्मात्त्वमुत्तिष्ठयशोलभस्वजित्वाशत्रून्भुंक्ष्व राज्यंसमृद्धम् ॥ मयैवैतेनिहताःपूर्वमेवनिमित्त-मात्रंभवसव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

तस्मात् १ त्वम् २ उत्तिष्ठ३यशः ४ लभस्व ५ शत्रून् ६ जित्वा ७ समृद्धम्८राज्यम्६भुंक्ष्व१०एते ११ एव १२ पूर्वम् १३ एव १४मया १५ निहताः १६ सव्यसाचिन् १७निमित्तमात्रम् १८ भव १६ ॥ ३३॥

अ०—तिस कारण से १ तू २ खड़ा हो ३ सि० युद्ध के लिये ❀ यश को ४ प्राप्त हो ५ सि० जो भीष्मपितामह द्रोणादि देवतों से भी जीते न जावें उनको अर्जुन ने जीता इस यश को प्राप्त हो. पीछे उसके ❀ वैरियों को ६ जीतकर ७ पदार्थों से भरा हुआ ८ राज भोग १० ये ११ तो १२ पहिले १३ ही १४ मैंने १५ मार रक्खे हैं १६ हे अर्जुन ! १७ निमित्तमात्र १८ तू होजा१६ अर्थात् इनका तो काल आ पहुँचा प्रत्यक्ष देखता है तू और यह काल के मुख में अपने आप दौडे जाते हैं, तू तो केवल एक नाम मात्र मारने वाला हो, यश लेले १६. टी० बांयें हाथ से भी अर्जुन धनुष खैंचकर तीर चलाता था इसवास्ते अर्जुन का नाम सव्यसाची है १७ ॥ ३३ ॥

मू०—द्रोणंचभीष्मंचजयद्रथंचकर्णंतथान्यानपियोधवीरान् ॥ मयाहतांस्त्वंजहिमाव्यथिष्ठायुध्यस्वजेतासिरणेसपत्नान् ॥ ३४ ॥

द्रोणम् १ च २ भीष्मम् ३ च ४ जयद्रथम् ५ च ६ कर्णम् ७तथा ८ अन्यान् ९ अपि १० योधवीरान् ११ मया १२ हतान् १३ त्वम् १४ जहि १५ माव्यथिष्ठाः १६ युद्ध्यस्व १७ रणे १८सपत्नान् १६ जेता २० असि २१॥३४॥ अ०—उ० पीछे हे अर्जुन् ! तुमने यह कहाथा कि मैं यह नहीं जानता येहमको जीतेंगे या हम इनको वो अब सब तूने प्रत्यक्ष देख लिया कि, बेसन्देह तुही जीतेगा द्रोणाचार्य १ । २ और भीष्मपितामह ३ । ४ और जयद्रथ ५।६

७ तैसेही ८ औरोंको ९ भी १० सि० कि जो जो ❀ योधा हैं ११ सि० इन सब ❀ मेरे १२ मारेहुओंको १३ तू १४ मार मतडर १६ सि० इनके साथ ❀ युद्ध कर १७ रणमें १८वैरियों १९ तू जीतेगा २० । २१ ॥ ३४ ॥

मू०-संजयउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वावचनंकेशवस्यकृताञ्जलिर्वेपमानःकिरीटी ॥ नमस्कृत्वाभूयएवाह कृष्णंसगद्गदंभीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

संजय उवाच. किरीटी १ केशवस्य २ एतत् ३ वचनम् ४ श्रुत्वा ५ कृतांजलिः ६ वेपमानः ७ नमः ८ कृत्वा ९ आह १० भूयः ११ एव १२ भीतभीतः १३ सगद्गदम् १४ कृष्णम् १५ प्रणम्य १६ ॥ ३५ ॥

भा०-उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि हे राजन्! मुकुटवाला अर्जुन १ भगवान्का २ यह ३ वचन ४ सुनकर ५ की है अंजलि जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोडे हुए ६ कांपता हुआ ७ नमस्कार करके ९ बोला १० फिर ११ भी १२ बहुत डरता हुआ १३ गद्गदकंठ होरहा है जिसका १४ श्रीकृष्णजीको १५ प्रणाम करके १६ सि० यह बोला कि, जो आगे ग्यारह श्लोकोंमें कहना है ❀ तात्पर्य वारम्वार "नमोनमः नमो नारायणाय" यह कहकर स्तुति करता है ॥ ३५ ॥

मू०-अर्जुनउवाच ॥ स्थानेहृषीकेशतवप्रकीर्त्याजगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यतेच ॥ रक्षांसिभीतानिदिशो द्रवंतिसर्वेनमस्यंतिचसिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच. हृषीकेश १ तव २ प्रकीर्त्या ३ जगत् ४ प्रहृष्यति ५ अनुरज्यते ६ च ७ भीतानि ८ रक्षांसि ९ दिशः १० द्रवंति ११ सर्वे १२ च १३ सिद्धसंघाः १४ नमस्यंति १५ स्थाने १६ ॥ ३६ ॥

अ०-उ० अर्जुन कहता है हृषीक नाम इंद्रियोंका है इंद्रियोंका जो स्वामी याने प्रेरक अंतर्यामी उसको हृशीकेश कहते हैं अर्थात् हे कृष्णचन्द्रजी ! १ आपकी २ प्रकीर्तिकरके ३ अर्थात् आपका माहात्म्य कहने सुननेसे ३ जगत् ४ आनन्दित होता है ५ और अनुरागको प्राप्त होता है ६ । ७ अर्थात् आपमें जगत् प्रीति करता हैं सि० और ❀ डरते हुए राक्षस ९ पूर्वादि दिशाओंको १० दौडते हैं ११ सि० कोई पूर्वको कोई उत्तरको भागता है ❀ और सब १२ । १३ सिद्धोंके समूह १४ सि०-आपको❀नमस्कार करते हैं १५ यह सबयुक्त है१६अर्थात् वह बात ऐसीही चाहिये१६॥३६॥

मू.-कस्माच्चतेननमेरन्महात्मन्गरीयसेब्रह्मणोप्यादिकर्त्रे।।अनंतदेवेशजगन्निवासत्वमक्षरंसदसत्तत्परंयत३७

महात्मन् १ अनन्त २ देवेश ३ जगन्निवास ४ कस्मात् ५ ते ६ न ७ नमरेन् ८ ब्रह्मणः ९ अपि १० गरीयसे ११ च १२ आदिकर्त्रे १३ यत् १४ सत् १५ असत् १६परम् १७अक्षरम् १८तत् १९ त्वम् २० ॥ ३७ । अ०-उ० आपको नमस्कार करनेमें यह हेतु है, फिर यह कब होसक्ता है कि, यह सब जगत् आपको नमस्कार न करे-हे महात्मन् ! १हे अनन्त!२ देवेश! ३हे जगन्निवास ! ४किस हेतुसे ५ आपको नहीं ७ नमस्कार करे ८ सि० आपके सामने नम्र होनेमें चार हेतु तो मैंने कहे कि आप महात्मा हो, अनन्त, देवेश, जगत्का आश्रय हो. और पांच सुनिये प्रथम यहकि आप❀ ब्रह्माजीसे ९ भी १० गुरुतर ११ सि० हो. दूसरा यह कि ब्रह्माजीके कर्ताभी आपही हो. इसीवास्ते आपको ❀ आदिकर्ता १३ सि० कहते हैं, तुम्हारे अर्थ नमस्कार हो, आदिकर्त्रे और गरीयसे ये दोनों तो इस छठे अंकवाले पदके विशेषण हैं, तीनों पदोंमें चतुर्थीविभक्ति

हैं, सो अर्थ समझना चाहिये, तीसरा यह कि ❀ जो १४सत् याने व्यक्त १५ असत् याने अव्यक्त १६ सि० और इन दोनों से ❀ परे १७ सि० जो❀अक्षरब्रह्म १८ सो १९ आप २०सि० ही हो ❀ अर्थात् तीसरा यह कि जो व्यक्त मूर्तिमान् हो, सो भी आप हो १५ चौथा यह कि जो अव्यक्तस्वरूप आपका है सो भी आप ही हो १६ पांचवा यह कि जो व्यक्त और अव्यक्त से परे अक्षर पूर्णब्रह्मशुद्धसे सच्चिदानन्द है सो भी आप हो ॥ १८ ॥ ३७ ॥

मू०-त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्यविश्वस्यपरं
निधानम् ॥ वेत्तासिवेद्यंचपरंचधामत्वयाततंविश्व-
मनंतरूप ॥ ३८ ॥

त्वम् १ आदिदेवः २ पुराणः ३ पुरुषः ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य ७ परं निधानम् ८ वेत्ता ९ असि १० वेद्यम् ११ च १२ परम् १३ च १४ धाम १५ त्वया १६ विश्वम् १७ ततम् १८ अनन्तरूप ॥ १९ ॥३८॥ अ०-उ० और आपके सामने नम्र होने में सात हेतु और भी ये हैं, प्रथम हेतु यह कि-आप१आदिदेव२पुराण ३ पुरुष ४ सि० हो दूसरा हेतु यह कि❀आप ५ इस विश्व के ६।७ लय का स्थान ८ सि० हो ❀ अर्थात् प्रलय समय यह सब जगत् मायोपहित आपके स्वरूप में ही लय होजाता है ८ सि० तीसरा हेतु यह कि सब पदार्थों के❀जानने वाले ९ हो आप १० सि० ❀ चौथा हेतु यह कि ❀ जानने के योग्य ११ भी १२ सि० आप ही हो अर्थात् आपका ही जानना श्रेष्ठ है और सब पंडिताई वृथा है, पांचवा हेतु यह कि ❀ परमधाम भी १३।१४।१५ सि० अर्थात् परमहंसों का पद भी आपही हो १३।१४।१५ सि० छटा हेतु यह कि ❀ आप करके १६ सि० यह समस्त ❀ विश्व १७

व्याप्त १८ सि० होरहा है, सातवां हेतु यह कि आप * अनन्त-रूप १९ सि० हो. हे अनन्तदेव ! इन हेतु करके आप हमको पूज्य हो, इस वास्ते हम आपको बारम्बबार नमस्कार करते हैं ॥३८॥

मू०-वायुर्यमाग्निर्वरुणःशशांकः प्रजापतिस्त्वंप्रपि-
तामहश्च ॥ नमोनमस्तेस्तुसहस्रकृत्वः पुनश्च
भूयोऽपिनमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

वायुः १ यमः २ अग्निः ३ वरुणः ४ शशांकः ५ प्रजापतिः६ प्रपितामहः ७ त्वम् ८ ते ९ नमः १० नमः ११ च १२ अस्तु १३ सहस्रकृत्वः १४ भूयः १५ च १६ अपि १७ पुनः १८ ते १९ नमः २० नमः २१ ॥ ३९ ॥ अ०-उ०-अनन्त इस सातवें हेतु का इस श्लोक में विस्तार करके कहता है-पवन १ यमराज २ अग्नि ३ वरुण ४ चन्द्रमा ५ ब्रह्मा ६ ब्रह्मा के भी पितामह ७ आप ८ सि० हो अर्थात् आप असंख्यात रूप हो * आपको ९ बारंवार नमोनमः १० । ११ । १२ हजार वार १४ फिर भी १५।१६।१७ वरंवार १८ आपको १९ नमोनमः २० । २१ अर्थात् जैसे आप अनन्त रूप हो वैसे ही मेरे अनन्त नमस्कार हैं २१ तात्पर्य असंख्यात (वारम्वार) नमस्कार करने से अतिश्रद्धाभक्ति श्रीमहाराज में प्रकट करता है ॥ ३९ ॥

मू०-नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोस्तुतेसर्वतएवसर्व॥
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वंसमाप्नोषित-
तोसिसर्वः ॥ ४० ॥

सर्व १ पुरस्तात् २ ते ३ नमः ४ अथ ५ पृष्ठतः ६ ते ७ नमः ८ अस्तु ९ सवतः १० एव ११ अनंतवीर्य १२ त्वम् १३ अमितवि-

क्रमः १४ सर्वम् १५ समाप्नोषि १६ ततः १७ सर्वः १८ असि १६ ॥ ४० ॥ अ०—उ० फिर भी और प्रकारसे नमस्कार करता हुआ श्रीमहाराजकी स्तुति करता है—हे सर्व ! १ अर्थात् सर्वरूप सबके आत्मा १ पूर्वके ओरसे २ आपको ३ नमस्कार ४ और ५ पिछले तर्फसे ६ आपको ७ नमस्कार ८ हो ६ सब तर्फसे १० ही ११ सि० आपको नमस्कार करता हूं. इत्यभिप्रायः ॥ ❀ हे अनन्तवीर्य! १२ आप १३ वेमर्यादपराक्रमवाले १४ सि० हो ❀ सब १५ सि० जगत्में ❀ भलेप्रकार आप व्याप्त हो १६ तिसकारणसे १७ सर्वरूप १८ आप हो १६ टी० कोई कोई वीर्यवान् अर्थात् बलवान् होते हैं परन्तु समयपर पराक्रम नहीं करते वीर्य और विक्रम पराक्रम शब्दों में यह भेद इस जगह समझना, तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान् अनन्तवीर्यभीहैं और अनन्त पराक्रमवाले भी हैं ॥ ४० ॥

मू०-सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेकृष्णहेयादवहेसखेति॥
अजानतामहिमानंतवेदं मयाप्रमादात्प्रणयेनवापि॥४१

सखा १ इति २ मत्वा ३ प्रसभम् ४ यत् ५ उक्तम् ६ हे कृष्ण! ७ हे यादव ! ८ हे सखे । ६ इति १० अजानता ११ तव १२ इदम् १३ महिमानम् १४ मया १५ प्रमादात् १६ वा १७ प्रणयेन १८ अपि १६ । ४ १॥ अ०—उ० अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज को पहले सदासे अपना सखा समझता था हँसी चौहलके समय जो चाहता था सोई कहदेता था अब श्रीमहाराजकी यह महिमा देख, उस अपराधको क्षमा कराता है, दो श्लोकोंमें- सि० आपको प्राकृतवत् अपना ❀ सखा १ ही २ समझकर ३ हठपूर्वक ४ जो ५

सि० मैंने ❀ कहा ६ सि० सो आप क्षमा कीजिये मैंने क्या कहा सो सुनो ❀ हे कृष्ण ! सि० मेरा कहा नहीं मानता इसप्रकार आधानाम लेकर आपको बोला ❀ हे यादव ! सि० यहां नहीं आता ❀ हे सखा ! ६ तू क्या करता है. इस प्रकार १० सि० प्राकृतोंके तरह आपको संबोधन किया ❀ नहीं जाननेवाला मैं ११ आपके १२ इस महिमाको १३ । १४ सि० था ❀ अर्थात् इस आपके महिमाकोको मैं नहीं जानता था १७ सि० इस हेतुसे ❀ मैंने १५ प्रमादसे १६ सि० आपको ऐसा कहा ❀ अथवा १७ स्नेहसे १८ भी १६ सि० ऐसा कहना बन सक्ता है ❀ ॥ ४१ ॥

सू०–यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासन-
भोजनेषु ॥ एकोथवाप्यच्युततत्समक्षंतत्क्षा-
मयेत्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

विहारशय्यासनभोजनेषु १ एकः २ अथवा ३ तत्समक्षम् ४ अपि ५ अवहासार्थम् ६ यत् ७ च ८असत्कृतः ६असि १० अच्युत ११ तत् १२ त्वाम् १३ अहम् १४ क्षामये १५ अप्रमेयम् ॥ १६ ॥ ॥ ४२ ॥ अ०–विहार शय्या आसन भोजनके समय १ अकेले २ अथवा ३ तिन मित्रोंके सामने ४ भी ५ आपके और अपने हँसानेके लिये ६ जो ७ जो ८ असत्कार किया है ६ । १० सि० मैंने आपका ❀ निर्विकार ११ सो १२ आपसे १३ मैं १४ क्षमा कराता हूं १५ सि० आप क्षमा कीजिये कैसे हैं आप ❀ नहीं है प्रमाण आपका १६ अर्थात आप अप्रमेय हो १६ तात्पर्य आपके महिमाका पारावार नहीं, इत्यभिप्रायः ॥ आपके लीलाचरित्रोंमें जो जो तर्क करते हैं बडे मूर्ख हैं, आप अचिं-

त्यशक्तिमान् हो. टी० सैनकरना, खेलना इत्यादि क्रिया को विहार कहते हैं. पलंग पर लेटना, उस समय को शय्याका समय कहते हैं, मसनद गद्दी तकिये लगे हुए बिछोनों पर बैठना उसको आसनका समय कहते हैं, भोजनका समय प्रसिद्ध स्पष्ट है. इन समयमें अर्जुन ब्रजचन्द्रसे अकेला भी और औरों के सामने भी चौहल हँसी किया करता था, श्रीमहाराज कभी चुप होजाते थे, कभी आप भी छेड़-छाड़ करने लगते थे, इस भक्तिके महिमाके प्रतापपर और मेरे संक्षेप लिखने पर सोचना चाहिये कि, निर्भाग यह माहात्म्य भगवत्का सुनते भी परन्तु संसार से छूटकर नारायणके चरण कमलोंमें प्रीति नहीं करते न जानिये फिर कौनसा मुहूर्त आवेगा जिस दिन भगवत् में ऐसे श्रोताओं की प्रीति होगी ॥ ४२ ॥

मू०-पितासिलोकस्यचराचरस्यत्वमस्यपूज्यश्चगुरु-
गरीयान् ॥ नत्वत्समोस्त्यभ्यधिकःकुतोन्यो
लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥

अस्य १ चराचरस्य २ लोकस्य ३ त्वम् ४ पिता ५ असि ६ पूज्यः ७ च ८ गुरुः ९ गरीयान् १० त्वत्समः ११ न १२ अस्ति १३ अन्यः १४ अभ्यधिकः १५ कुतः १६ अप्रतिमप्रभावः १७ लोकत्रये १८ अपि १९ ॥ ४३ ॥ अ०-उ० अचिन्त्यप्रभाव श्री-भगवान्का निरूपण करता है—इस १ चराचर २ लोकके ३ आप ४ जनक ५ हो ६ और पूजनके योग्य ७ । ८ गुरु ९ तर१० सि० भी आपहो, जिससे एक अक्षर भी सीखा जावे, उसको भी गुरु कहते हैं या जिससे कोई लौकिक विद्या सीखी, या पुरोहितको याने संस्कार करने वालोंको भी गुरु कहते हैं, एक कुलगुरु होते हैं जैसे इन दिनोंमें कंठी बांधनेका रिवाज है, कंठीबंध भी गुरु कहलाते हैं

और एक सद्गुरु होते हैं कि जो जिज्ञासुका अज्ञान, संशय,विपर्यय ये अपने ज्ञानके प्रतापसे दूर करके परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त कराते हैं, ऐसे गुरुतर दुर्लभ हैं, श्रीसदाशिवजी कहते हैं कि, हे पार्वतीजी ! धनके हरने वाले गुरु बहुत हैं शिष्यका सन्ताप हरने वाले गुरुतर दुर्लभ हैं, तदुक्तं ॥ "गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्ता- पाहरकाः । दुर्लभः सद्गुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः ॥ अर्जुन कहता है कि महाराज ❀ आपके समान ११ नहीं १२ सि० कोई हो और फिर ❀ दूसरा १४ अधिक १५ कहांसे १६ है १३ सि० हो ❀ हे अनुपमप्रभाववाले ! १७ तीन लोकमें १८ भी १९ सि० कोई न आपके सदृश न आपसे अधिक जैसा आपका प्रभाव है, ऐसा प्रभाववाला कोई उपमाके वास्ते भी नहीं ❀ ॥ ४३ ॥

मू०-तस्मात्प्रणम्यप्रणिधायकायंप्रसादयेत्वामह- मीशमीड्यम् ॥ पितेवपुत्रस्य सखेवसख्युः प्रियःप्रियायार्हसिदेवसोढुम् ॥ ४४ ॥

तस्मात् १ त्वाम् २ अहम् ३ प्रसादये ४ ईशम् ५ ईड्यम् ६ कायम् ७ प्रणिधाय ८ प्रणम्य ९ पुत्रस्य १० पिता ११ इव १२ सख्युः १३ सखा १४ इव १५ प्रियः १६ प्रियायाः १७ देव १८ सोढुम् १९ अर्हसि २० ॥ ४४ ॥ अ०—सि० अनजान में मुझसे दोष हुआ ❀ तिसकारणसे १ आपको २ मैं ३ प्रसन्न करता हूं ४. सि० आप ❀ ईश्वर ५ स्तुति करने योग्य हैं ६. सि० इस वास्ते शरीरको ७ नीचे झुकाकर ८ बहुत नम्र होकर ९ सि० आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि ❀ पुत्रका १० सि० अपराध ❀ पिता ११ जैसे १२ मित्रका १३ सि० अपराध ❀ मित्र १४जैसे १५ पुरुष १६ स्त्रीका १७सि० अपराध जैसे क्षमाकरता है इसी प्रकार❀हेदेव ! १८

० मेरा पिछला अपराध ❀ क्षमाकरनेको १६ आप योग्य हो
० अर्थात् पीछे मुझसे जो जो दोष हुए हैं. आप कृपाकरके उन
राधोंको अब क्षमा कीजिये १६ । २० तात्पर्य आपसे मैं इस
य बहुत डरता हूं, अब कभी आपकी हँसी न करूंगा न औरोंसे
ऊंगा. इत्याभिप्रायः ॥ ४४ ॥

–अदृष्टपूर्वंहृषितोस्मिदृष्ट्वाभयेनचप्रव्यथितंमनोमे॥
तदेवमेदर्शयदेवरूपंप्रसीददेवेशजगन्निवास॥ ४५॥

देव १ देवेश २ जगन्निवास ३ तत् ४ इव ५ रूपम् ६ मे ७
य ८ प्रसीद ९ अदृष्टपूर्वम् १० दृष्ट्वा ११ हृषितः १२ अस्मि
भयेन १४ च १५ मे १६ मनः १७ प्रव्यथितम् १८ ॥ ४५ ॥

०-उ० अपराध क्षमाकरके प्रार्थना करता है. इस प्रकार अब
ज्ञा नहीं करता है कि, मेरे रथको दोनों सेनाके बीचमें खडा
–हे देव ! १ हे देवेश ! २ हे जगन्निवास ! ३ सोई ४। ५रूप६
को ७ दिखाइये ८ सि० कि जो श्यामसुन्दररूप पहले मैं देखता
❀ आप प्रसन्न होजाइये ९ पहले मैंने नहीं देखा था १० सि०
पका यह रूप इस वास्ते जो उसको ❀ देखकर ११ मैं आनंदित
ता हूं १२ । १३ सि० परन्तु इसरूपसे ❀ भय करके १४ । १५
१६ मन १७ डरता है १८ सि० भय इसवास्ते लगता
कि आप कालरूप भयंकर मूर्तिमान् होरहे हैं ❀ ॥ ४५ ॥

-किरीटिनंगदिनंचक्रहस्तमिच्छामित्वांद्रष्टुमहंतथैव
तेनैवरूपेणचतुर्भुजेनसहस्रबाहोभवविश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

सहस्रबाहो १ विश्वमूर्ते २ तथा ३ एव ४ किरीटिनम् ५ गदि-
नम् ६ चक्रहस्तम् ७ त्वाम् ८ अहम् ९ द्रष्टुम् १० इच्छामि ११
न १२ एव १३ चतुर्भुजेन १४ रूपेण १५ भव १६ ॥ ४६ ॥

अ०-उ० श्रीमहाराजका माधुर्यरूप अर्जुन जो उसे देखता था उसीको देखना चाहता है -हे सहस्रबाहो ! १ हे विश्वमूर्ते ! २ तैसे ३ ही ४ किरीटवाला ५ गदावाला ६ च है हाथमें जिनके ७ सि० ऐसा ❀ आपको ८ मैं ९ देखनेकी १० इच्छा करता हूँ ११ तिसही १२ । १३ चतुर्भुजरूपवाले १४ । १५ सि० तस्मात् वैसेही❀होजाइये १६ सि अब इस हजारोंभुजावाले विश्वरूपको शान्त कीजिये. अर्जुनको सदा श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज चतुर्भुज दीखा करते थे। अर्जुन उसी रूपका उपासक है इसवास्ते अर्जुनको वोही रूप प्यारा लगता है ❀ ॥ ४६ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ मयाप्रसन्नेनतवार्जुनेदंरूपं परंदर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयंविश्वमनंतमाद्यंयन्मेत्वदन्येननदृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

श्रीभगवान् उवाच. अर्जुन १ मया २ प्रसन्नेन ३ आत्मयोगात् ४ तव ५ इदम् ६ यत् ७ मे ८ आद्यम् ९ अनन्तम् १० तेजोमयम् ११ परम् १२ विश्वम् १३ रूपम् १४ दर्शितम् १५ त्वदन्येन १६ न १७ दृष्टपूर्वम् १८ ॥ ४७ ॥ अ०-उ० श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! १ मैंने २ प्रसन्न होकर ३ अपने योगसे ४ तुमको ५ यह ६ जो ७ अपना ८ आदि ९ अनन्त १० तेजोमय ११ परम् १२ विश्वरूप १३ । १४ दिखाया १५ सि० कैसा है यह रूप❀सिवाय तेरे १६ अर्थात् सिवाय तुमसदृशभक्तों के १६ नहीं १७ देखा है पहिले १८ सि० किसी अभक्त ने योगमायादि अनेक अनन्त अचिन्त्यशक्ति है श्रीमहाराजब्रजचन्द्र उन शक्तियों करके जब चाहें विश्वरूप दिखासके हैं ॥ ४७ ॥

मू०-नवेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्नचक्रियाभिर्नतपोभिरुग्रैः एवंरूपः शक्यअहंनृलोकद्रष्टुंत्वदन्येनकुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

कुरुप्रवीर १ नृलोके २ त्वदन्येन ३ एवंरूपः ४ अहम् ५ (६) द्रष्टुम् ७ न ८ वेदयज्ञाध्ययनैः ९ न १० दानैः ११ नच १२ क्रियाभिः १३ न १४ उग्रैः १५ तपोभिः १६ शक्यः १७ ॥ ४८ ॥ अ०-उ० यह मेरा विश्वरूप विना मेरी कृपाके वेदोक्तकर्मों का अनुष्ठान करनेसे कोई नहीं देखसक्ता—हे अर्जुन १ मर्त्यलोकमें २ सिवाय तेरे ३ इस प्रकार ४ मेरा ५ रूप ६ देखनेके ७ न ८ वेदयज्ञोंका अध्ययनकरके ९ न १० दान करके न ११ । १२ क्रिया करके १३ न १४ अत्यन्त तप करके १५ । १६ सि० कोई ❀ समर्थ १७ सि० हुआ न होगा ❀ टी० यज्ञ एक विद्या है उस विद्याका नाम यज्ञ भी है ॥ ४८ ॥

मू०-मातेव्यथामाचविमूढभावोदृष्ट्वारूपंघोरमीदृङ्ममेदम् ॥ व्यपेतभीः प्रीतमनाःपुनस्त्वंतदेवमेरूपमिदंप्रपश्य ॥ ४९ ॥

ईदृक् १ मम २ इदम् ३ घोरम् ४ रूपम् ५ दृष्ट्वा ६ ते ७ व्यथा ८ मा ९ विमूढभावः १० च ११ मा १२ व्यपेतभीः १३ प्रीतमनाः १४ पुनः १५ त्वम् १६ मे १७ तत् १८ एव १९ रूपम् २० इदम् २१ प्रपश्य २२ ॥ ४९ ॥ अ०-उ० श्रीभगवान्ने विश्वरूपकी बहुत स्तुतिभी की परन्तु अर्जुनका डर न गया तब श्रीमहाराजने अर्जुन से कहा कि, हे अर्जुन ! क्यों डरता है फिर वोही श्यामसुन्दर स्वरूप जो प्यारा लगता है देख-इसप्रकार १ मेरा २ यह ३ घोर ४ रूप ५ देखकर ६ तुझको ७ व्यथा ८ मत ९ सि० हो ❀ और मूढता १० । ११ मत १२ सि० हो मूढतासे दुःख और भय होता है ❀ भय दूर कर १३ मनमें प्रीति कर १४ फिर १५ तू १६ मेरा १७ सोई १८ । १९ रूप २० यह २१ देख २२ सि० यह

कहकर श्रीभगवान् उसी समय श्यामसुन्दरस्वरूप होगये कि जो अर्जुनको प्रिय लगता था ❀ ॥ ४९ ॥

मू०-संजयउवाच ॥ इत्यर्जुनंवासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकंरूपंदर्शयामासभूयः॥ आश्वासयामास चभीतमेनंभूत्वापुनःसौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

संजय उवाच. वासुदेवः १ इति २ अर्जुनम् ३ उक्त्वा ४ भूयः ५ तथा ६ स्वकम् ७ रूपम् ८ दर्शयामास ९ पुनः १० च ११ महात्मा १२ सौम्यवपुः १३ भूत्वा १४ एनम् १५ भीतम् १६ आश्वासयामास १७ ॥ ५० ॥ अ०-उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै कि हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजने फिर अपना वोही सुन्दर स्वरूप अर्जुनको दिखाया-वासुदेव १ इसप्रकार २ अर्जुनसे ३ कहकर ४ सि० जैसे पहलेथे किरीटादियुक्त ❀ फिर ५ तैसेही ६ अपना ७ रूप ८ दिखाते भये ९ और फिर करुणाकर १० । ११ । १२ शान्त प्रसन्न रूप १३ होकर १४ इस भयमानका १५।१६ अर्थात् अर्जुनका १६ आश्वासन करते भये १७ तात्पर्य अर्जुनसे श्रीभगवान्ने कहा कि हे अर्जुन अब डर मतकर सावधान हो ॥ ५० ॥

मू०-अर्जुनउवाच॥ दृष्ट्वेदंमानुषंरूपंतवसौम्यंजनार्दन इदानीमस्मिसंवृत्तः सचेताःप्रकृतिंगतः ॥ ५१ ॥

अर्जुन उवाच. जनार्दन १ तव २ इदम् ३ सौम्यम ४ मानुषम् ५ रूपम् ६ दृष्ट्वा ७ इदानीम् ८ सचेताः ९ संवृत्तः १० अस्मि ११ प्रकृतिम् १२ गतः १३ ॥ ५१ ॥ अ०-अर्जुन श्रीमहाराजसे कहता है कि ❀ हे जनार्दन ! १ आपका २ वह ३ शान्त ४ मनुष्यरूप ५ । ६ देखकर ७ अब ८ प्रसन्नचित्त ९ हुआ १० हूं मैं ११ सि० और अपने ❀ स्वभावको १२ प्राप्त हुआ १३ ॥ ५१ ॥

मू०–श्रीभगवानुवाच ॥ सुदुर्दर्शमिदंरूपंदृष्टवानासियन्मम॥देवाअप्यस्यरूपस्यनित्यंदर्शनकांक्षिणः॥५२

श्रीभगवान् उवाच, इदम् १ यत् २ मम ३ रूपम् ४ दृष्टवान् ५ असि ४ सुदुर्दर्शम् ७ अस्य ८ रूपस्य ६ देवाः १० अपि ११ नित्यम् १२ दर्शनकांक्षिणः १३ ॥५२॥ अ०–श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! ❀ यह १ जो २ मेरा ३ रूप ४ देखा ५ है तुमने ६ सि० इसका ❀ देखना बहुत कठिन है ७ इस ८ रूप के ६ देवता १० भी ११ सदा १२ दर्शन की इच्छा वाले १३ सि० रहते हैं ❀ अर्थात् देवता भी इस रूप के देखने की सदा इच्छा करते हैं १३ ॥१४. सि० परन्तु वह विश्वरूप दीखता नहीं ❀ ॥५२॥

मू०–नाहंवेदैर्नतपसानदानेननचेज्यया ॥
शक्यएवंविधोद्रष्टुंदृष्टावानासिमांयथा ॥५३॥

यथा १ माम् २ दृष्टवान् ३ असि ४ एवं विधः ५ अहम् ६ न ७ वेदैः ८ न ६ तपसा १० न ११ दानेन १२ नच १३ । १४ इज्यया १५ द्रष्टुम् १६ शक्यः १७॥५३ अ०–उ० यह दर्शन बहुत दुर्लभ है कि, जो तुमने देखा सोई कहते हैं–जैसा १ मुझको २ देखा ३ है तुमने ४ इसप्रकार का ५ मुझको ६ न ७ वेदों करके ८ न ६ तप करके १० न ११ दान करके १२ न यज्ञ करकेभी १३।१४ १५ दृष्टिगोचर करने को १६ शक्य है १७ सि० कोई❀तात्पर्य भगवत् के दर्शन में भक्ति मुख्य साधन है, तपदानादि गौण साधन है ॥ ५३ ॥

मू०–भक्त्यात्वनन्ययाशक्यअहमेवंविधोऽर्जुन ॥
ज्ञातुंद्रष्टुंचतत्त्वेन प्रवेष्टुंचपरंतप ॥ ५४ ॥

अर्जुन १ परंतप २ एवंविधः ३ अहम् ४ अनन्यया ५ भक्त्या ६ तु ७ तत्त्वेन ८ ज्ञातुम् ९ द्रष्टुम् १० च ११ प्रवेष्टुम् १२ च १३ शक्यः १४ ॥ ५४ ॥ अ०-उ० अनन्यभक्तिकरके भगवत्का स्वरूप देखा जाता है, जानाजाता है, प्राप्त होता है, सोई कहते हैं श्रीभगवान्-हे अर्जुन ! १ हे परंतप ! २ इसप्रकार ३ अर्थात् जैसा विश्वरूप पीछे दिखाया ३ मुझको ४ अनन्य ५ भक्तिकरके ६ तो ७ परमार्थमें ८ जाननेको ९ और देखनेको १० । ११ और१२ सि० मुझमें ❀ प्रवेश करनेको १३ शक्य १४ सि० है औरोंको अपने तपके सामने तपानेवाला अर्थात् अर्जुन के तपको देखकर अन्य राजा मनमें तपा करतेथे थे कि हाय ऐसा तप हमारा नहींकि जैसा अर्जुनका है और जिसतपके प्रतापसे प्रभु अर्जुनको अपना परम प्यारा मित्र समझकर उसके इच्छाके अनुसार वर्तते हैं पर-मार्थसे भगवत्का जानना यह है कि परमेश्वर निराकार, नित्यमुक्त, निर्विकार, शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप. पूर्णब्रह्म मुझसे अभिन्न है और देखना यह है कि आत्माको पूर्वोक्त विशेषणोंकरके विशिष्ट साक्षात् अपरोक्ष देखना, अनुमानादि प्रमाणोंकरके देखना और सावयव मूर्तिमान्को देखना, देखना नहीं कहलाता और प्रवेश होना यह है कि, अविद्या कार्यके सहित नाश होजावे पीछे शुद्ध परमा-नन्दस्वरूप रहजाना यही परमेश्वर में प्रवेश होना है. ऐसा नहीं समझना कि, जोतमें जोत जा मिलती है, जैसे थोडा जल समुद्रमें जाकर प्रविष्ट होजाता है यह नहीं समझना ❀ ॥ ५४ ॥

मू०-मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तःसंगवर्जितः ॥
निर्वैरःसर्वभूतेषु यःसमामेतिपांडव ॥ ५५ ॥

पांडव १ यः २ मद्भक्तः ३ मत्कर्मकृत् ४ मत्परमः ५ संगवर्जितः ६ सर्वभूतेषु ७ निर्वैरः ८ सः ९ माम् १० एति ११ ॥ ५५ ॥

भ०-उ:—सब शास्त्रसाधनों का सार मुक्ति का साधन कहते हैं हे अर्जुन १ जो २ मेरा भक्त ३ मेरे अर्थ काम करता है ४ मैं ही हूं परम पुरुषार्थ जिसका ५ सि० पुत्रादि में ❀ आसक्त रहित ६ सब भूतों में ७ निर्वैर ८ सोऽ९ मुझको १० प्राप्ति होता है ११ तात्पर्य जो कर्म करना सो भगवत् में प्रीति बढने के लिये करना प्राणि-मात्र से वैर नहीं करना. इति सिद्धान्तः ॥ ५५ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथद्वादशोऽध्यायः १२

मू०-अर्जुनउवाच ॥ एवंसततयुक्तायेभक्तास्त्वांपर्यु-
पासते॥येचाप्यक्षरमव्यक्तंतेषांकेयोगवित्तमाः॥१॥

अर्जुनउवाच. एवम् १ सततयुक्ताः २ ये ३ भक्ताः ४ त्वाम् ५ पर्युपासते ६ ये ७ च ८ अपि ९ अक्षरम् १० अव्यक्तम् ११ तेषाम् १२के. १३योगवित्तमाः१४॥१॥अ०-अर्जुन कहता है. सि० कि हे नारायण ! इस प्रकार १ सदायुक्त हुये २ जो ३ भक्त ४ आप ही ५ उपासना करते हैं ६ और जो ७। ८निश्चय ९ अक्षर १० अव्यक्त की ११ सि० उपासना करते हैं ❀ तिनमें १२ कौन से १३ योगवित्तम हैं १४ टी० कोई तो आपको शिव विष्णु राम कृष्णादि मूर्तिमान् समझते हैं और कोई विश्वरूप विराट् हिरण्य-गर्भ और कोई कर्म ही को आपका रूप समझते हैं,कोई अंशअंशी भावसे आपकी उपासना करते हैं, कोई पुरुष ईश्वरादि जानकर जिस प्रकार कि प्रथमअध्याय से लेकर ग्यारहवें तक आपने उपदेश

किया इस प्रकार सदा आपके उपदेश का अनुष्ठान करते हैं, इसीको उपासना कहते हैं जो भक्त आपकी ऐसी उपासना करते हैं अर्थात् किसी की सांख्यपातांजलयोग में निष्ठाहै किसीकी शांडिल्यविद्या में निष्ठा है, अनुक्त ऐसे भी आपकी उपासना के बहुत मार्ग हैं अर्थात् जो मैंने नहीं कहे, अब इस अध्याय में और यह भी निश्चय से है कि, बहुत महात्मा आपको निर्गुण नित्यमुक्त अद्वैत ऐसा समझ कर आपकी उपासना करते हैं, और चतुर्थादि अध्यायों में आपने श्रीमुख से निर्गुण उपासकों को आर्तादि सब भक्तों से विशेष श्रेष्ठ कहा और कर्मनिष्ठ योगियों की वैसी ही सगुण ब्रह्म के उपासकों की भी आपने बहुत स्तुति की पिछले अध्यायों में अब मैं यह समझा चाहता हूँ कि, कर्मीयोगी सगुण ब्रह्म के उपासक जो भक्त और निर्गुण के जो उपासक इन सब में कौन भले प्रकार योगको जानते हैं, योग का अक्षरार्थ एकता है, वित् इसका अर्थ जानना यह है, जो योग को जानता है उसको योगवित् कहते है. तर, तम ये दोनों शब्द विशेषार्थ में आते हैं अर्थात् योग के जानने वालों में विशेष श्रेष्ठ कौन है पूर्वोक्त इन सबमें. इत्यभिप्रायः ॥ १ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यावेश्यमनोयेमांनित्य-युक्ताउपासते ॥ श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्तत-मामताः ॥ २ ॥

श्रीभगवान् उवाच ये १ परया २ श्रद्धया ३ उपेताः ४ मनः ५ मयि ६ आवेश्य ७ नित्ययुक्ताः ८ माम् ९ उपासते १० ते ११ मे १२ युक्ततमाः १३ मताः १४ ॥२॥ अ०—उ० अर्जुनका प्रश्न और यह उसका उत्तर ऐसे समझो कि जैसी ये दो कथा पुरानी हम लिखते हैं, राजाने सूरदासजीसे बूझा कि कविता आपकी अच्छी या तुलसीदासजीकी. सूरदासजीने उत्तर दिया कि मेरी राजाने फिर बूझा

कि तुलसीदासजीकी कविता कैसीहै, सूरदासजीने उत्तर दियाकि तुलसीदासजीकी कविता नहीं, मंत्र हैं आपका प्रश्न कविता के विषयमें है, विचारो इस बोलीमें बड़ाई किसकी हुई, एक भक्तने सरस्वती देवी से पूछा कि कवि कालिदासजी श्रेष्ठ हैं या दंडीस्वामी ? सरस्वतीजीने उत्तर दियाकि दंडीस्वामी कवि श्रेष्ठहैं और इसवाक्यका सरस्वतीजीने तीनबार उच्चारण किया ॥ कविर्दंडीकविर्दंडीकविर्दंडीनसंशयः । वहां कालिदास भी थे उनको यह आधा श्लोक सुनतेही क्रोध आया और क्रोधयुक्त होकर सरस्वती देवीजी से कालिदासजीने बूझा क्या दण्डी कविहै मैं कवि नहीं ? देवीजीने कहा कि आपतो मेरा स्वरूपही हो, इसी प्रकार अर्जुनने उपासना और अनुष्ठान इन विषय प्रश्न किया है ज्ञानी महात्मा क्रियावान् उपासक नहीं होते ॥ ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति॥ ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मही है, अर्जुन से–श्रीभगवान्ने कहा कि जो १ परम श्रद्धाकरके २।३ युक्त ४ मनको ५ मुझमें ६ प्रवेशित करके ७ नित्ययुक्त हुए ८ मुझ सगुणब्रह्मकी ९ उपासना करतेहैं, वे ११ मुझको १२ युक्ततम १३ संमत १४ सि०हैं ॥ अर्थात् उनको युक्ततम मानता हूं १४ युक्त योगीका नाम है वे योगियोंमें श्रेष्ठहैं,इति तात्पर्यार्थः। और जो कोई यह प्रश्नकरे कि निर्गुण ब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं या नहीं ? इसका उत्तर पहलेही दोकथाओंके प्रसंगमें होचुका, कि वे युक्त योगी नहीं. श्रीभगवान् चौथे मंत्रमें कहेंगे कि वे तो मुझको प्राप्त ही हैं उनका यहां क्या प्रसंग है. तीसरे चौथे मंत्रमें और तेरहवें मंत्रसे लेकर अध्याय की समाप्तिपर्यन्त निर्गुण उपासकोंके लक्षण कहेंगे सगुणउपासकों को जो कहना था सो कहा. यह उत्तर सूरदासजीके और देवीजीके उत्तरके सदृश समझना चाहिये. इस मंत्रमें यह अर्थ किसी प्रकार नहीं जाना जाता कि निर्गुणउपासकों से सगुणब्रह्मके उपासकोंको श्रीभगवान् ने

श्रेष्ठ कहा, श्रेष्ठ बेसंदेह हैं, परन्तु किनसे श्रेष्ठहैं, योगियोंसे, कर्मनिष्ठों से, विषयी ऐसे पामरोंसे श्रेष्ठ हैं, इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

मू०-येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिंत्यंचकूटस्थमचलंध्रुवम् ॥ ३॥
संनियम्यंन्द्रियग्रामंसर्वत्रसमबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्तिमामेवसर्वभूतहितेरताः ॥ ४ ।

दो श्लोकोंका एक अन्वय है. सर्वत्रसमबुद्धयः १ सर्वभूतहिते२ रताः ३ इंद्रियग्रामम् ४ संनियम्य ५ ये ६ अनिर्देश्यम् ७ अव्यक्तम् ८ अक्षरम् ६ सर्वत्रगम् १० अचिन्त्यम् ११ च १२ कूटस्थम्१३ अचलम् १४ध्रुवम्१५पर्युपासते१६ते१७तु१८माम् १६ प्राप्नुवंति २०एव२१॥ ३॥४॥ अ०-उ०-निर्गुण उपासकोंका माहात्म्य सुन सबकालमें समानज्ञान रहताहै जिनका १ सबभूतों के भलेमें २ प्रीति रखते हैं अर्थात् सबका भला चाहतेहैं ३. इंद्रियोंके समूहका४ निरोधकरके५ जो६ अर्थात् महात्मा निर्गुण उपासक६ अनिर्देश्य७ अव्यक्त८ अक्षर६ सर्वत्र- १० अचिन्त्य ११ और १२ कूटस्थ १३ अचल १४ध्रुवकी१५ उपासना करते हैं १६ सि० ऐसा * अर्थात् आत्माको ऐसा जानकर कि जैसे सातके अंकसे पंद्रहके अंकों तक कहा और संसार को इन्द्रजालवत् शुक्तिमें रजतवत् समझकर उसी परमानन्दस्वरूप आत्मा में मग्न रहते हैं.१६सि०अपने स्वरूपको यथार्थ जानलेना जैसा ऊपर कहा यही उनकी उपासनाहै, जो ऐसी उपासना करतेहैं*वे १७ तो १८ मुझको १६ प्राप्त हैं २० हि याने निश्चयसे २१ अर्थात् जब उनका स्वरूप अनिर्देश्यहै, कहनेमें नहीं आता. इस हेतुसे उनको योगवित्तम और युक्ततम और श्रेष्ठादिशब्दों करके निर्देश करना नहीं बनता,

समझना चाहिये कि वे मेरा स्वरूप है जैसा मैं मनवाणीका विषय नहीं ऐसेही वे हैं २०।२१, सि० उनको उपासक कहना यह एक बोली है॥टी० सदा सुख दुःख इष्टानिष्टादिके प्राप्ति में आत्मा को एकरस जानते हैं. ब्रह्मज्ञानी १ कहने में नहीं आता है कि वो ऐसा है ७ रूपरसादिवत् वो प्रगट नहीं ८ कभी कम नहीं होता ९ सब जगह प्राप्त है १० उसका चिंतवन नहीं हो सक्ता क्योंकि वो चित्त से सूक्ष्म परे है ११ निर्विकार १३ निश्चल१४नित्य१५॥३॥४

मू०-क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ॥
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥५॥

अव्यक्तासक्तचेतसाम् १ तेषाम् २ अधिकतरः ३ क्लेशः४ अव्यक्ता ५ हि ६ गतिः ७ देहवद्भिः ८ दुःखम् ९ अवाप्यते १० ॥ ५ ॥

अ०-उ०-जब कि निर्गुण ब्रह्म के उपासक ब्रह्मरूप होते हैं तो सगुणब्रह्मकी उपासना छोड़कर निर्गुणब्रह्मकी उपासनाकरनाचाहिये यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं-अव्यक्त में आसक्त है. चित्त जिनका १ अर्थात् उस उपासना के योग्य वे अभी हुए नहीं १ तिनको २ बहुत अत्यन्त ३ दुःख ४ सि० होता है क्योंकि रूपरसादि विषयों से प्रीति दूर होना सहज नहीं॥अव्यक्तादिगति५।६। ७ अर्थात् अव्यक्त की प्राप्ति५।६।७ देहाभिमानियोंको ८अर्थात् जो आत्माको क्रियावान् समझतेहैं, शुद्धसच्चिदानंदआत्माको पूर्णब्रह्मनही समझते तिनको ८दुःखसे ९ प्राप्तहोतीहै १०तात्पर्य उनको बहुतप्रयत्न करना पड़ताहै,देहाभिमानियोंके वास्ते अन्योपाय श्रीभगवान् अभीइस मंत्रसेआगे सातश्लोकोंमें यानेबारहके श्लोकतक कहेंगे,उसका अनुष्ठान करने से निर्गुणब्रह्म की प्राप्ति उनसे सुलभ होजायगी,निर्गुण ब्रह्म के उपासकों ने भी पहिले वोही अनुष्ठान किया है,जब उनको पर-

मानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति हुई है आत्मनिष्ठाको क्रिया समझना न चाहिये, सगुणब्रह्म के उपसनावत् सगुणब्रह्म की उपासना का फल समझना, सगुणब्रह्म के उपासक का यावत देहमें अभ्यास बनारहै देह इन्द्रियादि के साथ ममता तादात्म्य एकता बनीरहे, विवेकवैराग्यादि साधन न हो तब तक वे निर्गुणब्रह्मकी उपासना के योग्य नहीं, जो निर्गुणब्रह्मकी महिमा सुनकर उस उपासनामें चित्त को आसक्तकरेंगे, उनको प्रथम तो बहुत दुःख होगा, क्योंकि निर्गुणब्रह्म आत्मा अति सूक्ष्म देहेन्द्रियादिसे विलक्षणहै, देहाभिमानी को उसकीप्राप्तिहोना बहुतकठिनहै,वो ब्रह्मको आत्मासे जुदा समझताहै.इसप्रकरणका अर्थ हमने जो लिखाहै सो तो श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्य महाराजजी के भाष्यानुसार और श्रीस्वामी आनन्दगिरिजीने भाष्य पर जो टीका बनाई है और श्रीशंकरानन्दी और मधुसूदनी इत्यादि टीकाओं के अनुसार यथामति लिखा है, कोई २ भेदवादी जानकर या भूलकर. अमर्ष ईर्षादिसे जो इस प्रकरणका अनर्थ करते हैं सो भी संक्षेप करके लिखाजाता है, लीलाविग्रह अतएव मूर्तिमान् ऐसे रामकृष्णादिकी उपासना पुराणोक्त है मन्द मध्यम अधिकारियों के लिये अन्तःकरण की शुद्धि का साधन है, इस हेतुसे साधनों के प्रकरण में जितनी उस उपासनाकीस्तुति महिमा बड़ाई लिखी जाय, वो सब सत्य अर्थात् प्रमाणहै,परंतु वेलोग निर्गुण उपासनाकी प्रत्यक्ष निंदा (असूया) करते हैं, और कोई अर्थका अनर्थ करतेहैं,अक्षरों का अर्थ फेर देते हैं. वे इस प्रकरण का क्या अनर्थ करते हैं सोसुनो. अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र जी से प्रश्न किया कि सगुण ब्रह्म के उपासक श्रेष्ठ हैं या निर्गुणब्रह्मके. श्रीभगवान् ने उत्तर दिया सगुणब्रह्म के उपासक श्रेष्ठ हैं यद्यपि निर्गुणब्रह्म के उपासक भी मुझको

[क]ो प्राप्त होंगे, परन्तु उनको उस उपासना में बहुत दुःख होता है. [क्य]ोंकि देहधारीसे निर्गुणकी उपासना होना बहुत कठिन है और [ज]ो सगुणब्रह्मके उपासक हैं उनको जल्दी बिनाश्रम संसारसे मैं [उ]द्धार करूंगा वे लोग यह अर्थ करते हैं.तन्न अर्थात सो नहीं है अर्थ इस [प्र]करणका क्यों नहीं सो सिद्धान्त कहते हैं. विचारो कि अर्जुनका [प्र]श्न यह है. कि तिनमें योगवित्तम कौनहै, योगवित्तमका अर्थ जो [ह]मने किया, उसको विचारो और जो वे कहते हैं, उसको विचारो. [श्री]भगवान्ने उत्तर दिया कि सगुणब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं, मेरे [म]तमें और निर्गुणब्रह्मके उपासक तो मुझको निश्चयसे प्राप्त हैं ही. [यु]क्ततमका अर्थ जो हमने किया सो विचारो और जो वे करते हैं [स]ो विचारो, यह अर्थ कैसा निकलता है, कि सगुणब्रह्मके उपासक [नि]र्गुण ब्रह्मोपासकोंसे श्रेष्ठ हैं, प्राप्नुवंति इस वर्तमानक्रियाका अर्थ [नि]र्गुणोपासक भविष्यत् अर्थ कर देतेहैं और तू इस शब्दका भी यह [अ]र्थ करते हैं, अर्थात वे भी मुझको प्राप्त होंगे. अब एक तो इस अर्थ [क]ो विचारो, कि वे तो मुझको प्राप्त हैं निश्चयसे और एक इस अर्थ [क]ो विचारो कि वेतो मुझको प्राप्त होंगे,कितना अंतर पड़गया और [अ]र्थका अनर्थ हुआ या नहीं, मुक्तपुरुषोंको साधक कहदिया और तू [इ]स शब्दका तो यह अर्थ छोड़करभी यह अर्थ करदियाकि,परमेश्वरकी [प्रा]प्तिमेंभी यह शब्द संदेह उत्पन्न करताहै,और उसीजगह एव यहशब्द [है],उसका अर्थ निश्चयसे और ही यह होताहै,उसको छोड़देतेहैं, उसका [य]ह अर्थ करतेही नहीं प्रकरणका अर्थ स्पष्ट है.निर्गुणब्रह्मके उपासक [भ]गवतको जीतेही प्राप्त हैं, किसी साधनकी उनको अपेक्षा नहीं,और [स]गुणब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं, उत्तमयोगी साधकका नाम युक्ततमहै [सा]धक योगियोंमें श्रेष्ठ हैं, यह युक्ततमका अर्थ है, निर्गुण उपासकों

से कभी श्रेष्ठ नहीं होसक्ते क्योंकि ज्ञानी लोक भगवद्रूप हैं. चौथे अध्यायमें श्रीभगवान्ने स्पष्ट कहा है, कि ज्ञानी मेरा आत्मा है, तीसरे अध्यायमें यह कहा है कि मैंने दोनों निष्ठा कहीं हैं विरक्तोंके वास्ते ज्ञाननिष्ठा, अज्ञानियोंके लिये कर्मनिष्ठा, यह जो तू बूझता है कि दोनोंमें श्रेष्ठ क्या है. यह प्रश्नही अयोग्य है, क्योंकि अधिकारी प्रति दोनों श्रेष्ठ हैं, अर्थात् ज्ञाननिष्ठाके श्रेष्ठ होनेमें तो कुछ सन्देह है नहीं, क्योंकि वो कर्मनिष्ठाका फल है, मोक्षदाताहै,विषयी बहिर्मुखोंकी निष्टासे कर्मनिष्ठा श्रेष्ठ है, कर्मनिष्ठामें ही उपासनाका अंतर्भाव है जैसा प्रश्न अर्जुनने तीसरे अध्यायमें किया कि ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा इन दोनोंमेंसे कौनसी निष्ठा श्रेष्ठ है. ऐसा ही यह प्रश्न किया कि उपासकोंमें कौन श्रेष्ठहै, प्रश्न अनजानमें होता है अर्जुन ज्ञाननिष्ठाको भी साधन समझा. श्रीभगवान्ने यह तो न कहा कि यह प्रश्न अयोग्य है. परन्तु उसी प्रश्नके अनुसार प्रकरण को पृथक् करके ऐसा उत्तर दे दिया कि किसीने अपनेको निकृष्ट न समझना. पांचवें मंत्रका वे यह अर्थ करते हैं कि निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंको बहुत दुःख होता है, यह भी असत्य. है क्योंकि दुःख साधकोंको होता है. निर्गुणब्रह्मके उपासक साक्षात् परमानन्दको प्राप्त हैं श्रीभगवान्ने उसी मंत्रमें विशेषण दिया कि जिनको देहका अभिमानहै उनको दुःख होता है, विचारो देहाभिमानी ज्ञानी होते हैं या उपासक बिनादेहाभिमान उपासना नहींबनसक्ती.और विनादेहाभिमान गये साक्षात् निर्गुणब्रह्मकी उपसना नहीं बनसक्ती, यह नियम है और जिसको देहाभिमानहै उसको हमज्ञानी.निर्गुणब्रह्मका उपासकनहीं कहते,यहां प्रसंग सच्चेउपासकोंकाहै,जो कोई वेषधारीमें देहाभिमानकी शंका करे तोहम तिलकमालाधारीमें हजारशंका अभक्ति पाखंडकी कर

है विचारो एकतोसाक्षात् परमानन्दकोप्राप्तहैं,परमानन्दरूप आत्मा अपरोक्ष समझ कर उपासना करतेहैं,और एक आनंद की इच्छा करते हुए आनन्दजनक रामकृष्णादिकी उपासना करतेहैं, दृष्टान्त में जानो कि एकतो भोजन कररहाहै और एक भोजन बनारहाहै,दोनों में दुःख किसकोहै और जो सगुण ब्रह्मके उपासक यह कहैं,कि हमारे इष्टदेवभी रामकृष्णादि आनंदरूप मूर्तिमान्हैं,सो नहीं होसक्ता,आनंद तो अमूर्तिमान् सदा निरवयव रहता है,लक्ष्यरूप रामकृष्णादि का आनंदरूपहै सो उनको परोक्षहै और वो ज्ञानियों को अपरोक्षहै और यही भेदभी है. सगुणब्रह्मकी उपासना और निर्गुणब्रह्मकी उपासना में और जो वे यह कहैं कि हमकोभी आनंदरूप अपरोक्ष है तो हम तो उनको ज्ञानी निर्गुण ब्रह्म के उपासक कहेंगे, यही सिद्धान्त है जिनको परमानन्दके अपरोक्ष होनेमें यही परीक्षाहै,कि जिनको देहाभिमान,वर्णाश्रम,जाति इत्यादि दासस्वामिभावका अभिमानहै,भेद और जिनमें प्रतीत होताहै, ऐसे देहाभिमानियोंको परमानंद अपरोक्ष नहींहै.सगुणोपासक निर्गुणोपासनाःका समूल खंडन करतेहैं, क्योंकि परमानन्दकी प्राप्ति उन्होंने केवल सगुणोपासनासे मानी, कि जिसको परमपदमुक्ति कहतेहैं, और निर्गुणउपासना का फल दुःख बताया तो निर्गुणोउपासना आपही खंडित होगई,और निर्गुणोपासक सगुणोपासनाका खण्डन नहीं करते न उनको बुरा कहते हैं,जब सगुणोपासक लोग निर्गुणोपासकोंसे तकरार वाद करने लगते हैं तब निर्गुणोपासक यथार्थ व्यवस्था कह देते हैं, इसी हेतु से यह प्रसंग यहां भी लिखा है, समझो और विचारो कि जो निर्गुण ब्रह्मकी उपासनामें दुःख होता तो वे सगुणोपासनाको छोड़कर क्यों अंगीकार करते, दूसरा यह कि निर्गुणोपासक तो दोनों उपासना का

आनन्द जानते हैं, सगुणोपासक एककाही जानते हैं, जो अनुभव की हुई,वरती हुई बात कहे उसके वाक्य में श्रद्धा होती है, तीसरा यह कि जो ज्ञानी होगा वो बेसन्देह विद्यावान् होगा, विना ब्रह्म-विद्या भगवत् की पहँचान नहीं होसक्ती, चौथा निर्गुणउपासना में प्रवृत्ति नहीं सगुणउपासनामें अत्यन्त प्रवृत्ति है, जहां प्रवृत्ति होगी और जहां द्रव्य, गहने और वस्त्रादिका सम्बन्ध होगा, वहां सब अनर्थ होंगे, पांचवा सगुणोपासक बहुत सगुणोपासना को छोड़ निर्गुणोपासना करने लगते हैं, निर्गुणोपासक ने (कभी न सुना होगा कि उसने) अपनी उपासना छोडकर सगुणोपासना की हो, मूर्खों का यहां प्रसंग नहीं,आनंद को छोड दुःख में कोई नहीं प्रवृत्त होता, दुःख को छोड आनन्द में सब प्रवृत्त होते हैं, इस हेतु से विचार करो कि दुःख किस उपासना में हैं और आनन्द किस उपासना में है, छठवां भगवद्गीता अद्वैतामृतवर्षिणी है, इसमें जो द्वैतसिद्धांत समझते हैं वे अद्वैतामृतवर्षिणी का अर्थ करें, तात्पर्य सगुणोपासना साधन है, निर्गुणोपासना फलहै, इत्यभिप्रायः ॥ ५॥

मू०--येतुसर्वाणिकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्पराः ॥
अनन्येनैवयोगेनमांध्यायंतउपासते ॥ ६ ॥

सर्वाणि १ कर्माणि २ तु ३ मयि ४ संन्यस्य ५ ये ६ मत्पराः ७ अनन्येन ८ योगेन ९ एव १० माम् ११ ध्यायंतः १२ उपासते १३ ॥६॥ अ०—उ० सगुणब्रह्मोपासकों के वास्ते निर्गुणब्रह्मके प्राप्ति-का उपाय अधिकार भेदसे कई प्रकारका कहतेहैं छह श्लोकों में-भग-वद्भक्त जैसा अपना सामर्थ्यजाने सोई उपाय करें, सब कर्मों का१।२ तो ३ मुझमें४संन्यासकरके ५ जो ६ मुझपरायण७अनन्ययोग करके ८।९ निश्चय १० मेरा ध्यान करते हुए ११।१२ उपासना करते

१३ सि० मेरी तिनका मैं उद्धार करूंगा इस श्लोकका अगले
श्लोकके साथ संबंध है ❀ तात्पर्य इसश्लोकमें उन भक्तोंका प्रसंग
कि जिन्होंने इस जन्ममें या पिछलेजन्मोंमें अग्निहोत्रादि कर्मों
अनुष्ठान करके अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है. उन कर्मोंका तो
त्याग करके दिनरात्रि गंगाप्रवाहवत् सगुणब्रह्मका ध्यान करते हैं
ाय परमेश्वरके और कुछ अपनेको आश्रय नहीं जानते,भगवद्भ-
कोही सारसिद्धांत समझते हैं दूसरे मतको बुरा कहना. न भला
हना. यह लक्षण उत्तमसगुणब्रह्मके उपासकोंका है ऐसे भक्तोंको
विद्या द्वारा अनायास शीघ्र परमेश्वर उद्धार करते हैं ॥ ६ ॥

०-तेषामहंसमुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामिनचिरात्पार्थमय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

पार्थ १ मयि २ आवेशितचेतसाम् ३ तेषाम् ४ मृत्युसंसार-
गरात् ५ न ६ चिरात् ७ समुद्धर्ता ८ अहम् ९ भवामि १०॥७॥
०-उ० भक्तोंको धीरज बँधानेके लिये अपनी छातीपर हस्तकमल
कर प्रतिज्ञा करते हैं—कि हे अर्जुन ! १ मुझमें २ लग रहा है
त जिनका ३ तिनका ४ मृत्युसंसारसमुद्रसे ५ जलदी ६ । ७
द्धार करनेवाला ८ मैं ९ हूँ. १० तात्पर्य जो श्रीकृष्णचन्द्रराम-
न्द्रादि सदाशिवादिके भक्त हैं, वे जल्दी संसारसमुद्रसे पार होंगे.
से कोई मणिकी प्रभाको मणि समझकर लेनेके लिये दौडता है,
वा तो मणि न था परन्तु उस जगह सच्चा मणि दीख पड़ता है.
र उस मणिका मिलना सहज होजाता है, इसी प्रकार सगुणब्रह्म
की उपासना करते करते शुद्धसच्चिदानन्दका ज्ञानहोजाताहै भगवत्का
मिलना यहीसंसारसे उद्धारहोनाहै,फिर उसको जन्ममरण नहीं होता,
सो भगवान् यह प्रतिज्ञापूर्ण होनेकेलिये अपना यथार्थ स्वरूप तेरहवें
अध्यायमें निरूपणकरेंगे,जिसके जाननेसे शीघ्र उद्धार होजावे ॥७॥

मू० मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिंनिवेशय ॥
निविशिष्यसिमय्येवअतऊर्ध्वंनसंशयः ॥ ८ ॥

मयि १ एव २ मनः ३ आधत्स्व ४ मयि ५ बुद्धिम् ६ निवेशय ७ अतः ८ ऊर्ध्वम् ९ मयि १० एव ११ निविशिष्यसि १२ न १३ संशयः १४ ॥८॥ अ०–उ० जिनका मन मुझमें आसक्त है उनका मैं उद्धार करूंगा. यह मैंने प्रतिज्ञा की है–इस वास्ते हे अर्जुन ! तू भी मुझमें १ निश्चय २ मनको ३ स्थितकर ४ मुझमें ५ बुद्धिका ६ प्रवेशकर ७इससे ८ पीछे ९ मुझमें १० ही ११वास करेगा तू १२ नहीं १३ संशय १४ सि० है इसवाक्यमें ❀ तात्पर्य वेदकी यह श्रुति है ॥"देहान्तेदेवःपरंब्रह्मतारकंव्याचष्टे" ॥ इति ॥ अर्थात् देहके अन्तसमय परब्रह्म अपने इष्टदेव तारकमंत्रका (ॐकारका) उपदेश करते हैं उसीसमय ब्रह्मज्ञान होकर परमानन्दको प्राप्त होजाता है, यही परमेश्वरमें वास करना है ॥८॥

मू०–अथचित्तंसमाधातुंनशक्नोषिमयिस्थिरम् ॥
अभ्यासयोगेनततो मामिच्छाप्तुंधनंजय ॥९॥

धनंजय १ अथ २ मयि ३ चित्तम् ४ समाधातुम् ५ न ६ शक्नोषि ७ स्थिरम् ८ ततः ९ अभ्यासयोगेन १० माम् ११ आप्तुम् १२ इच्छ १३ ॥ ९ ॥ अ०–उ० पूर्वोक्त उपायसेभी सुगम उपाय करते हैं–हे अर्जुन ! और १ जो २ मुझमें ३ चित्त ४ समाधान करनेको ५ नहीं तू समर्थ है, स्थिर ८ सि० नहीं कर सक्ता है मनको ❀ तो ९ अभ्यास योगकरके १० मेरे ११ प्राप्तिकी १२ इच्छाकर १३ सि० मूर्तिमान् परमेश्वरमें या विश्वरूपमें, जो दिन रातचित्त स्थिर रहे, तो बारम्वार यह अभ्यास करना कि, जब मन दूसरे पदार्थमें जावे उसीसमय वहांसे हटाकर उसी स्वरूपमें समा

नकरे, इसीको अभ्यास योग कहते हैं ॐ तात्पर्य अभ्यास करते रते अवश्य मन एक जगह निश्चल होजाताहै, अभ्यास में जलदी करे असंख्यात वर्षों से मन भगवत्से विमुख होरहा है अब भी दो चार वर्षमें अभ्यास के बलसे भगवत् सन्मुख होजाय तोभी ड़ी बात है, अभ्यास में प्रथम दुःख प्रतीत होता है दुःख समझ-र अभ्यास नहीं छोड देना ॥ ९ ॥

मू०-अभ्यासेऽप्यसमर्थोसिमत्कर्मपरमोभव ॥
मदर्थमपिकर्माणिकुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥१०॥

अभ्यासे १ अपि २ असमर्थः ३ असि ४ मत्कर्मपरमः ५ भव मदर्थम् ७ अपि ८ कर्माणि९कुर्वन् १० सिद्धिम्११ अवाप्स्यसि २॥ १० ॥ अ०-उ०-उससे भी सुगम उपाय कहते हैं-अभ्यास १ भी २ असमर्थ ३ तू है ४ सि० तो ॐ मत्कर्मपरायण ५हो ६ अर्थात् साधुओं की शिर आंखों से टहल करना, दिनरात्रि नकी सेवा में लगे रहना, शिवालय केशवालय बनाना, मंदिरों में झारी देना, लीपना, ठाकुर सेवा के बर्तन मांजना, शुद्धजल अपने हाथ से लाना, बहुत क्रिया के साथ रसोई बनाना, प्रथम परमेश्वर को भोग लगाना और ढूंढकर साधु को जिमाना. ऐसे ऐसे बहुत साधुमहात्मा बतासक्ते हैं ऐसे कर्मों में तत्पर होना चाहिये ६ सि० श्रीभगवान् कहते हैं कि॰मेरे अर्थ ७ भी८कर्मों को ९ करता या सि० अन्तःकरणशुद्धि द्वारा ज्ञान को प्राप्त होकर ॐमोक्ष ११ तू प्राप्त होगा १२ तात्पर्य भगवद्भजनसंबन्धी और भग-सेवासम्बन्धी जो कर्म है, वे सब अन्तःकरण को शुद्ध कर ते हैं। १० ॥

मू०-अथैतदप्यशक्तोसिकर्तुंमद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागंततःकुरुयतात्मवान् ॥ ११ ॥

अथ १ एतत् २ अपि ३ कर्तुम् ४ अशक्तः ५ असि ६ ततः ७ मद्योगम् ८ आश्रितः ९ सर्वकर्मफलत्यागम् १० कुरु ११ यतात्मवान् १२ ॥ ११ ॥ अ०—उ०—उससे भी सुगम उपाय कहते हैं—जो १ यह २ भी ३ करने को ४ असमर्थ ५ है तू ६ तो ७ भक्तियोगका ८ आश्रय करके ९ सब कर्मों के फल का त्याग १० कर तू ११ मन को जीतकर १२ अर्थात् अब तू फिर संकल्प विकल्प कुछ मतकर, जो कुछ नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित्तादि कर्मों का अनुष्ठान हो सके वो ही कर, उसके फल में आसक्ति मतकर यह समझ कि,मैं तो तन मन धन करके भगवत् के शरण हूँ मैं तो उनका दास हूँ, वे महाराज अन्तर्यामी हैं जैसा चाहें मुझसे शुभाशुभ कर्म करावें और जैसा चाहें उन कर्मों का फल दें मुझको तो सिवाय परमेश्वर के और कुछ किसी तरह का आश्रयनहीं परंतु यह प्रकटरहे कि,धनादि के प्राप्ति के लिये जहां तक होसके राजादि मनुष्यों का दास जान बूझकर न बने, व्यवहारका भार तो परमेश्वर को सौंप देना, और परमार्थमें मोक्षके लिये जहांतक बनसके प्रयत्नकरनाचाहिये उलटाऐसा नहीं समझना कि,परलोकका भार तो परमेश्वर को सौंप देना,अर्थात् यह समझना कि,परमेश्वर जो चाहे सो करे, मेरे करने से क्या होता है, यह मोक्षमार्ग में नहीं समझना, व्यवहार में यह समझना कि मेरे करने से कुछ नहीं होता,जो प्रारब्ध में लिखागयाहै वोही होगा, मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ मुख्य है, व्यवहार में प्रारब्ध मुख्य है,इत्याभिप्रायः १२ ॥ ११ ॥

मू०—श्रेयोहिज्ञानमभ्यासज्ज्ञानाद्ध्यानंविशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥ १२ ॥

अभ्यासात् १ ज्ञानम् २ श्रेयः ३ हि ४ ज्ञानात् ५ ध्यानम् ६ विशिष्यते ७ ध्यानात् ८ कर्मफलत्यागः ९ त्यागात् १० अनन्तरम् ११

शान्तिः १२॥१२॥अ०–उ०सब कर्मों के फल का त्याग इस हेतु से श्रेष्ठ है–अभ्यास से १ ज्ञान २ श्रेष्ठहै ३ निश्चय से ४ शास्त्रीय ज्ञान से ५ ध्यान ६ विशेष हैं ७ ध्यान से ८ कर्मों के फलका त्याग९ १० श्रेष्ठ है॥त्याग से १० पीछे११शांति१२ सि० होती है॥ टी० जना भले प्रकार वेदों का तात्पर्य जाने हुए जो किसी कर्मके अनुष्ठान में अभ्यास करना, उससे प्रथम वेदों का तात्पर्य समझना जानना यह ज्ञान श्रेष्ठ है २। ३. क्योंकि जिसको परोक्ष ज्ञान यथार्थ होगया वो अवश्य ही कभी न कभी उसका अनुष्ठान भी करेगा. अविद्यावान्के अनुष्ठान करनेसे विद्यावान् विना अनुष्ठान किये भी श्रेष्ठहै क्योंकि वो एक मार्ग पर है अविद्यावान् मूर्खको कहां विचारहै कि मुझको किस कर्मका अधिकार है.जो उसको प्रिय लगताहै वोही करने लगता है.इसी हेतु कर्मों का फल उनको प्रत्यक्ष नहीं होता और पंडित ज्ञानियों से अर्थात् परोक्षज्ञानियोंसे विद्यावान् रामकृष्णादि के ध्यानकरनेवाले श्रेष्ठहैं६।७मूर्तिमान् परमेश्वरके ध्यान करनेवालों से भी जो विद्यावान्कर्मोंका निष्काम अनुष्ठान करतेहैं अर्थात् श्रौत, स्मार्त कर्म और भगवदाराधना और हिरण्यगर्भ सूर्यादिकी उपासना औरभी भगवत्संबन्धी जो कर्म इन सबकर्मोंके फलका त्याग करतेहैं वे श्रेष्ठहैं,९क्योंकि शांति कर्मोंका फल त्यागने से होतीहै.विनात्याग संसारसे चित्त उपराम नहीं होता, लौकिक और वैदिक दोनोंकर्मोंके फल से जब चित्त उपराम होताहै दोनों कर्मों के फलसे जब वैराग्य होताहै तव शान्ति और उपरति होती है,१२वैराग्य और उपरति ये दोनों ज्ञाननिष्ठा के अंतरंग मुख्य साधन हैं और फिर ज्ञान निष्ठ होकर कृतार्थ होता है अर्थात् परमानन्दको प्राप्त होजाता है॥१२॥

मू०-अद्वेष्टासर्वभूतानांमैत्रःकरुणएवच॥
निर्ममोनिरहंकारः समदुःखसुखःक्षमी ॥ १३ ॥

सर्वभूतानाम् १ अद्वैष्टा २ मैत्रः३ करुणः ४ एव ५ च ४ निर्ममः ७ निरहंकार ८ समदुःखसुखः ६ क्षमी १० ॥ १३ ॥ अ०-उ० शान्तपुरुष और ज्ञाननिष्ठ महापुरुषों के लक्षण श्रीभगवान् सात श्लोकों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहेंगे--सि० ज्ञानीजन ❀ सब भूतों के १ सि० साथ इसप्रकार वर्तते है जो कि आपसे जातिरूप और धनादिमें बडे हैं) ❀ द्वेष नहीं करते सि० बहु वचन आदरके लिये लिखते हैं बरावर के साथ ❀ मित्रता ३ सि० रखते हैं, छोटों पर❀ दयाही ४।५।३ सि० करते हैं, यह चाहते हैं कि जैसे हम विद्यावान् धनवाले हैं, परमेश्वर करे यह भी ऐसे होजावें और जहां तक होसके यथाशक्ति उनके ऊपर उपकार करते हैं और दुष्टजन चोर जार पापी जनोंकी उपेक्षा करते हैं अर्थात उनको न बुरा कहना न भलाकहना न उन्हों पर उपकार करना न अपकार करना "खलपरिहरियश्वान कीनांई" दुष्टोंको कुत्ते के सदृश समझते हैं कुत्तेको टूक डालने में क्षति नहीं इत्याभिप्रायः ।।पुत्र,स्त्री,मित्र धन औरमन्दिरइत्यादिमें❀ ममतारहित ७ सि० यह समझतेहैं कि शरीर और मन यह भी तो हमारे हैंनहीं फिर पुत्रादि हमारे क्याहोंगे ऐसाहोकर फिर❀अहंकार रहित८सि०कभी वाणीसे तो क्या कहनाकि, हम ऐसेहैं चित्त मेंअनुसंधान भी नहीं रखना और❀सम हैं दुःखसुख जिनको६सि० यही समझते हैं कि सुख और दुःख दोनों अनित्य हैं जैसे दुःख विना सङ्कल्प और विना यत्न आता है ऐसा ही सुख आताहै और

[जैस]ा सुख चलाजाता है वैसाहीं दुःख भी चलाजाता है दुःखकी [निवृ]त्तिकेलिये और सुखकी प्राप्तिके लिये कुछ यत्न नहीं करते और [ज]ो कोई बे प्रयोजनभी अपने स्वभावके अनुसार उनको वाणी और [श]रीरादिकरके दुःख देते हैं उनको ❀ क्षमा करते हैं १० तात्पर्य [य]ह समझते हैं कि यह प्रारब्धका भोग है आध्यात्मिक आधिदैविक [त]ापभी तो सहने पड़ते हैं जैसे उनको सहतेहैं, ऐसेही इसको सहना [चा]हिये, उनही तीनों तापोंमें एक यहभी आधिभौतिक ताप है, हमारे [ही] कर्मोंका फल है, कोई दुःख देनेवाला नहीं हमारा मनही कारण दुःख सुख देनेमें, ऐसे क्षमावान् ॥ १३ ॥

मू०-संतुष्टःसततंयोगीयतात्मादृढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तःसमेप्रियः ॥ १४ ॥

सततम् १ सन्तुष्टः २ योगी ३ यतात्मा ४ दृढनिश्चयः ५ मयि ६ अर्पितमनोबुद्धिः ७ यः ८ मद्भक्तः ९ सः १० मे ११ प्रियः १२ १४ ॥ अ०-सदा १ सन्तुष्ट २ अर्थात् कभी किसी कालमें किसी [प]दार्थकी चाह न होना सदा छके रहना २ अष्टांगयोगवान् ३ [अ]र्थात् यमनियमादिपरायण ३ जीता हैं स्वभाव जिसने ४ तात्पर्य [पू]र्वावस्थामें जो प्राकृतवत् स्वभाव था उसको जीतकर सौम्यशान्त [स्व]भाव करलिया हैं जिसने उसको यतात्मा कहते हैं ४ दृढनिश्चय [है] जिसका ५ सि० आत्मामें वेदशास्त्रोंमें कभी जिनको संशय [अथ]वा विपर्ययका उदय होता ही नहीं वेदोक्त आत्माको शुद्ध [च]िदानन्द बेसन्देह जानता है ५ ❀ मुझ आत्मामें ६ अर्पित [कि]या है मन और बुद्धि जिसने ७ अर्थात् अन्तःकरणकी वृत्ति-[यों]को आत्माकार करदिया है जिसने ७ सि० ऐसा ❀ जो ८ मेरा [भक्त] ९ सो १० मुझको ११ प्यारा १२ सि० चौथे अध्यायमें

श्रीभगवान्‌ने कहा था कि, ज्ञानी मुझको बहुत प्यारा है, उसीका इन सात श्लोकोंमें उपसंहार करते हैं. जिस श्लोकमें प्रिय यह पद नहीं तो भी वहां समझलेना चाहिये, तेरहवें और अठारहवें मंत्रमें यह पद नहीं और पांचों मन्त्रोंमें है ❀ ॥ १४ ॥

मू०-यस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचयः॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयःसचमेप्रियः ॥ १५ ॥

यस्मात् १ लोकः २ न३उद्विजते ४ यः ५ च ६ लोकात्७न ८ उद्विजते ९ हर्षामर्षभयोद्वेगैः १० च ११ यः १२ मुक्तः १३ सः १४ मे १५ प्रियः १६ ॥ १५ ॥ अ०-जिससे १ जीव २ सि० मात्र❀ न ३ उद्वेगकरे ४ अर्थात् किसी प्रकार जिससे अपनी हानि समझकर चित्तमें कोई प्राणी क्षोभ न करे ४ और जो ५ । ६ किसी जीवसे ७ न ८ उद्वेग करे ९ हर्ष अमर्ष भय और उद्वेग इन चारोंसे १० । ११ जो १२ छूटा हुआ १३ सो १४ मुझको १५ प्रिय १६ सि० है ❀ टी० इष्टवस्तुके देखने सुननेसे रोमांचका खडा होजाना, मनमें रंजन होनेलगना, इसको हर्ष कहते हैं. दूसरेको विद्यावान, वा रुपयेवाला देखकर और सुनकर मन मैला या उदास होजाना, इसको अमर्ष कहते हैं. किसी प्रकारकी मनमें शंका होना उसको भय कहते हैं, चित्तका एक जगे स्थिर न होना उसको उद्वेग कहते हैं, तात्पर्य ऐसा व्यवहार (चालचलन) जिन महापुरुषोंका है कि जिनसे कोई किसीप्रकार बुरा न माने वेही भगवत्‌को प्यारे हैं ॥१५॥

मू०-अनपेक्षःशुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः॥
सर्वारंभपरित्यागीयोमद्भक्तःसमेप्रियः ॥१६॥

अनपेक्षः १ शुचिः२दक्षः३उदासीनः४गतव्यथः ५ सर्वारंभपरित्यागी ६ यः ७ मद्भक्तः ८ सः ९ मे १० प्रियः ११॥१६॥अ०-जो

अपने आप प्राप्तहों उनकी भी इच्छा नहीं करता उपेक्षा करता पवित्र २ सि० रहते हैं, बाहर भीतरसे बाहर जलमृत्तिकादि से शुद्ध रहना वस्त्रादि निर्मल रखना भीतर रागद्वेषादि नहीं रखना ❀ चतुर ३ सि० व्यवहार और परमार्थके बातोंमें व्यवहारके समय व्यवहारकी बात करना परमार्थके समय परमार्थकी प्रथम व्यवहार शुद्ध करना चाहिये, तब परमार्थ सिद्ध होता हैं व्यवहारकी जिनको समझ नहीं, उनका परमार्थ कभी नहीं सुधरेगा. परमार्थमें जीवका कुछ नहीं विगडा व्यवहार बिगडगया है उसीको सुधारना चाहिये, व्यवहारमें परमार्थ और परमार्थमें व्यवहार नहीं लाते हैं चतुरमहात्मा ❀ उदासीन ४ अर्थात् किसी मतका अन्य मतका खण्डन वा प्रतिपादन नहीं करना आनन्द मत रखना जिसमें सबका सम्मत है ४ मनमें किसीप्रकारका खेद नहीं रखते जितने इसलोकके व परलोकके निमित्त आरम्भ हैं उन सबका त्याग करनेवाला ६ सि० ऐसा ❀ जो ७ मेराभक्त ८ सो ९ मुझको १० प्यारा ११ सि० है ॥ १६ ॥

मू०-योनहृष्यतिनद्वेष्टिनशोचतिनकांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागीभक्तिमान्यःसमेप्रियः॥१७

यः १न २ हृष्यति ३ न ४ द्वेष्टि ५ न ६ शोचति ७ न ८ कांक्षति ९ शुभाशुभपरित्यागी १० यः ११ भक्तिमान् १२ सः १३ मे १४ प्रियः १५ ॥ १७ ॥ अ०-जो १ न २ हर्ष करता है ३ न ... शुभ और अशुभ इन दोनोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका १० सि० ऐसा ❀ जो ११ भक्तिमान् १२ सो १३ मुझको १४ प्यारा १५ टी० इष्टपदार्थके मिलनेसे आनन्द नहीं होता अनिष्ठ

पदार्थोंसे द्वेष नहीं करता, पिछले बातोंका शोच नहीं करता, को कुछ चाहता नहीं, शुभ और अशुभ ये दोनों पदार्थ अज्ञा कार्य हैं. दोनोंको अनित्य समझकर दोनोंको त्यागकर शुद्धसच्चि नन्द स्वरूप आत्मामें भक्ति (प्रीति) जो रखता है श्रीभग कहते हैं कि ऐसा महापुरुष मुझको प्रिय है शुभ वैदिकमार्ग त्याग उनके वास्ते अच्छा है कि जो आत्मनिष्ठ हैं जैसे लक्षण कहे ये भी सब हों बिना ज्ञान शुभमार्गको त्यागदेना मूर्खोंका है, बिना ज्ञान हुए शुभमार्गको कभी नहीं त्यागना और ज्ञान पीछे सिवाय आत्माके किसीको उत्तम शुभ वा श्रेष्ठ नहीं समझ सबको त्यागदेना ॥ १७ ॥

मू०-समःशत्रौचमित्रेचतथामानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषुसमःसंगविवर्जितः ॥१८

शत्रौ १ च २ मित्रे ३ च ४ समः ५तथा ६ मानापमानयोः शीतोष्णसुखदुःखेषु ८ समः ६ संगविवर्जितः १० ॥ १८ ॥ अ० शत्रु में और मित्रमें । १।२।३।४ बराबर ५ तैसेही ६ मानमें अ अपमानमें ७ सि० समान ❀ शीत गरमीमें और दुःख सुखमें समान ६ सि० शरीर, इंद्रिय, प्राण और अन्तःकरण इनका ❀ संग उस करके वर्जित १०तात्पर्य शरीर,इंद्रिय,प्राण और अन्त करण इनके साथ जब आत्माका संग होता है तब आत्मा शरीरादिमें आसक्ति होती हैं, फिर शीतादिमें इष्टानिष्टकी प्रा होती है. शत्रुमित्रके समतामें संगवर्जित यही हेतुहै, आत्मनिष्ठ महापुरुष हैं वे शरीरादिमें अभ्यास नहीं रखते, इसी हेतुसे श मित्रादिमें उनकी विषमता दूर होजाती है. जैसे उनको मानादि ही अपमानादि मानापमानादि यह सब अन्तःकरणका धर्म

आत्मनिष्ठ अपने को सबसे पृथक् जानते हैं. बिना आत्मनि
देहाभिमानियों से पूर्वोक्त लक्षणों का अनुष्ठान नहीं होसक्ता यह
लक्षण ज्ञाननिष्ठों में ही बन सक्ते हैं ॥ १८ ॥

मू०-तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनीसंतुष्टोयेनकेनचित् ॥
अनिकेतःस्थिरमतिर्भक्तिमान्मेप्रियोनरः॥

तुल्यनिंदास्तुतिः १ मौनी २ येनकेनचित् ३ सन्तुष्टः ४
केतः ५ स्थिरमतिः ६ भक्तिमान् ७ नरः ८ मे ९ प्रियः १०॥

भ०—समान है निन्दा और स्तुति जिसको १ चुपरहना या
शास्त्र का मनन करना उसको मौनी कहते हैं २जो पदार्थ प्रा
वशात विना यत्न थोड़ा बहुत प्राप्त होजावे. उसी करके ३
मानना ऐसे पुरुष को संतुष्ट कहते हैं ४ एक जगह रहनेका
नहीं करना उसको अनिकेत५सि॰कहते हैं, अपनेस्वरूपमें ❀
है बुद्धि जिसकी ६ सि० ऐसा भक्तिमान् ७ पुरुष ८ मुझकोध
है १० "येनकेनचिदाच्छन्नोयेनकेनचिदाशनः॥यत्रकुत्रचशायीस
देवाब्राह्मणंविदुः" ॥ महाभारत का यह श्लोकहै तात्पर्य पूर्वोक्तल
ब्रह्म निष्टज्ञानी भक्तों के हैं, अर्जुनने बूझाथा कि अक्षरब्रह्म के
सक कैसेहैं, श्रीमहाराजने उत्तरदिया कि ऐसे होतेहैं ऐसे नहींहो
रासलीलामें तमाशा तो आप देखें राधाकृष्णको बेसमझलोग(
मतवाले) बुराकहैं और अच्छे पदार्थों का मोहनभोग नाम
आपही चट करजाना साधु अभ्यागतको न देना इसअध्यायमें
के लक्षण श्रीमहाराजने कहे हैं जिसमें ये होंगे वोही भक्त भग
प्राप्त होगा अन्य नहीं, इत्याभिप्रायः ॥ १९ ॥

मू०-येतुधर्म्यामृतमिदंयथोक्तंपर्युपासते ॥
श्रद्दधानामत्परमाभक्तास्तेतीवमेप्रियाः ॥

मत्परमाः १ ये २ श्रद्दधानाः ३ भक्ताः ४ इदम्५धर्म्यामृतम् ६ यथा ७ उक्तम् ८ पर्युपासते ९ ते १० तु११अतीव(१२)व१३ मे१४ प्रियाः १५ ॥२०॥ अ०—मैं हूं परेसेपरे जिनको ऐसे १ जो २ श्रद्धावान् ३ भक्त४ इस धर्मकरके युक्त ऐसे इस अमृत को ५।६ जैसे ७ कहाहै ८ सि० पीछे मैंने उसका ❀ अनुष्टान करते हैं वे १० सि० भक्त तो ११बहुतही १२।१३ मुझको १४ प्यारे हैं १५ अर्थात् भक्त जिनका नामभी है जो नाममात्र भक्तहैं वेभी भगवत् को प्यारे हैं और अद्वेष्टादि लक्षणों करके जो सम्पन्नहैं वे तो अत्यन्त प्यारेहैं। "प्रियोहिज्ञानिनोत्यर्थमहंसचममप्रियः" ॥ १५ तात्पर्य यह जो सातवें अध्यायमें उपक्रमकियाथा उसी का उपसंहार है पुनरुक्ति नहीं सब धर्मों कसार सिद्धान्त अमृतरूप यह उपदेश है, विचारना चाहिये कि यह लक्षण अनिकेतमौनादि निवृत्तमार्गवाले ज्ञाननिष्ठ संन्यासी महापुरुषों में पाते हैं या जो घंटा घडयाल बजातेहैं, नृत्य देखाते हैं, उनमें पातेहैं उदाहरणके वास्ते श्रीस्वामी पूर्णाश्रमजीमहाराजसंन्यासी परमहंस ज्ञाननिष्ठ नग्न मौनहोकर श्रीभागीरथी गंगाजीके भीतरे ही विचरते रहतेहैं जितने लक्षण सातश्लोकों में श्रीभगवान्ने कहे सब उनमहाराज में प्रत्यक्ष हैं जो चाहे दर्शन करो,(चैत्र सुदी नौमी संवत् १९२१ में इस श्लोक का अर्थ मुझ आनंदगिरिने लिखा है श्रीमहाराज पूर्वोक्त परमहंसजी विद्यमान हैं और भी बहुत महात्मा हैं. सिवाय संन्यासियों के कोई तो बतावे कि ऐसा कौन हुआ है, पहले भी और अब आंखों से तो कौन देख सक्ताहै, इतनेपर भी जो विरक्तों का माहात्म्य न समझेगा तो बेसंदेह प्रवृत्तलोकों के पंजे में फंसेगा ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १०॥

—*—

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३

श्लो० अर्जुनउवाच—प्रकृतिंपुरुषंचैवक्षेत्रंक्षेत्रज्ञमेवच ॥
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानंज्ञेयं च केशव ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच. केशव १ प्रकृतिम् २ पुरुषम् ३ च ४ एव ५ क्षेत्रम् ६ क्षेत्रज्ञम् ७ एव ८ च ९ ज्ञानम् १० ज्ञेयम् ११ च १२ एतत् १३ वेदितुम् १४ इच्छामि १५ ॥ १ ॥ यह श्लोक किसी राजाने बनाकर श्रीभगवद्गीता की पोथियों में लिखवादिया है जो अनजान हैं वे इस श्लोक को भी व्यासकृत समझते हैं, व्यासजी ने सातसौ ७०० श्लोक बनाये हैं यह मिलकर सातसौएक होजाते हैं, अर्थ इसका यह है कि–हे केशव ! १ प्रकृति २ और पुरुष ३ । ४।५। क्षेत्र ६ और क्षेत्रज्ञ ७ । ८ । ९ ज्ञान १० और ज्ञेय ११ ।१२ । इनके १३ जानने की १४ इच्छा करता हूं मैं १५ तात्पर्य क्षेत्रादिपदों का अर्थ जानना चाहता हूँ, इस प्रश्न की कुछ आकांक्षा न थी क्योंकि श्रीभगवान् ने बारहवें अध्याय में आपने यह कहा है कि भक्तों का मैं शीघ्र उद्धार करूंगा, जो इस प्रश्न में विना उनके अर्थ जाने ज्ञाननिष्ठा नहीं होसक्ती और विना ज्ञाननिष्ठा के संसार से उद्धार नहीं होता, इस वास्ते ये सब पदार्थ श्रीमहाराज ने विना प्रश्न कहे जो टीकासहित पोथी हैं उनमें यह श्लोक नहीं और बहुत विद्वान् मूल पोथियों में भी नहीं लिखते, कोई कोई मूल पोथियों में लिख देते हैं, इस यंत्र के अनुसार सातसौ श्लोक गीता के अठारह अध्यायों में हैं ॥ १ ॥

अध्याय	१	२	३	४	५	६	७	८	९	जोड़	सं० जोड़ ७००
श्लो. सं.	४७	७२	४३	४२	२९	४७	३०	२८	३४	३७२	
अध्याय.	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	जोड़	
श्लो. सं	४२	५५	२०	३४	२७	२०	२४	२८	७८	३२८	

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ इदंशरीरंकौंतेयक्षेत्रमित्यभि-
धीयते ॥ एतद्योवेत्तितंप्राहुःक्षेत्रज्ञइतितद्विदः॥१॥
श्रीभगवान् उवाच, कौंतेय १ इदम् २ शरीरम् ३ क्षेत्रम् ४ इति ५ अभिधीयते ६ यः ७ एतत् ८ वेत्ति ९ तम् १० तद्विदः ११ क्षेत्रज्ञ १२ इति १३ प्राहुः १४॥ १ ॥ अ०-उ०-बारहवें अध्यायमें श्रीभगवान् ने कहा था कि मैं भक्तों का उद्धार संसार से शीघ्र करूंगा जो कि विना आत्मज्ञान के उद्धार नहीं होता इसवास्तेइस अध्यायमें ब्रह्मज्ञान साधन सहित कहते हैं-हे अर्जुन! १ इस २ शरीरको ३ क्षेत्र ४।५ कहते हैं ६ जो ७ इसको ८ जानता है ९ तिसको १० तिनके ज्ञाता ११ अर्थात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञके जानने वाले ११ क्षेत्रज्ञ १२।१३ कहते हैं १४ तात्पर्य स्थूलशरीर क्षेत्र खेत के बराबर है, पाप पुण्य इसमें उत्पन्न होतेहैं, इसी हेतु से इसको क्षेत्र कहतेहैं, जो इसका अभिमानी उसको क्षेत्रज्ञकहतेहैं, क्षेत्रज्ञ बास्तवमें शुद्ध, सच्चिदानंद असङ्ग, नित्य मुक्त ऐसा है, अविद्योपहित होकर व्यष्टि स्थूलसूक्ष्म कारणशरीरों का अभिमानी बनकर विश्व, तैजस और प्राज्ञ कहाजाता है और मायो-पहित होकर समष्टिस्थूलसूक्ष्म कारण शरीरोंका अभिमानी बनकर वो विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर कहाजाता है और वोही माया अविद्या रहित शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त है अध्यारोपापवाद न्याय करके सिद्धान्त यही है ॥ १ ॥

मू०-क्षेत्रज्ञचापिमांविद्धिसर्वक्षेत्रेषुभारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानंमतंमम ॥२॥
भारत १ सर्वक्षेत्रेषु २ क्षेत्रज्ञम् ३ माम् ४ च ५ अपि ६ विद्धि ७ यत् ८ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ९ ज्ञानं १० तत् ११ ज्ञानम् १२ मम १३ मतम् १४॥२॥ अ०-उ०तत् और त्वम् इन दो पदोंका अर्थ पिछले

र्थमें पृथक् पृथक् निरूपण किया अब महावाक्यार्थ निरूपण करते
श्रीभगवान् स्पष्ट जीव और ईश्वर इनकी लक्ष्यार्थमें एकता दिखाते
-हे अर्जुन! १ सब क्षेत्रोंमें २ क्षेत्रज्ञ ३ मुझको ही ४। ५। ६
त तू ७ सि० और जगे मत ढूंढ इसप्रकार ❀ जो ८ क्षेत्र
त्रज्ञका ९ ज्ञान १० सो ११ ज्ञान १२ मेरा १३ मत सि० है.
तात्पर्य तत और त्वम् इन पदोंके लक्ष्यार्थका ग्रहण करके वाच्या-
को त्यागकर आधेय अधिकरणभाव, विशेष्यविशेषणभाव, लक्ष्य-
क्षणभाव इन तीन सम्बन्ध करके और भागत्यागलक्षणाकरके सो
देवदत्त है. इसलौकिकवाक्यवत् क्षेत्रज्ञ और माम् इन पदोंकी
क्ष्यार्थमें एकताहै. इसबातको इसजगह स्पष्ट करनेमें बहुत विस्तार
ता है. आनन्दामृतवार्षिणीके द्वितीयाध्यायमें विशेष लिखा है.
दांतशास्त्रके जितने ग्रन्थ हैं सब इसीकी टीका हैं ऐसा ज्ञान जिस-
हुआ वोही ज्ञानी परमपदका भागी होगा, इसलोकमें अनेक
या हैं. सब लोक किसी न किसी विद्याके जाननेवाले नाई, धोबी,
त्यादि एक प्रकारके ज्ञानी हैं बिना ब्रह्मविद्याके सब लौकिक विद्या
गोंको रिझानेके लिये शिश्नोदरकी तृप्तिके लिये हैं जिनका फल
म (श्रम) है जो इसशरीरमें सच्चिदानन्दक्षेत्रज्ञ है यही वासु-
है आप श्रीमहाराज अपने मुखारविन्दसे कहते हैं॥ २॥

मू०-तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्चयद्विकारियतश्चयत॥
सचयोयत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु॥३॥

तत् १ क्षेत्रम् २ यत् ३ च ४ यादृक् ५ च ६ यद्विकारि ७
८ च ९ यत् १० सः ११ च १२ यः १३ यत्प्रभावः १४
१५ तत् १६ समासेन १७ मे १८ शृणु १९॥ ३॥ अ०-उ०
द्वितीय मन्त्रोंमें जो संक्षेप करके कहा है उसीका विस्तार

करके फिर श्रीभगवान् कहे जाते हैं. महाराजने यह जाना कि अभी अर्जुनके समझमें नहीं आया, इसवास्ते अर्जुनसे फिर कहते हैं ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंके अपेक्षासे फिरभी संक्षेप ही करके कहते हैं, श्रीभगवान् इस मंत्रमें प्रतिज्ञा करते हैं, कि हे अर्जुन! इतने शब्दोंका अर्थ तुझसे कहूंगा वे शब्द ये हैं-सो १ स्थूल शरीर २ जड़ दृश्य स्वभावाला ३ और ४ इच्छादिधर्मवाला ५ और ६ इन्द्रियादिविकार करके युक्त ७ प्रकृतिपुरुषके संयोगसे होता है ८ और ९ स्थावरजंगम भेदकरके भिन्न १० क्षेत्रज्ञ ११। १२ स्वरूपसे १३ और अचिन्त्यैश्वर्ययोगशक्तिआदि प्रभावकरके युक्त १४। १५इन सबका अर्थ१६संक्षेपसे १७मुझसे१८सुन१९॥३॥

मू०-ऋषिभिर्बहुधागीतंछन्दोभिर्विविधैःपृथक्॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥ ४॥

ऋषभिः १ बहुधा २ गीतम् ३ छन्दोभिः४विविधैः५ पृथक् ६ हेतुमद्भिः७ ब्रह्मसूत्रपदैः ८ च ९ एव १० विनिश्चितैः ११॥४॥

अ०-उ० जो ज्ञान मैं तुझसे कहता हूँ, यही ज्ञान अनादि वेदोक्त है और विद्वानोंने भी यही निश्चय किया है-ऋषीश्वरोंने बहुत प्रकारसे २ सि० इसी ज्ञानको ※ निरूपण किया है ३ भेदोंने ४ सि० भी पृथक् पृथक् करके ५ पृथक् ६ सि कहा हैं और※हेतुवाले ब्रह्मसूत्र पदों करके ७। ८।९।१० कहागयाहे कैसेहैं वे सूत्रपदकि※बहुतभले प्रकार निश्चय कियेगये हैं११टी० वसिष्ठादिने ध्यानधारणादिसाधनोंसे और प्रकृतिपुरुषके विवेकसे ब्रह्मकी प्राप्तिहोती है. इसप्रकार ऋषियोंनेभी निरूपणकियाहे और कर्म ही फलदाताहे. यज्ञादिकरनेसे, देवताका पूजन करनेसे, परमपद स्वर्गकी प्राप्ति होतीहे बहुत जगह वेदोंमें इसप्रकार निरूपण कियाहे और व्यासजीने ब्रह्मसूत्रपदोंका संक्षेपकरके

बनायेहैं,कि जिनसे यथार्थ प्रभुका रूप जानाजाता है. ब्रह्म जाना तटस्थलक्षणा और स्वरूपलक्षणाकरके जिनसे उनको ब्रह्मसूत्र हैं ॥ ४ ।

मू०-महाभूतान्यहंकारोबुद्धिरव्यक्तमेवच ॥
इन्द्रियाणिदशैकंचपंचचेंद्रियगोचराः ॥५॥

महाभूतानि १ अहंकारः २ बुद्धिः ३ अव्यक्तम् ४ एव ५ च दशइन्द्रियाणि ७। ८ एकम् ९ च १० पंच ११ च १२ इन्द्रियगोचराः १३ ॥ ५ ॥ अ०-उ० क्षेत्रका लक्षण दो श्लोकोंमें कहते आकाशादिपंच पंचकृत १ भूतोंका कारण २ महत्तत्त्व ३ मूला-४।५।६ दश इंद्रिय ७। ८ एक मन ९ और १० इंद्रियों विषय शब्दादिपंच ११। १२। १३ सि० इन सबका भेद और आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीय अध्यायमें लिखा है ❀ ॥ ५ ॥

मू०-इच्छाद्वेषःसुखंदुःखंसंघातश्चेतनाधृतिः ॥
एतत्क्षेत्रंसमासेनसविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

इच्छा १ द्वेषः २सुखम्३दुःखम् ४ संघातः ५ चेता ६धृतिः ७ ८ क्षेत्रम् ९ समासेन १० सविकारम्११ उदाहृतम् १२॥ ६ ॥ -इस लोक वा परलोकके पदार्थोंकी-चाह १ अपने इष्टमें जो कारी प्रतीत होताहै उसमें जो अन्तःकरणकी वृत्ति२ सुख ३सि० प्रकारका अठारहवें अध्यायमें निरूपण होगा❀विक्षेप(प्रतिकूल) को दुःख कहते हैं४स्थूल शरीर ५चेतना ६अर्थात ज्ञानात्मिका अन्तःकरणकीवृत्ति,कि जिसके प्रकट होनेसे अनर्थोंकी निवृत्तिहोजा- ६संसार कार्यकारणसहित अत्यन्ताभावको प्राप्त होजाता है ६ ७सि०तीनप्रकारकी अठारहवें अध्यायमें निरूपण होगी ❀ यह

८ क्षेत्र ६ संक्षेपकरके १० विकारवान् ११ कहा है, १२ तात्पर्य क्षेत्र विकारवान है, क्षेत्रज्ञ निर्विकार है. मूलज्ञानसे क्षेत्रज्ञ भी बिकारवान प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

मू०—अमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

अमानित्वम् १ अदंभित्वम् २ अहिंसा ३ क्षांतिः ४आर्जवम् ५ आचार्योपासनम् ६ शौचम् ७ स्थैर्यम् ८ आत्मविनिग्रहः ६ ॥ ७ ॥ अ०—उ० आगे क्षेत्रज्ञका लक्षण कहना है उसके समझनेके लिये सत्वगुणी अन्तर्मुख सूक्ष्म वृत्ति चाहिये इसवास्ते उसका साधन पांच श्लोकोंमें कहते हैं. जिसके ये बीस साधन होंगे उसके समझमें क्षेत्रज्ञका स्वरूप आवेगा, प्रथम इन साधनोंमें प्रयत्न करना योग्य है-मान रहित १ दंभरहित २ हिंसारहित ३क्षमा ४कोमलता ५ सद्गुरुकी सेवा ६ पवित्र (बाहरभीतर) ७ सि० सन्मार्गमें ❀ स्थिरता ८ शरीरका निग्रह ६ सि० इन सब साधनोंका अर्थ आनन्दमृतवर्षिणीके चतुर्थाध्यायमें भलेप्रकार लिखा है और उनका पृथक् २ महात्म्य और फल जैसा शास्त्रोंमें लिखा है वोही प्रत्यक्ष होता है इन साधनोंका ऐसा फल नहीं कि जैसा एकादशीका फल परोक्ष है और ये साधन साधारण हैं, ब्राह्मणसे लेकर चंडाल पर्यन्त सबका अधिकार है ❀ ॥ ७ ॥

मू०—इन्द्रियार्थेषुवैराग्यमनहंकारएवच ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

इन्द्रियार्थेषु १ वैराग्यम् २ अनहंकारम् ३ एव ४ च ५ जन्ममृत्युजराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम् ६ ॥ ८ ॥ अ०—इन्द्रियों के अर्थोंमें १ वैराग्य २ अहंकाररहित ३ । ४ । ५ जन्म मृत्यु जरा

और व्याधि इन चारोंमें दुःखको और दोषोंको सदा देखते रहना ६ ॥ ८ ॥

मू०-आसक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यंचसमचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

पुत्रदारगृहादिषु १ असक्तिः २ अनभिष्वंगः ३ इष्टानिष्टोपपत्तिषु ४ नित्यम् ५ समचित्तत्वम् ६ च ७ ॥ ९ ॥ अ०-पुत्र स्त्री-गृहादिमें १ सक्त न होना २ पुत्रादिके दुःखसुखमें अपनेको सुखी दुःखी नहीं मानना ३ इष्टअनिष्टके प्राप्तिमें ४ सदा ५ समचित्त रहना ६ । ७ ॥ ९ ॥

मू०-मयिचानन्ययोगेनभक्तिरव्याभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदी ॥ १० ॥

मयि १ च २ अनन्ययोगेन ३ अव्यभिचारणी ४ भक्तिः ५ विविक्तदेशसेवित्वम् ६ जनसंसदि ७ अरतिः ८ ॥ १० ॥ अ०-मुझमें १ । २ अनन्ययोगकरके ३ अव्यभिचारणी ४ भक्ति ५ विविक्तदेशमें रहनेका स्वभाव ६ प्राकृतजानोंकी सभामें ७ प्रति रहित ॥ ८ ॥ १० ॥

मू०-अध्यात्मज्ञाननित्यत्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानंयदतोन्यथा ॥११॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् १ तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् २ एतत् ३ ज्ञानम् ४ इति ५ प्रोक्तम् ६ यत् ७ अतः ८ अन्यथा ९ अज्ञानम् १० ॥ ११ ॥ अ०-वेदशास्त्रको नित्य पढे सुने विचारे १ तत्त्वंपदोंके अर्थ जाननेमें सदा निष्ठा रखना २ यह ज्ञान ४ यहां तक ५ कहा ६ सि० जो ये भी साधन कहे उनको ज्ञान कहते हैं

इस जगह ज्ञानका अर्थ यह हैं कि सच्चिदानन्दस्वरूप जानाजावे जिस करके उनको ज्ञान कहते हैं. ब्रह्मज्ञानके ये अन्तरंग साधन हैं इसवास्ते उनको भी ज्ञान कहा ❀ जो ७ इससे ८ उलटा है ९ सि० तिसको ❀ अज्ञान १० सि०–कहते हैं ❀ अर्थात् जिसमें ये साधन नहीं वो अज्ञानी हैं मानदंभादिको अज्ञानका कार्य होनेसे उनको भी अज्ञानही कहते हैं १० ॥ ११ ॥

मू०–ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परंब्रह्म नसत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

यत् १ ज्ञेयम् २तत् ३प्रवक्ष्यामि ४ यत् ५ज्ञात्वा ६ अमृतम् ७ अश्नुते ८ अनादिमत् ९ परम् १० ब्रह्म ११ तत् १२ न १३ सत् १४ न १५ असत् १६ उच्यते १७ ॥ १२ ॥ अ०–उ० क्षेत्रज्ञ परमानन्दस्वरूपब्रह्मात्माका लक्षण कहते हैं–जो १ सि० पूर्वोक्त साधनों करके ❀ जानने योग्य २ तिसको ३ भलेप्रकार कहूंगा ४ जिसको ५ जानकर ६ अमृतको ७ प्राप्त होता है ७ । ८ सि०–फल निरूपण करके स्वरूपका वर्णन करते हैं ❀ अनादि ९ परेसे परे १० बडोंसे बड़ा ११ सो १२ न १३ सत १४ न १५ असत् १६ कहा जाता है १७ तात्पर्य जो उसको सत् कहें तो असत् एक पदार्थ अर्थसे प्रतीत होता है और मनवाणीका विषयभी प्रतीत होता है. जो जो पदार्थ मनवाणी के विषय हैं, सब अनित्य है. यह दोष ब्रह्ममें भी आता और इस बोलीसे अद्वैत सिद्ध नहीं होता और जो असत् कहें तो यह अनर्थ है. क्योंकि उसकी सत्ता सचोटीसे झूँठे पदार्थ सच्चे प्रतीत होते हैं और जो कुछ भी कहें तो अज्ञानियोंका संसार कैसे निवृत्ति हो, तात्पर्य वो ऐसा अचिन्त्य-

शक्तिमान् है कि वास्तवमें वो मनवाणीका विषय नहीं परन्तु उसके ... तो उसको निरूपण करते हैं ॥ १२ ॥

मू०-सर्वतः पाणिपादंतत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोकेसर्वमावृत्यातिष्ठति ॥ १३ ॥

तत् १ सर्वतः पाणिपादम् २ सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ३ सर्वतःश्रुति-मत् ४ लोके ५ सर्वम् ६ आवृत्य ७ तिष्ठति ८ ॥ १३ ॥ अ०-उ० अचिन्त्याद्भुतशक्ति ब्रह्मको निरूपण करते हैं-सो १ सि० ब्रह्म ऐसा है कि * सब तर्फ हाथ पैर हैं जिसके ४ जगतमें ५ सबको ६ व्याप्तकर ७ स्थित है, ८ अर्थात् सब प्राणियोंके अंतःकरणकी वृत्तिमें प्राणादिकी क्रियामें नखसे शिखापर्यन्त व्याप्त है जिसको ...स्थ कहते हैं. हस्तचरणादिमे जो क्रिया की जाती है यह उसकी ...ता है आंख, कान, नाक और इनके क्रमसे जो देखा सुना और सूंघा जाता हैं यह उसीको चैतन्यता है, अन्तकरणमें जो सुख प्रतीत होता है यह उसी आनंद की छाया है, जैसे दर्पणमें अपना मुख देखकर अपना ज्ञान होता है, ऐसेही अन्तःकरणकी वृत्तिमें उस आनन्दकी छाया देख वास्तवमें सच्चिदानन्दका ज्ञान होता है, इसप्रकार वो विषयभी है ॥ १३ ॥

मू०-सर्वेन्द्रियगुणाभासंसर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥
असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृच ॥ १४ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् १ सर्वेन्द्रियविवार्जितम् २ असक्तम् ३ सर्व-भृत् ४ च ५ एव ६ निर्गुणम् ७ गुणभोक्तृ ८ च ९ ॥ १४ ॥ अ०-सब इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें विषयाकार होकर प्रतीत होता है १. सि० और वास्तवमें*सब इन्द्रियों करके रहित२

सि० बास्तवमें॰असक्त ३सि० है,परन्तु॰सबका आधार पालनेवाला ४। ५। ६ सि० कहा जाता है. वास्तवमें ॰ सत्त्वादि गुणोंकरके रहित ७ सि० है, परन्तु ॰ गुणोंका भोक्ता ८। ९ सि० प्रतीत होता है, विषयजन्य सुखदुःखादिका अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है ॰ ॥ १४ ॥

मू०-बहिरन्तश्चभूतानामचरंचरमेवच ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थंचांतिकेचतत् ॥१५॥

भूतनाम् १ अंतः २ बहिः ३ च ४ अचरम् ५ चरम् ६ एव७ च सूक्ष्मत्वात् ९ तत् १० अविज्ञेयम् ११ च १२ अंतिके १३दूरस्थम् १४ च १५ तत् १६ ॥ १५ ॥ अ०-भूतोंके १ भीतर २ और बाहर ३। ४ सि० भी है, जैसे चांदनी सब जगह व्याप्त है. उपाधिके संबन्धसे किसी किसी जगह दीख पडती है, कहीं कहीं नहीं दीखती इसी प्रकार ज्ञानचक्षुरहित पुरुषोंको नहीं प्रतीत होता है, ज्ञानियोंको प्रतीत होता है ॰ अचर ५ सि० भी है और ॰ चर ६ भी ७। ८ सि० है, जंगमोंके साथ संबन्ध होनेसे चर प्रतीत होता है. स्थावरोंके साथ संबन्ध होनेसे अचर प्रतीत होता है, या वो वास्तव अचर है ऐसा कहो ॰ सूक्ष्म होनेसे ९ सि० साकार प्रमेय नहीं इस हेतुसे ॰ सो १० नहीं जाननेके योग्य हैं ११। १२ सि० बहिर्मुखस्थूलबुद्धिवालोंको ॰ समीप १३ सि० भी हैं ॰ और दूरस्थित है १४। १५ सो १६. सि० क्षेत्रज्ञपरमात्मा जो उसको अपना आत्माही जानते हैं कि क्षेत्रज्ञपरमानन्दस्वरूप हमारा आत्माही है आत्मासे पृथक् कोई पदार्थ नहीं उनको समीप है और जो बहिर्मुख विषयी उसको रूपादिमान व बुद्ध्यादिका विषय अपनेसे पृथक् जानकर उसकी

[प्रा]प्ति के लिये दौड धूप करतेहैं उनको कभी नहीं मिलेगा जैसे [मृ]ग कस्तूरी के गन्धके वास्ते भटकता फिरता रहताहै वैसे ही अज्ञानी [भ]टकते रहेंगे ❀ ॥१५॥

मू०-अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचस्थितम् ॥
भूतभर्तृचतज्ज्ञेयं ग्रसिष्णुप्रभविष्णुच ॥१६॥

तत् १ ज्ञेयम् २ अविभक्तम् ३ च ४ भूतेषु ५ विभक्तम् ६ इव ७ [च] ८ स्थितम् ९ भूतभर्तृ १० च ११ ग्रसिष्णु १२ च १३ प्रभविष्णु १४॥१६॥ अ०-सो १ क्षेत्रज्ञ २ सि० वास्तव में ❀ पृथक् पृथक् [न]हीं ३ और ४ भूतों में ५ पृथक् पृथक्वत् ६।७।८ स्थित ९ सि० है [भू]तों का पालन करने वाला १० सि० स्थितकाल में विष्णुरूपहोकर और ११ सि० प्रलयकाल में❀नाश करनेवाला १२ सि० रुद्ररूप [हो]कर ❀ १३ सि० उत्पत्तिकालमें❀उत्पत्तिकरनेवाला १४सि०ब्रह्म [रू]प होकर ❀ तातपर्य सो क्षेत्रज्ञ सब भूतों में एक है, उपाधि के [सं]बंध से पृथक् पृथक् प्रतीत होता है वास्तवमें सो निर्विकारहै॥१६॥

मू०-ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ॥
ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यं हृदिसर्वस्यधिष्ठितम् ॥१७॥

तत् १ ज्योतिषाम् २ अपि ३ ज्योतिः ४ तमसः ५ परम् ६ [उच्]यते ७ ज्ञानम् ८ ज्ञेयम् ९ ज्ञानगम्यम् १० सर्वस्य ११ हृदि १२ [अधि]ष्ठितम् १३ ॥ १७॥-अ०सो १ ज्योतिका २ भी ३ ज्योति ४ [सि]० है❀अर्थात् चन्द्रसूर्यादि का भी प्रकाशक आत्मा ही है. इसी [वा]स्ते❀अज्ञानसे ५ परे६कहाहै ८ सि० अज्ञानका कार्य बुद्ध्यादिक [का] विषय नहीं, अज्ञान के कार्य से जानने में नहीं आता है वो [अ]पने आप❀ज्ञानस्वरूप है ८ सि० और अमानित्वादिसाधनों-

करके ❀ जानने के योग्य है, ९ तत्वज्ञान से ही जाना जाताहै १० सबके ११ हृदय में १२ विराजमान है ॥ १३ ॥ १७

मू०--इतिक्षेत्रंतथाज्ञानंज्ञेयंचोक्तंसमासतः
मद्भक्तएतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८॥

इति १ क्षेत्रम् २ तथा ३ ज्ञानम् ४ ज्ञेयम् ५ च ६ समासतः ७ उक्तम् ८ मद्भक्तः ९ एतत् १० विज्ञाय ११ मद्भावाय १२उपपद्यते १३ ॥१८॥ अ०-यह १ क्षेत्र २ और ३ ज्ञान ४ और ज्ञेय ५।६ संक्षेप करके ७ सि० तुझसे❀कहा ८ मेरा भक्त ९ इसको१० जान कर ११ मेरे भावको १२ प्राप्त होता है १३, तात्पर्य अमानित्वादि साधनसम्पन्न तत् त्वं पदों का अर्थ जानकर कृतार्थ होकर सच्चि-दानंद ऐसे अपने स्वरूप को प्राप्त होजाता है ॥ १८ ॥

मू०-प्रकृतिपुरुषंचैवविद्ध्यनादीउभावपि ।
विकारांश्चगुणांश्चैवविद्धिप्रकृतिसम्भवान् १९॥

प्रकृतिम् १ पुरुषम् २ च ३ एव ४ उभौ ५ अपि ६ अनादी ७ विद्धि ८ विकारान् ९ च १० गुणान् ११ च १२ एव १३ प्रकृति संभवान् १४ विद्धि १५॥१९॥ अ-ईश्वर की अचिन्त्यशक्तिमाया १ और सच्चिदानंदब्रह्म आत्मा २।३।४ दोनों ५ ही ६ अनादि ७ सि० हैं, यह❀तूजान ८, देहेन्द्रियादि ९ और सुखदुःखमोहादिको १०।११।१२।१३ प्रकृति से उत्पन्न हुआ १३ तू जान १५, सि० यह सृष्टिप्रकार आनंदामृतवर्षिणी के द्वितीयाध्याय में भले प्रकार लिखा है ❀॥१९॥

मू०--कार्यकारणकर्तृत्वेहेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषःसुखदुःखानांभोक्तृत्वेहेतुरुच्यते ॥२०॥

कार्यकारणकर्तृत्वे १ हेतुः २ प्रकृतिः ३ उच्यते ४ सुखदुःखानाम् भोक्तृत्वे ६ हेतुः ७ पुरुषः ८ उच्यते ९ ॥२०॥अ०-कार्यकारण करने में १ अर्थात् शरीरादिके उत्पत्ति में १ हेतु २ प्रकृति ३ है ४ सुखदुःखोंके ५ भोगने में ६ हेतु ७ पुरुष ८ कहा है ९, अन्तःकरणविशिष्टचैतन्य भोक्ता कहा जाता है यद्यपि प्रकृति है, उसको शरीरादि के उत्पत्ति में केवल हेतु कहना बेजोग है, चैतन्य के सम्बंध से उसको जगत् का उपादान कारण कहते हैं पुरुष निर्विकार है उसको सुखादिके भोगमें हेतु कहना बेजोग है, प्रकृति संबन्ध से वो भोक्ता प्रतीत होता है, जैसे चुम्बक के धि से लोहा चेष्टा करता है, ऐसा ही प्रकृति पुरुष की व्यवस्था और जैसे मित्रपुत्रादि के साथ स्नेह ममता करने से उनके सुख में आपभी सुखदुःख का भोक्ता होजाता है, ऐसेही जीवपुरुष न्द्रियादिके साथ अभ्यास (आसक्ति) करके दुःखादिका भोक्ता त होने लगता है बास्तव में वो शुद्ध परमानन्दरूप है ॥ २० ॥

मू०-पुरुषःप्रकृतिस्थोहिभुङ्क्तेप्रकृतिजान्गुणान् ॥
कारणंगुणसंगोस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

पुरुषः १ प्रकृतिस्थः २ हि ३ प्रकृतिजान् ४ गुणान्५भुंक्ते६ सद योनिजन्मसु ७ अस्य ८ कारणम्९गुणसंगः १० ॥२१॥अ०— त्मा १ देहादिके साथ तादात्म्याध्यास करके २ ही ३ प्रकृति उत्पन्न हुए ४ सुखदुःखादिको ५ भोक्ता है, सि० बास्तव में भोक्ता है❀देवतामनुष्यादि योनियों के विषय जो इसका जन्म ७ सका ८ कारण ९ गुणों का संग १० सि० सतोगुण के सम्बन्ध से कहा जाता है ❀ ॥ २१ ॥

मू०- उपद्रष्टानुमंताचभर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥
परमात्मेतिचाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥२२॥

अस्मिन् १ देहे २ पुरुषः ३ परः४उपद्रष्टा ५ अनुमन्ता ६ च ७ भर्ता ८ भोक्ता ९ महेश्वरः १० परमात्मा ११ इति १२ च १३ अपि १४ उक्तः ॥१५॥२२॥ अ०-उ० जो आत्मा है वोही परमात्मा है, और जिसको परमात्मा परमेश्वर कहतेहैं वो यही आत्मा है, जीवब्रह्मकी एकता स्पष्ट श्रीब्रजराज इस श्लोक में दिखाते हैं- इस देह में १। २ सि० जो❀जीव ३ सि० है, सोई❀परे से परे ४ दृष्टवत् द्रष्टा ५ सि० है, साक्षातद्रष्टा नहीं क्योंकि दृश्यपदार्थ जब सच्चे हों तब उसको दृष्टा भी वास्तव में कहा जावे, दृश्यपदार्थ अविद्या के हैं, इस प्रकार मायोपहित होने से उसको उपद्रष्टा कहते हैं और कर्मजन्य सुखमें सुख मानकर आनन्द को प्राप्त होता है वास्तव में आप आनन्दस्वरूपहैं इस वास्ते उसको ❀ अनुमन्ता कहते हैं ६। ७ सि० और मायोपहित हुआ वही सच्चिदानन्द अविद्योपहित सच्चिदानन्द जीवका ❀ पालन पोषण करने वाला है ८ सि० और वोही ❀ भोक्ता है ९ महेश्वर १० और परमात्मा यह भी ११।१२।१३।१४ कहा जाता है१५ तात्पर्य शुद्धसच्चिदानंद को माया के संबन्ध से ईश्वर कहते हैं और अविद्या के संबंध से जीव कहते हैं जबदोनों उपाधि ब्रह्मज्ञानसे नष्ट होजातीहैं फिर केवल शुद्ध सच्चिदानंद एक ही रहजाता है ॥२२॥

मू०-यएवंवेत्तिपुरुषंप्रकृतिंचगुणैःसह ॥
सर्वथावर्त्तमानोऽपियसभूयोऽभिजायते ॥२३ ॥

यः १ एवम् २ पुरुषम् ३ वेत्ति ४ प्रकृतिम् ५ च ६गुणैः७सह ८ सः ९ सर्वथावर्तमानः १० अपि ११ भूयः १२ न १३ अभिजा-

ते १४ ॥ २३ ॥ अ०-जो १ इस प्रकार २ आत्माको ३ जानता १४ और प्रकृतिको ५। ६ गुणोंके साथ ७। ८ सि० जानता है❀ अर्थात् प्रकृतिके स्वरूपको सत्त्वादिगुण और इन्द्रियार्थके सहित जो जानता है ७। ८ सो ९ सर्वथा वर्तमान १०भी ११फिर १२नहीं १३ जन्मलेता है १४ टी० वेदोक्तमार्गपर चलो, अथवा प्रारब्धवशात् जैसी उसकी इच्छा हो वरतो. मुक्तिमें सन्देह नहीं, यह बात आनन्दामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमें स्पष्ट लिखी है ॥ २३ ॥

मू०-ध्यानेनात्मनिपश्यंतिकेचिदात्मानमात्मना ॥
अन्यसांख्येनयोगेनकर्मयोगेनचापरे ॥ २४ ॥

केचित् १ आत्मानम् २ आत्मना ३ आत्मनि ४ ध्यानेन ५ पश्यंति ६ अन्ये ७ सांख्येन ८ योगेन ९ च १०अपरे११कर्मयोगेन् १२ ॥ २४ ॥ अ०-कोई १ आत्माको २अंतमुखनिर्मलअंतःकरण की वृति करके ३ इस देहमें ४ आत्माकारवृत्तिकरके अर्थात् "अहंब्रह्मास्मि" इसका गंगावत् प्रवाह सदा बनारहे इसको ध्यान कहते ५ सि० इस ध्यान करके ❀ देखते हैं ६ कोई ७ सांख्ययोगकरके अर्थात् प्रकृतिपुरुषविवेक द्वारा अथवा वेदान्तशास्त्र द्वारा ८ सि० और कोई ❀ अष्टांङ्गयोग करके ९। १० अर्थात् यम, नियम. आसन, प्राणायाम. प्रत्याहार, धारणा. ध्यान और, समाधि इनके द्वारा ९। १० सि० और ❀ कोई ११ कर्मयोग करके १२ सि० देखते हैं यह क्रिया सबके साथ लगती है कर्म दोप्रकारके हैं, गौण और मुख्य स्नान श्रद्धादि बहिरंगकर्म गौणहैं शमदमादि अंतरंगकर्म मुख्य हैं. मुख्य साधनोंमें सबका अधिकार है ❀ ॥ २४ ॥

म०-अन्येत्वेवमजानंतःश्रुत्वान्येभ्यउपासते ॥
तेपिचातितरंत्येव मृत्युंश्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

अन्ये १ तु २ एवम् ३ अजानन्तः ४ अन्येभ्यः ५ श्रुत्वा ६ उपासते ७ ते ८ अपि ९।१० मृत्युम् ११ अतितरंति १२ एव १३ श्रुतिपरायणाः १४॥ २५ ॥ अ०— और कोई १ । २ इसप्रकार ३ सि० ध्यानरहित आत्माको ❀ नहीं जानते हुए ४ सद्गुरुमहापुरुषोंसे ५ श्रवणकरके ६ उपासना करते हैं, अर्थात आत्माको साक्षात अपरोक्ष तो नहीं जानते परन्तु वेदशास्त्रसद्गुरुद्वारा यह सुना है, कि मैं ब्रह्म हूं ॥ " अहंब्रह्मास्मि " यही जप करते हुए आत्माकी उपासना करते हैं ७ वे ८भी ९ । १० संसारको ११ उलंघ जाते हैं १२ निश्चयसे १३ सि० क्योंकि वे ❀ श्रवणपरायण १४ सि० कमसमझ यह कहा करते हैं कि. बिना ब्रह्मके जाने आपको ब्रह्म कहना न चाहिये, इसमें पाप होता हैं, तुम्हारेमें ब्रह्मकी क्या शक्ति है. प्रतीत होता हैं कि ये लोग या तो इर्षा अमर्षसे कहते हैं, या भगवत् वाक्यमें उनकी किंचित् श्रद्धा नहीं. या मूर्ख हैं क्योंकि इस मंत्रमें श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं कि अनजान ब्रह्मका उपासक जो ' अहंब्रह्मास्मि' यह उपासना करता है वो परमगतिको प्राप्त होता है फिर न जानिये मूर्ख इस श्लोकका क्या अनर्थ करते हैं जब कि अनजान अवस्थामें यह उपासना न की तो ज्ञानावस्थामें वे क्यों करेंगे. उपासना साधन हैं और वो फलकी प्राप्तिके वास्ते करते हैं मूर्ख साधनसे पहलेही फल चाहते हैं, यह कहते हैं कि जब हमको ब्रह्म साक्षात् अपरोक्ष होगा तब हम 'अहंब्रह्मास्मि' ऐसा कहेंगे विचारना चाहिये कि विना साधन कहीं फल मिलता है कर्म और भेदउपासना ज्ञानके गोण साधन हैं ज्ञानि-

ष्ठाका मुख्य साधन यही है कि॥ "अहंब्रह्मास्मि" यह महावाक्य श्रवणकरके इसीका सदा जप किया करे वेदवाक्य भी इसमें प्रमाण है ❀ ॥ २५ ॥

मू०—यावत्संजायतेकिंचित्सत्त्वंस्थावरजंगमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धिभरतर्षभ ॥ २६ ॥

यावत् १ किंचित् २ सत्वम् ३ स्थावर जंगमम् ४ संजायते ५ भरतर्षभ ६ तत् ७ क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् ८ विद्धि ९ ॥ २६ ॥ अ०—जहांतक १ जो कुछ २ पदार्थ ३ स्थावरजंगम् ४ उत्पन्न होता है ५ हे अर्जुन ! ६ तिसको ७ क्षेत्र क्षेत्रज्ञके संयोगसे ८ जान तू ९ ॥ २६ ॥

मू०—समंसर्वेषुभूतेषुतिष्ठंतंपरमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतंयःपश्यतिसपश्यति ॥२७॥

सर्वेषु १ भूतेषु २ विनश्यत्सु ३ परमेश्वरम् ४समम् ५अविनश्यन्तम् ६ तिष्ठन्तम् ७ यः ८ पश्यति ९ सः १० पश्यति ११ ॥ २७ ॥ अ०—उ० बिनाविवेक संसार है यह पीछे कहा अव उसकी निवृत्तिके लिये विवेकबुद्धि वताते हैं कि, ऐसे आत्माका स्वरूप जानना चाहिये, तब जाना कि अव ज्ञान हुआ—सब भूतोंमें १ । २ सि० भूतोंका ❀ नाश हुए सन्ते भी ३ आत्मा को४ सम ५ अविनाशी ६ स्थित ७ जो ८ देखता है ९ सो१०देखता है ११ तात्पर्य आत्माको जो अविनाशी पूर्णब्रह्म परमेश्वर जानते हैं ऐसा देहादिके नाशमें भी उसको अविनाशी जानते हैं वे आत्माको यथार्थ जानते हैं ॥ २७ ॥

मू०—समंपश्यन्हिसर्वत्रसमवस्थितमीश्वरम् ॥
नहिनस्त्यात्मनात्मानंततोयातिपरांगतिम्॥२८॥

ईश्वरम् १समवस्थितम् २ सर्वत्र ३ समम् ४ पश्यन् ५ हि ६ आत्मना ७ आत्मानम् ८ न ६ हिनस्ति १० ततः ११ पराम् १२ गतिम् १३ याति १४ ॥ २८ ॥ अ०–ईश्वरको १ निश्चल २ सर्वत्र ३ सम देखता हुआ ४ । ५ । ६ आत्माकरके ७ आत्माको ८ नहीं ६ मारता है. १० फिर परमगतिको १२ । १३ प्राप्त होता है १४ तात्पर्य जो ईश्वरको या जीवको विकारवान् ऐसा विषम देखता है. सो भेदवादी अपने आप अपना नाश करता है और ईश्वरको भी आत्मासे जुदा समझकर परिच्छिन्न अल्पप्रमेय करता है और आत्माको भी इसहेतुसे महाहत्यामें आत्महत्यामें जो पाप होता है सो पाप भेदवादीको लगता है, इसी अर्थको व्यतिरेक मुखकरके भगवान्ने इसमें कहा है,ः अर्थात् जो आत्माको सर्वत्र ईश्वर समझता है, सो आत्महत्यारा नहीं, जो आत्माको विषमप्रमेय अल्प देखता है वो आत्मघाती है इत्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

मू०–प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥
यःपश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥ २९ ॥

सर्वशः १ क्रियमाणानि २ कर्माणि ३ प्रकृत्या ४ एव ५ च ६ यः ७ पश्यति ८ तथा ६ आत्मानम् १० अकर्तारम् ११ सः १२ पश्यति १३ ॥ २६ ॥ अ०—सबप्रकार १ क्रियमाण २ कर्मोंको ३ प्रकृतिकरके ४ ही ५ । ६ जो ७ देखता हैं. ८ तैसे ही ६ आत्माको १० अकर्ता ११ वो १२ देखता हैं तात्पर्य बुरे भले सब कर्म शरीर. इन्द्रिय, अन्तःकरण इन करके किये जाते हैं आत्मा अकर्ता है. इसप्रकार जो आत्माको अकर्ता देखता है वोही आत्माको भलेप्रकार पहँचानता है ॥ २६ ॥

मू०–यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
ततएवचविस्तारंब्रह्मसंपद्यतेतदा ॥ ३० ॥

यदा १ भूतपृथग्भावम् २ एकस्थम् ३ अनुपश्यति ४ ततः ५ एव ६ च ७ विस्तारम् ८ तदा ६ ब्रह्म १० सम्पद्यते ११ ॥ ३० ॥
अ०-जिसकालमें १ भूतोंके पृथग्भावको २ आत्माके ३ देखता ४ और तिससेही ५।६।७ विस्तार को ८ तिसकालमें ६ ब्रह्मको प्राप्त होता है. १०. तात्पर्य अपने अज्ञानसेही सब जगत् विस्तार प्रतीत होता है, और जब आत्माकारवृत्ति होती है, उस समें सबजगत् अत्यंत अभावको प्राप्त हो जाता है, एक जीव को जो जानते हैं. वे इस बातको समझ सके हैं, कि अपने ज्ञानका नाश हुएसे समस्त जगत्का अभाव होजाता है ॥३०॥

मू०-अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ॥
शरीरस्थोपिकौंतेयनकरोतिनलिप्यते ॥ ३१ ॥

कौन्तेय १ अयम् २ परमात्मा ३ शरीरस्थः ४ अपि ५ अनादित्वात् ६ निर्गुणत्वात् ७ अव्ययः ८ न ६ करोति १० न ११ लिप्यते १२ ॥ ३१ । अ० हे अर्जुन ! १ यह २ परमात्मा ३ शरीरमें स्थित ४ भी ५ अनादि होनेसे ६ निर्गुण होनेसे ७ निर्विकार ८ सि० है ❀ न ६ करता है १० न ११ लिपायमान होताहै तात्पर्य देहादिको क्रियामें आत्मा कर्ता नहीं और कर्मों के न होनेसे अज्ञानीवत् पापके साथ स्पर्श नहीं करता ॥ १३ ॥

मू०-यथासर्वगतंसौक्ष्म्यादाकाशंनोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितोदेहे तथात्मानोपलिप्यते ॥३२॥

यथा १ आकाशम् २ सर्वगतम् ३ सौक्ष्म्यात् ४ न उपलिप्यते ५ तथा ७ आत्मा ८ सर्वत्र ६ देहे १० स्थितः ११ न १२ उपलिप्यते १३ ॥ ३२ ॥ अ०-जैसा १ आकाश २ सब जगह व्याप्त है ३ सूक्ष्म होनेसे ४ सि० किसीजगे ❀ नहीं ५ लिपायमान होता

है ६ तैसा७आत्मा ८ सब जगह ६ देह में १० स्थित है ११,सि० कर्मों के साथ और कर्मों के फल के साथ * नही १२ लिपायमान होता है ॥ ३२ ॥

मू०-यथाप्रकाशत्येकः कृत्स्नंलोकमिमंरविः ॥
क्षेत्रंक्षेत्रीतथाकृत्स्नं प्रकाशयतिभारत ॥ ३३ ॥

यथा १ एकः २ रविः ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ लोकम् ६ प्रकाशयति ७ तथा ८ क्षेत्री ६ कृत्स्नम् १० क्षेत्रम् ११ प्रकाशयति भारत १२ ॥ ३३ ॥ अ०-जैसा १ । २ सूर्य ३ इस ४ संपूर्ण ५ लोक को ६ प्रकाशित कर रहा है ७. तैसे ही ८ क्षेत्रज्ञ ६समस्त क्षेत्रको १० प्रकाशित कररहा है ११, तात्पर्य जो ज्ञानानन्द देहमें प्रतीत होता है, सब उसी ज्ञानानन्द की छाया हैं ॥ ३३ ॥

मू०-क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरंज्ञानचक्षुषा ॥
भूतेप्रकृतिमोक्षंचयेविदुर्यांतितेपरम् ॥३४॥

य १ एवम् २ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ३ अन्तरम् ४ ज्ञानचक्षुषा ५भूतप्रकृतिमोक्षम् ६ च ७ विदुः ८ ते ६ परम् १० यान्ति ११ ॥ ३४ ॥ अ०-जो १ इसप्रकार २ सि० पूर्वोक्तरीति करके*क्षेत्रक्षेत्रज्ञका ३ भेद ४ ज्ञानचक्षुकरके ५ सि० देखते हैं और * भूतों की जो प्रकृति ध्यान विवेकादि तिनके सकाश से मोक्षको ६ । ७ जानते हैं, ८ वे ६ परमानन्दस्वरूप आत्माको १० सि० प्राप्तवत् * प्राप्त होते हैं ११ तात्पर्य बंधका हेतु भी प्रकृति है और मोक्षका भी हेतु प्रकृति है तमोगुण रजोगुण के साथ संबन्ध करने से मोक्ष को प्राप्त होता है इसी अर्थको चतुर्दशाध्याय में श्री भगवान् स्पष्ट निरूपण करेंगे ॥ ३४ ॥

श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देश योगो नामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः १४

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ परंभूयःप्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥ यज्ज्ञात्वामुनयः सर्वे परांसि- द्धिमितोगताः ॥१॥

श्रीभगवान् उवाच, भूयः १ ज्ञानानाम् २ उत्तमम् ३ ज्ञानम् ४ परम् ५ प्रवक्ष्यामी६ यत् ७ ज्ञात्वा ८ सर्वे ९ मनुष्यः १० पराम् ११ सिद्धिम् १२ इतः १३ गताः १४ ॥१॥ अ०-उ०—सतोगुण के बढ़ाने से रजोगुण और तमोगुण कम करने से ज्ञान द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होती है इस वास्ते इस अध्याय में सत्वादि का भेद कहतेहैं-हे अर्जुन! फिर १ सि० भी॰ज्ञानों में २ सि० जो॰उत्तम ज्ञान ३।४ परमार्थनिष्ठ ५ तिसको मैं कहूंगा ६ सि० इस अध्याय में तुमसे॰जिनको ७ जानकर ८ सब मुनीश्वर ९।१०परमसिद्धि को ११।१२ इस देह से पीछे १३ प्राप्त हुए १४ तात्पर्य ज्ञान कई प्रकार का है कर्म उपासनादि का अर्थ जाना जाता है जिन ज्ञान करके उनको भी ज्ञान कहते हैं और आत्मा का परमानन्द परमस्वरूप साक्षात (अपरोक्ष) होता है, जिस ज्ञान करके एक यही उत्तम आत्मज्ञान है, सब ज्ञानों में आत्मज्ञान क्यों उत्तम है यह साक्षात् मुक्तिका मुख्य हेतु है और परब्रह्मकी निष्ठा प्राप्त करने वाला है इसी ज्ञान को प्राप्त करके बहुत साधुमहात्मा स्थूल देहको त्यागकर परमानन्दरूप आत्माको प्राप्त हुए हैं. हेअर्जुन ! तू मेरा प्यारा है, इसवास्ते यह उत्तम ज्ञान फिरभी तुझसे कहूँगा,यद्यपि पहले कहा है परन्तु अब शीघ्र समझमें आनेके वास्ते अन्य रीतिसे कहूँगा ॥१॥

मू०इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमागताः ॥
सर्गेऽपिनोपजायन्तेप्रलयेनव्यथंतिच ॥ २ ॥

इदम् १ ज्ञानम् २ उपाश्रित्य ३ मम ४ साधर्म्यम् ५ आगताः ६ सर्गे ७ अपि ८ न ९ उपजायन्ते १० प्रलये ११ च १२ न १३ व्यथंति १४॥२॥ अ०—इस १ ज्ञान का २ आश्रय करके ३ अर्थात् ये जो ज्ञान साधन सहित इस अध्याय में कहते हैं तिसका अनुष्ठान करके ३ मेरे स्वरूप को ४।५ प्राप्त हुए, ६ अर्थात् शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप हुए ६, सृष्टिसमय ७ भी ८ अर्थात् जब यहजगत् प्रलय होकर फिर उत्पन्न होगा उस समय भी ८ नहीं प्राप्त होंगे ९।१० तात्पर्य मायासंबन्धी स्थूलदेहों को नहीं प्राप्त होंगे, क्योंकि, माया के सम्बन्ध से दुःख होता है, मायाका ज्ञानसे नाश होजाता है॥२॥

मू०—ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्गर्भंदधाम्यहम् ॥
सम्भवःसर्वभूतानां ततोभवतिभारत ॥ ३ ॥

मम १ योनिः २ महद्ब्रह्म ३ तस्मिन् ४ गर्भम् ५ दधामि ६ अहम् ७ भारत ८ ततः ९ सर्वभूतानाम् १० संभवः ११ भवति १२ ॥३॥ अ०—उ०श्रोता को सम्मुख करके सोई ज्ञान कहते हैं मेरी १ योनि याने बीज धारण करने का स्थान २ अर्थात् सब भूतों का कारण २ प्रकृति (माया) ३ तिसमें ४ अर्थात् उस त्रिगुणात्मका माया में ४, चिदाभास को ५ मैं धारण करता हूँ ६।७ हे अर्जुन! ८ मायोपहितब्रह्म से ९ सब भूतों का १० आविर्भाव ११ होता है १२ अर्थात् माया में जब सच्चिदानंदकी छायावत् छाया पडती है तब सबभूत (सूक्ष्मस्थूल) प्रगट होते हैं १२ तात्पर्य प्रभु जगत् के अभिन्न निमित्तोपादानकारण हैं, नहीं हैं भिन्न निमित्त और उपादान कारण जिन्हों से । ३ ।

मू०-सर्वयोनिषुकौंतयमूर्तयःसंभवंतियाः ॥
तासांब्रह्ममहद्योनिरहंबीजप्रदःपिताः ॥४॥

कौन्तेय १ सर्वयोनिषु २ याः ३ मूर्तयः ४ संभवन्ति ५ तासाम् ६ योनिः ७ महत ८ ब्रह्म ९ अहम् १० बीजप्रदः ११ पिता १२॥४॥ अ०-हे अर्जुन! १ सबभूतोंमें २ जो ३ मूर्ति ४ उत्पन्नहोतीहैं ५ तिनकी ६ योनि ७ प्रकृति ८। ९ सि० हैं और ❀ मैं १० बीजदेनेवाला ११ पिता १२ तात्पर्य जो जो मूर्ति ब्रह्माजीसे ले चींटी पर्यन्त (जंगमस्थावर) जिस जिस जगह उत्पन्न होती हैं तिनकी प्रकृति उपादानकारण है और ईश्वर निमित्तकारण है॥ ४॥

मू०-सत्त्वंरजस्तमइतिगुणाःप्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नंतिमहाबाहोदेहेदेहिनमव्ययम् ॥५॥

सत्त्वम् १ रजः २ तमः ३ इति ४ गुणाः ५ प्रकृतिसंभवाः ६ महाबाहो ७ देहे ८ अव्ययम् ९ देहिनम् १० निबध्नन्ति ११ ॥५॥ अ०-उ० सत्वादिगुणोंने आत्माको बन्धन कररक्खा है, यह कहते हैं-सत्व १ रज २ तम ३ यह ४ गुण ५ प्रकृतिसे प्रगट होते हैं ६ हे अर्जुन! ७ सि० इस ❀ देहमें ८ निर्विकार ९ सि० ऐसे ❀ जीवको १० बन्धन करते हैं, ११ तात्पर्य जीवके स्वरूपको भुला देते हैं आनन्दको अपनेसे जुदा पदार्थजन्य जानकर जीव भ्रान्त हो जाता है. गुणोंके सम्बन्धसे अपने आनन्दस्वरूपको भूलजाता है॥ ५॥

मू०-तत्रसत्वंनिर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेनबध्नातिज्ञानसंगेनचानघ ॥ ६ ॥

अनघ १ तत्र २ सत्त्वम् ३ निर्मलत्वात् ४ प्रकाशकम् ५ अनामयम् ६ सुखसंगेन ७ ज्ञानसंगेन ८ च ९ बध्नाति १० ॥६॥ अ०-उ०

सतोगुणका लक्षण और बन्धन प्रकार कहते हैं-हे अर्जुन! १ तीनों गुणोंमें २ सतोगुण ३ निर्मल होनेसे ४ प्रकाशरूप ५ शान्तरूप ६ सि० है ❀ सुखके साथ ७ और ज्ञानके साथ ८।९ बन्धन करता है १० सि० आत्माको सत्वगुण ❀ तात्पर्य सुख और ज्ञान ये दोनों अन्तःकरणकी वृत्ति हैं, वे मिथ्या (अनात्मा) मायाका कार्य हैं, मैं सुखी मैं ज्ञानी यह समझकर जीव वृथा भ्रांतिमें फँसता है. जिस कालमें सत्वगुण तिरोधान होजाता है तमोगुण और रजोगुण प्रगट होजाते हैं, तब यह ज्ञानसुख भी जाता रहता है दुःखशोकादिमें फँस जाता है ॥ ६ ॥

मू०-रजोरागात्मकंविद्धितृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नातिकौन्तेयकर्मसंगेनदेहिनम् ॥ ७ ॥

कौन्तेय १ रजः २ रागात्मकम् ३ विद्धि ४ तृष्णासंगसमुद्भवम् ५ तत् ६ देहिनम् ७ कर्मसंगेन ८ निबध्नाति ९ ॥ ७ ॥ अ०-उ० रजोगुणका लक्षण और बन्धन प्रकार कहते- हे अर्जुन! १ रजोगुणको २ रागात्मक ३ जान तू ४ अर्थात् जिस समय स्त्री-मित्रादिपदार्थोंका श्रवण स्मरण और दर्शन इत्यादि करके अन्तःकरणकी वृत्तिमें स्नेह उत्पन्न होता है और मनरंजन होने लगता है, इसीको रागात्मक कहते हैं और रजगुणका यही स्वरूप है ३।४ तृष्णा संगकी उत्पत्ति है जिससे ५ अर्थात् जब रजोगुणका आविर्भाव होता हैं, तब जो जो पदार्थ देखनेमें या सुननेमें आते हैं उनसबमें अभिलाष होनेलगता है, मनमें ये संकल्पविकल्प उत्पन्न होने लगते हैं कि, अमुक पदार्थ जो हमको मिलेगा तो उसमें हमको यह आनन्द मिलेगा जब वो पदार्थ मिलजाता है, तब उसमें आसक्ति होजाती है उसके वियोगमें दुःख होता है ऐसे ऐसे

रजोगुण के कार्य से रजोगुण का ज्ञान होता है५ सोऽसि०रजोगुण ६जीव को ७ कर्मों में आसक्त करके ८ बन्धन करता है, सि० वेदोक्त कर्मों में और उनके फल में फंस जाता है जीव, रजोगुण ज्ञान के सन्मुख नहीं होने देता है॥ ॥ ७ ॥

मू०-तमस्त्वज्ञानजंविद्धिमोहनंसर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यानिद्राभिस्तन्निबध्नातिभारत ॥८॥

भारत १ तमः २ तु ३ अज्ञानजम् ४ सर्वदेहिनाम् ५ मोहनम् ६ विद्धि ७ तत् ८ प्रमादालस्यनिद्राभिः ९ निबिध्नाति १० ॥ ८ ॥

भा०-उ०-तमोगुण का लक्षण और बन्धन प्रकार कहते हैं हे अर्जुन! १ तमोगुण को २ । ३ आवरणशक्ति प्रधान ४सबजीवोंको ५भ्रान्त करने वाला ६ जान तू ७सो ८ निन्द्रा आलस्य प्रमाद करके ९ बन्धन करता है १० ॥ ८ ॥

मू०-सत्त्वंसुखेसंजयतिरजःकर्मणिभारत ॥
ज्ञानमावृत्यतुतमःप्रमादेसंजयत्युत ॥९॥

भारत १ सत्त्वम् २ सुखे३संजयति४रजः ५ कर्मणि ६तमः ७ तु ८ ज्ञानम् ९ आवृत्य १०प्रमादे११संजयति १२ उत १३ ॥ ९ ॥

भा०-उ०-सत्वादि अपने अपने आविर्भाव में जो करते हैं उनका सामर्थ्य दिखाते हैं हे अर्जुन ! १ सतोगुण २ सुख में ३ लगाताहै अर्थात् जिस समय सत्वगुणका आविर्भाव होता है, उस समय जीवको सुखके सम्मुख करता है ४ सि० और॥रजोगुण ५ कर्मों में ६ सि० लगाता है ॥ और तमोगुण ७।८ ज्ञानको ९ ढांक कर १० प्रमाद में ११ जोडता है १२ आनंदामृतवर्षिणी के पाँचवें अध्याय में यह सब अर्थ स्पष्ट लिखा है ॥ ९ ॥

मू०-रजस्तमश्चाभिभूयसत्त्वंभवतिभारत ॥

रजःसत्त्वंतमश्चैवतमःसत्त्वंरजस्तथा ॥१०॥

रजः १ तमः २ च ३ अभिभूय ४ सत्वम् ५ भवति ६ भारत ७ सत्वम् ८ तमः ९ च १० एव ११ रजः १२ सत्वम् १३ रजः १४ तथा १५ तमः १६ ॥ १० ॥ अ०--उ०--एक गुण प्रकट रहता है, दोनों का तिरोभाव रहता है यम नियम है सोई इस मन्त्र में कहते हैं--रज १ और तमको २ । ३ दबाकर ४ सत्व ५ प्रकट होता है ६ हे अर्जुन ! ७ सत्व और ८ तमको ९ । १० । ११ सि० दबाकर❀ रजोगुण १२ सि० प्रकट होता है❀ और सत्व रजको १३।१४। १५ सि० दबाकर ❀तमोगुण १६ सि० प्रकट होता है, ❀ तात्पर्य जिस समय जो गुण प्रकट होगा, उस समय वैसी ही बात प्यारी लगेगी दूसरे गुण का कार्य उस समय अच्छा नहीं लगेगा जैसे रजोगुण के आविर्भाव में नाच, तमाशा, स्त्री और शब्दादि प्रिय लगते हैं, निन्द्रा आलस्य, शम, दम इत्यादि अच्छे नहीं लगते सतोगुण के आविर्भाव में स्त्रियादि पदार्थ अच्छे नहीं लगते, सत्य,दया,संतोषादि अच्छे लगते है ॥ १० ॥

मू०-सर्वद्वारेषुदेहेस्मिन्प्रकाशउपजायते ॥

ज्ञानंयदातदाविद्याद्विवृद्धंसत्वमित्युत ॥ ११ ॥

यदा १ अस्मिन् २ देहे ३ सर्वद्वारेषु ४ प्रकाशः ५ ज्ञानम् ६ उपजायते ७ तदा ८ सत्वं ९ विवृद्धम् १० विद्यात् ११ इति १२ उत १३ ॥ ११॥ अ०-- उ० जब शरीर में सतोगुण बढारहता है उस का लक्षण यह है--जिस काल में १ इस देहके विषय २।३ सर्वद्वारोंमें याने श्रोत्रादि में ४ प्रकाश ५ ज्ञानात्मक ६ उत्पन्न होता है ७

[...]कालमें ८ सतोगुण ९ बढा हुआ १० जान ११ । १२ । १३
[अ]भिप्रायः ॥ ११ ॥

[मू०]-लोभःप्रवृत्तिरारंभःकर्मणामशमःस्पृहा ॥
रजस्येतानिजायंतेविवृद्धेभरतर्षभ ॥ १२ ॥

भरतर्षभ १ रजसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ लोभः६
[प्रवृ]त्ति ७ आरंभः ८ कर्मणाम् ९ अशमः १० स्पृहा ११ ॥ १२ ॥
[भा]०-उ० जब शरीरमें रजोगुण बढा रहता है, उसका लक्षणयहहै
[हे] अर्जुन ! १ रजोगुण २ बढानेसे ३ ये ४ सि० लोभादि* उत्पन्न
[हो]ते हैं ५ ज्योंज्यों धनादिकी प्राप्ति हो त्यों त्यों सिवाय अभि-
[ला]ष बढता है ६ धनादिकी प्राप्तिके लिये ऐसे तन्मय होकर प्रयत्न
[कर]ते रहना कि, स्वप्नमेंभी चित्त शान्त न हो ७ मंदिरउपवनादि-
[का] जो प्रारम्भ कररक्खा है सो तो पूरा हुआ नहीं दूसरा और
[आर]ंभकर दिया ८ कर्मों का ९ अशम १० अर्थात् यह काम करके
[यह] काम करूंगा १० बुरा भला कुछ न स्मरण करना जैसे बने
[तैसे]ही रखना किसी प्रकार धनादि प्राप्त हो ११॥१२॥

[मू]०-अप्रकाशोप्रवृत्तिश्चप्रमादोमोहएवच ॥
तमस्येतानिजायन्तेविवृद्धेकुरुनन्दन ॥१३॥

कुरुनन्दन १ तमसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ अप्रकाशः
अप्रवृत्तिः ७ च ८ प्रमादः ९ मोहः १० एव ११ च १२ ॥१३॥
[भा]०-उ० जब शरीरमें तमोगुण बढा रहता है, उसका लक्षण यह
हे अर्जुन ! १ तमोगुण बढ़नेमें २ । ३ ये ४ सि० अप्रकाशादि
उत्पन्न होते हैं ५ अविवेक ६ और इस लोक परलोकके निमित्त
[का]म न करना ७ । ८ सि० और करना तो यह करना कि *
[द्यू]तादि खेलना ९ अपने उलटे समझसे ऐसा काम करना कि

उसका न इस लोकमें फल न परलोकमें. जैसा क्रोधादि षड्वैरियों के प्रेरणासे अन्यकी हानिके लिये यत्न करना किसीको बुरा कहना इत्यादि १०।११।१२॥१३॥

मू०--यदासत्त्वेप्रवृद्धेतुप्रलयंयातिदेहभृत ॥
तदोत्तमविदांलोकानमलान्प्रतिपद्यते॥१४॥

सत्त्वे १ प्रवृद्धे २ तु ३ यदा ४ देहभृत् ५ प्रलयं ६ याति ७ तदा ८ अमलान् ९ उत्तमविदाम् १० लोकान् ११ प्रतिपद्यते १२ ॥ १४ ॥ अ०–उ० मरणसमय जो गुण बढा होगा उसका फल वह होगा कि, जो अब दो श्लोकोंमें कहते हैं–सतोगुण वढ़े हुए सन्ते १ । २ । ३ जिस कालमें ४ जीव ५ मृत्युको ६ प्राप्त होता है ७ तिस कालमें ८ निर्मल ९ उपाचकोंके १० लोकोंको ११ प्राप्त होता १२. तात्पर्य हिरण्यगर्भादिके उपासक जिन निर्मल लोकोंमें जाते है, उसी लोकको वो प्राप्त होता है, कि जिसका अन्तकालमें सतोगुण बढा रहे ॥ १४ ॥

मू०-रजसिप्रलयंगत्वाकर्मसंगिषुजायते ॥
तथाप्रलीनस्तमसिमूढयोनिषुजायते ॥१५॥

रजसि १ प्रलयम् २ गत्वा ३ कर्मसंगिषु ४ जायते ५ तथा ६ तमसि ७ प्रलीनः ८ मूढयोनिषु ९ जायते १० ॥ १५ ॥ अ०–रजोगुण में मृत्युको २ प्राप्त होकर ३ कर्मसंगी मनुष्योंमें ४ उत्पत्ति होती है ५ तैसेही ६ तमोगुणमें ७ मराहुआ ८ पशुपक्षी इत्यादि मूढयोनियोंमें ९ जन्म लेता है १० ॥ १५ ॥

मू०-कर्मणःसुकृतस्याहुःसात्विकंनिर्मलंफलम् ॥
रजसस्तुफलंदुःखमज्ञानंतमसःफलम् ॥१६॥

सुकृतस्य १ कर्मणः २ निर्मलम् ३ सात्त्विकम् ४ फलम् ५ [आ]हुः ६ रजसः ७ तु ८ फलम् ९ दुःखम् १० तमसः ११ फलम् [१२] अज्ञानम् १३ ॥१६॥ अ०-उ० इसदेहमें अपने आप बिना [यत्न] सत्त्वादि जिसहेतुसे वर्तते हैं. उसका कारण यह है-सतोगुणी [कर्म]का १ । २ सि० कि जिसका लक्षण अठारहवें अध्यायमें कहेंगे [अर्थ]ात् पिछले जन्ममें जो सतोगुणी कर्म किये हैं उन शुभ कर्मोंका [फल] निर्मल ३ सतोगुण ४ फल ५ कहते हैं, ६ और रजोगुणीका [फल] ७ । ८ । ९ दुःख १० सि० है ॥ तमोगुणका फल ११ । १२ [अ]ज्ञान १३ सि० है ॥ तात्पर्य कोई प्रयत्न करके सतोगुणको [लाते] हैं किसीके स्वाभाविक शमदमादि देखनेमें आते हैं. सो [पि]छले सतगुणीकर्मका फल समझना चाहिये, इसप्रकार रजोगुण-[तम]ोगुणकी व्यवस्था है ॥ १६ ॥

मू०-सत्वात्संजायतेज्ञानंरजसोलोभएवच ॥
प्रमादमोहौतमसोभवतोऽज्ञानमेवच ॥१७॥

सत्वात् १ ज्ञानम् २ संजायते ३ रजसः ४ लोभः ५ एव ६ [च] ७ प्रमादमोहौ ८ तमसः ९ भवतः १० अज्ञानम् ११ एव १२ [च] १३ ॥ १७ ॥ अ०-सतोगुणसे १ ज्ञान २ उत्पन्न होता है ३ [रज]ोगुणसे ४ लोभ ५ उत्पन्न होता है ६ । ७ प्रमादमोह ८ तमो-[गुण]से ९ सि० उत्पन्न ॥ होते हैं १० और अज्ञान भी ११ । १२ [१३] सि० तमोगुणसे होता है ॥ तात्पर्य ज्ञान, लोभ, अज्ञान, [प्रम]ाद, मोह ये उपलक्षण हैं ज्ञानादि कहनेमें सत्वादि गुणोंके समस्त [का]र्य समझ लेना चाहिये ॥ १७ ॥

[मू]०-ऊर्ध्वंगच्छंतिसत्त्वस्थामध्येतिष्ठंतिराजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तिस्थाअधोगच्छन्तितामसाः॥१८॥

सत्त्वस्थाः १ ऊर्ध्वम् २ गच्छन्ति ३ राजसाः ४ मध्ये५ तिष्ठंति ६ जघन्यगुणवृत्तिस्थाः ७ तामसाः ८ अधः ९ गच्छति १० ॥१८॥ अ०--उ० मरकर सत्त्वादि गुणों के तारतम्यता के लेख से फल होता है, यह इस मंत्रमें कहते हैं--सतोगुणी १ ऊपर के लोकों को २ प्राप्त होतेहैं ३ रजोगुणी ४ मध्य में ५ स्थित रहते हैं ६ निकृष्ट गुणमें वर्तनेवाले ७ तमोगुणी ८ अधः याने नीचेको ९ प्राप्त होते हैं १० सि० इस जगह तारतम्यता का जो विचार है सो आनंदामृतवर्षिणी के पंचमाध्याय में लिखा है ॥ १८ ॥

मू०-नान्यंगुणेभ्यः कर्तारंयदाद्रष्टानुपश्यति
गुणेभ्यश्चपरंवेत्तिमद्भावंसोधिगच्छति ॥१९॥

यदा १ द्रष्टा २ गुणेभ्यः ३ अन्यम् ४ कर्तारम् ५ न ६ अनुपश्यति ७ गुणेभ्यः ८ च ९ परम् १० वेत्ति ११ सः १२ मद्भावम् १३ अधिगच्छति १४ ॥ १९ ॥ अ०--उ० गुणों के संबंधमें संसार है, यह बात पीछे कही, अब यह कहते है कि विवेकी गुणों से पृथक् है--जिस काल में एक विवेकी २ गुणों से ३पृथक्४कर्ताको ५ नहीं ६ देखता है ७ अर्थात् गुण ही कर्ता है आत्मासाक्षीमात्र है ७. सि०जो * गुणों से ८ । ९ परे १० सि०आत्मा को*जानता है सो १२ मेरे भाव को १३ प्राप्त होता है १४ अर्थात शुद्धसच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त होता है १३ । १४ ॥ १९ ।।

मू०-गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते ॥२०॥

देही १ देहसमुद्भवान् २ एतान् ३ त्रीन् ४ गुणान् ५ अतीत्य ६ जन्ममृत्युजदुःखैः ७ विमुक्तः ८ अमृतम् ९ अश्नुते १० ॥ २०॥ अ०—जीव १ देहाकारको प्राप्त हुए २ इन ३ तीन ४गुणोंको ५

उलंघकर ६ जन्ममृत्युजराव्याधिसे ७ छूटा हुआ ८ नित्यानन्द स्वरूप को ९ प्राप्त होता है, १० तात्पर्य यही तीनों गुण देहाकार होरहे हैं, इनके साथ ममता संग और अभ्यास ये छोड देना, यही इनका उलंघन करना है और जन्ममृत्यु जराव्याधि इनके ही संबन्ध से होते हैं ये और इनके संबन्ध में अपने शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप को भूल जाता है, इनके त्याग में प्रयत्न है. परमानन्द की प्राप्ति में कुछ यत्न नहीं ॥ २० ॥

मू०–अर्जुनउवाच॥कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतोभवति प्रभो। किमाचारःकथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते॥२१॥

अर्जुन उवाच प्रभो १ कैः २ लिंगैः ३ एतान् ४ त्रीन् ५ गुणान् ६ अतीतः ७ भवति ८ किमाचारः ९ कथम् १० च ११ एतान् १२ त्रीन् १३ गुणान् १४ अतिवर्तते १५ ॥ २१ ॥ अ०—अर्जुन प्रश्न करता है कि हे समर्थ ! १ किनचिन्ह करके २ । ३ इन तीनों गुणों से ४ । ५ । ६ अतीत ७ होता है ८ सि० यह लक्षण प्रश्न है ❀ अर्थात् कैसे प्रतीत हो कि अमुक गुणातीत है वा है वा मैं गुणातीत हूं, वे कौनसे लक्षण हैं, और ६ । ७ । ८ क्या आचार है उसका ९ अर्थात् उसका व्यवहार चाल चलन कैसा होता है ९ सि० यह आचार प्रश्न ❀ है और किस प्रकार १० । ११ इन तीन गुणों का १२ । १३ । १४ उलंघन करता है १५ सि० यहउपाय प्रश्न है ❀ अर्थात् वो क्या साधन है कि, जिस करके पुरुष गुणातीत होजावे ॥ २१ ॥

मू०–श्रीभगवानुवाच॥प्रकाशंचप्रवृत्तिंचमोहमेवचपांडव॥नद्वेष्टिसंप्रवृत्तानिननिवृत्तानिकांक्षति॥२२॥

श्रीभगवानुवाच, प्रकाशम् १ च २ प्रवृत्तिम् ३ च ४ मोहम् ५ एव ६ च ७ पांडव ८ संप्रवृत्तानि ९ न १० द्वेष्टि ११ निवृ:-

त्तानि १२ न १३ कांक्षति १४ ॥२२॥ अ०-उ०-द्वितीयाध्याय में भी अर्जुन ने यही प्रश्नकिया था और उसका अन्य रीति करके श्रीमहाराज ने उत्तर भी दिया था, अब श्रीमहाराज ने यह जाना कि, उस रीति से अर्जुन की समझ में नहीं आया, अब अन्यरीति से कहना चाहिये, इस वास्ते इस बातको संक्षेप करके अन्यरीति से कहते हैं जिससे शीघ्र समझ में आजावे. ऐसे करुणाकर को छोड जो अन्य उपाय से मोक्ष चाहते हैं उनके अन्तःकरण में रजोगुणी तमोगुणी वृत्ति बढी हुई है-प्रकाश १ और प्रवृत्ति २।३ और मोह ४।५। ६। ७ सि० ये तीन तीनों गुणोंके कार्य हैं, ये तीनों उपलक्षण हैं अर्थसे सत्वादिगुणों का जितना कार्य है सब समझ लेना, जो ये अपने आप ❀ हे अर्जुन ८ भले प्रकार वर्तते रहे हों ९ सि० तो इनसे ❀ न १० वैर करता है, ११ अर्थात् उनकी प्रवृत्तिनिवृत्ति का कुछ उपाय नहीं करता है. ११ सि० और फिर जब अपने आप दूर होजाते हैं, तब ❀निवृत्तों की १२ नहीं १३ चाह करता है १४. सि० यह लक्षण प्रश्नका उत्तर है, ❀ तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी न किसी गुण में प्रतीत करता है, न वैर करता है, सतोगुणीमें प्रीति और रजोगुणतमोगुणमें द्वेष जिज्ञासूका होता है यह लक्षण स्वसंवेद्य है. परसंवेद्य नहीं, अर्थात् ऐसे महात्मा को दूसरा नहीं पहंचान सक्ता, क्योंकि वे आप अपनेको छिपाये रखते हैं ॥ २२ ॥

मू०-उदासीनवदासीनोगुणैर्योनविचाल्यते ॥
गुणावर्तन्तइत्येवयोवतिष्ठतिनेंगते ॥ २३ ॥

यः १ उदासीनवत् २ आसीनः ३ गुणैः ४ न ५ विचाल्यते ६ गुणाः ७ वर्तंते ८ इति ९ एवम् १० यः ११ अवतिष्ठति १२न१३ इंगते १४॥ २३ ॥ अ०-उ० गुणातीतका क्या आचार है, इस

प्रश्नका उत्तर देते हैं, यह लक्षण ज्ञानीका परसंवेद्य भीहै—जो १उदा॰ सीनवत २ स्थित् ३गुणोंकरके ४ नहीं ५ विचलताहै ६ गुणवर्त हे हैं ७। ८ यह ९ सिं॰ समझता है कि मेरा गुणोंसे क्या संबंध है ॐ इसप्रकार १० जो ११ स्थित १२ सि॰ अपने स्वरूपमें ॐ नहीं १३ विचलता है १४ सि॰ उसको गुणातीत कहते हैं ॐ ॥२३॥

मू॰ समदुःखसुखःस्वस्थःसमलोष्टाश्मकांचनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः॥२४॥

समदुःखसुखः १ स्वस्थः २ समलोष्टाश्मकांचनः ३ तुल्यप्रिया॰ प्रियः ४ धीरः ५तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ६॥ २४ ॥ अ॰— सुखदुःख हैं सम १ अर्थात् सुख दुःखका प्रतीत होना यह अन्तःकरणका धर्म है, यावत् अन्तःकरण है तावत् वेसंदेह धर्मोंको अवश्य प्रतीत होगा, जिस धर्मसे वो धर्मी कहा जाता या वो धर्म न करें तो फिर उसको उस धर्मवाला क्यों कहेंगे, दुःखसुख ज्ञानीको अवश्य प्रतीत होता है. समताका यह अर्थ नहीं कि यह दुःखसुख प्रतीत न होवे तात्पर्य यह है, कि दुःखसुख परमानंदस्वरूप आत्माको भ्रमसिवाय नहीं करसके. १ अपने स्वरूपमें स्थित २ सम है लोहा पत्थर सोना जिसको ३ सम है प्रिय और अप्रिय जिसको ४ धैर्य॰ वाला ५ सम है अपनी निन्दा और स्तुति जिसकी ६ सि॰ उसको गुणातीत कहते हैं ॐ टी॰ जो आत्माकी निंदा करता है. वो अपनी पहले करता है, और जो शरीरोंकी करता है, तो सहाय करता है, और जो निन्दा करता है वो अवगुणोंकी करता है, इस हेतुसे उसको सहायक जानना योग्य है. क्योंकि अवगुणोंको सब बुरा कहते हैं, सिवाय इसके अवगुण कहनेसे दूर होजाता है. इस बातको इतिहाससे स्पष्ट करते हैं इतिहास एक राजाने बहुत

ब्राह्मणोंको एकदिन जिमाया, भोजन किये पीछे वे ब्राह्मण सब मर गये, मरजानेका कारण यह हुआ, कि मैदानमें खीर हो रही थी आकाशमें चील सर्पको लेजाती थी, सर्पके मुखमें से विष टपककर खीरमें जा पड़ा, वो किसीको न दीखा, नगरमें यह चर्चा हुई, कि राजाने ब्राह्मणोंको विष देदिया, बहुत लोगोंका इसमें संमत न हुआ तब एक दुष्टने यह बारीकी निकाली कि राजा अमुकब्राह्मणकी स्त्रीसे प्रीति रखता है, अकेला उस ब्राह्मणको मरवाना राजाने योग्य न समझा, बहुतोंके साथ उसको भी न्योतकर विष देदिया, उसबातमें बहुत लोगोंका निश्चय होगया, जगे जगे यही चर्चा होने लगी, राजा बिचारा अकृतदोष इसनिन्दाके मारे नगरको छोड़ बनमें चला गया. बनमें आकाशवाणी हुई कि हे राजन् ! तेरा कुछ दोष नहीं, यह व्यवस्था ऐसी है चील सर्प विषकी सब कथा सुनाई कि इस कथाको उन निन्दक दुष्टोंने भी सुना वो हत्या राजा को छोड़ परमेश्वरके पास पहुँचकर परमेश्वरसे कहाकि मुझको अब जगह बतलाइये, प्रभुने कहा कि, जिन्होंने राजाको दोष लगाया और कहा. या सुना. तुझको वहां रहना योग्य है. इसमें न राजाका दोष न चीलका, न सर्पका न रसोय्याका, राजा इसमें निमित्त था सो उसको फल होगया, राजा अपने घर आया और हत्या निन्दकों के मुख पर पहुंची उस दिनसे हत्या निन्दकोंके मुखपर और जो किसीकी बुराई मन लगाकर सुनते हैं, उनके मुखपर बास करती है प्रत्यक्ष देखलो कि जिससमय किसीकी कोई निन्दा करता हो, या सुनता हो, दोनोंकी सूरत हत्यारोंकीसी होगी ॥ २४ ॥

मू०—मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

मानापमानयोः १ तुल्यः २ तुल्यः ३ मित्रारिपक्षयोः ४ सर्वारं-
[...]त्यागी ५ सः ६।७ गुणातीतः उच्यते ८॥ २५ ॥ अ०-मानमें
[...] अपमानमें १ सम २ मित्रके पक्षमें और अरिके पक्षमें सम
[...] सब शुभ और अशुभ इन कर्मोंके आरंभका त्यागी ५
[...]।७गु णातीत कहाहै ८तात्पर्य जीवनमुक्त ज्ञानीको गुणातीत कह
[...] सम होनेसे शांति होती है, शांति सुखका कारण है ॥२५॥

[...]-मांचयोऽव्यभिचारेणभक्तियोगेनसेवते ॥
सगुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयायकल्पते ॥२६॥

यः १ च २ माम् ३ अव्यभिचारेण ४ भक्तियोगेन ५ सेवते ६
[...]७ एतान् ८ गुणान् ९ समतीत्य १० ब्रह्मभूयाय ११ कल्पते१२
[...]६। अ०-उ० गुणातीत होनेका उपाय श्रीमहाराज कहते हैं
[...]।२ मेरा ३ अव्यभिचारी भक्तियोगकरके ४।५ सेवन करता है
[...]र्थात् परमेश्वर की ऐसी उपासना करे कि वो दिनदिनप्रति
[...] कम न होने पावे. कोई अन्य काम बीचमें न हो, उसीको
[...]भिचारिणी भक्ति कहते हैं ४।५।६. सो ७ इन गुणोंको ८।९
[...]के १० ब्रह्मआनन्दको ११ प्राप्त होता है १२, तात्पर्य परमानंद-
[...]प आत्माके प्राप्तिका उपाय जैसा भक्ति है और विशेष इस
[...]में ऐसा अन्य उपाय शीघ्र प्रत्यक्ष जीते भी फलका देने-
[...]ा नहीं, यह अवतार श्रीव्रजचन्द्रमहाराजका इसी समय के
[...]ोंका उद्धार करनेके लिये हुआ है. जैसे इस समयके पाप
[...]ान हैं ऐसा ही श्रीभगवान्का यह अवतार इन पापोंके नाश
[...]में समर्थ है ॥ २६ ॥

[...]-ब्रह्मणोहिप्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्यच ॥
शाश्वतस्यचधर्मस्यसुखस्यैकांतिकस्यच ॥२७॥

अव्ययस्य १ अमृतस्य २ ब्रह्मणः ३ हि ४ अहम् ५ प्रतिष्ठा ६ च ७ शाश्वतस्य ८ च ९ धर्मस्य १० च ११ ऐकांतिकस्य १२ सुखस्य १३ ॥२७॥ अ०-निर्विकार १ अविनाशी २ ब्रह्मकी ३ ही ४ मैं मूर्ति ६।७ हूँ और सनातन धर्मकी ८।९।१० भी ११ अखंड सुखकी १२।१३ सि० भी मैं मूर्ति हूं ❀ तात्पर्य जो निराकारब्रह्मको और धर्मको और परमानंदको नहीं जानते हैं, श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी दिनरात उपासना करते हैं, वे ब्रह्मको अवश्य प्राप्त होते हैं. गुणातीत होनेका उपाय अर्जुनने जो बूझाथा उसका उत्तर यह दो श्लोकों करके दिया. अर्थात् श्रीब्रजचन्द्रकी भक्ति करना यही गणातीत होनेका उपाय है, यावत् निराकार निर्गुण परमानन्दस्वरूप आत्माका साक्षात्कार न हो, तावत् साकारमूर्तिका आश्रय रखना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ २७ ॥

श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
गुणत्रयविभागो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः१५.

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं
प्राहुरव्ययम् ॥ छन्दांसियस्यपर्णानियस्तंवेद
सवेदवित् ॥१॥

श्रीभगवान् उवाच. ऊर्ध्वमूलम् १ अधःशाखम् २ अश्वत्थम् ३ अव्ययम् ४ प्राहुः ५ यस्य ६ चछन्दांसि ७ पर्णानि ८ यः ९ तम् १० वेद ११ सः १२ वेदवित् १३ ॥ १ ॥ अ०-उ० वैराग्य विना ज्ञान नहीं होता, इसवास्ते संसारको वृक्षवत् वर्णन करते हैं- मायोपहित ब्रह्म जड है जिसकी १ सि० क्योंकि मायोपहित से

अन्य पदार्थ संसारमें ऊर्ध्व (ऊंचा) बडा नहीं, और शुद्धब्रह्म तो संसारमें पृथक् है, सो बाणीका विषय नहीं ❀ हिरण्यगर्भादि शाखा हैं जिसकी २ सि० क्योंकि हिरण्य-गर्भादि मायोपहित ब्रह्मसे नीचे संसारको ❀ अश्वत्थ ३अव्यय ४कहतेहैं ५सि०विना ज्ञान इसका नाश नहीं होता इसवास्ते तो इसको अव्यय कहतेहैं, और भगवत्की कृपासे ज्ञान होजावे तो यह ऐसा भी नही कि. कलतक ठहरा रहे. अश्वत्थमें अकार नकारके जगह है, श्व इस शब्दका अर्थ कलका वाचक है जो कलतक न ठहरे उसको अश्वत्थ कहते हैं अश्वत्थका अर्थ इस जगह पीपल नहीं समझना. और यह भी नहीं समझना कि उसकी जड़ ऊपरको है वृक्षवत और शाखा नीचे है, ऐसा समझना चाहिये कि जो ऊर्ध्व अधः इनका अर्थ ऊपर लिखा हैं ❀ जिससे ६ वेद ७ पत्र ८ सि० हैं क्योंकि वृक्षकी शोभा पत्तों से ही होती है और पत्तोंको ही देख वृक्षमें राग उत्पन्न होता है, ऐसा वेदोक्त कर्मोंके फल सुन सुन संसारमें राग बढता चला जाता हैं वेदोंका तात्पर्य समझमें नहीं आता, रोचक वाक्योंका सिद्धान्त समझ बैठते हैं ❀ जो ९ तिनको १० जानता है ११ सो १२ वेदका जाननेबाला है १३ तात्पर्य जो वेदमार्गको एकसाधन समझता है और फल उसको परमानंदस्व-रूप आत्मा है सो वेदका अर्थ जानता है द्वितीयाध्यायमें श्रीभग-वान् कहचुके हैं कि वेद अज्ञानियोंके वास्ते हैं कि जो सत्त्वादिगुणों में मोहको प्राप्त होरहे हैं ॥ १ ॥

मू०–अधश्चोर्ध्वंप्रमृतास्तस्यशाखागुणप्रवृद्धाविष-
यप्रवालाः ॥ अधश्चमूलान्यनुसंततानिकर्मा-
नुबंधीनिमनुष्यलोके ॥ २ ॥

तस्य १ शाखाः २ अधः ३ च ४ ऊर्ध्वम् ५ प्रसृताः ६ गुणप्रवृद्धा ७ विषयप्रवालाः ८ अधः ९ च १० मनुष्यलोके ११ कर्मानुबन्धीनि १२ मूलानि १३ अनुसंततानि १४ ॥ २ ॥ अ०-तिस संसारवृक्षकी १ शाखा २ नीचे ३ और ऊपर ४।५ फैल रही हैं ६ सत्त्वादिगुणोंकरके बढी हुई हैं ७ विषय इसलोक परलोकके पत्ते हैं उसवृक्षके ८ और नीचे ९।१० सि० भी ❀ मनुष्यलोकमें ११ कर्मोंके फल रागद्वेषादि १२ उसकी जड १३ फैलरही हैं १४ अर्थात् बहुत दृढ होरही हैं. जैसे रज्जूमेगठरीको पेंचपर पेंच देकर बांधते हैं. चारोंतर्फ तैसेही संसारकी जड मनुष्यलोकमें नीचे ऊपर अनुस्यूत ओतप्रोत होरहीहैं १३ १४. तात्पर्य कर्मकरनेका अधिकार मनुष्यलोकमेंही हैं और कर्मोंका जो अनुबन्ध अर्थात् पश्चात् भावी रागद्वेषादि कर्मोंका फल यहभी संसारकी जड है. वास्तवमें संसारकी जड़ मायोपहितब्रह्महै. इस हेतुसे उसको ऊर्ध्व जड़ कहा मनुष्यलोकमें कर्म इसकी जड हैं मायोपहितब्रह्मके अपेक्षामें मर्त्यलोक नीचा है. इसवास्ते इस जगह्ह कहा कि, इसके नीचे मनुष्य लोकमें कर्मकांड जड़है. ब्रह्मलोक वैकुण्ठादि और मायोपहिब्रह्म, सूक्ष्म उपाधि करके उपहित. हिरण्यगर्भ स्थूल उपाधिकरके उपहित, विराट् और उसके अन्तर्गत ब्रह्मादिदेवता यह तो ऊपर को संसार की शाखा फैल रही हैं और मर्त्यलोकमें पशु, पक्षी, मनुष्यादि और यज्ञादि कर्म यह नीचे संसारकी शाखा फैल रही हैं, जैसे जैसे सत्त्वादिगुणोंमें प्रीति करते हैं, तैसे तैसे ही शाखामें शाखा बढती चलीजाती हैं इसी हेतुसे न कुछ परलोक सावयवलोकोंका पता लगता है, कि चौदह लोक है ये वैकुण्ठादि कितने लोक हैं, और एक एक देवताके उपासनामें अनेक अनेक भेद और अबतक अनेक भेद शाखा निकलती चलीजाती हैं और नीच मनुष्य

णोंका जो व्यवहार है, इसका कुछ प्रमाण नहीं. न जातिका प्रमाण न कुलके व्यवहारोंका प्रमाण है, संसार वृक्षमें शब्दादिविषय कोमल सुन्दर पत्र लगरहे हैं देवता मनुष्यपश्वादि सब प्राणियोंने विषयोंका आश्रय ले रक्खा है कोई साक्षात् भोगते हैं, कोई उनके लिये वेदोक्तकर्म कर रहे हैं इस संसारकी व्यवस्था इसजगह बहुत संक्षेप करके लिखी गई है, वैराग्यवान् पुरुषोंसे और योगवासिष्ठादि ग्रन्थोंसे इसकी व्यवस्था श्रवण करना योग्य है, कि यह कैसे अनर्थोंका मूल है ॥ २ ॥

मू०–नरूपमस्येहतथोपलभ्यते नांतोनचादिर्नच संप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनंसुविरूढमूलमसंग-शस्त्रेणदृढेनछित्वा ॥ ३ ॥

इह १ अस्या २ रूपम् ३ तथा ४ न ५ उपलभ्यते ६ न ७ अन्तम् ८ नच ९ आदिः १० च ११ न १२ संप्रतिष्ठा १३ सुविरूढमूलम् १४ एनम् १५ अश्वत्थमम् १६ दृढेन १७ असंगशस्त्रेण १८ छित्वा १९ ॥ ३ ॥ अ०–संसारमें १ सि० जैसा ❀ इस संसारका २ रूप ३ सि० बर्णन करते हैं ❀ तैसा ४ सि० बेसन्देह ❀ नहीं ५ प्रतीत होता है ६ सि इसका ❀ न ७ अन्त ८ और न आदि ९ ।१० । ११ न १२ स्थिति १३सि० इसकी प्रतीत होती है कि. यह कैसा उत्पन्न हुआ कैसा लीन होगा कैसा ठहर रहा है. क्षणभंगुर स्वप्नवत् या इन्द्रजालवत् इसके पदार्थ प्रतीति होते हैं अनर्थोंका मूल और दुःखोंका स्थान है, जो पदार्थ नरकका कारण उसके बिना निर्वाह नहीं होता जो उसका अशेष त्याग किया जावे तो यह असंभव है. इस प्रकार ❀ बंधी हुई हैं भलेप्रकार ज़ड़ जिसकी १४ इस १५ अश्वत्थको १६ दृढ ऐसे

असंगशास्त्रसे १७। १८ छेदनकरके १९ सि० परमपद परमान्दस्वरूप आत्माको ढूँढना चाहिये. अगले मन्त्रके साथ इस मंत्रका संबन्ध है ❀ तात्पर्य इस संसारकी व्यवस्था सब मतवाले जुदीजुदी कहते हैं. अपने मतको सब बड़ा कहते हैं, दूसरेको बुरा कहते हैं, कोई बेसंदेह समन्वय नहीं करता कि वास्तवमें संसारकी यह व्यवस्था है और अमुक अमुक जो यह कहते हैं, उनका तात्पर्य यह है है मुमुक्षुका कैसा निश्चय हो कि अमुक मत सच्चा है-जो निर्णय करो तो एक घटका निर्णय नहीं होसक्ता एक घटकी चर्चामें समस्त अवस्था समाप्त होजावे परन्तु घटका निर्णय न हो न्यायशास्त्रवाले चर्चाके बलसे कुछका कुछ सिद्ध करदें विद्याकी तो यह व्यवस्था है एकमत नहीं कि जिसपर निश्चय बना रहे, तात्पर्य यह है कि सब प्रकार संसार दुःखरूप है. इसका कभी निर्णय न करे इसके दूर होनेका यत्न करे, कभी इसमें प्रीति न करे सदा संसारसे ग्लानि बनी रहे, तब परमानन्दस्वरूप आत्मा प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

मू०-ततःपदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तंतिभूयः ॥ तमेवचाद्यंपुरुष प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृतापुराणी ॥ ४ ॥

ततः १ तत् २ पदम् ३ परिमार्गितव्यम् ४ यस्मिन् ५ गताः ६ भूयः ७ न ८ निवर्तंति ९ तम् १० एव ११ च १२ आद्यम् १३ पुरुषम् १४ प्रपद्ये १५ यतः १६ पुराणी १७ प्रवृत्तिः १८ प्रसृता १९ ॥ ४ ॥ अ०-सि० असंगशस्त्रसे संसारका छेद करके❀ पीछे १ सो २ पद ३ ढूंढना योग्य है ४ जिसमें ५ प्राप्त होकर ६ फिर७ न८ लौटना पडे ९ सि० उसके ढूंढनेको भक्ति मार्ग कहते हैं❀

तिसही १० । ११ । १२ आदिपुरुषको १३।१४ मैं शरण हूँ १५ सि० कि ❀ जिससे १६ अनादि १७ प्रवृत्ति १८ फैली है १९ तात्पर्य संसार के किसी पदार्थ में नीचे ऊपर प्रीति न करे वैराग्य के पीछे वो पद ढूंढ़े कि जहां जाकर फिर जन्म लेना न पड़े, यत्न उसपदको प्राप्तिका यह है कि तटस्थ लक्षण जो परमात्मा का है, उसलक्षणसे उसकी लक्ष्य करके उसकी भक्ति करना चाहिये, भक्तिका स्वरूप यह है, कि जिस परमात्मासे यह अनादि अनिर्वाच्य संसारवृक्ष नीचे ऊपर फैला है सोई आदिपुरुष मुझको आश्रय है, उसकी मैं शरण हूं. वोही मेरी रक्षा करनेवाला है वो अन्तर्यामी सबके हृदयमें विराजमान समर्थ है, इस संसारवनसे पार मुझको वोही लगावेगा ऐसा चिंतवन सदा बना रहे इसी को भक्ति कहते हैं ॥४॥

मू०—निर्मानमोहाजितसंगदोषाअध्यात्मानित्या
विनिवृत्तकामः ॥ द्वन्द्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसं-
ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाःपदमव्ययंतत् ॥ ५॥

निर्मानमोहाः १ जितसंगदोषाः २ अध्यात्मनित्याः ३ विनिवृत्तकामाः ४ सुखदुःखसंज्ञैः ५ द्वंद्वैः ६ विमुक्ताः ७ अमूढा ८ तत् ९ अव्ययम् १० पदम् ११ गच्छन्ति १२ ॥ ५ ॥ अ०–उ० और भी आत्मा की प्राप्तिके साधन कहते हैं–दूर होगये हैं, मान मोह जिनके १ जीता है संगका दोष जिन्होंने २ वेदांतशास्त्रके श्रवण मनन विचार में नित्य लगे रहते हैं ३ समस्तकामना (इसलोककी या परलोककी) जाती रही हैं जिनकी ४ सुखदुःख यहहै नाम जिनका ५ सि० इत्यादि ❀ द्वन्द्वकरके ६ छूटेहुए ७ ज्ञानी आत्मतत्वके जाननेवाले ८ जिस ९ निर्विकार १० पदको ११ प्राप्त होते हैं १२ सि० कि जिसपदके विशेषण अगले मंत्र में है ❀

तात्पर्य मुमुक्षुको चाहिये कि प्रवृत्तिमार्गवालोंका संग न करे और जिन ग्रन्थोंमें प्रवृत्तिमार्गका विशेष निरूपण है उनका कभी श्रवण न करे जिस पदार्थको जिह्वासे कहेगा, कानोंसे सुनेगा, अवश्य उसके गुणसंस्कार अंतःकरण में प्रविष्ट होंगे. प्रवृत्तिशास्त्रमें स्त्री पुत्र राज्य संयोगवियोगादि पदार्थोंका वर्णन विशेष है इस हेतुसे मुमुक्षुको कहना सुनना निषिद्ध है. ब्रह्मविद्यामें केवल वैराग्य, उपरति, शान्ति, शम, दम, इत्यादि साधनोंका निरूपण है. रूपादिपदार्थोंका संबंध ऐसा अनर्थ नहीं करता कि जैसा जो उनका गुणवर्णन करता है उसका संग अनर्थ करता है ॥ ५ ॥

मू०-नतद्भासयतेसूर्योनशशांकोनपावकः ॥
यद्गत्वाननिवर्तंतेतद्धामपरमंमम ॥६॥

तत् १ सूर्यः २ न ३ भासयते ४ न शशांकः ६न७ पावकः ८ यत् ९ गत्वा १० न ११ निवर्तंते १२ तत् १३ मम १४ परमम् १५ धाम १६ ॥ ६ ॥ अ०-उ० पूर्वोक्तपदके विशेषण कहते हैं जिसको १ सूर्य २ नहीं ३ प्रकाशित करसक्ता है, ४ न ५ चंद्रमा ६ न ७ अग्नि ८ सि० और ❀ जिसको ९ प्राप्त होकर १० नहीं ११ लौटकर आते हैं १२ सि० जन्ममरण में ❀ सो १३ मेरा १४ परंधाम १५ । १६ सि० हैं ❀ तात्पर्य सूर्यादि जड़ पदार्थ अज्ञानका कार्य ज्ञानस्वरूप आत्माको कैसे प्रकाशित करसक्ते हैं आत्माहीको परमपद परमधाम ऐसा कहते है, तैजस सावयव मंदिरोंको वैकुंठादि नाम हैं जिनके उनके धाम इस जगहनहीं समझना क्योंकि वहां सूर्यादि सब प्रकाश करसक्ते हैं. जैसे सूर्यादि तेजका कार्य है, ऐसेही वे लोक हैं. प्रभु का धाम प्रभुसे जुदा नहीं. यह बात आठवें अध्यायमें स्पष्ट करचुके है ॥ ६ ॥

मू०-ममैवांशोजीवलोकेजीवभूतःसनातनः ॥
मनःषष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति ॥७॥

जीवलोके १ सनातनः २ जीवभूतः ३ मम ४ एव ५ अंशः ६ प्रकृतिस्थानि ७ इन्द्रियाणि ८ कर्षति ९ मनःषष्ठानि १० ॥ ७ ॥ अ०—संसार में एक अनादि२जीव ३ मेरा४ही ५ सि० घटाकाश, अंशवत ❀ अंश ६ सि० है, जैसे महाकाश का अंश, पर्वतवत चिद्धन का अंश चित्कण जीव को समझना न चाहिये क्योंकि परमात्मा निरवयव आकाशवत् है, सावयव पर्वतवत् नहीं, जैसे पर्वत का अंश पत्थरका टुकड़ा होता है,ऐसा जीव अंश नहीं आकाश का दृष्टांत या बिम्बप्रतिबिम्ब का दृष्टान्त समझना चाहिये, जो जीव सुषुप्तिकाल और प्रलयकाल में❀ प्रकृतिमें स्थित रहता है ७ सि० जो इंद्रियें, तिन ❀ इन्द्रियों को ८ खैंचता है, ९ सि० कैसी हैं वे इन्द्रियें ❀ मन है छठा जिनमें १० अर्थात् पंचज्ञाने-न्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पञ्चप्राण अन्तःकरणचतुष्टय ये सब कारण अविद्या में सूक्ष्म अविद्यारूप हुए रहते हैं, सुषुप्ति प्रलय में से इन सबको वो ही अविद्योपहित चिदाभास (जीव) स्थूल सूक्ष्म भोगों के लिये अपने साथ ले लेता है ॥ ७ ॥

मू०-शरीरंयदवाप्नोतियच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानिसंयातिवायुर्गन्धानिवाशयात ॥८॥

ईश्वरः १ यत् २ शरीरम् ३ अवाप्नोति ४ यत् ५ च ६ अपि ७ उत्क्रामति ८ एतानि ९ गृहीत्वा १० संयाति ११वायु १२ गंधान् १३ आशयात्१४इव १५॥८॥ अ०-देहका स्वामी जीव १ जिस काल में २ देह को ३ प्राप्त होता है ४ और जिस कालमें५। ६।७

एकदेहसे दूसरे दूसरे देह में जाता हैं ८ सि० तिसका ७में ❀इनका ६ ग्रहण करके १० प्राप्त होता है११सि० दूसरे देह में, दृष्टाँत कहते हैं ❀ वायु १२ गन्धको १३ पुष्पादि से १४ जैसे १५ सि० लेजाता है ❀ तात्पर्य इन्द्रियादि को साथ लेकर जाता है ॥ ८ ॥

मू०—श्रोत्रंचक्षुःस्पर्शनंचरसनंघ्राणमेवच ॥
अधिष्ठायमनश्चायंविषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

श्रोत्रम् १ चक्षुः २ स्पर्शनम् ३ च४रसनम् ५ घ्राणम्६एव ७ च ८ मनः ९ च १० अयम् ११ अधिष्ठाय १२ विषयान् १३ उपसेवते १४ ॥ ९ ॥ अ०—श्रोत्र १ चक्षु २ त्वक् ३ और ४ रसना ५ और नासिका ६ । ७ । ८और मन इनका ९ । १० यह ११ सि० जीव आश्रय करके १२ विषयों को १३ भोक्ता है १४ तात्पर्य बुद्धि में चैतन्य का प्रतिबिंब जो भोक्ता जीव, मनमें प्रतिबिंब जो उसी चैतन्य का सो अन्तःकरण, इन्द्रियों में जो प्रतिबिंब चैतन्य का सो बहिःकरण, शब्दादिविषयों में जो प्रतिबिंब चैतन्य का सो कर्म, कर्त्ता को प्रमाता चैतन्य, कर्म को प्रमेय चैतन्य कहते हैं. प्रमाता और प्रमेय ये दोनों चैतन्य जब एक होतेहैं सको प्रत्यक्ष भोग कहते हैं ॥ ९ ॥

मू०—उत्क्रामंतंस्थितंवापिभुंजानंवागुणान्वितम्
विमूढानानुपश्यंतिपश्यन्तिं ज्ञानचक्षुषः ॥१

विमूढाः १ उत्क्रामंतम् २ स्थितम् ३वा ४ अपि ५ भुंजानम् वा ७ गुणान्वितम्८ न ९ अनुपश्यंति १० ज्ञानचक्षुषः ११ पश्य १२॥ १० ॥ अ०-उ०—यथार्थ जीव का स्वरूप ज्ञानी ही जा हैं, बहिर्मुख विषयी नहीं जानते, यह कहते हैं—बहिर्मुख १

विको ❀ एक देहसे दूसरे देहमें जाते हुए को २ और देहमें स्थित
को ३ । ४ भी ५ और भोक्त हुएको ६ और इन्द्रियादिके साथ
युक्त हुएको ७ । ८ नहीं ९ देखते हैं १० ज्ञाननेत्रवाले ११ देखते
१२ तात्पर्य अविवेकको यह भी नहीं जानते, कि जीव किस
ार विषयोंको भोक्ता है, अकेला ही भोक्ता है, या इन्द्रियादिके
न्धसे भोक्ता है और यह शरीरमें कैसा स्थित है शरीरादि इस
आश्रय है या आत्मा देहादिका आश्रय है या कुछ अन्य-
ार है, यह कैसे इस देहमेंसे छूट दूसरे देहमें जाता है ॥ १० ॥

मू०-यतंतोयोगिनश्चैनंपश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतंतोप्यकृतात्मानोनैनंपश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

यतंतः १ योगिनः २ च ३ एनम् ४ आत्मनि ५ अवस्थितम् ६
यंति ७ अचेतसः ८ अकृतात्मानः ९ यतंतः १० अपि ११ एतम्
२ न १३ पश्यंति १४ ॥ ११ ॥ अ०-उ० यह नहीं समझना कि
त्मा को तो सबही जानते हैं ऐसा कौन है कि जो आपको
जाने,अपना आप जानना यही ज्ञानकी अवधि है। सब प्राणी तो
त्माको क्या जानेंगे, जो बहुत विद्यावान् वेदोक्त अनुष्ठान करने-
ले भी नहीं जानते ज्ञानयोगमें यत्न करनेवाले १ योगी २ । ३
त्माको ४ देहमें ५ स्थित ६ सि० और देहमें विलक्षण ❀ देखते
७ मन्दमति ८ मलिन अंन्तःकरणवाले ९ यत्न करते हुए १०
ी ११ आत्माको १२ नहीं १३ देखते १४ तात्पर्य वैदिकमार्ग
लेभी कोईकोई जो आत्माको नहीं जानते उसमें यहहेतु है कि
वेदान्तमें श्रद्धा नहीं करते, जीवको परिच्छिन्न समझते हैं और
क यह बड़ा आश्चर्य है कि वेदके दृष्टिसे अदृष्ट सूतकादि उनको
गजावे और आत्मामें यह निश्चय न हो कि❀मैंब्रह्म हूं। ११॥

मू०-यदादित्यगतंतेजोजगद्भासयतेऽखिलम् ॥
यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौतत्तेजोविद्धिमामकम्॥१२॥

आदित्यगतम् १ यत् २ तेजः ३ अखिलम् ४ जगत् ५ भासयते ६ यत् ७ चन्द्रमसि ८ यत् ९ च १० अग्नौ ११ तत् १२ तेजः १३ मामकम् १४ विद्धि १५ ॥ १२ ॥ अ०-सूर्यमें १ जो २ तेज ३ समस्त ४ जगत्को ५ प्रकाशित करता है ६ जो ७ चन्द्रमा में ८ और जो ९ । १० सि० तेज ❀ अग्नि ११ सो १२ तेज १३ मेराही १४ जान १५ ॥ १२ ॥

मू०--गामाविश्यचभूतानिधारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामिचौषधीःसर्वाःसोमोभूत्वारसात्मकः॥१३

गाम् १ आविश्य २ च ३ भूतानि ४ धारयामि ५ अहम् ६ ओजसा ७ रसात्मकः ८ च ९ सोमः १० भूत्वा ११ सर्वाः १२ औषधीः १३ पुष्णामि १४ ॥ १३ ॥ अ०-पृथिवीमें १ प्रवेश करके २।३ भूतों को धारण करता हूं ५ मैं ६ बलकरके ७ और रसवाला ८।९ चन्द्र १० होकर ११ सब औषधियोंको १२।१३ पुष्ट करता हूं १४ ॥१३॥

मू०-अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तःपचाम्यन्नंचतुर्विधम् ॥१४॥

प्राणिनाम् १ देहम् २ आश्रितः ३ अहम् ४ वैश्वानरः ५ भूत्वा ६ प्राणापानसमायुक्तः ७ चतुर्विधम् ८ अन्नम् ९ पचामि १० ॥ १४ ॥ अ०-जीवनके १ शरीरमें २ स्थितहुआ ३ मैं ४ जाठराग्नि ५ होकर ६ प्राणापानादिके साथ मिलकर ७ चारप्रकारके ८ अन्नको ९ पचाताहूं १० टी० पूरीआदिको भक्ष्य, खीरादिको भोज्य, चटनी आदिको लेह्य, पौंडे आदिको चोष्य कहते हैं

तात्पर्य सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी इत्यादि पदार्थोंमें जो जो गुण हैं, वह सब चैतन्य देवकी सत्ता है, वे सब जड हैं चैतन्य सबका प्रेरकहै १४

मू०-सर्वस्यचाहंहृदिसंनिविष्टोमत्तःस्मृतिर्ज्ञानमपोहनंच॥वेदैश्चसर्वैरहमेववेद्योवेदांतकृद्वेदविदेवचाहम् ॥ १५ ॥

सर्वस्य १ हृदि २ अहम् ३ संनिविष्टः ४ मत्तः ५ च ६ स्मृतिः ७ ज्ञानम् ८ अपोहनम् ९ च १० सर्वैः ११ वेदैः १२ च १३ अहम् १४ एव १५ वेद्यः १६ वेदान्तकृत् १७ च १८ वेदवित् १९ एव २० अहम् २१ ॥ १५ ॥ अ०-सबकी १ बुद्धिमें २ मैं ३ प्रविष्ट हूं ४ और मुझसे ५ । ६ स्मृति ७ ज्ञान ८ सि० और इन दोनोंका * भूलजाना ९ भी १० सि० मुझसे होता है * और सब वेदों करके ११ । १२ । १३ मैं १४ ही १५ जाननेके योग्य १६ सि० हूं * अर्थात् सब वेद मेरा ही प्रतिपादन करते हैं १६ वेदान्तकरनेवाला १७ और वेदोंका जाननेवाला भी १८ । १९ । २० मैं २१ सि० ही हूं * तात्पर्य जहांजहां प्रभु अपनी विभूति कहते हैं, उसका अभिप्राय जीवब्रह्मकी एकता याने पूर्णता इसमें है, ज्ञानशक्ति क्रियाका उपहित जो चैतन्य उससे ज्ञानस्मृति होती है आवरणशक्ति प्रधान जो चैतन्य उससे भूल (अज्ञान) होता है । १५॥

मू०-द्वाविमौपुरुषौलोकेक्षरश्चाक्षरएवच ॥ क्षरःसर्वाणिभूतानिकूटस्थोऽक्षरउच्यते ॥१६॥

इमौ १ द्वौ २ पुरुषौ ३ लोके ४ क्षरः ५ च ६ अक्षरः ७ एव ८ च ९ सर्वाणि १० भूतानि ११ क्षरः १२ कूटस्थः १३ अक्षरः १४ उच्यते १५ ॥१६॥ अ०-उ० कहे हुए पिछले अर्थको फिर संक्षेप-

करके कहते हैं जिससे जल्द समझमें आजाय-ये १ दो २ पुरुष ३ लोकमें ४ सि० प्रसिद्ध हैं *क्षर और अक्षर ६ । ७ । ८ । ९ सब भूतोंको १० । ११ क्षर १२ कूटस्थको १३ अक्षर १४ कहते हैं १५ टी० लौकिक बोलीमें देहको भी पुरुष कहते हैं, इसवास्ते दोनोंको पुरुष कहा. देहेन्द्रियादि पदार्थोंको क्षर कहतेहैं और इसजगह माया का नाम अक्षर है. कूटकपटमें जिसकी स्थिति है सो माया कूटस्थ का अर्थ इस जगह अक्षरार्थसे माया समझना, यावत् ब्रह्मज्ञान नहीं होता तावत् माया अक्षर स्पष्ट प्रतीत होती है, इत्यभिप्रायः ॥१६॥

मू०-उत्तमःपुरुषस्त्वन्यःपरमात्मेत्युदाहृतः ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्ययईश्वरः ॥१७॥

उत्तमः १ पुरुषः २ तु ३ अन्यः ४ परमात्मा ५ उदाहृतः ६ इति ७ यः ८ अव्ययः ९ ईश्वरः १० लोकत्रयम् ११ आविश्य १२ विभर्ति १३ ॥ १७ ॥ अ०—उ० शुद्धसच्चिदान्दपरमात्मा नित्य-मुक्त, क्षर और अक्षर इन दोनोंसे विलक्षण है यह समझ इसको आत्मज्ञान कहते हैं, उत्तम १ पुरुष २ तो ३ अन्य ४ सि० ही है, घटपटवत् अन्यभेदवाला नहीं बिम्बप्रतिबिम्बवत् अन्य है, उसीको * परमात्मा ५ कहा है ६ यह ७ सि० समझ. अर्थात् वो यही आत्मा कहा है * जो ८ निर्विकार ९ ईश्वर १० त्रैलोक्यमें ११ प्रविष्ट होकर १२ धारण करता है १३ अर्थात् उसकी ऐसी अचिंत्य शक्ति है कि वो वास्तवमें निर्विकार ईश्वर है. परन्तु त्रिलोकको धारणकर रहा हैं १३ ॥ १७ ॥

मू०-यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तमः ॥
अतोस्मिलोकेवेदेचप्रथितःपुरुषोत्तमः ॥१८॥

यस्मात् १ क्षरम् २ च ३ अक्षरात्४अपि ५ अहम् ६ उत्तमः ७ अतीतः ८ अस्मि ६ अतः १० लोके ११ वेदे १२ च १३ पुरुषोत्तमः १४ प्रथितः १५॥१८॥ अ०–जिसहेतुसे १ क्षर अक्षर से २ ३।४भी ५ मैं ६ उत्तम ७ अर्थात् मनवाणीका अविषय ७ सि० और इनदोनोंसे ❀ अतीत नित्यमुक्त ८ हूँ ६ इसी हेतुसे १० शास्त्र में ११ और वेदमें १२।१३ [सि० मुझको] ❀ पुरुषोत्तम १४ कहा है १५ तात्पर्य नित्यमुक्त, शुद्ध, सच्चिदानन्द, परिपूर्ण ऐसे आत्मा को पुरुषोत्तम कहते हैं. कभी] किसीकालमें जहां बन्ध, मोक्ष, सत्, असत् इन शब्दोंका कुछ प्रसंग भी नहीं ॥१८॥

मू०–योमामेवमसंमूढो जानातिपुरुषोत्तमम् ॥
ससर्वविद्भजतिमांसर्वभावेनभारत ॥ १९ ॥

भारत १ यः २ असंमूढः ३ एवम् ४ माम् ५ पुरुषोत्तमम् ६ जानाति ७ सः ८ सर्ववित् ६ सर्वभावेन १० माम् ११ भजति १२ ॥ १६ ॥ अ०–उ० जो आत्मासे अभिन्न परमात्मा को ही पुरुषोत्तम जानता है उसका महात्म्य कहते हैं. हे अर्जुन ! १ जो२ मूलज्ञानरहित ऐसा विद्वान् ३ इसप्रकार ४ सि० मैं क्षर और अक्षर इन दोनों से अन्य नित्यमुक्त शुद्ध सच्चिदानन्द हूँ ❀ मुझ ५ पुरुषोत्तमको ६ जानता है ७ सो ८ सर्वज्ञ विद्वान् ६ सर्वभाव करके १० मुझको ११ भजता है १२. तात्पर्य जिसको आत्मज्ञान हुआ वो सदा भजनही करता रहता है ॥१६॥

मू०–इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तंमयानघ ॥
एतद्बुद्धाबुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्चभारत ॥२०॥

अनघ १ मया २ इदम् ३ गुह्यतमम् ४ शास्त्रम् ५ उक्तम् ६ इति ७ भारत ८ एतत् ६ बुद्धा १० बुद्धिमान् ११ कृतकृत्यः १२

च १३ स्यात् १४ ॥ २० ॥ अ०–उ० इस अध्याय में समस्तवेद-शास्त्रोंका सिद्धान्त श्रीनारायणने निरूपण कर दिया, जो इस अध्यायके अर्थ को जानगया वो कृतकृत्य हुआ उसको कुछ कर्त्तव्य नहीं रहा. और जिसका मन पापपुण्यमें खटकता है और जिसने आत्माको असंग अकर्त्ता नहीं जाना उसने इस अध्यायका अर्थभी नहीं समझा. क्योंकि श्रीमहाराज स्पष्ट कहते हैं कि, इस अध्यायके अर्थ को जानकर कृतकृत्य होजाता है–हे अर्जुन ! १ मैंने २ यह ३ गुह्यतम ४ शास्त्र ५ कहा ६ इति इस शब्दका यह तात्पर्यार्थ है कि, समस्त गीताशास्त्र गुह्यतम् है और गीताही को शास्त्र कहते हैं, परंतु इसजगे शास्त्रशब्दका तात्पर्य इसी अध्याय-से है ७ हे अर्जुन ! ८ इसको ९ अर्थात् इसी अध्यायके अर्थ को ९ जानकर १० ब्रह्मज्ञानी ११ कृतकृत्यही १२ । १३ होजाता है है १४ तात्पर्य फिर उसको कुछ कर्त्तव्य नहीं. वो कर्मबन्धनसे मुक्त हुआ ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः १६.

मू०–श्रीभगवानुवाच ॥ अभयंसत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञान-
योगव्यवस्थितिः ॥ दानंदमश्चयज्ञश्चस्वा
ध्यायस्तपआर्जवम् ॥ १ ॥

अभयम् १ सत्त्वसंशुद्धिः २ ज्ञानयोगव्यवस्थितिः दानम् ४ दमः ५ च ६ यज्ञः ७ च ८ स्वाध्यायः ९ तपः १० आर्जवम् ११ ॥१॥ अ०–उ० दैवीसम्पत्के २६ लक्षण ढाईश्लोकोंमें कहते हैं–भय न होना १ अंतःकरण में रागद्वेषादि का न होना २

ज्ञानयोग में स्थित रहना ३ दान करना ४ सि० इसका लक्षण सत्रहवें अध्याय में कहेंगे ❀ और इन्द्रियों का दमन करना ५ । ६ और यज्ञ करना ७ । ८ सि० इसका लक्षण भी सत्रहवें अध्यायमें कहेंगे ❀ वेदशास्त्रों का पढना पाठ करना ९ तप दो प्रकार का है एक सदा नित्यानित्य पदार्थों का विचार करना, दूसरा चान्द्रायणादि व्रत करना १० सीधापन ११ ॥ १ ॥

मू०–अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागःशान्तिरपैशुनम् ॥
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वंमार्दवंह्रीरचापलम् ॥२॥

अहिंसा १ सत्यम् २ अक्रोधः ३ त्यागः ४ शान्तिः ५ अपैशुनम् ६ भूतेषु ७ दया ८ अलोलुप्त्वम् ९ मार्दवम् १० ह्रीः ११ अचापलम् १२ ॥२॥ अ०–मन वाणी शरीर करके किसीको दुःख नहीं देना १ सत्य बोलना २ क्रोध न करना ३ त्याग (समस्तपदार्थोंका) ४ अन्तःकरणका उपशम याने निरोध ५ पीछे किसीका अवगुण नहीं कहना ६ सि० यथार्थ पाप का कहने वाला बरावर का पापी होता है और बढाकर कहे तो दूना पापी होता हैं ❀ प्राणियों में ७ दया ८ नीचों के सामने दीनता न करना ९ कोमलता १० लज्जा रखना खोटे कामों में ११ चपल न होना ॥१२॥२॥

मू०–तेजःक्षमाधृतिःशौचमद्रोहोनातिमानिता ॥
भवन्तिसंपदंदैवीमभिजातस्यभारत ॥३॥

तेजः १ क्षमा २ धृतिः ३ शौचम् ४ अद्रोह ५ अतिमानिता ६ न ७ भारत ८ दैवीम् ९ संपदम् १० अभिजातस्य ११ भवन्ति १२ ॥ ३ ॥ अ०—उ०प्रगल्भता १ अर्थात् दृष्टिमात्र से दूसरा दब जाय बालक स्त्री मूर्खादि सहसा हँसी चोहल न कर बैठें, जैसी

राजाकी दृष्टि रहती है, ऐसेहीपुरुषोंकी तेजस्वी कहते हैं १. सहना २ धैर्य ३ पवित्र रहना ४ वैर नहीं करना ५ अतिमानिता ६ नहीं होना ७ हे अर्जुन ! ८ दैवी ९ सम्पत् के १० सि० जो सन्मुख जन्मा है ११ सि० तिसमें ये लक्षण ❀ होते हैं १२ सि० कि जो पीछे ढाई श्लोक में कहे ❀ तात्पर्य देवतों का पद जिसको प्राप्त होता है, उसको यत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

मू० -दम्भोदर्पोऽभिमानश्चक्रोधःपारुष्यमेवच ॥
अज्ञानंचाभिजातस्यपार्थसंपदमासुरीम् ॥४॥

दम्भः २ दर्पः १ अभिमानः ३ च ४ क्रोधः ५ पारुष्यम् ६ एव७ च ८ अज्ञानम् ९ च १० पार्थ ११ आसुरीम् १२ संपदम् १३ अभिजातस्य १४ ॥ ४ ॥ अ०- उ०- इस मंत्र में असुरोंके लक्षण संक्षेप करके कहते हैं आगे फिर विस्तार सहित कहेंगे—जो अपने में कोई तनक सा भी गुण हो तो उसको एकभाग बनाकर बारंवार लोगों के सामने अनेक युक्तियों के साथ प्रगट करना १ धन विद्या जाति वर्णाश्रमादि का मनमें घमंड रहना २ और महात्मा साधु हरिभक्तों के सामने नम्र न होना ३ । ४ द्वेष (वैर) करना५और कठोरता ६ । ७ । ८ अर्थात् आपतो छिप छिप मेवामिश्री खावे घर के लोगों को गुड़ भी नहीं. साधु हरिभक्तों को देखकर दुष्टों का हृदय भस्म होजाय और बाणीसे दुर्वाक्य कहने लगे ६ । ७ । ८ सि० ऐसा कठोर ❀ और मूलज्ञान ९ ॥१० हे अर्जुन ! ११ आसुरीसम्पत् को १२ । १३ सि० जो प्राप्त होगा, असुरपद के सामने मुख करके जो ❀ उत्पन्न हुआ है १४ सि० उसमें ऐसे लक्षण होते हैं कि, दम्भादि जो इस मंत्र में कहे ❀ तात्पर्य ऐसे प्राणी असुर पदको प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

मू०-दैवीसंपद्विमोक्षायनिबन्धायासुरीमता॥
माशुचःसम्पदंदैवीमभिजातोसिपांडव॥५॥
दैवीसम्पत् १ विमोक्षाय २ आसुरी ३ निबंधाय ४ मता ५
डव ६ मा शुचः ७ दैवीम् ८ संपदम् ९ अभिजातः १० असि
॥५। अ०-उ० दैवीसम्पत्का और आसुरी संपत्का फल
हते हैं-दैवीसम्पत् १ मोक्ष के लिये २ आसुरी ३ बन्धके लिये ४
नी ५ सि० हे महात्मा महापुरुषों ने ❀ हे अर्जुन! ६ तू मत
चकर ७ दैवीसंपत के सन्मुख ८। ९ जन्मा १० तू है ११
० दैवीसंपत् के लक्षणों के तरफ तेरी वृत्तिहै, देवतोंके पदको तू
त होगा ❀ तात्पर्य ज्ञान द्वारा मोक्ष होगा. दैवीसम्पत्के लक्षण
नमें हैं, उनका ही ज्ञान में अधिकार है. असुरों का नहीं॥५॥

मू०-द्वौभूतसर्गौलोकेस्मिन्दैवआसुरएवच॥
दैवोविस्तरशःप्रोक्तआसुरंपार्थमेशृणु॥६॥
अस्मिन् १ लोके २ भूतसर्गौ ३ द्वौ ४ दैवः ५ आसुरः ६ एव
च ८ पार्थ ९ दैवः १० विस्तरशः ११ प्रोक्तः १२ आसुरम् १३
१४ शृणु १५ ॥६॥ अ०-इस जगत् में १। २ भूतोंकी सृष्टि ३
प्रकारकी ४ सि० है, एक ❀ दैव ५ सि० देवसंबन्धिनी दूसरी
आसुर ६। ७। ८ सि० असुरसम्बन्धिनी ❀ हे अर्जुन! ९
व १० अर्थात् देवतों का लक्षण १० बिस्तार पूर्वक ११सि० मैंने
कहा १२ असुरों का लक्षण १३ मुझसे १४ सि० विस्तारपूर्वक
व ❀ सुन १५ सि० असुर स्वभाव को त्यागना चाहिये, इत्या-
भिप्रायः॥ ६ ॥

मू०-प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचजनानविदुरासुराः॥
नशौचंनापिचाचारोनसत्यंतेषुविद्यते॥७॥

प्रवृत्तिम् च २ निवृत्तिम् ३ च ४ असुराः ५ जनाः ६ न ७ विदुः ८ तेषु ९ न १० शौचम् ११ न १२ अपि १३ च १४ आचारः १५ न १६ सत्यम् १७ विद्यते १८ ॥ ७ ॥ अ०-प्रवृत्तिको १ । २ और निवृत्तिको ३ । ४ असुरजन ५ । ६ नहीं ७ जानते हैं ८ तिनमें ९ न १० शौच ११ और न आचार १२ । १३ । १४ १५ न १६ सत्य १७ होता है १८ सि० कोई प्रवृत्ति ऐसी होती है, कि उसका फल निवृत्ति है. और कोई निवृत्ति ऐसी होती है कि उसका फल प्रवृत्तिहै, यह समझ असुरोंको नहीं और वेदोक्त आचार तो पृथक् रहा. दुष्ट स्नानतक नहीं करते और विना हाथ पैर धोये भोजन करने लगते हैं कोई कोई यह कहते है कि बिना झूंठ व्यवहार चलता ही नहीं जैसा झूठ खाने में उनको ग्लानि नहीं, ऐसा झूँठ बोलना भी एक व्यवहार समझ रक्खा है. सत्यसम धर्म नहीं असत्य सम अधर्मनहीं इति सिद्धान्तः ॥७॥

मू०-असत्यमप्रतिष्ठन्तेजगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतंकिमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

ते १ जगत् २ अनीश्वरम् ३ आहुः ४ असत्यम् ५ अप्रतिष्ठम् ६ अपरस्परसंभूतम् ७ कामहैतुकम् ८ अन्यत् ९ किम् १० । ८ ॥ अ०-वे १ अर्थात् असुर १ जगत्को २ अनीश्वर ३ कहते हैं. ४ अर्थात् कर्मोंके फलका देनेवाला कोई भी नहीं सब ३ । ४ झूंठ ५ सि० है. जैसे आप झूंठे हैं ऐसे ही जगत्को झूंठा समझते हैं कहते हैं कि जगत्की कुछ व्यवस्था नहीं, ऐसे ही गोलमोलचला आता है वेदपुराणादिधर्मकी ❀ प्रतिष्ठा नहीं ६ सि० समझते वेदादिको बड़ा नहीं समझते. यह जानते हैं, जैसे विद्या मनुष्योंकी बनाई हुई है, वेदभी किसी मनुष्यके बनाये हुये हैं धर्मके उपदेशको

ठिकाना समझते हैं, इसप्रकार जगतको अप्रतिष्ठ अव्यवस्थित कहते हैं (असत्यं अप्रतिष्ठं) ये दोनों जगत्के विशेषण हैं,जो कोई उन्हों से बूझे कि क्योंजी यह जगत् कैसा उत्पन्न हुआ है. इसका क्या हेतु है, तो उत्तर यह देते हैं कि अजी * परस्पर स्त्री पुरुषों के सम्बन्धसे हुआ है ७ कामदेव इसका हेतु है ८ अन्य ९ क्या १० सि० हेतु होता * ॥८॥

मू०-एतांदृष्टिमवष्टभ्यनष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणःक्षयायजगतोहिताः ॥ ९ ॥

नष्टात्मानः १ अल्पबुद्धयः २ उग्रकर्माणः ३ अहिताः ४एताम् दृष्टिं ६ अवष्टभ्य ७ जगतः ८ क्षयाय ९ प्रभवंति १० ॥ ९ ॥

भा०-मलिनचित्तवाले १ मंदमति २ हिंसात्मककर्मवाले ३ सि० धर्म के * वैरी ४ इस दृष्टिका ५ । ६ आश्रय करके ७ जगत्को ८ नष्ट करनेके लिये ९ हुए हैं १० टी 'जगतः अहितः' अर्थात् जगतके वैरी हैं, यह भी अर्थ होसक्ता है, दुष्ट लोगसाधु हरिभक्तोंके वैरी होते हैं, साधु जगतके रक्षक हैं जबकि उनके वैरी होते हैं. जब कि उनसे बैर किया तो सब जगत्से उनका वैर हुआ जो लौकिक-व्यवहार है सोई सत्य है यह दृष्टि रखते हैं ॥ ९ ॥

मू०-काममाश्रित्यदुष्पूरंदंभमानमदान्विताः॥
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः१०

दंभमानमदान्विताः १ दुष्पूरम् २ कामम् ३आश्रित्य ४अशुचि-व्रताः ५ मोहात् ६ असद्ग्राहान् ७ गृहीत्वा ८ प्रवर्तन्ते ९ ॥ १० ॥

भा०—दम्भमानमदकरके युक्त १ जिसका पूर्ण होना कठिन ऐसे २ कामनाका ३ आश्रय करके ४ अपवित्र आचार हैं जिनका ५ बेहदेपनसे ६ दुराग्रहका ७ अंगीकारकरके ८ सि० निन्दित

मार्गमें ❀ वर्तते हैं ६ तात्पर्य यह मंत्र जपकर अमुक भूतप्रेतको सिद्ध करेंगे, फिर उससे यह काम लेंगे इसप्रकार बेहूदी बात सुन सुन, सीख सीख, कि जिन बातोंमें सिवाय दुःखविक्षेपके कभी कुछ अन्य सुखादि फल नहीं, दंभादि करके अंधे होरहे हैं, किसीकी सुनते भी नहीं, जो अंगीकार करलिया उसमें कितनी ही निन्दा क्षति हो त्यागना नहीं और यही आशा रखना कि यह कर्तव्य हमारा हमको अवश्य सुखदेगा ॥ १० ॥

मू०-चिंतामपरिमेयांचप्रलयान्तामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमाएतावदितिनिश्चिताः ॥११॥

अपरिमेयाम् १ च २ प्रलयांताम् ३ चिन्ताम् ४ उपाश्रिताः ५ कामोपभोगपरमाः ६ एतावत् ७ इति ८ निश्चिताः ६ ॥ ११ ॥ अ०-बेप्रमाण १ और २ मरण है अन्त जिसका ३ सि० ऐसे ❀ चिन्ताका ४ आश्रय किये हुए ५ अर्थात् सदा ऐसे चिंतामें लगे हुए कि जो मरनेसे तो समाप्ति हो जीतेजी सदा बनी रहे ३। ४। ५ काम और भोगोंसे श्रेष्ठ ६ कुछ अन्य नहीं ७ यह ८ निश्चय है जिनका ६ सि० ऐसे लोग अन्याय करके पदार्थोंको संचय करते हैं, अगले मन्त्रके साथ इस मंत्रका अन्वय है ❀ ॥ ११ ॥

मू०-आशापाशशतैर्बद्धाःकामक्रोधपरायणाः ॥
ईहन्तेकामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्॥१२॥

आशापाशशतैः १ बद्धाः २ कामक्रोधपरायणाः ३ अन्यायेन ४ अर्थसंचयान् कामभोगार्थम् ६ ईहन्ते ७ ॥ १२ ॥ अ०-आशाके सैकडों फांसीकरके १ बँधे हुये हैं २ अर्थात् असंख्यात आशामें फँसे हुए हैं छूट नहीं सक्ते १। २ कामक्रोधको ही परम स्थान बना रक्खा है ३अर्थात् सदा काम क्रोधपरायण रहतेहैं३अनी

तिकर के ४ द्रव्य मकान गांव इकट्ठे करते हैं५ भोगों के लिये ६ सि० यही सदा ❀ चेष्टा करतेहैं ७ तात्पर्य पदार्थों को छीन लेने में तत्पर रहते हैं जैसे वने इत्यादि अनीति करके अपने भोग के अर्थ पराया माल छीन लेना और फिर भी असंख्यात आशा में फँसे रहना, सदा काम क्रोध बने ही रहते हैं, ऐसे पुरुष नरकमें पडेंगे यहां इस श्लोकका अन्वय है ॥ १२ ॥

मू०–इदमद्यमयालब्धमिमंप्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपिमेभविष्यतिपुनर्धनम् ॥ १३ ॥

अद्य १ इदम् २ मया ३ लब्धम् ४ इदम्५प्राप्स्ये६मनोरथम् ७इदम् ८ मे ९ अस्ति १० इदम् ११ अपि १२ धनम् १३ पुनः १४ भविष्यति १५ ॥ १३ ॥ अ०—उ० दुष्टजनोंका मनोराज्य चार मन्त्रों में कहते हैं--अब १ यह २ सि० तो ❀ मुझको ३ प्राप्त है ४ सि० और ❀ यह प्राप्त करूंगा ६ सि० यह मेरा ❀ मनोरथ ७ सि० है ❀ यह ८ सि० धन तो ❀ मेरा ९ है १० सि० और ❀ यह ११ भी १२ धन १३ फिर १४ सि० अवश्य ही ❀ प्राप्त होगा १५ सि० ऐसे पुरुष अपवित्र नरक में पडेंगे. यह सोलहवें मन्त्र में श्रीमहाराज कहेंगे ❀ ॥ १३ ॥

मू०–असौमयाहतःशत्रुर्हनिष्येचापरानपि ॥
ईश्वरोहमहंभोगीसिद्धोहंबलवान्सुखी ॥ १४ ॥

मया १ असौ २ शत्रुः ३ हतः ४ च ५ अपरान् ६ अपि ७ हनिष्ये ८ अहम् ९ ईश्वरः १० अहम् ११ भोगी १२ अहम् १३ सिद्धः १४ वलवान् १५ सुखी १६ ॥ १४ ॥ अ०--मैंने १ वो २ शत्रु ३ सि० तो ❀ मारा ४ और ५ सि० अमुक अमुक ❀ औरों को ६ भी ७ मारूंगा ८ मैं ९ समर्थ १० मैं ११ भोगी १२

में १३ सिद्ध १४ बलवाला १५ सुखी १६ सि० हूं ॐटी०लोगों के मारने में समर्थहूं १० अच्छा खाता पीता हूँ१२ कृतकृत्य हूँ १४ मैंने बडे बडे काम किये हैं कि वे मेरे ही करने योग्य थे न्य से नहीं हो सक्के ॥ १४ ॥

मू०-आढ्योऽभिजनवानस्मिकोऽन्योस्तिसदृशोमया॥
यक्ष्येदास्यामिमोदिष्यइत्यज्ञानविमोहिताः१५

आढ्यः १ अभिजनवान् २ अस्मि३मया ४ सदृशः ५ कः ६अन्य ७ अस्ति ८ यक्ष्ये ६ दास्यामि १० मोदिष्ये ११ इति १२ अज्ञान-विमोहिताः ॥ १३ ॥ १५ ॥ अ०-धनवान साहूकार १ कुलीन २ में हूं ३ मेरे ४ बराबर ५ कौन ६ अन्य दूसरा ७ है ८ सि०अब मैं एक ॐ यज्ञ करूंगा ६ सि० उसमें बहुत कुछ ॐ देदूंगा १० आनन्द को प्राप्त हूँगा ११ इस प्रकार १२ अज्ञान करके मोहित हुए १३सि० झूठा वृथा मनोराज्य करते हुए, अवस्था व्यतीत करते हैं, धन जाति के अभिमाम में जले ही जाते हैं, यज्ञ करने का जो मनो-राज्य है, उसमें उनका यह तात्पर्य है कि थोडा बहुत रजोगुणी तमोगुणी अन्न ऐसे वैसे ब्राह्मणों को जिमाकर औरों की बुराई किया करेंगे और दो चार पैसे देने को ही बड़ा दान समझते हैं, जब कभी किसी फकीर को, वा खुशामदी लोगों को या नट वेश्यादिकों को अपनी बडाई के लिये कुछ देदेते हैं,तो अपने को बडा दाता समझते हैं,और बहुत प्रसन्न होते हैं ॐ ॥१५॥

मू०-अनेकचित्तविभ्रांतामोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताःकामभोगेषुपतन्तिनरकेऽशुचौ॥१६॥

अनेकचित्त विभ्रान्ताः १ मोहजालसमावृताः २ कामभोगेषु ३ प्रसक्ताः ४ अशुचौ ५ नरके ६ पतंति ७ ॥ १६ ॥ अ०- उ०

ऐसे लोगोंकी जो गति होती है उनको सुन—अनेक मनोराज्य में चित्त विभ्रान्त होरहा है जिनका १ मोहके जाल में फँसे हुए २ कामभोगों में ३ आसक्त ४ सि० है जो सो ❀ अपवित्र ५ नरको में ६ पडेंगे ७ ॥ १६ ॥

म०-आत्मसंभाविताः स्तब्धाधनमानमदान्विताः ॥
यजंतेनामयज्ञैस्तेदंभेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

आत्मसंभाविताः १ स्तब्धाः २ धनमानमदान्विताः ३ ते ४ दंभेन ५ अविधिपूर्वकम् ६ नामयज्ञैः ७ यजंते ८ ॥ १७ ॥ अ० अपने आपही आपको बडा समझकर अपनेको बडा प्रतिष्ठित मानते हैं १ अनम्र २ सि० किसी महात्माके सामने नम्र नहीं होते ❀ धनकरके जो उनका मान होता है, उस मानके मदमें भरे रहते हैं ३ अर्थात् धनके चाहनेवाले मूर्ख धनीलोगोंका ही मान किया करते हैं ३. सि०जो ऐसे उन्मत्त है ❀ वे ४ दंभकरके ५ शास्त्रविधिरहित ६ नामयज्ञकरके७यजन करते हैं, ८ अर्थात् वास्तव वो ज्ञय नहीं कि जो वे करते हैं, उसका यज्ञ नाम बनारक्खा है, या नामके वास्ते यज्ञ करते हैं, विधिरहित. इत्यभिप्रायः ॥ १७॥

म०—अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंचसंश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषुप्रद्विषन्तोभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

अहंकारम् १ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम् ५ च ६ संश्रिताः ७ आत्मपरदेहेषु ८ माम् ९ प्रद्विषंतः १० अभ्यसूयकाः ११ ॥ १८ ॥ अ०—अहंकार १ बल २ दर्प ३ काम ४ और क्रोध इनका ५।६ आश्रय किये हुए ७ अपने देहके विषय और दूसरे देहके ८ सि० जो मैं सच्चिदानन्द विराजमान हूं ❀ मुझसे ९ द्वेष करते हैं १० सि० मेरी ❀ निंदा करते हैं ११ सि० अपनेदेह में

या पराये देह में जो आत्माको पूर्ण ब्रह्म नहीं समझते वे भगवत्के निन्दक हैं और जो दूसरेसे करते हैं वेभी प्रभु के द्वेषी हैं और जो मनुष्य देह पाकर आत्मज्ञानके लिये यत्न नहीं करते, वेभी प्रभुके वैरी हैं ❀ इत्यभिप्रायः ॥ १८ ॥

मू०–तानहंद्विषतःक्रूरान्संसारेषुनराधमान् ॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ॥१९॥

संसारेषु १ नराधमान् २ द्विषतः ३ क्रूरान् ४ तान् ५ अहम् ६ अशुभान् ७ आसुरीषु ८ योनिषु ६ एव १० अजस्रम्११क्षिपामि १२॥१६॥ अ०-उ० ऐसे दुष्टोंको जो मैं दंड करता हूं सो सुन दो मंत्रोंमें–संसारमें १ आदमियोंके विषय अधम नर २ सि० साधु महापुरुषोंसे ❀ बैर रखते है ३ निर्दय याने दयारहित ४ तिनको ५ मैं ६ अशुभ लोकमें अर्थात् रौरवादिनरकमें ७ और आसुरी- योनियों में ८। ६ निश्चय १० सदा के लिये ११ फेकूंगा १२ अर्थात् पहले तौ बडेबडे नरकोंमें डालूंगा ऐसे दुष्टों को कि जो मेरे भक्त साधुजनों को दुर्वाक्य बोलते हैं और जिनके लक्षण ऊपर कहे, उनको सदा इसीचक्र में रक्खूंगा १२ ॥१६॥

मु०–आसुरींयोनिमापन्नामूढाजन्मनिजन्मनि ॥
मामप्राप्यैवकौंतेयततोयांत्यधमांगतिम् ॥२०॥

मूढाः १ आसुरीम् २ योनिम् ३ आपन्नाः ४जन्मनि५जन्मनि ६ माम् ७ अप्राप्य ८ एव ६ कौन्तेय १० ततः ११ अधमाम् १२ गतिम् १३ यांति १४॥२०॥ अ०-उ० एसे दुष्टोंको मेरी प्राप्ति- का मार्गभी नहीं मिलेगा. क्योंकि मेरी प्राप्तिका मार्ग मेरे भक्त साधु जानते हैं. वे ऐसे दुष्टोंको न दर्शन देतेहैं. न संभाषण करतेहैं और जो लालचसे दुष्टों को उपदेश करते हैं वे साधु भक्त नहीं

वर्णसंकर कमीना कोई नीच जात हैं. मूढ १ आसुरी २ योनियोंको ३ प्राप्त हुए ४ जन्मजन्ममें ५।६ मुझको ७ नही प्राप्त होकर ८ निश्चय ६ हे अर्जुन १० पीछे ११ अधम १२ गतिको १३ प्राप्त होंगे १४. तात्पर्य हे अर्जुन ! किसी युगमें भी मेरे भक्तों की कृपा बिना मेरी प्राप्ति नहीं होती. जो मुझको बुरा कहते हैं, वो तो मैं सहजाता हूं परन्तु जो मेरे भक्तका याने साधुका अपराध करे वो मुझसे नहीं सहाजाता. उसको मैं तुरंत कठिनसे कठिन तीव्र दंड करता हूँ, हिरण्यकशिपुने बहुत मुझसे द्वेष किया. परंन्तु मुझको क्षोभ न हुआ जिस काल में मेरे भक्त के साथ (प्रह्लादका) द्वेष किया एक पल न सहसका, जो कुछ कि मैंने किया सो भागवता दिमें प्रसिद्ध है. इत्यभिप्रायः ॥ २० ॥

मू०-त्रिविधनरकस्येदंद्वारंनाशनमात्मनः ॥
कामःक्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत २१

कामः १ क्रोधः २ तथा ३ लोभः४इदम् ५ त्रिविधम् ६ नरकस्य ७ द्वारम् ८ आत्मनः ६ नाशनम् १० तस्मात् ११ एतत् १२ त्रयम् १३ त्यजेत् १४ ॥ २१ ॥ अ०-उ० जितने दोष आसुरीसंपत्वाले पुरुषोंके कहे, उनमें काम क्रोध और लोभ ये तीन सबके कारण हैं. प्रथम उनको अवश्य त्यागना चाहिये. काम १ क्रोध २ और ३ लोभ ४ यह ५ तीन प्रकारका ६ नरक का ७ द्वार ८ आत्माको नरक में और पशु आदि दुष्टयोनियोंमें प्राप्त करनेवाला ६।१० सि है ❀ तिसकारण से ११ इन १२ तीनको १३ त्यागना १४ सि० चाहिये ❀ तात्पर्य कामादि तीनोंही नरकके द्वार हैं, इनमेंसे जो एकभी होगा तो वोही एक नरक को प्राप्त करेगा. और जिसमें ये तीनों होंगे तो तो तीनोंही नरकमें हैं. परन्तु उनको नरक प्राप्त हो तो इसमें क्या कहना है ॥ २१ ॥

मू०-एतैर्विमुक्तःकौन्तेयतमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनःश्रेयस्ततोयातिपरांगतिम् ॥२२॥

कौंतेय १ एतैः १ त्रिभिः ३ तमोद्वारैः ४ विमुक्तः ५ नरः ६ आत्मनः ७श्रेयः ८ आचरतिः ९ ततः१०परां ११ गतिम् १२ याति॥ १३ ॥ २२ ॥ अ०-उ० कामादि के त्याग का फल कहतेहैं-हे अर्जुन!१इन तीन नरक के द्वारों से २।३।४ छूटा हुआ ५ सि० जो*पुरुष ६ आत्माका ७ भला प्रकार८करता है ९ अर्थात् कामादिको प्रथम त्यागकर पीछे आत्म प्राप्त के लिये शुभाचरण करता है, ९तब १० परमगतिको ११।१२ प्राप्त होता है १३, तात्पर्य जैसे औषधि तब गुण करती है कि, जब प्रथम खटाई मिठाई आदि पदार्थों का त्याग करदे तैसे ही शुभ कर्म जब पाठादि तव फल देंगे जव प्रथम कामादिका त्याग होगा, कामादि के त्यागने से अंतर्मुख वृत्ति होतीहै,बिना अंतर्मुखहुए विचार नहीं होसक्ता, विना विचारे ज्ञान नहीं होता, विना ज्ञान मुक्ति नहीं इस वास्ते कामादि का त्याग अवश्य होना चाहिये ॥२२॥

मू०-यःशास्त्रविधिमुत्सृज्यवर्ततेकामकारतः ॥
नसासिद्धिमवाप्नोतिनसुखंनपरांगतिम् ॥२३॥

यः १ शास्त्रविधिम् २ उत्सृज्य ३ कामकारतः ४ वर्तते ५ सः ६ न ७ सिद्धिम् ८ आवप्नोति ९ न १०सुखम्११न१२ पराम् १३ गतिम् १४ ॥ २३॥ अ०-उ०कामादिका त्यागजो लोगों से नहीं होसक्ता उसमें हेतु यह है कि, शास्त्र की विधि को छोड इच्छापूर्वक वर्त्तते हैं-जो १ शास्त्रविधिको २ उल्लंघकर ३ इच्छापूर्वक ४ वर्तता है ५ ,६ न ७ सिद्धिको८प्राप्त होता९न१०सुखको ११ न १२ परमगतिको १३।१४ तात्पर्य उसको न इसलोकमें सुख होता है न सद्गति(मुक्ति)होती है, औरन इसलोकमें किसी

प्रकारकी उसको सिद्धिभी नहीं होती, इसजगे उन लोगोंका प्रसंग है, कि जिनका शास्त्रमें अधिकार है, जानबूझ शास्त्रकी विधिका उलंघन करते हैं. ज्ञानीजन कृतकृत्य हैं, उनका यहां प्रसंग नहीं और और अनजानलोग या अन्य द्वीपनिवासी या शास्त्रसे अन्यमतवाले, शास्त्र विधिको उलंघ कर अपने मतके अनुसार या स्वभाविक इच्छापूर्वक वर्त्तते हैं उनका भी यहां प्रसंग नहीं क्योंकि उनके लिये अर्जुन सत्रहवें अध्यायमें प्रश्न करेंगे और श्रीमहाराज स्पष्ट उत्तर देंगे ॥ २३ ॥

मू०-तस्माच्छास्त्रंप्रमाणंतेकार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तंकर्मकर्तुमिहार्हसि॥२४॥

तस्मात् १ कार्याकार्यव्यवस्थितौ २ ते ३ शास्त्रम् ४ प्रमाणम् ५ शास्त्रविधानोक्तम् ६ कर्म ७ ज्ञात्वा ८ इह ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ ॥ २४ ॥ अ०-उ० तिसकारणसे १ यह करना चाहिये और यह न करना चाहिये इस व्यवस्थामें २ तुझको ३ शास्त्र ४ प्रमाण ५ सि० है ❀ शास्त्रमें जो करना कहा है उस कर्मको ६ । ७ जान करके ८ इसकर्मके अधिकारभूमिमें ९ अर्थात् इस मनुष्य देहसे मर्त्य लोकमें ९ सि० कर्म ❀ करनेको १० योग्य है तू ११ तात्पर्य जो शास्त्रने कहा सोकर, और जिसकर्मको बुरा कहा सो न करके यहां शास्त्रही प्रमाण है बुद्धिका काम नही इत्यभिप्रायः ॥ २४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पत्तिवर्णनयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः१७.

उ०-सोलहवे अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि जो शास्त्रके विधिका उलंघन करके वर्तते हैं, (अपनी इच्छापूर्वक) उनको न

इस लोकमें सुख होता है, न उसकी सद्गति होती है, इसमें कम-
समझोंको यह शंका प्रतीत होती है कि, जिन्होंने श्रीमहाराज का
तात्पर्य नहीं जाना. वो शंका यहहै कि असंख्यात अन्य द्वीपके लोक
और इस द्वीपमें भी वेदोक्तमतसे अन्य मतवाले और ग्रामनिवासी
वहुत अनजानलोक शास्त्रकी विधिका उल्लंघन करके वर्तते हैं,
उनको इस लोकमें तो जैसा सुख अपने कर्मोंके अनुसार वेदोक्त
कर्म करनेवालोंको होता हैं, वैसाही उनको अपने २ कर्मोंके अनुसार
प्रत्यक्ष दीखता है, और परलोकमें सबकी दुर्गति हो यह बात अयुक्त
है क्योंकि सब प्रजा एकईश्वरकीहै वो ईश्वर ऐसा नहींकि सब अन्य
द्वीपनिवासियोंकी दुर्गति करे यह शंका एक नाममात्र संक्षेप करके
लिखीगई है. उत्तरभी इसका संक्षेप करके लिखा जाता है. प्रथम यह
कि,श्रीभगवान्‌ने चौदहवें अध्यायमें स्पष्ट कहाहै, कि सतोगुणी पुरुष
ऊपरके लोकोंको प्राप्तहोते हैं,रजोगुणी मध्यमें स्थित रहतेहैं, और तमो
गुणी अधोगतिको प्राप्त होते हैं, ये तीनोंगुण यत्न करनेसेभी वर्ततेहैं,
और स्वाभाविकभी वर्तते हैं, सबलोग अपने गुणोंके तारतम्यतासे
सदुगति को और दुर्गति को प्राप्त होंगे वे किसी जातिमें वा
किसी मतमें व अनजान हो शास्त्रोक्त जो कर्म करते हैं, जिनकी
शास्त्रमें श्रद्धा है वे यत्न करें,तो रजोगुणी तमोगुणी ऐसे अपने स्व-
भावको पलट सक्ते हैं और जिनकी वेदशास्त्रमें श्रद्धा नहीं वे नहीं
पलट सक्ते, वे अपने स्वभावके अनुसार रहेंगे वैदिक अवैदिक मतमें
इतना अंतर है, दूसरी एक सूक्ष्म बात यह है, कि वेदोक्त कर्म धर्म
ईश्वराधनादि सब अध्यारोप है और जो शास्त्रके विधि का
उल्लंघन करके अपने मतके अनुसार कर्म करते हैं, वो अध्यारोप है
विद्वानोंकी दृष्टिमें अध्यारोप कल्पित है, विना ज्ञान सब सम हैं ज्ञान

में सतोगुणीका अधिकार, सो सतोगुण स्वभावाविक हो वा प्रयत्न करके किसीने संपादन किया हो ज्ञानी सतोगुणको देखकर ज्ञानका उपदेश बेसन्देह करेंगे कि जिससे परमगति होती है सोलहवें अध्याय में श्रीमहाराजने उन लोगोंके वास्ते ऐसा कहाहै, उनको न इस लोक में सुख होगा न परलोकमें कि जिनका शास्त्रमें अधिकार है और वे शास्त्रार्थको जानबूझ शास्त्रकी विधिका उल्लंघन करते है, क्योंकि उनको आश्रय न रहा ज्ञाननिष्ठोंका यहां प्रसंग नहीं, वे विधिनिषेध से मुक्त हैं ॥

मू०-अर्जुनउवाच॥येशास्त्रविधिमुत्सृज्ययजंतेश्रद्धया-
न्विताः॥तेषांनिष्ठातुकाकृष्णसत्त्वमाहोरजस्तमः॥१

कृष्ण १ ये २ श्रद्धया ३ अन्विताः ४ शास्त्रविधिम्५उत्सृज्य ६ यजन्ते ७ तेषाम् ८ निष्ठा ९ तु १० का ११ सत्त्वम् १२ रजः १३ आहो १४ तमः १५ ॥ १ ॥ अ०-उ० यह पूर्वोक्त शंका करके अर्जुन प्रश्न करताहै-हे भगवन्! १ सि० बहुत लोग*जो२श्रद्धा करके ३ युक्त ४ शास्त्रके विधिको ५ उल्लंघकर ६ सि० अपनी बुद्धिके अनुसार वा वेदशास्त्ररहित अपने गुरुमतके अनुसार ईश्वर राधनादिकमें * करते हैं ७ तिनकी ८ निष्ठा ९। १० क्या है ११ अर्थात् उनका तात्पर्य सिद्धांत क्या है ११ सि० उनको निष्ठा * सतोगुणी१२ सि० वा*रजोगुणी १३वा १४तमोगुणी १५. तात्पर्य जो लोग शास्त्रके अर्थको जानकर शास्त्रोक्त अनुष्ठान नहीं करते प्रत्युत अनादर करते हैं. उनका और ज्ञानियोंका तो यहां प्रसंग नहीं अनजानपुरुष जो देखादेखी वा नास्तिकादि जो शास्त्रकी विधिको उल्लंघकर वर्तते हैं उनकी क्या निष्ठा समझना चाहिये, उनकी क्या गति होती है, यह अर्जुनके प्रश्नका तात्पर्य है ॥ १ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिविधाभवत्तिश्रद्धादेहिनां सास्वभावजा ॥ सात्त्विकीराजसीचैवतामसी चेतितांशृणु ॥ २ ॥

देहिनाम् १ स्वभावजा २ त्रिविधा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ सा ६ सात्त्विकी ७ राजसी ८ च ९ एव १० तामसी ११ च १२ इति १३ ताम् १४ शृणु १५ ॥२॥ जीवोंके १ स्वाभाविक २ अर्थात् अपने आप पूर्वसंस्कारसे ही २ तीन प्रकारकी ३ श्रद्धा ४ है, ५ सो ६ सि० श्रद्धा ❀ सतोगुणी ७ और रजोगुणी ८।९।१० और तमोगुणी ११ । १२ । १३ तिनको १४ सुन १५ सि० कहते हैं अगले श्लोकमें और कार्यभेदसे और भी आगे बहुत श्लोकमें कहेंगे ❀ तात्पर्य शास्त्रमें जिनकी श्रद्धा यथाशक्ति शास्त्रोक्त जो अनुष्ठान करते हैं उनकी श्रद्धा निष्ठा केवल सतोगुणी समझना. क्योंकि शास्त्र में यह सामर्थ्य है कि स्वभावको पलट सक्ता हैं, जिनकी शास्त्रमें श्रद्धा नहीं उनकी श्रद्धा तीनप्रकारकी समझना. जो पूर्वसंस्कारसे वे रजोगुणी तमोगुणी हैं तो विना वेदोक्तकर्म किये उनका स्वभाव नहीं पलटेगा ॥ २ ॥

मू०-सत्त्वानुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ॥ श्रद्धामयोयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःसएवसः ॥ ३ ॥

भारतः १ सर्वस्य २ सत्त्वानुरूपा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ अयम् ६ पुरुषः ७ श्रद्धामयः ८ यः ९ यच्छ्रद्धः १० सः ११ एव १२ सः १३ ॥ ३ ॥ अ०-उ० तीनप्रकारकी श्रद्धा ऐसे जानो जैसे अब कहते हैं, हे अर्जुन! १ सबके २ अन्तःकरणके अनुसार ३ श्रद्धा ४ है ५ यह ६ जीव ७ श्रद्धावान् है ८ जो ९ जिसकी जैसी श्रद्धा है १० अर्थात जो जिस श्रद्धाकरके युक्त है १० सो ११ निश्चयसे १२ सोई १३

[सि]० है ❀ तात्पर्य जिसकी श्रद्धा जैसे कर्मों में (सतोगुणीआदि
[में]) है उसको वैसा ही समझना चाहिये आगे आहारादिका भेद
(सत्वादि) कहेंगे उस निष्ठा और अनुमान से जान लेना कि यह
[प]रुष ऐसा है और इसकी यह निष्ठा है यह इसकी गति होगी
[ऐ]सा कोई पुरुष नहीं कि जिसकी यह किसी जगह श्रद्धा न हो इस
[वा]स्ते सबको श्रीभगवान् ने श्रद्धावान् कहा जिनके अन्तःकरण शुद्ध
[हैं] उनकी सतोगुणी श्रद्धा है. पुरुष के सम्बन्ध से श्रद्धा को भी तीन
[प्र]कार की कही, मोक्ष में जो हेतु है और साधन चतुष्टय में उनकी
[श्र]द्धा है, वो केवल सतोगुणी वृत्ति श्रद्धा है परमार्थ में जिसको
[श्र]द्धा कहते हैं यह व्यवहार में तीन प्रकार की श्रद्धा है कि जो कही
[इ]न में अधिकार सतोगुणी श्रद्धावान का है ॥ ३ ॥

[मू]०-यजन्तेसात्त्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ॥
प्रेतान्भूतगणांश्चान्येयजन्तेतामसाजनाः ॥४॥

सात्त्विकाः १ देवान् २ यजंते ३ राजसाः ४ यक्षरक्षांसि५ तामसाः
जनाः ७ प्रेतान् ८ भूतगणान् ९ च १० एव ११ यजंते ॥१२॥
अ०-उ० सत्त्वादिगुणों का कार्यभेद करके दिखाते हैं सतोगुणी
देवतों का ३ यजन करते हैं ४ रजोगुणी ५ यक्षराक्षसोंका ५
[सि]० पूजते हैं ❀ तमोगुणी जन ६।७ प्रेत ८ और भूतगणों को
९। १०।११ पूजते हैं १२ ॥ ४ ।

मू०-अशास्त्रविहितंघोरंतप्यतेयेतपोजनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताःकामरागबलान्विताः ॥५॥

ये १ जनाः २ अशास्त्रविहितम् ३ घोरम् ४ तपः ५ तप्यंते ६
[दंभ]ाहंकारसंयुक्ताः ७ कामरागबलान्विताः ८ ॥ ५ ॥ अ०-जो
जन २ शास्त्रविधिरहित ३ मैला ४ तप ५ करते हैं ६ सि०

उसमें कारण यह है कि❀दंभ अहंकार करके युक्त हैं ७ सि० फिर कैसे हैं कि ❀ कामरागबलकरके युक्त हैं ८. तात्पर्य कोई कोई ऐसा तप करते हैं कि वो कर्म स्वरूप से ही मैला है. अर्थात् उस कर्म के करने में ग्लानि आतीहै और उसके करने में शास्त्र की विधिभी कोई नहीं. उसकर्म का नाम तप रखकर वृथा तपते हैं, हेतु इसमें यह है कि प्रथम लोगों को दिखाने के लिये, दूसरा यह कि जैसा हम कर्म करते हैं ऐसा किसी से कब होसक्ता है, तीसरा किसी कामना के लिये चौथा रजोगुण के वश से उस कर्म में प्रीति होगई है, त्याग नहीं सक्ता, वा पुत्रमित्रादिकी प्रीति से मित्रादि के रिझाने के लिये करताहै,पाँचवां बलवाला होनेसे जो चाहताहै सोकरताहै५॥॥

मू०-कर्षयन्तःशरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मांचैवान्तःशरीरस्थंतान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ६

अचेतसः १ शरीरस्थम् २ भूतग्रामम् ३ कर्षयन्तः ४ च ५ अंतः ६ शरीरस्थम् ७ माम् ८ एव ९ तान् १० आसुर निश्चयान् ११ विद्धि १२ ॥ ६ ॥ अ०-अज्ञानी १ शरीर में जो २ इंद्रियादि ३ सि० तिनको ❀ पीडा देते हैं और ५ भीतर ६ शरीर के स्थित ७ सि० जो मैं हूं ❀ मुझको ८ भी ९ सि० दुःख देते है❀तिनको १० असुरवत् ११ जान १२ तात्पर्य जो विना विचार इन्द्रियादि को दुःख देते हैं, और पूर्णब्रह्म शुद्धसच्चिदानंद ऐसे आत्माको दास और अस्थिचर्मादिका पुतला समझते हैं वे लोग असुरवत हैं जो असुरों का निश्चय है. सो उनका प्रसिद्ध है तपका फल शान्ति है शान्ति के लिये उपवासादि तप करते हैं जिस कर्म करने से उलटा तमोगुण रजोगुण बढे उस कर्म का नाम तप कहा जावे. यह दंभी कपटी पुरुषों का काम है ॥ ६ ॥

मू०-आहारस्त्वपिसर्वस्यत्रिविधो भवतिप्रियः॥
यज्ञस्तपस्तथादानंतेषांभेदमिमंशृणु ॥ ७ ॥

आहारः १ तु २ अपि ३ सर्वस्य४त्रिविधिः ५ प्रियः ६ भवति [७] तथा ८ यज्ञः ९ तपः १० दानम् ११ तेषाम् १२ भेदम् १३ इमम् [१]४ शृणु १५ ॥ ७ ॥ अ०-उ० सतोगुण वढाने के लिये [औ]र रजोगुण तमोगुण कम करने के लिये. आहार तप यज्ञ दानको [सत्त्वा]दि तीनतीन भेदकरके कहते हैं और इस भेद से सतोगुणी [आ]दि पुरुषों की परीक्षा भी हो सक्ती है, अर्थात् जो सतोगुणी आहार [यज्ञ] तप और दान करता है, उसको सतोगुणी जानना चाहिये [इस]ी प्रकार तमोगुण रजोगुण में कल्पना करना--आहार १ भी २। सवको ४ तीन प्रकार का ५ प्रिय ६ है और ८ यज्ञ ९ तप १० [दा]न ११ सि० भी सवको तीनप्रकार ५ का प्रिय ६ है,हे अर्जुन ! तिनका १२ भेद १३ यह १४ सि० है कि जो अगले श्लोकमें कहूंगा वो ❀ सुन १५, तात्पर्य जो तुझमें रजोगुणी तमोगुणी [वृ]त्ति हो उनको त्याग, सतोगुणी वृत्ति बढावे, कि जिससे तेरी [ज्ञा]ननिष्ठा दृढ हो ॥ ७ ॥

मू०-आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः॥रस्याः
स्निग्धाःस्थिराहृद्याआहाराःसात्विकाप्रियाः॥८॥

आयुःसत्त्ववलारोग्यसुखप्रीतिवर्द्धनाः १ रस्याः २ स्निग्धाः ३ [स्थि]राः ४ हृद्याः ५ आहाराः ६ सात्विकप्रियाः ७ ॥ ८ । अ०-उ० [स]तोगुणी आहार का लक्षण और फल भी एक ही श्लोक [मे]ं कहते हैं-अवस्था चित्त की स्थिरता वा वीर्य वा उत्साह वल आरोग्यता उपशमात्मक सुख प्रभु में प्रीति इन छह पदार्थों को [ब]ढाने वाला १ रसवाला २ कोमलतर ३ खाने के पीछे शरीर में

उसका रस चिरकाल ठहरे ४ जिसके देखनेसे ही मन प्रसन्न होजाय ५ सि० यह चार प्रकारका ❀ आहार ६ सतोगुणीको प्रिय लगता है ७ सि० जैसे मोहनभोग तस्मै इत्यादि ❀ ॥ ८ ॥

मू०-कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

अट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः १ आहाराः २राजसस्य ३ इष्टाः ४ दुःखशोकामयप्रदाः ५ ॥९॥ अ०-उ० रजोगुणी आहारको कहते हैं-अतिचरफरा, खट्टा नमकीन, गरम, तीक्ष्ण. रूखा, दाह करनेवाला १ आहार २ रजोगुणीको ३प्रिय है ४ दुःख शोक रोगका देनेवाला है ५ सि० अति शब्द सबके साथ लगाना अतिखट्टा, अतिनमकीन, अतिगरम, अतितीक्ष्ण, अतिरूखा, अतिदाह करनेवाला ऐसा भोजन रजोगुणीको प्रिय है । ९ ॥

मू०-यातयामंगतरसंपूतिपर्युषितंचयत ॥
उच्छिष्टमपिचामेध्यभोजनंतामसप्रियम् ॥१०॥

यातयामम् १ गतरसम् २ पूति ३ पर्युषितम् ४ च ५यत् ६ उच्छिष्टम् ७ च ८ अमेध्यम् ९ अपि १० भोजनम् ११ तामसप्रियम् १२ ॥ १० ॥ अ०-उ० तमोगुणी आहारका लक्षण कहते हैं-जो बनकर एक प्रहर बीत जावे, १ ठंडा होजावे, याने सूख जावे २ दुर्गन्ध जिसमें आवे ३ बासी ४ और ५ जो ६ जूंठा ७ और ८ अभक्ष्य ९ भी १० भोजन ११ तमोगुणीको प्रिय है १२ ॥१०॥

मू०-अफलाकांक्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टोयइज्यते ॥
यष्टव्यमेवेतिमनःसमाधायससात्त्विकः ॥११॥

अफलाकांक्षिभिः १ यः २ यज्ञः ३ विधिदृष्टः ४ इज्यते५ यष्टव्यम् ६ एव ७ इति ८ मनः ९ समाधाय १० सः ११ सात्विकः१२

॥ ११ ॥ अ०—उ० सतोगुणी यज्ञ कहते हैं—फलेच्छारहित पुरुष १ जो २ यज्ञ ३ विधिको देखकर ४ करते हैं, ५ यज्ञका करना अवश्य है ६ निश्चय ७ इसप्रकार ८ मनका ९ समाधान करके १० सि० करते हैं ❀ सो ११ सि० यज्ञ ❀ सतोगुणी १२॥ ११ ॥

मू०—अभिसंधायतुफलंदंभार्थमपिचैवयत् ॥
इज्यतेभरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्धिराजसम् ॥१२॥

भरतश्रेष्ट १ फलम् २ अभिसंधाय ३ तु ४ दंभार्थम् ५ अपि ६ च ७ एव ८ यत् ९ इज्यते १० तम् ११ यज्ञम् १२ राजसम् १३ विद्धि १४ ॥ १२ ॥ अ०—उ० रजोगुणी यज्ञ कहते हैं—हे अर्जुन ! १ फलको २ अन्तःकरणमें धारण करके ३ वा ४ लोगोंको दिखाने के लिये ५ भी ६ । ७ । ८ जो ९ सि० यज्ञ❀किया जाताहै १० तिस ११ यज्ञको १२ रजोगुणी १३ जान तू १४ ॥ १२ ॥

मू०—विधिहीनमसृष्टान्नंमंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितंयज्ञंतामसंपरिचक्षते ॥ १३ ॥

विधिहीनम् १ असृष्टान्नम् २ मंत्रहीनम् ३ अदक्षिणम् ४ श्रद्धा विरहितम् ५ यज्ञम् ६ तामसम् ७ परिचक्षते ८ ॥१३॥ अ०—उ० तमोगुणी यज्ञ कहते हैं—वेदविधिरहित १ सुन्दर अन्न नहीं है जिसमें २ मंत्ररहित ३ दक्षिणारहित ४ श्रद्धारहित ५ यज्ञ ६ तमोगुणी ७ कहा है ८ तात्पर्य देखादेखी लोकोंकी लौकिक एक रीति समझकर प्रसिद्धिके लिये कुपात्रोंको न्योतकर ठंडा बासा कच्चा पक्का अन्न जिमा देना, न उनके सामने खडा होना, न उनके चरणोंको स्पर्श करना. न सुन्दर प्रकार बोलना, न पीछे दक्षिणा देना, ऐसा यज्ञ तमोगुणी कहलाता है ऐसे निर्भागोंके घर जो साधुब्राह्मण भोजन करनेको जाते हैं वे उससे भी निर्भाग हैं. क्योंकि सेरभर आटेके लिये मूर्खोंको दाता लालाजी कहना पड़ता है ॥ १३ ॥

मू०-देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनंशौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्य्यमहिंसाचशारीरंतपउच्यते ॥ १४ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् १ शौचम् २ आर्जवम् ३ ब्रह्मचर्यम् ४ अहिंसा ५ च ६ शारीरम् ७ तपः ८ उच्यते ९ ॥ १४ ॥ अ०-उ० शरीरका तप कहते हैं—देवता, ब्राह्मण, गुरु, प्राज्ञ कोई जाति विद्वान, भक्त, ज्ञानी, इनका पूजन करना, १ पवित्र रहना २ नम्र रहना ३ ब्रह्मचर्यसे रहना ४ सि० ब्रह्मचर्यका लक्षण आनन्दामृतवर्षिणीके पांचवें अध्यायमें लिखा है. आठप्रकारका मैथुन है उससे वर्जित रहना. ❀ हिंसा न करना ५ । ६ सि० इसको ❀ शरीरका ७ तप ८ कहते हैं ९ तात्पर्य देश, मकान, वस्त्र, पात्र सब पवित्र हों जब शरीरकी पवित्रता है, और अन्न, जल, वीर्य, कुलादिभी पवित्र हों ॥१४॥

मू०-अनुद्वेगकरंवाक्यंसत्यंप्रियहितंचयत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनंचैववाङ्मयंतपउच्यते॥१५॥

यत् १ वाक्यम् २ अनुद्वेगकरम् ३ सत्यम् ४ प्रियम् ५ च ६ हितम् ७ च ८ स्वाध्यायाभ्यसनम् ९ एव १० वाङ्मयम् ११ तपः १२ उच्यते १३ ॥ १५ ॥ अ०-उ० वाणीका तप यह है—जो १ वाक्य २ सि० अन्यको ❀ उद्वेग न करे ३ सत्य ४ प्रिय ५ और ६ हित करनेवाला ७ और ८ वेदशास्त्र पढ़नेका अभ्यास भी ९।१० वाणीका तप १२ कहा है १३ तात्पर्य जो बात सच्ची शास्त्र विहित और हितकरनेवाली भी है परन्तु जो कहनेके समय किसीको प्रिय न लगे ऐसी बात कहनेमें भी दोष है. और ऐसी बात कहनेमेंभी दोष है कि श्रवणसमय तो प्रिय प्रतीत हो परंतु वेदविरुद्ध हो अनुद्वेगकरं सत्यं प्रियं हितं और चकारसे मितम् अर्थात् बहुत

अर्थको सत्तेप करने थोडे अक्षरों में कहना यह पांचवां विशेषण-वाक्यका चकार से जानना चाहिये ॥ १५ ॥

मू०-मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥१६॥

मनःप्रसादः १ सौम्यत्वम् २ मौनम् ३ आत्मनिग्रहः ४ भावसंशुद्धिः ५ इति ६ एतत् ७ तपः ८ मानसम् ९ उच्यते १० ॥ १६ ॥अ० उ० मनका तप कहते हैं--मन प्रसन्न रहना १ सि० सतोगुणी वृत्ति में मन प्रसन्न रहता है, तमोगुणी रजोगुणी वृत्ति में विक्षेप और मोह को प्राप्त होता है, ❀ सरलता याने सीधापन २ मनन करना ३ विषयों से मन को रोकना ४ व्यवहार में छल नहीं करना ५ अर्थात् बाहर भीतर समवृति रखना ५ यह ६ । ७ तप ८ मनका ९ कहा है १० ॥ १६ ॥

मू०-श्रद्धयापरयातप्तंतपस्तत्त्रिविधंनरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्त्विकंपरिचक्षते ॥१७॥

अफलाकांक्षिभिः १ युक्तैः २ नरैः ३ परया ४ श्रद्धया ५ तत् ६ त्रिविधम् ७ तपः ८ तप्तम् ९ सात्त्विकम् १० परिचक्षते ११॥ १७॥ अ०--उ० शरीरमनवाणी करके तीन प्रकारका तप है,यह भेद तो पीछे कहा. अब तप को सात्त्विकादि भेद करके तीन प्रकार का कहतेहैं, इसमंत्र में सतोगुणी तप का लक्षण हैं--फलेच्छारहित १ एकाग्र चित्तवाले२पुरुषों ने ३ परमश्रद्धा करके४ । ५ सो ६तीनप्रकार का ७ सि० मनवाणीशरीर करके जो तप ❀ किया है ९ सि० सो तप ❀ सतोगुणी १० कहा है ११. तात्पर्य परमश्रद्धा के साथ चित्त को भले प्रकार एकाग्र करके फलेच्छारहित पुरुषोंने शरीर मन वाणीकरके जो तप किया है सो सतोगुणी है ॥ १७ ॥

मू०-सत्कारमानपूजार्थंतपोदंभेनचैवयत् ॥
क्रियतेतदिहप्रोक्तंराजसंचलमध्रुवम् ॥१८॥

यत् १ दंभेन २ सत्कारमानपूजार्थम् ३ च ४ एव ५ तपः ६ क्रियते ७ तत् ८ इह ९ राजसम् १० प्रोक्तम् ११ चलम्१२अध्रुवम् १३॥१८॥ अ०-जो १ दंभ करके २ सि० अथवा ❀ सत्कार मान पूजा के लिये ३।४।५ तप ६ किया है ७ सो ८ शास्त्र में ९ रजोगुणी १० कहा है ११. सि० क्योंकि अचल नहीं १२ अनित्य है १३. तात्पर्य अच्छे कर्म अपनी स्तुति कराने के वास्ते, लोगों को दिखाने के वास्ते, अपने सन्मान पूजाके लिये, धनादिकी प्राप्ति केलिये, और स्वर्गादि पुत्रमित्रादि की प्राप्ति होने के लिये जो करते हैं वे पुरुष भो रजोगुणी हैं और वे कर्म भी सब रजोगुणी हैं. ऐसे कर्मों का फल तुच्छ अनित्य होगा ॥ १८ ।

मू०-मूढग्राहेणात्मनोयत्पीडया।क्रियतेतपः ॥
परस्योत्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृतम् ॥१९॥

यत् १ तपः २ मूढग्राहेण ३ आत्मनः ४ पीडया ५ क्रियते ६ परस्य ७ उत्सादनार्थं ८ वा ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृम् १२ ॥ १९ ॥ अ०-जो १ तप २ दुराग्रह करके ३ सि० अविवेकपूर्वक ❀ इन्द्रियों को ४ दुःख देकर ५ किया है, ६ दूसरे के ७ नाशार्थ ८ वा ९ सो १० सि० तप❀तमोगुणी ११ कहा है १२॥१९।

मू०-दातव्यमितिद्दानदीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशकालेचपात्रेचतद्दानंसात्त्विकंस्मृतम् ॥२०॥

दातव्यम् १ इति २ यत् ३ दानम् ४ दीयते ५ देशे ६ काले ७ च ८ पात्रे ९ च १० अनुपकारिणे ११ तत् १२ दानम् १३ सात्त्वि-

[कर्म]म् १४ स्मृतम् १५॥२०॥ अ०--उ० दान तीनप्रकारका है, प्रथम [स]तोगुणी दान कहते हैं--सि० अवश्य हमको दान * देना चाहिये [१] इस प्रकार २ सि० मनमें विचार कर * जो ३ दान ४ दिया है [५] सि० सुन्दर*देश में ६ और उत्तमकाल में ७।८ सुपात्रअनुपकारी [क]ो ९।१०।११ सो १२ दान १३ सात्त्विक १४ कहाहै १५ टी० [ग]ंगादितीर्थों में सुन्दर जगे लीपी पोती हुईमें जिसजगे बैठे बुरी [व]स्तु न दीखे, दुर्गन्ध न आवे ६ पूर्णमासी व्यतीपातादि में, भूख के [स]मय, वा किसी सज्जनका काम अटकरहाहै उससमय,भोजन कराना, [म]ध्यान्हसे पहले७जिसको देना उससे उपकार किसी प्रकार न चाहना [ज]हाँ तक बन सके अनजाना पुरुष को छिपाकर देना ११ बिद्वान् [सा]धु ब्राह्मण दानपात्र हैं, वा भूखा कोई जाति भी हो ९ इस दानके [व्य]वस्था में एक पोथी जिसका नाम राजदूतों की कथा है. नागरी [अ]क्षरों में, मुंशी शिवनारायण कायस्थ माथुर, कि जो आगरे में [श्र]ीमान् ऐश्वर्यवान् सद्गुणोंकीखान ब्रह्मविद्या और अंगरेजी फारसी [छ]ाया की तसवीर अद्भुत बनाना इत्यादि लौकिक विद्या में नागर [प्र]भुता पाकर अमानी,(उर्दू विद्यामें) भी उन्होंनेही वनाई है, जिसका [न]ाम कालदानशाही है, उसपोथी के पढने सुनने विचारने से दानकी [व्य]वस्था भले प्रकार प्रतीत होतीहै, तात्पर्य जो नौकरी, खेती, बनज [क]रतेहैं,वा जिनके पास किसी प्रकार का द्रव्य है. उनको अवश्य [द]ान करना चाहिये. क्योंकि पन्द्रह अनर्थ द्रव्य में रहते हैं. जो वो [व]ेदोक्त दान न किया गया तो पन्द्रह अनर्थों में जो पाप होता है [स]ो द्रव्य ग्राही को लगेगा,दान करने से उस पाप की निवृत्ति होती [है], और दान करने के लिये द्रव्य संचय करना यह शास्त्रकी आज्ञा

नहीं उसका यह फल है, कि जैसे कीच में हाथ सानना फिर धोना, इस समय दान देना तो पृथक् रहा जो किसी को देता देखते सुनते हैं, तो जहां तक उनसे यत्न हो सकता है. हंसी तर्क करके उसको वर्जित करते हैं, मुमुक्षु को चाहिये कि ऐसे दुष्टों का मुख भी न देखे यह विचार करले. कि दिन की महीने की या वर्ष की कमाई इसमें से इतना भाग दान करूंगा उस द्रव्य का अन्न वा वस्त्रादि मोल लेकर दिन दिन प्रति वा वर्ष में महीने में जहांतक होसके गुप्त सुपात्र को देदिया करे जो प्रवृत्ति में रहकर दान नहीं करते केवल माला तिलक घण्टा घड़ियाल से मुक्ति चाहते हैं. परमेश्वर उनपर कभी प्रसन्न न होंगे । २० ॥

मू०-यत्तप्रत्युपकारार्थफलमुद्दिश्यवापुनः ॥
दीयतेचपरिक्लिष्टंतद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

यत् १ तु २ प्रत्युपकारार्थं ३ पुनः ४ वा ५ फलम् ६ उद्दिश्य ७ परिक्लिष्टम् ८ च ९ दीयते १० तत् ११ राजसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥२१॥ अ०-उ०रजोगुणी दान कहतेहैं.जो १ एक प्रत्युपकारके लिये २।३ वा४।५ फलका ६ उद्देशकरके ७ वा क्लेशकलसहित८।९ दिया है १० सो ११ रजोगुणी १२ कहा है १३. टी० दानपात्र से यह इच्छा रखना कि किसी समय किसी प्रकार यह हमको सहाय करेगा ३ यह चिंतवन करके कि सन्तमहन्तों की टहल करने से धन पुत्रादि मिलते हैं ६।७ क्या करें जो हमारे पिताका आज श्राद्ध है, एक ब्राह्मण तो अवश्य ही नोतना चाहिये,इसप्रकार लौकिक लज्जा से दान करके मन में दुःख मानना, तात्पर्य महात्मा जो यह कहते हैं कि दाता कलियुगमें नहीं हैं. यदि हैं भी तो सेवा कराकर देतेहैं तदुक्तम् ॥ दातारोपिनसन्तिसन्तियदिचेत्सेवानुकूलाःकलौ ॥ तात्पर्य

उनका यह है, कलियुगमें सतोगुणी दाता कमहैं विशेष रजोगुणी हैं, बहुत लोग दाता प्रसिद्ध हैं, उनके दानकी यह व्यवस्था है, कि एकपुरुष राजाका नौकर है प्रजापर उसका हुकुम है. किसीकी कथा कहलादेना वा शुभकामके नामसे चन्दाकरके कुछ उनको देना, कुछ आप रखलेना कोई कोई सुपात्रोंकोभी अपने सुयशके लिये देते हैं कोई साधुको अपने मकानपर ठहराये रखते है मकानकी रक्षाके लिये, कोई साधुब्राह्मणकी टहल करते हैं दूसरे साधुब्राह्मणको दुःख देनेकेलिये,कोई लौकिकलज्जासे देखादेखी करते हैं कोई इसप्रकार दान करते हैं. कि ब्राह्मणको नौकर रखलेते हैं वो उसको जिमा देते हैं और खीचरी वस्त्रादिभी इसीप्रकार बांटते हैं, कोई ऐसे दानी प्रसिद्ध हैं कि छलदंभपाखंडकरके किसीका द्रव्य दबा लिया, वह दोष दबानेके लिये दान करते हैं. उनकी वो व्यवस्था है. "अहिरन की चोरी करें, करें सुईका दान। ऊंचे हो देखन लगें. कितनी दूर विमान " ऐसे दाता सद्गतिकी कदाचित् भी आशा न रक्खें॥२१॥

मू०—अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतम ॥ २२ ॥

यत् १ दानम् २ अपात्रेभ्यः ३ अदेशकाले४च ५दीयते ६असत्कृतम् ७ अवज्ञातम् ८ तत् ९ तामसम् १० उदाहृतम् ११ ॥२२॥

अ०–जो १ दान २ कुपात्रोंको ३ और निषिद्धदेशकालमें ४ । ५ दिया है ६ सि० अथवा सुपात्रोंको भी जो * असत्कार पूर्वक ७ अवज्ञापूर्वक ८ सि० दिया है*सो९तमोगुणी१०कहा है ११ टी० जिससमय महात्मा दैवयोगसे अपने घर आवे, हाथजोडकर अभ्युत्थान न करे और ऐसा न बोले कि आपने बडी कृपाकी ७ किसी आदमीसे कहदेना कि फकीर आया है, रोटी आटा देकर टालो, ८

चौकेसे बाहर बैठाकर अपवित्र जगेमें न्योतकर मध्याह्नसे पीछे जिमाना ४ नट, बाजीगर, वेश्या इनको देना इत्यादि तमोगुणी दान है ३. तात्पर्य द्रव्य बडे बडे दुःख पापोंसे प्राप्त होता है बन्धुकाभी यह साधन है, मोक्षका भी साधन है इसको पाकर मोक्ष संपादन करे, एकदिन इससे अवश्य वियोग होगा;या तो द्रव्य पहले छोड देगा, या द्रव्य रक्खा ही रहेगा, आप चले जावेंगे, श्रीभगवान्ने यह तीन प्रकारका भेद इसीवास्ते कहा है, कि दान सतोगुणी करना चाहिये, क्योंकि उससे परंपराकरके मोक्षकी प्राप्ति होती है जो यह कहते हैं, कि अजी वेदोक्त साधुब्राह्मण कहां हैं यह उनकी समझ और श्रद्धा पुरुषार्थ यत्न मान बडाई इसमें दोष है कि जो उनको सुपात्र नहीं मिलते, महात्मा जो यह कहते हैं, कि पृथिवी पर असंख्यात अमोल रत्न प्रसिद्ध हैं, जिनमें किसीकी ममता नहीं निर्भागियोंको नहीं दीखते,उनका तात्पर्य सुपात्रोंसेही है घरसे बाहर पैर नहीं रखते कौवेकेसी दृष्टि है, महात्माके भजन पाठ, पूजा, विवेक, विद्यादि. सहस्रशः उनमें जो गुण हैं, उनको तो देखते नहीं कहते हैं कि अजी महात्मा किसीके घर क्यों जाते हैं, उसनिर्भागी से बूझना चाहिये कि जो घर आवें तो असाधु हैं, और तू मलमूत्र के पात्र स्त्री पुत्रादिको छोडकर बाहर पैर न रक्खे तो फिर सुपात्र कैसे मिले निर्भागियोंके घर महात्मा नहीं जाते,यह बात सत्यहै॥२२

मू०-ओंतत्सदितिनिर्देशोब्रह्मणस्त्रिविधःस्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेनवेदाश्चयज्ञाश्चविहिताः पुरा ॥२३॥

ओम् १ तत् २ सत् ३ इति ४ ब्रह्मणः ५ निर्देशः ६ त्रिविधः ७ स्मृतः ८ तेन ९ ब्राह्मणाः १० वेदाः ११ च १२ यज्ञाः १३ च १४ पुरा १५ विहिताः १६ ॥२३॥ अ०-उ० जो मुमुक्षु यह चाहते हैं कि प्रभुकी आज्ञासे यज्ञदानादिकर्म वेदोक्त सतगुणी करें. परन्तु

देश काल वस्तुके सम्बन्ध से वा किसी अन्य प्रतिबन्ध से सतोगुणी वेदोक्त अनुष्ठान नहीं हो सकता इस हेतुसे दुःख पाते हैं उनके लिये परम करुणाकर ब्रजचन्द्र इस मन्त्रमें उत्तम उपाय परम पवित्र गुप्त बतलाते हैं ओम् १ तत् २ सत ३ यह ४ ब्रह्म का ५ उच्चारण ६ तीनबार ७ कहा है ८ सि० ब्रह्मविदोंने ❀ तिसने ६ अर्थात् ओंतत्सत् इसमंत्रने ही ६ ब्राह्मण १० और वेद ११।१२ और यज्ञ १३।१४ पहले १५ उत्तम पवित्र किये हैं १६ तात्पर्य स्नान, दान,भोजन पाठ, इत्यादि करनेसे पहले और पीछे यह मन्त्र ओंतत्सत् तीनवार कहे. अंगहीन क्रिया भी सतोगुणी होके वेदोक्त फल देगी, यह विधि अनादि है, महात्मा जानते हैं इसके प्रतापसे सदा निर्दोष रहते हैं, श्रीभगवान् अगले मन्त्रोंमें ओंतत्सत् इन तीनों नामोंका माहात्म्य पृथक् २ कहेंगे यह परमात्माका एक एक नाम पवित्र करके ब्रह्मको प्राप्त करताहै,जो तीनोंनामोंका उच्चारणकरेगा उसके पवित्र होनेमें क्या सन्देह है?इसमें यही कैमुतिकन्यायहै.वेदोंमें यह मंत्रसारहैजिस मंत्रमें इन तीनों नामोंमेंसे एकभी नाम होगा उस मंत्रका फल शीघ्र अवश्य होगा मन्त्रोंमें इन्हीं नामोंकी शक्ति है, पोथियोंके और मंत्रोंके आदिमें इन तीनों नामोंमेंसे एक दो नाम अवश्य होते हैं जब कि वेद ब्राह्मणादिकी बडाई इस मंत्रके प्रतापसे है, फिर बिना इसमंत्रके जपे कोई क्रिया कब श्रेष्ठ होसक्ती है इस हेतुसे क्रियाके आदि अन्तमें इसमंत्रका तीनबेर अवश्य उच्चारण करना योग्य है ॥२३॥

मू०-तस्मादोमित्युदाहृत्ययज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्तन्तेविधानोक्ताः सततब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

तस्मात् १ ओम् २ इति ३ उदाहृत्य ४ यज्ञदानतपः क्रियाः ५ विधानोक्ताः ६ सततम् ७ ब्रह्मवादिनाम् ८ प्रवर्तन्ते ६ ॥२४॥ अ०-

सि० अब पृथक् २ नामका इस मन्त्रमें महात्म्य कहतेहैं और ओम् इसनामका माहात्म्य है जबकि वेदादि इन नामोंसे ही श्रेष्ठ पवित्र किये गये हैं ❀ तिसहेतुसे १ ओम् २ ऐसा ३ उच्चार करके ४यज्ञ-दानतपरूपक्रिया ५ वेदोक्त ६ सदा ७ ब्रह्मनिष्ठोंकी ८होतीहैं ६॥२४

मू०-तदित्यनभिसधायफलंयज्ञतपःक्रिया ॥
दानक्रियाश्चविविधाःक्रियन्तेमोक्षकांक्षिभिः॥२५

मोक्षकांक्षिभिः १ तत् ३ इति ३ फलम् ४ अनभिसंधाय ५ यज्ञतपःक्रियाः ६ दानक्रियाः ७ च ८ विविधाः ९ क्रियन्ते १० ॥ २५ ॥ अ०-मोक्षेच्छावाले १ तत् २ यह ३ सि० नाम उच्चारण करके और ❀ फलका चिंतवन न करके ५ यज्ञतपरूपक्रिया ६ और दानक्रिया ७ । ८ नानाप्रकारकी ९ करते हैं १० सि० महावाक्यमें यही नाम है ❀ ॥ २५ ॥

मू०-सद्भावेसाधुभावेचसदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्तेकर्मणिनथासच्छब्दःपार्थयुज्यते ॥२६॥

पार्थ १ सद्भावे २ साधुभावे ३ च ४ सत् ५ इति ६ एतत् ७ प्रयुज्यते ८ तथा ९ प्रशस्ते १० कर्मणि ११ सत् १२ शब्दः १३ युज्यते १४ ॥ २६॥ अ०-हे अर्जुन ! १ सद्भावमें २ और साधुभावमें ३ । ४ सत् ५ यह ६ । ७ सि० नाम ❀ कहा जाता है ८ और ९ सि० विवाहादि ❀ मङ्गलकर्ममें १० । ११ सत् १२ शब्द कहा १३ जाता है १४ ॥ २६ ॥

मू०-यज्ञेतपसिदानेचस्थितिःसदितिचोच्यते ॥
कर्मचैवतदर्थीयंसदित्येवाभिधीयते ॥ २७॥

यज्ञे १ तपसि २ दाने ३ च ४ स्थितिः ५ सत् ६ इति ७ च ८ उच्यते ९ तदर्थीयम् १० कर्म ११ च १२ एव १३ सत् १४

इति १५ एव१६ अभिधीयते १७ ॥ २७ ॥ अ०-उ० इस मन्त्रमें भी सत्नामका महात्म्य है-यज्ञमें १ तपमें २ और दानमें ३ । ४ सि० जो ❀ स्थिति ५ सि० उसको ❀ सत् ६ ऐसा ७ । ८ कहते हैं ९ ईश्वरार्थ १० कर्मको ११ भी १२ । १३सतही १४ । १५ ।१६ कहतेहैं१५तात्पर्य जो पुरुष यज्ञादि परमेश्वरार्थ सदा करते रहतेहैं,उन को सत्फल प्राप्त होगा, जिसका कभी नाश न हो ॥ २७ ॥

मू०-अश्रद्धयाहुतंदत्तंतपस्तप्तंकृतंचयत् ॥
असदित्युच्यतेपार्थनचतत्प्रेत्यनोइह ॥२८॥

अश्रद्धया १ हुतम् २ दत्तम् ३ तपः ४ तप्तम् ५ च ६ यत् ७ कृतम् ८ इति ९ असत् १० उच्यते ११ पार्थ १२ तत् १३ प्रेत्य १४ नच १५ नो १६ इह १७ ॥ २८ ॥ अ०-उ० श्रद्धापूर्वक जो दानादि नहीं करते, केवल लौकिक लज्जासे करते हैं, उनको फल न यहां होता है, न मरकर परलोकमें. यह अर्थ इस मंत्रमें प्रकट करते हुए अश्रद्धावान्की निन्दा करते हैं-अश्रद्धासे २ हवन किया २ दिया ३ तपकिया ४ । ५ और जो किया ६ । ७ । ८ यह सि० ९ सब ❀ असत् १० कहा है ११ अर्थात् निष्फल, निंदित झूँठा वृथा ऐसा है ११ हे अर्जुन ! १२ सो १३ न मरकरके १४ । १५ न १६ इसलोकमें १७. तात्पर्य मोक्षमार्गमें सब कर्मोंसे प्रथम श्रद्धा है जिसकी वेद ब्राह्मणादिमें श्रद्धा है, सो मुक्त होगा इत्यभिप्रायः॥२८

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥
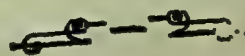
अथ अष्टादशोऽध्यायः १८.

मू०-अर्जुन उवाच ॥ संन्यासस्वमहाबाहोत-
त्त्वमिच्छामिवेदितुम्॥त्यागस्यचहृषीकेश
पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच. महाबाहो १ हृषीकेश २ केशिनिषूदन ३ संन्यासस्य ४ च ५ त्यागस्य ६ तत्त्वम् ७ पृथक् ८ वेदितुम् ९ इच्छामि १० ॥ १ ॥ अ०-उ० इस अध्यायमें समस्तगीताका सार संक्षेपसे है-अर्जुन कहता है-हे महाबाहो ! १ हे हृषीकेश ! २ हे केशिनि-षूदन ! ३ संन्यास ४ और ५ त्यागके ६ तत्त्वको ७ पृथक् ८ जानने की ९ मैं इच्छा करता हूं १० टी० १ । २ । ३ । ये तीनों श्रीकृष्णचन्द्रके हैं तात्पर्य हे भगवन् ! त्यागशब्दका और संन्यास-शब्दका अर्थ मुझसे कहो दोनों पदोंकाअर्थ पृथक् पृथक् मैं जानना चाहता हूं त्याग और संन्यास इन दोनों पदोंका अर्थ श्रीभगवान् भलेप्रकार अगले मंत्रमें कहेंगे प्रसंगसे चतुर्थाश्रम संन्यासका अर्थ संक्षेपकरके यहांलिखदेतेहैं त्याग और संन्यासका अर्थ वास्तव एक ही है, संन्यास दोप्रकारकाहै,अंतरंग१और बहिरंग२सन्यास ज्ञाननिष्ठाका अंग है.अंतरङ्गसंन्यासका अर्थ तो श्रीभगवान् भलेप्रकार इसअध्याय में कहेंगे, बहिरङ्ग संन्यासका अर्थ यहां लिखा जाता है, सो बहुत प्रकारका है, कुटीचक १ क्षेत्र २बहूदक ३ विविदिषा ४ विद्वत ५ हंस ६ परमहंस ७ और भी बहुत भेद हैं इनका अर्थ अंकके क्रमसे लिखते हैं, वाणिज्यादिव्यवहार छोड़ ग्रामसे बाहर शरीर-यात्रामात्र कुटीमें बैठ भगवद्भजन ब्रह्मविचार करना अपने संबंधी और औरोंको सम समझना कोई घरका वा बाहरका

भोजन देजावे, उसी से देह का निर्वाह कर लेना, यह कुटीचक-संन्यासी का लक्षण है और कनिष्ठ अंग उसका यह भी है कि देह यात्रामात्र कुछ आजीविका का यत्नकरके एकान्त में निवास करना, जैसे कुटीचक का लक्षण कहा है वैसा ही कुटी शब्द के जगह क्षेत्र समझ लेना चाहिये,क्षेत्रमें देहयात्राके लिये मधुकरी मांग खाने में दोष नहीं २ घरको त्यागकर विचरता रहे, एक जगे न रहे,३वेदांत शास्त्र श्रवण करने के लिये गृहस्थाश्रम को त्यागना और त्याग के पीछे दिनरात्रि सदा श्रवण मनन निदिध्यासन करते रहना ४.जीवन मुक्तिका जो आनन्द उसके लिये गृहस्थाश्रम का त्याग करना, इस संन्यास को वे धारण करते हैं,जिनको गृहस्थाश्रम में संशय विपर्य रहित साक्षात्कार ब्रह्मज्ञान होगया है ५. जिस प्रकार हंस दूध और जल को जुदाकरके दूध ही पान करताहै इसीप्रकार परमहंस महात्मा देहादिपदार्थों से अपने स्वरूप को पृथक् विलक्षण समझकर सदा स्वरूप में ही निष्ठा रखते हैं इसी को हंस सन्यास कहते हैं,६ वस्त्रादि का भी त्याग करके मौन रहना उसकी परमहंस संन्यास कहते हैं, ७ यह अर्थ सन्यास का एक नाम मात्र लिखदिया है जो किसीको कुटीचकादि संन्यास करना हो तो वो उसकी विधि मन्वादि धर्मशास्त्र और उपनिषदोंमें से श्रवण करके संन्यास करे, दंडधारण वैदिक सन्यास में कर्मकांड की विधि से ब्राह्मण शरीर को ही अधिकार है, क्योंकि कर्मकांड में वेदोक्तकर्म करने वाले ब्राह्मण जाति को ही बड़ा कहते हैं, और उपासक भगवद्भक्ति को ही बड़ा कहते हैं, भगवद्भक्तव्यवहार में कोई जाति हो, सबसे बडा है और जो व्यवहार में भी ब्राह्मणजाति हो, तो क्या कहना ? विदुरजी. गुह, निषाद, शबरी, इत्यादि हजारों की कथा साक्षी है और ज्ञानी ब्रह्मवित् को बडा कहते हैं. ब्राह्मण शब्दका अर्थ यही है. "ब्रह्म जानति स ब्राह्मणः" जो व्यवहार में ब्राह्मणजाति कहे जातेहैं, उन-

को वैराग्य न भी हो,तो भी अवस्था के चतुर्थभागमें उनको गृहस्थाश्रम छोडना चाहिये, नहीं तो पाप प्रायश्चित का भागी होना पडेगा जो और वैराग्य हो तो वा कोई जाति हो सब अवस्था में उसको सन्यास का अधिकार है, “यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्” इस श्रुतिका यह अर्थ है कि जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन सन्यास करे त्याग (संन्यास) में सबको अधिकार हैं हजारों विरक्त महात्मा कि जो व्यवहार में ब्राह्मण जाति नहीं लेकिन ब्रह्मवित्, ज्ञानी, दर्शनीय, पूजनीय हैं, और हजारों होगये, विना संन्यास और विरक्तता के मुक्त न होगी परमेश्वर का अनुग्रह और पूर्व संस्कार तो दूसरी बात है. गृहस्थाश्रम में जिसको ज्ञान हुआ यह पूर्वसंस्कार और परमेश्वर की कृपा समझना चाहिये नहीं तो निवृतिमार्ग की बडाई क्या हुई,प्रवृत्तमार्ग और निवृत्तिमार्ग दोनों बराबर होगये. साधु महात्मा विरक्तों का माहात्म्य वेदशास्त्र और अवतारों ने क्या बृथा ही कहा है. तात्पर्य विरक्त अवश्य होना चाहिये.विरक्तिमें और निवृत्ति में सबको अधिकार है. देशकाल वस्तु का नियम प्रवृत्ति मार्ग में है निवृत्तिमार्ग में नहीं ॥ १ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ काम्यानांकर्मणांन्यासं संन्यासंकवयोविदुः ॥ सर्वकर्मफलत्यागंप्राहु-स्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

कवयः १ काम्यानाम् २ कमणाम् ३ न्यासम्४संन्यासम् ५ विदुः ६ विचक्षणाः ७ सर्व कर्मफलत्यागम् ८ त्यागम् ९ प्राहुः ११ ॥२॥
अ०—सि० कोई कोई*पंडित १ काम्य २ कर्मों के ३ न्यास को ४ संन्यास ५ जानते हैं. ६ सि० कोई कोई * पंडित ७ सब कर्मों के फलत्यागको८त्याग९कहते हैं १० टी० काम्यशब्द का

र्थ कोई तो ऐसा करते हैं, स्त्री धनादि के निमित्त जो कर्म वो त्यागना योग्य है. नित्य प्रायश्चित कर्म करना चाहिये इसीका नाम संन्यास है, और कोई महात्मा काम्यशब्द का अर्थ यह करते हैं कि समस्तकर्मों का त्याग करना योग्य है, इसका नाम संन्यास है,सकाम कर्मों का त्याग दोनोंको सम्मत है और कुछ न करने से सकामकर्म भी अच्छा है,पुत्रस्वर्गादि की इच्छा करने वाला यज्ञ करे ऐसा वेद में सुनाजाता है, परन्तु इस समय काम्यशब्द का अर्थ यही है कि सब कर्मोंके त्यागका नाम संन्यास है नहीं तो दोनों जगह कर्मका विधि रहता है. जब कि एककर्मका विधिहै और वो किसी हेतु से न बना तो कर्त्ता को प्रायश्चित भी आवश्यक है और जब कि उसको पाप लगा और प्रायश्चित करना पडा, फिर मुक्त कैसा होगा, सदा बन्धन में रहा इस हेतु से अधिकार भेद करके इस श्लोकका तात्पर्य यह समझना चाहिये, शुद्धान्तःकरणवाले निष्काम पुरुष सब कर्मों के त्यागको संन्यास जानते हैं और इस भूमिका के इच्छावाले सब कर्मों के केवल फलत्याग को संन्यास जानते हैं सब कर्मों के फल का त्याग इसीका नाम संन्यास जो कहतेहैं तो चतुर्थाश्रम जो संन्यास है, उसका बिधि क्या बृथा ही रहा, तात्पर्य सब कर्मोंके फल का त्याग करना और कर्म करना इसको कोई २ पंडित त्याग कहते हैं और सब कर्मों को स्वरूप से त्याग देना, इसी को पंडित संन्यास कहते हैं, जब तक अन्तःकरण शुद्ध न हो जब तक कर्म करे उसका फल त्यागदे. और जब अन्तःकरण शुद्ध होजाय,तब सब कर्मोंका त्याग करदेना इत्याभिप्रायः २।

मू०—त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपःकर्म नत्याज्यमितियापरे ॥ ३ ॥

एके १ मनीषिणः २ इतिः ३ प्राहुः ४ दोषवत् ५कर्म६ त्याज्यम् ७ च ८ अपरे ६ इति १० यज्ञदानतपःकर्म ११न१२ त्याज्यम् १३ ॥३। अ०-एक १ पंडित २ यह३ कहते हैं ४ सि० कि ❀ दोष वाला ५ कर्म ६ त्यागना योग्य है ७ और ८ अपर ६ अर्थात् कोई एक पंडित ६ यह १० सि० कहते हैं कि ❀ यज्ञ दान तप कर्म ११ नहीं १२ त्यागना चाहिये१३तात्पर्य सब कर्मों के त्याग में अन्यमतवालों का भी सम्मत है, इसी बातको दृढ करने के लिये सांख्यशास्त्र वालों का मत दिखाया, सांख्यशास्त्र वाले कहते हैं कि यज्ञादिकर्मों में हिंसा असमतादि दोष हैं इस वास्ते उनको त्यागना योग्य है. और पूर्वमीमांसावाले यह कहते हैं कि वेद के आज्ञा में शंका करना न चाहिये, यज्ञादिकर्म करना योग्य है, जो वेदों ने कहा, यदि उसमें हिंसा भी प्रतीत होती हो, तो भी वो कर्म श्रेष्ठ है, अधिकारीप्रति दोनों का कहना सत्य है प्रवृत्तिमार्गवाला अवश्य यज्ञादि कर्म करे, और निवृत्तिमार्गवाला कर्मों में विक्षेप समझकर कर्मको त्याग दे, शमदमादिका अनुष्ठान करे ॥ ३ ॥

मू०-निश्चयंशृणुमेतत्रत्यागेभरतसत्तम ॥
त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधःसंप्रकीर्तितः ॥४॥

भरतसत्तम१तत्र २ त्यागे ३ निश्चयम् ४ मे ५ शृणु ६ पुरुषव्याघ्र ७ हि ८ त्यागः ६ त्रिविधः १० संप्रकीर्तितः ११॥४॥ अ०-उ० आस्तिकमार्गवालों में भी जो भेद प्रतीत होता है, कि जो पिछले श्लोकमें कहा इसकी निवृत्तिके लिये दोनोंका सिद्धान्त तात्पर्यार्थ कहते हैं हे अर्जुन ! १ तिस २ त्याग के विषय३ निश्चय४मेरे५सि० वचनसे❀सुन६हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन!७सि०त्यागका अर्थ जानना कठिन है❀क्योंकि ८ त्याग६तीन प्रकार१० कहा है ११ तात्पर्य

हे अर्जुन ! त्याग तीनप्रकारका है इसहेतुसे त्यागका अर्थ कठिन है, त्याग और संन्यास इन दोनों शब्दोंका एक अर्थ है सो मुझसे सुन प्रवृत्तिमार्ग ये और निवृत्तमार्ग ये दोनों अनादि हैं वेदोंमें जहां कर्मका त्याग कहा है, वो निवृत्तिविरक्तमहापुरुषोंके लिये कहा है और जहां कर्मका अनुष्ठान कहा है वो प्रवृत्तरागीजनोंके लिये कहा है ऐसा वेदोंका तात्पर्य सत्पुरुषोंकी कृपासे जानाजाता है. शास्त्रोंमें किंचिन्मात्र भेद नहीं अपनी समझका भेद है ॥ ४ ॥

मू०—यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत् ॥
यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमनीषिणाम् ॥५॥

यज्ञः १ च २ दानम् ३ तपः ४एव ५ मनीषिणाम् ६पावनानि ७एव ८ तत् ९ यज्ञदानतपःकर्म १० न ११ त्याज्यम् १२ कार्यम् १३ ॥५॥ अ०—उ० तीनप्रकारका त्याग श्रीभगवान् अभी आगे कहेंगे, प्रथम दो श्लोकोंमें अपना सिद्धान्त कहते हैं—यज्ञ १ और २ दान ३ तप ४ निश्चय ५ पण्डितोंको ६ पवित्र करनेवाले ७ सि० हैं ❀ इस वास्ते ८ सोई ९ यज्ञदानतपकर्मको १० नहीं ११त्यागना योग्य है १२ करनेको योग्य हैं १३ तात्पर्य यज्ञदानादिकर्म अन्तःकरणको शुद्ध करते हैं, इसवास्ते ज्ञानके प्रथमभूमिकावालेको कर्म त्यागना न चाहिये स्पष्टार्थ है कि पवित्रकी विधि अपवित्र वस्तुमें होती है अपवित्र वस्तुमें पवित्र विधि नहीं होती जिनको संसारसे वैराग्य नहीं, और भगवद्भक्त जिनको प्राणोंके बराबर प्यारे नहीं, वे निश्चय करें कि हमारा अन्तःकरण शुद्ध नहीं विरक्तोंकी सेवा पूजासे हमारा अन्तःकरण शुद्ध होगा ॥ ५ ॥

मू०—एतान्यपितुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाफलानिच ॥
कर्तव्यानीतिमेपार्थनिश्चितंमतमुत्तमम् ॥६॥

पार्थ १ एतानि २ कर्माणि ३ संगम् ४ च ५ फलानि ६ त्य-क्त्वा ७ अपि ८ तु ९ कर्तव्यानि १० इति ११ मे १२ निश्चितम् १३ उत्तमम् १४ मतम् १५ ॥ ६ ॥ अ०—हे अर्जुन ! १ ये २सि० तपदानादि ❀ कर्म ३ आसक्ति ४ और ५ फलका ६ त्याग करके ७ निश्चयसे ८। ९ करने योग्य हैं. १० यह ११ मेरा १२ निश्चयसे १३ उत्तम १४ मत १५ सि० है ❀ तात्पर्य हे अर्जुन ! तपदानादि अन्तःकरणको शुद्ध करते हैं इसवास्ते मुमुक्षुको अवश्य करना चाहिये, मेराभी यही उत्तम मत है और औरोंकाभी कर्मकी विधिमें यही तात्पर्य है, विना अन्तःकरणशुद्ध हुए जो वेदोक्त बहिरङ्गकर्मों का त्याग कर देते हैं, अवैदिक मार्गवालोंकी बात सुनकर या निवृत्तिमार्गवालोंकी श्रुतिस्मृति प्रमाण देकर वे पापके भागी होते हैं क्योंकि शास्त्रार्थ उन्होंने उलटा समझा ॥ ६ ॥

मू०-नियतस्यतुसंन्यासः कर्मणोनोपपद्यते॥
मोहात्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्त्तितः॥७॥

नियतस्य १ कर्मणः २ संन्यासः ३ न ४ उपपद्यते ५ तु ६ मोहात् ७ तस्य ८ परित्यागः ९ तामसः १० परिकीर्तितः ११॥७॥ अ०—उ० पीछे भगवान्ने कहा था कि त्याग तीन प्रकारकाहै उसको कहते हैं—नित्यसन्ध्यादि १ कर्मका २ त्याग ३ न ४ करना चाहिये ५ और ६मोहसे ७ तिसका ८ त्याग ९ सि० करदेना ❀ तमोगुणी त्याग १० कहा हैं ११ तात्पर्य जिज्ञासु याने मुक्तिकी इच्छा है जिसको वह नित्यकर्मोंको त्याग न करे और जो भूल या मूर्खतासे त्यागकरेगा तो वो त्याग तमोगुणी कहा जायगा ऐसे त्याग का फल मोक्ष नहीं पीछे ऐसा त्याग महाक्लेश देता है ।७॥

मू०–दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्त्यजेत ॥
सकृत्वाराजसंत्यागंनैवत्यागफलंलभेत ॥८॥

यत् १ कर्म २ कायक्लेशभयात् ३ त्यजेत् ४ दुःखम् ५ इति६ एव ७ सः ८ राजसम् ६ त्यागम् १० कृत्वा ११ त्यागफलम् १२ न १३ लभेत १४ एव १५ ॥८॥ अ०–जो १ कर्म २ कायक्लेशके भय से ३ त्यागता हैं ४ सि० उसमें ❀ दुःख ५ । ६ । ७ सि० समझ कर ❀ सो ८ रजोगुणी ६ सि० ऐसे त्यागको १०करके ११त्यागके फलको १२ नहीं १३ प्राप्त होता है १४ निश्चयसे १५ तात्पर्य रजोगुणी पुरुष मैला अन्तःकरण होनेसे स्नानदानादिकर्मोंको दुःख रूप जानता है यह नहीं समझता कि इन कर्मोंसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध होकर मुझको ज्ञान प्राप्त होगाकि जिससे सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है इसवास्ते विना आत्मबोध हुए ही या कायक्लेशके भयसे कर्मोंको त्याग देता है,विना अन्तःकरण शुद्ध हुए त्यागका फल (ज्ञाननिष्ठा) उसको प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥

मू०–कार्यमित्येवयत्कर्मनियतंक्रियतेऽर्जुन ॥
संगंत्यक्त्वाफलंचैवसत्यागःसात्त्विकोमतः ॥९॥

अर्जुन १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ कार्यम् ५ इति ६ एव ७ संगम् ८ च ६ फलम् १० त्यक्त्वा ११ क्रियते १२ सः १३त्यागः१४ एव १५ सात्त्विकः १६ मतः १७ ॥ ६॥ अ०–उ० सतोगुणी त्याग यह है–हे अर्जुन ! १जो २ नित्य ३ कर्म ४ सि० है सो ❀ करना चाहिये ५ यह निश्चय है ६ । ७ संगको ८ और ६फलको१० त्याग कर ११ सि० जो त्याग ❀ किया जाता है १२ सो १३

त्याग १४ निश्चयसे १५ सतोगुणी १६ माना है १७ तात्पर्य हे अर्जुन ! जो नित्यकर्म है, उसको ब्रह्मजिज्ञासु अवश्य करे, परन्तु उसमें संग न करे और उसके फलका त्याग करे सो त्याग सतोगुणी है, इसप्रकार जो कर्म करते हैं, उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है, फिर साधन चतुष्टयसंपन्न होकर, ब्रह्मविद्याका श्रवण करके अपने स्वरूपको जानकर कृतकृत्य होजाते हैं. उनको फिर कुछ कर्तव्य नहीं रहता ॥ ९ ॥

मू०-नद्वेष्ट्यकुशलंकर्मकुशलेनानुषज्जते ॥
त्यागीसत्त्वसमाविष्टोमेधावीछिन्नसंशयः॥१०

अकुशलम् १ कर्म २ न ३ द्वेष्टि ४ कुशले ५ न ६अनुषज्जते ७ त्यागी ८ सत्वसमाविष्टः ९ मेधावी १० छिन्नसंशयः११ ॥ १० ॥
अ०-उ० जिसका शुद्ध अन्तःकरण होजाता है, उसका लक्षण यह है—बुरा १ सि० जो * कर्म २ सि० उसके साथ * नहीं ३ वैर करता है, ४ अच्छे कर्ममें ५ नहीं ६ प्रीति करता है. ७ बुरे भले दोनोंकर्मोंका फल त्याग देता है. ८ आत्मा और अनात्माका जो विवेक उसकरके ९ अर्थात् विचारवान ९ आत्मनिष्ठ १० संदेहरहित ११ सि० ऐसा होता है, * तात्पर्य जबतक प्राणीको इच्छा रहती है तबतक अच्छे कर्मोंमें प्रीति रखता है और उसके वास्ते नाना-प्रकारके यत्न करता है अच्छे कर्म और बुरे कर्मोंका साथ है बुरे कर्म परवश होजाते हैं इच्छारहित पुरुषको बुरा भला कर्म नहीं लगता जो भलेकर्मोंका फल चाहेगा उसको बुरेकर्मोंका फल परवश होगा, विवेकी विचारवान् शुद्धान्तःकरणवाला सन्देहरहित सदा आत्मनिष्ठ रहता है ज्ञानीको परमानन्दस्वरूप आत्माके सामने सब कर्मोंके फल तुच्छ प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

मू०-नहिदेहभृताशक्यंत्यक्तुंकर्माण्यशेषतः ॥
यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

देहभृता १ अशेषतः २ कर्माणि ३ त्यक्तुम् ४ नहि५ शक्यम् ६ यः ७ तु ८ कर्मफलत्यागी ९ सः १० त्यागी ११ इति १२ अभिधीयते १३ ॥ ११ ॥ अ०-उ० जो कोई यह समझे कि कर्मों का फल त्यागने से कर्मों को ही त्याग देना अच्छाहै.इसवास्ते श्रीभगवान् कहते हैं, अज्ञानी जीव समस्त कर्मों को नहीं त्यागसक्ता फलही का त्याग कर सक्ता है, कर्मों का फल त्यागनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है, यह परम फल है और इसी से ज्ञान होता है, ज्ञानी समस्तकर्म त्याग सक्ताहै क्योंकि कर्मोंका फल जो अज्ञानकी निवृति सो हुई, जब तक अज्ञान दूर न हो तब तक कर्मोंका त्याग न चाहिये वर्णाश्रमाभिमानी अज्ञानी जीव १ समस्त २ कर्म ३ त्यागने को ४ नहीं ५ समर्थहै,६जो ७ । ८ कर्म के फल का त्यागी ९ सो० है सो १० त्यागी ११ । १२ कहा हैं १३ तात्पर्य अज्ञानी जीव कर्मों के त्यागने से बन्धन को प्राप्त होता, क्योंकि,अंतःकरण के शुद्धि का उपाय उसने छोड दिया और ज्ञानी कर्म करता हुआ भी अकर्ता ही है. क्योंकि आत्मा सदा असंग अक्रिय ऐसा है इस ज्ञान के प्रताप से मुक्त होता है ॥ ११ ॥

मू०-अनिष्टमिष्टंमिश्रंचत्रिविधकर्मणःफलम् ॥
भवत्यागिनांप्रेत्यनतुसंन्यासिनांक्वचित ॥१२॥

अनिष्टम् १ च २ इष्टम् ३ मिश्रम्४ त्रिविधम् ५ कर्मणः ६ फलम् ७ प्रेत्य ८ अत्यागिनाम् ९ भवति १० तु ११ संन्यासिनाम् १२ क्वचित् १३ न १४ ॥ १२ ॥ अ० उ० जो कर्मों का फल त्याग देते हैं उनका अंतःकरण शुद्ध होकर उनको परमानंद परम-

फलकी प्राप्ति होती है और जो सकामकर्म करते हैं, उनको इष्ट और अनिष्ट और इष्टानिष्ट अर्थात् मिलाहुआ यह तीनप्रकार का फल होता है और जो विना अन्तःकरण शुद्धहुए कर्म छोड देते हैं वे सदा नरक और पशुपक्षियों की योनि में जन्म लेकर बारंवार मरते हैं, इस वास्ते श्रीभगवान् वारंवार जिज्ञासु को निष्कामकर्म का उद्देश फल के सहित करते हैं-नरकादि १ और २ स्वर्गादि ३ सि० और ❀ मर्त्यलोक में मनुष्यादि देहों की प्राप्ति ४ सि० यह ❀ तीनप्रकार ५ कर्म का ६ फल ७ मर करके ८ सकामोंको ९ होता है १० और ११ संन्यासियों को १२ कभी १३ नहीं १४ सि० होता है ❀ तात्पर्य स्वर्गादि अनित्य और दुःखदाई पदार्थ हैं भगवद्भजन करके जो अनित्य फल की प्राप्ति हुई तो क्या हुआ नित्यएकरसपरमानन्द की प्राप्ति होना चाहिये, सो संन्यासियों को ही होती है श्रीभगवान् स्पष्ट बेसंदेह कहते हैं॥ १२ ॥

मू०-पंचैतानिमहाबाहोकारणानिनिबोधमे ॥
सांख्येकृतांतेप्रोक्तानिसिद्धयेसर्वकर्माणाम्॥१३॥

महाबाहो १ सर्वकर्मणाम् २ सिद्धये ३ एतानि ४ पञ्च ५ कारणानि ६ सांख्ये ७ कृतान्ते ८ प्रोक्तानि ९ मे १० निबोध ११ ॥१३॥ अ०-उ० कर्म और कर्मों के फल का तब त्याग हो सक्ता है कि जब कर्मों के जड का ज्ञान हो, इसवास्ते कर्मों के जो कारण हैं तिनको बताते हैं-हे अर्जुन ! १ सब कर्मों के सिद्धि के वास्ते ३ ये ४ पाँच ५ कारण ६ सांख्याकृतान्त में ७ । ८ कहे हैं ९ मुझसे १० सुन ११ सि० तिनको ❀ टी० भले प्रकार परमात्मा का स्वरूप जिस शास्त्र में जानाजावे उसी को सांख्य कहते हैं

ब्रह्मविद्या वेदान्तशास्त्र का नाम सांख्य और कर्मोंका अन्तहै जिसमें उसको कृतान्त कहते हैं.यह उसी सांख्यका विशेषण है ॥१३॥

मू०-अधिष्ठानंतथाकर्ताकरणंचपथग्विधम् ॥
विविधाश्चपृथक्चेष्टादैवंचैवात्रपंचमम् ॥१४॥

अधिष्ठानम् १ तथा २ कर्ता ३ करणम् ४ च ५ पृथक् विधम् ६ विविधाः ७ च ८ पृथक्चेष्टाः ९ दैवम् १० च ११ एव १२ अत्र १३ पंचमम् १४ । १४ । अ०-उ० कर्म करनेमें ये पांच हेतु हैं, स्थूल शरीर भौतिक इन्द्रियादिका आश्रय १ चैतन्य और जड़ की ग्रंथि अहंकार २ । ३. अर्थात् सोपाधिक चैतन्य २ । ३ और इन्द्रिय ४ । ५ पृथक् स्वरूपवाली ६ और कई प्रकार की ७ । ८ १० ये दोनों चौथा पद करण याने इंद्रिय इसके विशेषण हैं. मूल में कारण यह पद है चौथा और ❀ प्राणपानादि ९ और देव १० । ११ । १२ इनमें १३ पाचवां १४ अर्थात् इंद्रियोंको देवता. तात्पर्य शरीर इंद्रिय प्राण अंतःकरण अज्ञान इनके साथ मिला हुआ चैतन्य कर्ता है पृथक् अकर्ता है ॥ १४ ॥

मू०-शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभतेनरः ॥
न्याय्यंवाविपरीतंवापंचैतेतस्यहेतवः ॥१५॥

नरः १ शरीरवाङ्मनोभिः २ यत् ३ कर्म ४ प्रारभते ५ वा ६ न्यायम् ७ वा ८ विपरीतम् ९ तस्य १० एते ११ पंच १२ हेतवः १३ ॥ १५ ॥ अ०-प्राणी १ शरीरवाणीमनकरके २ जो ३ कर्म ४ प्रारंभ करता, ५ या ६ अच्छा ७ या ८ बुरा ९ तिसके १० ये ११ पांच १२ हेतु १३ सि० हैं जो पिछले श्लोकमें शरी-रादि कहे ❀ शरीर १ सोपाधिचैतन्य २ इंद्रिय ३ प्राण ४ देव

५ अर्थात आदित्य देवता यही पांच कारण हैं केवल आत्मा कारण, कर्ता नहीं- यह अगले मन्त्र में भगवान स्पष्ट कहेंगे ॥१३॥

मू०-तत्रैवंसतिकर्तारमात्मानंकेवलंतुयः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्नसपश्यतिदुर्मतिः ॥१६॥

तत्र १ एवम् २ सति ३ तु ४ यः ५ आत्मानम् ६ केवलम् ७ कर्तारम् ८ पश्यति ९ अकृतबुद्धित्वात् १० सः ११ दुर्मतिः १२ न १३ पश्यति १४ ॥ १६ ॥ अ०-उ०-जब कि सब कर्मों में ये पांच हेतु हैं तो फिर केवल आत्मा को कर्ता समझना मूर्खता है- तहां १ अर्थात सब कर्मों में १ इस प्रकार हुए संते २। ३ फिर ४ जो ५ आत्मा को ६ केवल ७ कर्ता ८ देखता है ९. सि० इसमें हेतु यह है सच्छास्त्र सद्गुरूपदेश रहित होने से अर्थात् गुरुने उसको ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं किया इस वास्ते ❀ अकृतबुद्धि होने से १० अर्थात् ब्रह्मज्ञान न होने से १० सो ११ मंदमति १२ सि० आत्मा को यथार्थ ❀ नहीं देखता है १३ टी० जैसे पिछले मंत्र में कहा इस प्रकार वास्तव आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द निर्विकार अक्रिय है, शरीरेंद्रियादिभ्रांति के संबंध से जलचंद्रवत् आत्मा कर्ता प्रतीत होता है अज्ञानियों को. जिन्होंने वेदान्तशास्त्र श्रद्धापूर्वक नहीं श्रवण किया ॥ १६ ॥

मू०-यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ।
हत्वापिसइमांल्लोकान्नहंतिनानिबध्यते ॥१७॥

यस्य १ अहंकृतः २ भावः ३ न ४यस्य ५ बुद्धिः ६न ७ लिप्यते ८ सः ९ इमान् १० लोकान् ११ अपि १२ हत्वा१३ न १४ हन्ति १५ न १६ निबध्यते १७ ॥ १७ ॥ अ०-उ० सुमति याने श्रद्धा-वाले जो आत्माको अक्रिय जानतेहैं वे कर्म करते हुएभी अकर्ताहीं हैं इस बातको कैमुतिकन्यायसे श्रीभगवान् दृढ करते हैं अर्थात् जब

बुरेकर्म हिंसादि उसको बन्धन नहीं करते, तो भलेकर्म यज्ञादि उस को कैसे बन्धन करेंगे-जिसको १ अहंकृत २ भाव ३ नहीं ४अर्थात् यह कर्म मैंने नहीं किया, इस कर्म करनेमें शरीरादि पंच हेतु हैं, मैं शुद्ध असंग अविद्यारहित हूं. ऐसे जो समझता है ८ सि० और जिसकी ५ बुद्धि ६ नहीं ७ लिपायमान होती है ८ अर्थात् किसी प्रकारका कर्म शुभाशुभ प्रारब्धवशात् होजावे, किंचिन्मात्र हर्ष शोक न होवे जिसको ८ सो ६ इन १० लोगोंको ११ भी १२ मारकरके १३ नहीं १४ मारता है १५ न १६ बन्धनको प्राप्त होता है १७ तात्पर्य जो मुमुक्षु दिनरात मुक्तिके लिये यथाशक्ति यत्न करते हैं. जहां तक होसके देशकालवस्तुके अनुसार भगवद्भजन, पूजा, पाठ, जप, तीर्थस्नानादिकर्म करते रहते हैं, परलोकमें आस्तिक्यबुद्धि है, और शुभकर्मोंके प्रतापसे शुद्धान्तःकरण होकर, आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है. जो कदाचित् किसी पापका उदय होनेसे प्रारब्धवशात् कोई जाने बिनाजाने बुरा बनजावे ऐसे मुमुक्षुसे कि जिसका लक्षण ऊपर कहा तो उसकर्मका दोष कभी उस महात्मा को नहीं लगेगा. जो उसको दोष समझेंगे वो फल उनको होगा. वेदशास्त्र ईश्वरका इसबातमें संमत है ॥ १७ ॥

मू०-ज्ञानंज्ञेयंपरिज्ञातात्रिविधाकर्मचोदना ॥
करणंकर्मकर्तेतित्रिविधःकर्मसंग्रहः॥१८॥

परिज्ञाता १ ज्ञानम् २ ज्ञेयम् ३ त्रिविधा ४ कर्मचोदना ५ कर्त्ता ६ कर्म ७ करणम् ८ इति ६ त्रिविधाः १० कर्मसंग्रहः ११ अ०-उ० अब अन्यप्रकारसे आत्माको अकर्त्ता सिद्ध करते हैं-ज्ञाता १ ज्ञान २ ज्ञेय ३ तीनप्रकार ४ कर्मकी प्रेरणा है ५ सि० और * कर्ता ६ कर्म ७ करण ८ यह ६ तीनप्रकार १० कर्मसंग्रह ११

सि० है ❀ टी॰ जाननेवाला १ जिसकरके जाना जावे २ जानेके योग्य ३ कर्मके प्रवृत्तिमें हेतु ५ क्रियाका आश्रय ११ तात्पर्य चिदाभास और अन्तःकरणकीवृत्ति, और श्रोत्रादिइंद्रिय, यही कर्मके प्रवृत्तिमें हेतु हैं, आत्मा कूटस्थ निर्विकार है, बन्धन मोक्ष चिदाभासकोही हैं आत्मा बन्ध मोक्षशब्दोंका विषयभी नहीं ॥१८॥

मू०-ज्ञानकर्मचकर्ताचत्रिधैवगुणभेदतः ॥
प्रोच्यतेगुणसंख्यानेयथावच्छृणुतान्यपि ॥१९॥

कर्त्ता १ च २ कर्म ३ च ४ ज्ञानम् ५ गुणभेदतः ६गुणसंख्याने ७ त्रिधा ८ एव ९ प्रोच्यते १० तानि ११अपि १२ यथावत् १३ शृणु १४ ॥ १९ ॥ अ०-उ०-कर्ताकर्मादि सब त्रिगुणात्मक हैं आत्मात्रिगुणरहित है—कर्त्ता १ और २ कर्म ३ और ४ ज्ञान ५ गुणोंके भेदसे ६ सांख्याशास्त्रमें ७ तीन प्रकारके ८। ९ कहे हैं १० तिनको ११। १२ यथार्थ १३ सुन १४ तात्पर्य कर्त्तादिमें तीनतीन भेद हैं वे यह सत्त्व रज तम और यह तीनों गुण अज्ञान करके कल्पित हैं. अज्ञानके दूर होनेसे परमानन्दस्वरूप नित्य प्राप्त आत्माकी प्राप्ति होती है तमोगुणको रजोगुणसे दूर करे रजोगुणको सत्वगुणको ब्रह्मविद्यासे दूर करे इसी वास्ते यह तीन प्रकारका भेद दिखाकर आत्माको इन तीनों गुणोंसे पृथक् दिखलाया है ॥ १५ ॥१९ ॥

मू०-सर्वभूतेषुयेनैकंभावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तंविभक्तेषुतज्ज्ञानंविद्धिसात्त्विकम्॥२०॥

विभक्तेषु १ सर्वभूतेषु २ येन ३ अविभक्तम् ४ एकम् ५भावम्६ अव्ययम् ७ ईक्षते ८ तत् ९ ज्ञानम् १० सात्त्विकम् ११ विद्धि १२ ॥ २० ॥ अ०-उ० सात्त्विकज्ञान यह है कि पृथक् पृथक् सब भूतों में १। २ जिस ज्ञानकरके ३अनुस्यूत ४एक ५ भाव ६ निर्विकार

७ सि० परमात्माको ❀ देखता है ८ सो ९ ज्ञान १० सतोगुणी ११ तू जान १२ तात्पर्य जैसा वस्त्रमें सूत अनुस्यूत है इसीप्रकार ब्रह्माजीसे ले चींटी तक सबभूतोंमें सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध निर्विकार परमात्मा एकही है देहोंके उपाधिसे पृथक् पृथक् देवता, मनुष्य, पश्वादि कहाजाता है, इसप्रकार जो आत्माको जानते हैं जिसज्ञान करके सो ज्ञान सतोगुणी है. अद्वैतवादियोंका यही ज्ञान है ॥२०॥

मू०-पृथक्त्वेनतुयज्ज्ञानंनानाभावान्पृथग्विधान् ॥
वेत्तिसर्वेषुभूतेषुतज्ज्ञानंविद्धिराजसम् ॥ २१ ॥

पृथक्त्वेन १ तु २ यत् ३ ज्ञानम् ४ तत् ५ ज्ञानम् ६ राजसम् ७ विद्धि ८ सर्वेषु ९ भूतेषु १० नाना ११ भावान् १२ पृथक् १३ विधान् १४ वेत्ति १५ ॥ २१ ॥ अ०-उ० भेदवादियोंके रजोगुणी ज्ञानको कहते हैं पृथग्भावकरके १ । २ जो ३ ज्ञान ४ तिसज्ञानको ५ । ६ रजोगुणी ७ तू जान ८ सि० इसी बातको फिर स्पष्टकरके कहते है ❀ सब भूतोंमें ९ । १० नानाप्रकारके पदार्थोंको १२ पृथक् १३ प्रकार १४ जो जानता है १५ सि० जिस ज्ञान करके तिसज्ञान को रजोगुणी तू जान ❀ तात्पर्य निरवयवपदार्थ सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मासे आत्मा पृथग्भाव करके जानना. अर्थात् परमात्मा चिद्घन है और आत्मा चित्कण है. इसप्रकार भेदवादी आत्म दृष्टि करके भी अर्थात् निरवयव आत्मामें भी भेदको सिद्धान्त जानते हैं, अविद्याके उपाधिसे देहदृष्टिकरके भ्रान्तिजन्यभेद व्यवहारमें प्रतीत होता है, कि जिसको रजोगुणी भेदवादी सिद्धान्त समझते हैं इसी हेतुसे ज्ञान रजगुणी भेदवादियोंका है ॥ २१ ॥

मू०-यत्तुकृत्स्नवदेकस्मिन्कार्येसक्तमहैतुकम् ॥

अतत्त्वार्थवदल्पंचतत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

यत् १ तु २ एकस्मिन् ३ कार्ये ४ कृत्स्नवत् ५ सक्तम् ६ अहैतुकम् ७ च ८ अतत्त्वार्थवत् ६ अल्पम् १० तत् ११ तामसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥ २२ ॥ अ०-उ० तमोगुणी ज्ञानको कहते हैं जो १ । २ सि० ज्ञान ❀ एक ३ कार्यमें ४ संपूर्णवत् ५ सक्त ५ सि० है ❀ अर्थात् एककार्यमें संपूर्णवत् जो ज्ञान जैसे आपको देह दृष्टिसे ब्राह्मणसन्यासी इतनेही स्थूलशरीरको जानना और पाषाणके मूर्तिहीको और श्रीरामचन्द्रादि सावयमूर्तिकोही परमार्थमें परमात्मा जानना, अर्थात् इनसे परे कुछ अन्य निरवयव सच्चिदानंद शुद्ध तत्व नहीं है, मूर्तिमानही परमात्मा है, यह शरीरही ब्राह्मणसंन्यासी है, यही मूर्ति पाषाणकी परमेश्वर है यह ज्ञान ६ हेतुरहित ७ अर्थात् ऐसे ज्ञानमें कोई युक्ति नहीं ७ और ८ परमार्थ (सिद्धांत) नहीं है ६ सि० परमतत्वसिद्धांतके प्राप्तिका एक साधन है. फिर कैसा है कि ❀ तुच्छ है. १० सि० क्योंकि इसका फल अल्प है वैराग्यादिसाधनोंकी अपेक्षा करके इस ज्ञानसे चिरकालमें अन्तःकरण शुद्ध होता है, इसप्रकारका जो ज्ञान ❀ सो ११ तमोगुणी १२ कहा है १३ तात्पर्य यह है कि ज्ञानीभी तीनप्रकारके हैं, बिना सात्त्विक ब्रह्मज्ञानहुए रजोगुणी तमोगुणीज्ञानमें अटक जाना इसी ज्ञानसे मोक्ष समझलेना मूर्खताहै जिस समझसे जो साधनको सिद्धांत समझते हैं वोही तमोगुणी ज्ञान है ॥ २२ ॥

मू०-नियतंसंगरहितमरागद्वेषतःकृतम् ॥
अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

अफलप्रेप्सुना १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ संगरहितम् ५ अरागद्वेषतः ६ कृतम् ७ तत् ८ सात्त्विकम् ६ उच्यते १० ॥ २३ ॥

अ० उ० कर्म तीन प्रकार का है प्रथम सतोगुणी कहते हैं, फल की चाह है जिसको तिसने १ जो २ नित्य ३ कर्म ४ संगरहित५ बिना रागद्वेष के ६ किया सो सतोगुणी ७। ८। ६ कहा है १० तात्पर्य स्नान, ध्यान, पाठ, पूजा, तीर्थ, साधुसेवा इत्यादि कर्म करना शास्त्र की आज्ञा है कर्ममें आसक्ति (प्रीति) करनेसे फलकी चाह करने से बन्धन होता है इस वास्ते कर्ममें प्रीति द्वेष आसक्ति इनका त्याग करना कि जो वो कर्म अन्तःकरण को शुद्ध करके परमानंद स्वरूप आत्मा को प्राप्त करे आसक्ति प्रीति उस पदार्थ में चाहिये कि जो नित्य एकरस हो, और ऐसे ही फल की चाह न करना, फल प्राप्त होने के पीछे भी साधनोंसे रागद्वेष न चाहिये २३

मू०—यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ॥
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

कामेप्सुना १ यत् २ कर्म ३ साहंकारेण४ क्रियते ५ वा ६ तु ७ पुनः ८ बहुलायासम् ६ तत् १० राजसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ २४ ॥ अ०— उ० रजोगुणी कर्म करते हैं–फल की कामना है जिसको उसने १ जो २ कर्त ३ अहंकारके सहित ४ किया है ५ और ६। ७। ८ बहुत श्रम हो जिसमें ६ सो १० सि० कर्म ❀ रजोगुणी ११ कहा है १२ तात्पर्य पुत्र स्त्री धनस्वर्गादि भोगों के निमित्त, वा यह अहंकार के कि हमारे बराबर अग्निहोत्री कौन है जितने हमने तीर्थ किये कि उतने किसीसे होसक्ते हैं, ब्रह्मज्ञान से क्या होता है, जो हैं सो कर्म ही है, अब हम चारों धाम कर चुके, इस हेतु से हम कृत्यकृत्य हैं और कर्म करने में इतना श्रम करना कि विचार किंचित् न होसके. जैसे कि तीर्थ यात्रा में चारसौकोस चलना चाहिये, प्रातःकालसे सायंकाल तक ब्राह्ममुहूर्त और प्रदोष कालमें भी रस्ता मापना इस प्रकारके कर्म सब रजोगुणी हैं ॥२४॥

मू०-अनुबन्धंक्षयंहिंसामनवेक्ष्यचपौरुषम् ॥
मोहादारभ्यतेकर्मतत्तामससमुदाहृतम् ॥२५॥

अनुबंधम् १ क्षयम् २ हिंसाम् ३ च ४ पौरुषम्५अनवेक्ष्य ६ मोहात् ७ कर्म ८ आरभ्यते ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२॥२५॥

अ०-उ० तमोगुणी कर्म कहते हैं-पश्चाद्भावि १ द्रव्यादिका खर्च २ हिंसा ३ और ४ पुरुषार्थ ५ सि० इन चारों को ❀ न देखके ६ मोह से ७ सि० जो ❀ कर्म का ८ आरम्भकिया ९सो तमोगुणी ११ कहा है१२तात्पर्य औरों के देखादेखी यासुनकर विचारन करके अर्थात् जो मैं यह कर्म करूंगा, तो मुझको पीछे इसका फल क्या होगा, कितना इस कर्म में द्रव्य व्यय होगा, मुझको वा औरों को कितना दुःख होगा, यह काम मुझसे हो सकेगा वा नहीं. यथार्थ न विचारकर मूर्खता से कर्म का प्रारंभ कर देना तमोगुणी कहा है क्योंकि बिना विचार के शब्द बोलने में भी किसी जगह न्यौता वैर होजाता है. इसी प्रकार विना विचार तीर्थ व्रतमंदिरादि के आरंभ कर देने में सिवाय दुःख और पाप के कुछ नहीं मिलता. खोटेकर्मों का तो कुछ प्रसंग ही नहीं, वे तो विचारपूर्वक और विना विचार किये हुए अनर्थ के मूल हैं ॥ २५ ॥

मू०-मुक्तसंगोऽनहंवादीधृत्युत्साहसमन्वितः ॥
सिद्धयसिद्धयोर्निर्विकारःकर्तासात्त्विकउच्यते२६

मुक्तसंगः १ अनहंवादी २ धृत्युत्साहसमन्वितः ३ सिद्धयसिद्धयोः ४ निर्विकारः ५ कर्ता ६ सात्त्विकः ७ उच्यते ८ ॥ २६ ॥

अ०-उ० कर्ता तीन प्रकारका है प्रथम सतोगुणी कर्ताको कहते हैं, संगरहित १ अहंकाररहित२धैर्य उत्साहकरके युक्त ३सिद्धि में और असिद्धिमें ४ निर्विकार ५ सि० ऐसा ❀ कर्ता ६ सतोगुणी ७

द्धा है ८ तात्पर्य कर्मों में आसक्त न होना चाहिये, क्योंकि अन्तः
रण शुद्धि के पीछे कर्मों का त्यागना होगा जिस पदार्थ से एकदिन
दा होना है उसमें प्राप्ति समय भी प्रीति न रखना अथवा संग-
हित का अर्थ यह समझना चाहिये कि मैं असङ्ग हूँ अहंकार न
रना कि मैं ऐसा वेदोक्त कर्म करता हूं कर्म करने में धैर्य उत्साह
खना जो धैर्य उत्साह न होगा तो कभी कर्म में प्रवृत्ति औरस्थिति
होगी उत्साह से कर्म में प्रवृत्ति होतीहै, और धैर्य से कर्म में
स्थिति रहती है और कर्म की सिद्धिमें और असिद्धि में निर्विकार
हना, दैवयोग से जो कर्म प्रत्यक्ष फल देवे, कि जैसा फल शास्त्र
लिखा है या वैसा फल न हो तो दोनों में निर्विकार रहना. जो
पदार्थ नाशशील है वो हुआ न हुआ सम है प्रत्युक्त होकर नाश
होने से न होना श्रेष्ठ है परम फल अन्तःकरण शुद्धि द्वारा परमा-
नन्द स्वरूप आत्मापर दृष्टि चाहिये, सतोगुण कर्ता पुरुष करेगा,
वे संदेह उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा ॥ २६ ॥

मू०–रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितःकर्ता राजसः परिकीर्त्तितः॥२७॥

रागी १ कर्मफलप्रेप्सुः २ लुब्धः ३ हिंसात्मकः ४ अशुचि ५ हर्ष
शोकान्वितः ६ कर्ता ७ राजसः ८ परिकीर्त्तितः ९ ॥ २७ ॥ अ०
टी० रजोगुणी कर्ता को कहते हैं—प्रीतिवाला १ अर्थात् पुत्रादिके
प्रीत्यर्थ कर्म करने वाला कर्मों के फल को चाहने वाला २ लोभी
याने पराये धन की इच्छा करने वाला ३ दूसरे को दुःख देने
वाला ४ अपवित्र ५ हर्षशोककरके युक्त ६ सि० ऐसा * कर्ता
७ रजोगुणी ८ कहा है, ९ तात्पर्य जो पुरुष मित्रादिकों को
प्रसन्न करने के लिये, अर्थात् यह जो मैं कर्म करता हूं इस
कर्म के देखने सुनने से मेरे मित्रादि आनन्दित होंगे,इस दृष्टि से

कर्म करना, कर्मों में राग रखना,फल का चाहना पराई स्त्री धनादि की इच्छा रखना अच्छा कर्म करता हुआ देख सुनकर राजा प्रजा दान देंगे कर्म करने के समय दूसरे के दुःख पर दृष्टि न देना, भीतर बाहर से अपवित्र रहना, कर्म की सिद्धि में हर्ष करना, इस प्रकार का कर्ता रजोगुणी है, जो इस प्रकार वेदोक्त कर्म भी करता है, तो वो कर्म मोक्ष का हेतु न होगा ॥ २७ ॥

मू०–अयुक्तःप्राकृतःस्तब्धःशठोनैष्कृतिकोऽलसः ॥
विषादीदीर्घसूत्रीचकर्ता तामसउच्यते ॥२८॥

अयुक्तः १ प्राकृतः २ स्तब्धः ३ शठः ४ नैष्कृतिकः ५ अलसः ६ विषादी ७ दीर्घसूत्री ८ च ९ कर्ता १० तामसः ११ उच्यते १२ ॥२८॥ अ०—उ० तमोगुणी कर्ता को कहते हैं—कर्म करने के समय कर्म में चित्त न रखना १ विवेक रहित २ अर्थात् यह न समझना कि कर्म करने का यथार्थ फल क्या है २ अनम्र ३ मायावी ४ अर्थात् कर्म तो वेदोक्त करना और मनमें यह रखना कि दूसरे को धोखा देकर उसका धन छीन लेना चाहिये इस बातको छिपाने वाला ४ दूसरे के आजीविका का नाश करने वाला अपमान करने वाला ५ आलसी ६ सदा रोती सूरत, याने अप्रसन्न रहने वाला ७ जो काम घडी के करने का है उसेको दो चार पहर या महीना लगा देने वाला ८। ९ अर्थात् तनक से काम का बहुत विस्तार कर देने वाला ८। ९ अर्थात् सि० ऐसा ❀ कर्ता १० तमोगुणी ११ कहा है १२टी० अपने को कर्मनिष्ठ समझकर ज्ञाननिष्ठ भगवद् भक्तों को शूद्रादि समझकर उनको नमस्कार न करना २८

मू०–बुद्धेर्भेदंधृतेश्चैवगुणतस्त्रिविधंशृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेणपृथक्त्वेनधनंजय ॥ २९ ॥

धनंजय १ बुद्धेः धृतेः ३ च ४ भेदम् ५ गुणतः ६ त्रिविधम् ७ पृथक्त्वेन ८ प्रोच्यमानम् ९ अशेषेण १० एव ११ शृणु १२॥२९॥ अ०-हे अर्जुन ! १ बुद्धिका २ और धैर्यका ३ । ४ भेद ५ गुणों से ६ तीनप्रकारका ७ जुदा जुदा ८ कहना है ९ सि० जो अगले छः श्लोकोंमें उसको ❀ विस्तारसे ही १० । ११ सुन १२ तात्पर्य संसारमें रजोगुणीतमोगुणीबुद्धिवालेभी बुद्धिमान् कहे जाते हैं.सो वो समझ उनकी मोक्षके लिये नहीं, परमार्थकी बात तमोगुणीरजोगुणी बुद्धिवाले नहीं जानते उनको बुद्धिमान् समझकर परमार्थमें उनके समझऊपर विश्वास रखकर अनुष्ठान करना न चाहिये, इसीवास्ते बुद्धिका भेद श्रीभगवान् दिखाते हैं ॥ २९ ॥

मू०-प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचकार्याकार्येभयाभये ॥
बन्धमोक्षंचयावेत्तिबुद्धिःसापार्थसात्त्विकी॥३०

पार्थ १ या २ बुद्धिः ३ प्रवृत्तिम् ४ च ५ निवृत्तिम् ६ च ७ कार्याकार्ये ८ भयाभये ९ बन्धम् १० च ११ मोक्षम् १२ वेत्ति १३ सा १४ सात्त्विकी १५ ॥ ३० ॥ अ०-उ० बुद्धि तीन प्रकारकी है. प्रथम सतोगुणी बुद्धिको कहते हैं, हे अर्जुन ! १ जो २ बुद्धि ३ प्रवृत्तिको ४ और ५ निवृत्तिको ६ और ७ कार्य अकार्य ८ भय अभय ९ बन्ध १० और ११ मोक्षको १२ जानती है १३ सो १४ सि० बुद्धि ❀ सतोगुणी १५ तात्पर्य प्रवृति बन्धको हेतु है, निवृत्ति मोक्षमें हेतु है इस देशकालमें ऐसे पुरुषने यह करना योग्य है, यह अयोग्य है, खोटे काम करनेमें भय होगा, भगवद्भजन विवेक वैराग्यादि शुभकर्मोंमें भय नहीं, इसप्रकार कर्मकरनेसे बन्ध होता है, इस प्रकार कर्मोंके करनेसे मुक्ति होती है, ऐसी जिसकी बुद्धि है वो सतोगुणी है बहुत कर्म ऐसे हैं कि वे किसीके लिये अच्छे किसीके

लिये बुरे हैं एककाम किसीदेशकालमें कोई कर सक्ता है, किसीदेश कालमें वो काम नहीं हो सक्ता, किसीको एक कर्म करनेका अधिकार है, किसीको उसीको त्यागनेका अधिकार है. ऐसी ऐसी बहुत बातें हैं वो निवृत्ति सतोगुणीमहापुरुष जानते हैं, केवल वेदशास्त्रके पढनेसुननेसे तात्पर्यार्थ नहीं जाना जाता एक एक बात समझनेको नानाप्रक्रिया याने रीति हैं, महात्मा अनेकदृष्टान्त युक्तियोंसे समझासक्के हैं, यदि वे प्रसन्न होजावें तो ॥ ३० ॥

मू०—ययाधर्ममधर्मंचकार्यंचाकार्यमेवच ॥
अयथावत्प्रजानातिबुद्धिःसापार्थराजसी॥३१॥

पार्थ १ यया २ धर्मम् ३ अधर्मम् ४च५ कार्यम् ६ च ७अकार्यम् ८ एव ६ च १० अयथावत् ११ प्रजानाति १२ सा १३ बुद्धिः १४ राजसी १५ ॥ ३१ ॥ अ०—उ० रजोगुणीबुद्धिको कहते हैं-हे अर्जुन ! १ जिस बुद्धिकरके २ धर्मको ३ और अधर्मको ४।५ कार्य और अकार्य ६।७।८।६।१० संदेहसहित ११ जानताहै १२ अर्थात् यथावत् जैसेका तैसा नहीं जानता हैं १२ सि० उसकी ❀ सो १३ बुद्धि १४रजोगुणी १५ तात्पर्य धर्माधर्ममें कार्याकार्यमें जिसको संदेह बनाही रहता है, उसकी बुद्धि रजोगुणी है यह जीव सच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्म है वा नहीं वेदशास्त्रमें अद्वैतसिद्धान्त सत्य है वा नहीं कर्मोंके संन्याससे मोक्ष होता है वा नहीं निष्कामकर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है वा नहीं वेदशास्त्रप्रमाण हैं वा नहीं इस प्रकार संदेह रहना यह रजोगुणी बुद्धिका दोष है ॥ ३१ ॥

मू०—अधर्मंधर्ममितियामन्यतेतमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्चबुद्धिःसापार्थतामसी॥३२॥

सर्वार्थान् १ या २ बुद्धिः ३ तमसावृता ४ अधर्मम् ५ धर्मम्६ इति ७मन्यते ८ च ६ सर्वान् १० विपरीतान् ११ सा १२ तामसी

१३ ॥ ३२ ॥ अ०-उ० तमोगुणी बुद्धि कहते हैं-हे अर्जुन! १ जो २ बुद्धि ३ तमोगुणी करके ढकी हुई ४ सि० इस बुद्धिकरके❀ अधर्मही धर्म ५ । ६ । ७मानता है ८ और ९ सब अर्थोंको १० विपरीत ११ सि० जिसबुद्धिकरके समझता है,❀सो१२ तमोगुणी १३ सि० बुद्धि है, ❀ तात्पर्य जो पुरुष सनातन ऐसे श्रौतस्मार्त धर्मको छोड इस कलियुगमें मनुष्योंने जो सम्प्रदाय और पन्थ अपने नामसे चलाये हैं, उनको धर्म समझकर उस रस्तेपर चलते हैं तो विचार करना चाहिये कि श्रौतस्मार्तमार्गमें क्या दोष था जो उसको त्यागकर कल्पितमार्गको धर्म समझा यही तमोगुणी बुद्धिका दोष है और श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ अपने मतके अनुसार करना यही विपरीत अर्थ है. तात्पर्य यह है कि श्रतिस्मृतिके प्रतिपाद्यमार्ग सनातनधर्म है, और कलियुगमें जो मत चले हैं, वे श्रुतिस्मृतिसे विरुद्ध हैं, क्योंकि जो वे श्रुतिस्मृतिके अनुसार होते तो उस संप्रदाय और पन्थका जुदा एकनाम क्यों बनाया ? स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ श्रुतिस्मृतियोंका आशय लिया, कुछ श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ उलटा किया, कुछ अपने बुद्धिसे लिख दिया. और कह दिया कि यह ग्रन्थ श्रुतिस्मृतियोंके अनुसार हैं, यहीदोष तमोगुणी बुद्धिका है ॥ ३२ ॥

मू०-धृत्या यया धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाऽव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्त्विकी ॥

पार्थ १ यया २ धृत्या ३ मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ४ धारयते ५ सा ६ धृतिः ७ सात्त्विकी ८ योगेन ९ अव्यभिचारिण्या ॥१० ॥ ॥ ३३ ॥ अ०-उ० अन्तःकरणकी वृत्ति सत्त्वादि भेदसे तीनतीन प्रकारकी हैं, उन सब वृत्तियोंमें एकवृत्तिको धृतिकी सत्त्वादिभेदसे तीनप्रकारकी दिखाते हैं, प्रथम संतोगुणी धीरजको कहते हैं-हे

अर्जुन ! १ जिस धृति करके २ । ३ मन प्राण इन्द्रियोंकी क्रिया-को ४ धारण करता है ५सो ६धृति ७ सतोगुणी ८, सि० कैसी है धृति * कर्मयोग करके अव्यभिचारिणी ९ । १० तात्पर्य स्वभावके वशसे अन्तःकरणादि अपने अपने धर्ममें प्रवृत्त होते हैं, धैर्यसे सब को वश करना चाहिये क्षुतिपपासादिसमय व्याकुल न होना, यह न होसके तो जानना कि कर्मयोगमें अभी कच्चाई है, अभी अन्तःकरणकी वृत्ति सतोगुणी नहीं हुई, सतोगुणप्रधानवृत्तिपरीक्षाके लिये यह धृतिका भेद श्रीभगवान्ने दिखाया है, जबतक इंद्रिय प्राण अंतःकरण इनका निरोध न होसके तबतक रजतमप्रधानवृत्तिको जानना और उसकीनिवृतिकेलिये कर्मयोगका अनुष्ठान करनाचाहिये, केवल धृति तीन प्रकारकी है यह जान लेनेसे मुक्ति न होगी ॥३३॥

मू०-ययातुधर्मकामार्थान्धृत्याधारयतेऽर्जुन ॥
प्रसंगेनफलाकांक्षीधृतिःसापार्थराजसी ॥३४॥

अर्जुन १ यया २ धृत्या ३ धर्मकामर्थान् ४ धारयते ५ तु ६ पार्थ ७ प्रसंगेन ८ फलाकांक्षी ९ सा १० धृतिः ११ राजसी १२ ॥ ३४ ॥ अ०-उ० रजोगुणीधृतिको कहते हैं-हे अर्जुन ! १ जिस धृति करके २ । ३ धर्मकाम अर्थको ४ धारण ५करता है अर्थात् धर्मअर्थ कामहीमें तत्पर रहता है मोक्षमें वृत्तिमें नहीं करता ५और ६ हे अर्जुन ! ७ सि० धर्मादिके प्रसंग करके ८धृति * चाहवालीहै ९ सो १० धृति ११ रजोगुणी १२ तात्पर्य शास्त्र श्रवणसे तो यह निश्चय किया कि कर्म निष्काम करना चाहिये फिर उस कर्मके प्रसंगसे पुत्र धन स्वर्ग वैकुण्ठादिकों इच्छा करने लगे तो जानना चाहिये कि अन्तःकरणकी वृद्धि रजःप्रधान है. जबतक कर्मयोगका

फल स्वर्गादि समझता रहेगा. परंपराकरके आत्माको फल न समझेगा, तबतक वृत्तिको रजःप्रधान जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

मू०-ययास्वप्नंभयंशोकंविषादंमदमेवच ॥
नाविमुंचतिदुर्मेधा धृतिःसापार्थतामसी ॥३५॥

पार्थ १ दुर्मेधाः २ यया ३ स्वप्नम् ४ च ५ भयम् ६ शोकम् ७ विषादम् ८ मदम् ९ एव १० न ११ विमुंचति १२ सा १३ धृतिः १४ तामसी १५ ॥ ३५ ॥ अ०-उ० तमोगुणी धृति को कहते हैं-हे अर्जुन ! १ तमोगुणी बुद्धि वाला २ जिस धृति करके ३ स्वप्न ४ और ५ भय ६ शोक ७ विषाद ८ मद को ९ । १० न ११ त्याग करता है १२ सो १३ धृति १४ तमोगुणी १५ तात्पर्य जानने समय ब्राह्मादि मुहूर्त में भी न जागे सोता ही रहे और कर्म करने के समय भी भय. शोक, विषाद, मद ये बने ही रहें. तो जानना चाहिये कि अन्तःकरण की बृत्ति तमःप्रधान है यावत् वृत्ति तमोगुणी रहे,तावत् स्नान ध्यान साधुसेवा आदिकर्मों को अवश्य करे ॥ ३५ ॥

मू०-सुखंत्विदानींत्रिविधंश्रृणुमेभरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमतेयत्रदुःखांतंचनिगच्छति ॥३६॥

भरतर्षभ १ इदानीम् २ तु ३ सुखम् ४ त्रिविधम् ५ मे ६ श्रृणु ७ यत्र ८ अभ्यासात् ९ रमते १० दुःखांतम् ११ च १२ निगच्छति १३ ॥ ३६ ॥ अ०-उ० कर्ताकर्मकरणादिका भेद सत्त्वादि भेद से तीनतीन प्रकारका कहा, अब उन सब का फल तीन प्रकार का है यह कहते हैं. चतुर्दशाध्याय में जो सत्त्वरजतम का भेद कहा तो वहां यह दिखाया कि ये तीनों गुण आत्मा को बन्धन करतेहैं और सत्रहवें अध्याय में जो भेद कहा तो वहां यह दिखाया कि तप-यज्ञादि रजोगुणी तामसी न करना, सात्त्विकी करना, क्योंकि

सतोगुणी पुरुष का ज्ञान में अधिकार है. और इस जगे (अठारहवें अध्याय में) जो यह भेद कार्य कारण का सत्वादि भेद करके कहा और सबका फल (सुख) तीन प्रकार का कहते है. यहां यह दिखाते हैं कि कर्ताकर्मकरणादि फल सहित सब त्रिगुणात्मक हैं. आत्माका किसीके किसीप्रकारका वास्तवमें कुछ संबन्ध नहीं,अविद्याका संबन्ध है इस श्लोक के आधे मन्त्र में प्रतिज्ञा है और आधे में सतोगुणी सुख का लक्षण है–हे अर्जुन! १ अब २ तो ३ सुख को ४ तीन प्रकार का ५ मुझसे ६ सुन ७ सि० प्रथम सतोगुणी सुख को डेढ श्लोक में कहता हूँ ❀ जिस सात्विकसुख में ८ सि० बृत्ति को ❀ अभ्यास से ९ अर्थात् शनैः शनैः नित्यप्रति दिन बढता हुआ ९ रमता है १० सि० जो सो❀ दुःखों के अन्त को ११।१२प्राप्त होता होता है १३ अर्थात् उसको फिर दुःख नहीं होता ११।१२ तात्पर्य दुःख के पार होजाता है सव शास्त्रों के पढने का सुनने का और कर्मों के अनुष्ठान करने का यही फल है. कि सतोगुणी बृत्ति प्रधान होकर सदा सतोगुणी सुख वना रहे इसी सुख में रमने से जल्दी अनिर्वाच्य, अप्रमेय, परात्पर परमानन्द स्वरूप ऐसे आत्मा की प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

मू०–यत्तदग्रेविषमिवपरिणामेऽमृतोपमम् ॥
तत्सुखंसात्त्विकंप्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

यत् १अग्रे २ विषम् ३ इव ४ तत् ५ परिणामे ६ आत्मबुद्धिप्रसादजम् ७ अमृतोपमम् ८ तत् ९ सुखम् १० सात्विकम् ११ प्रोक्तम् ॥ १२ ॥ ३७ ॥ अ०–जो १ सि० सुख ❀ प्रथम प्रारम्भ समय २ विषवत् ३ ४ सि० प्रतीत होता है ❀ सो ५ पीछे ६ अपने अन्तःकरण के प्रसाद से ७ सि० अमृत के सदृश ८ सि० हैं. ❀ सोई९सुख १० सतोगुणी ११ कहा है १२ तात्पर्य वैराग्य

आत्मध्यान. ज्ञान, समाधि इनके समय और शरीर, इन्द्रिय और प्राण इनके निरोध में प्रथम दुःख प्रतीत होता है, जब अन्तःकरण की वृत्ति रजोगुणी तमोगुणी कम होजाती है, निर्मल सतोगुणी वृत्ति प्रधान होजाती है अर्थात् दया, क्षमा, कोमलता, सत्य, संतोष धैर्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, सावधानता, मुक्तिकी इच्छा विवेक और वैराग्य इत्यादि यह वृत्ति जब प्रधान होती हैं उस समय का सुख अमृत के सदृश इस वास्ते कहा, कि वो सुख वास्तव में सच्चिदानंद को दिखा देता है, बुद्धिकी प्रसन्नता इसी को कहते हैं, कि अन्तःकरण का रज तम दूर होकर यह सुख प्रगट होता है, इस सुख की अवधि के सामने रजोगुणी तमोगुणी सुख जो आगे कहेंगे सो तुच्छ हैं और इस सुख की बड़ाई में शास्त्र और अनुभव दोनों प्रमाणहैं जीतेजी इससुखकी अवधिअनुभव आसक्ताहै,आत्मनिष्ठ और योगी इस सुख की अवधि को जीतेजी अनुभव ले सक्ते हैं और रजोगुणी सुख की अवधि में शास्त्र पुराणादि प्रमाण हैं, जीतेजी उस सुख की अवधि का अनुभव प्रत्यक्ष नहीं होसक्ता ॥ ३७ ॥

मू०.-विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामेविषमिवतत्सुखंराजसंस्मृतम् ॥३८॥

यत् १ विषयेंद्रियसंयोगात् २ तत् ३ अग्रे ४अमृतोपमम् ५ परिणामे ६ विषम् ७ इव ८ तत् ९ सुखम् १० राजसम् ११ स्मृतम् १२ । ३८ ॥ अ०-उ० रजोगुणी सुख को कहते हैं जो १ सि० सुख ❋ शब्दादि विषय और श्रोत्रादि इंद्रियोंके संवन्ध से २ सो ३ प्रथमक्षण (भोगसमय) ४ अमृत के बराबर है ५ सि०और ❋ भोगके पश्चात् ६ विषके बराबर ७ । ८ सि० हैं जो सुख ❋

सो ९ सुख १० रजोगुणी कहा है १२ तात्पर्य विषके खाने से तो प्राणी एक बेरही मरता है. और शब्दादिविषयोंके भोगने से वारंवार मरता है, अष्टावक्रजी महात्मा ने कहा है कि हे प्यारे ! जो तू मुक्त होना चाहता है तो विषयों को विषवत् त्याग सावयव भगवन्मूर्ति और सावयव वैकुण्ठ लोकादि की जो इच्छा रखते हैं वे इस रजोगुणी सुख के अवधि को चाहते हैं, उसको सतोगुणी वा दिव्य सुख समझना न चाहिये क्योंकि वो सुख श्रवण दर्शनादि से होता है, तमोगुणी सुख और मलिन रजोगुणी सुख जो इस लोक में स्त्र्यादिके संबंध से होता है,इससे सावयव लोकजन्य सुख श्रेष्ठ है, पुराणादि में इस हेतु से माहात्म्य लिखा है जो कोई शुद्धसच्चिदानन्द निराकार ब्रह्म की उपासना करने को समर्थ नहीं हैं, उनको चाहिये कि मूर्तिमान् रामकृष्णादि की उपासना किया करें जो निष्काम करेंगे तो अन्तःकरण शुद्धि द्वारा मोक्ष होगा और जो मन्द, सुगन्ध, शीतल पवन खाने के इच्छा से वा मणि माणिक्यादि सादृश्यता देखने की इच्छा से सावयव भगवन्मूर्ति का ध्यान करते हैं तो जैसे इस लोक के भोगी वैसे ही वे रहें ॥ ३८॥

मू०-यदग्रेचानुबन्धेचसुखंमोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थंतत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

यत् १ सुखम् २ निद्रालस्यप्रमादोत्थम् ३ च ४ अग्रे ५ च ६ अनुबन्धे ७ आत्मनः ८ मोहनम् ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ ३९ ॥ अ०-उ० तमोगुणी सुख को कहते हैं-जो१सुख २ निद्रा आलस्य और प्रमाद इनसे उत्पन्न होता है ३ अर्थात् खेल मनोराज्य, हिंसा, लड़ाई, विषाद, क्रोध इत्यादि जान लेना ३ और ४ पहले ५ और ६ पीछे ७ आत्मा को ८ मोहकरनेवाला ९ सो १० तमोगुणी ११ कहा है १२ तात्पर्य निन्द्रालस्य मनोराज्य

क्रोधादिसमय न प्रथम सुख होता है. पीछे जीवको सुखकी भ्रांति रहती है. असंख्यात पशु जो आदमीकी सूरतमें हैं, वे इसीतमोगुणी सुखकी भ्रांतिमें मरजाते हैं कभी किसीकालमें रजोगुणी सुखका अनुभव किया होगा, और सतोगुणी सुखकी तो गन्धभी ऐसे पुरुषों के पास नहीं आती जैसे रजोगुणी इस सुखको तुच्छ समझते हैं, ऐसेही सतोगुणी पुरुष तमोगुणी रजोगुणी इनदोनों सुखोंको तुच्छ समझता है. और ब्रह्मज्ञानी शुद्धानन्दको जाननेवाला तीनों सुखों-को तुच्छ जानता है ये तीनों गुण सबमें रहते हैं जिसमें तमोगुण प्रधान, रजगुण सतोगुण कम, उसको तमोगुणी कहते हैं, रजोगुणी में दो भेद हैं, जो इसीलोकके शब्दादि विषयोंमें तत्पर रहते हैं. वे बुरे कहे जाते हैं, और जो परलोकमें रूपरसादि विषयोंको भोगते हैं वा इस लोकमें वेदोक्त भोग भोगते हैं, वे अच्छे कहे जाते हैं, सतो-गुणी भी दो प्रकारके हैं. एक ब्रह्मज्ञानरहित योगी और एक ज्ञान-सहित योगी ये दोनों रजोगुणी से श्रेष्ठ हैं ब्रह्मज्ञान रहित योगीसे ब्रह्मवित् श्रेष्ठ हैं तमोगुणीसबसे निकृष्ट है ॥ ३९ ॥

मू०—नतदस्तिपृथिव्यांवादिविदेवेषुवापुनः ॥
सत्त्वंप्रकृतिजैर्मुक्तंयदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः॥४०॥

पृथिव्याम् १ वा २ दिवि ३ वा ४ देवेषु ५ पुनः ६ यत् ७ सत्त्वम् ८ एभिः ९ त्रिभिः १० गुणैः ११ प्रकृतिजैः १२ मुक्तम् १३ स्यात् १४ तत् १५ न १६ अस्ति १७ ॥ ४० ॥ अ०-उ० जो जो क्रियाकारक फल देखने सुननेमें आता है, सबको त्रिगुणात्मक जानना योग्य है-पृथिवीमें १ वा २ स्वर्गमें ३ वा ४ देवताओंमें ५।६ जो ७ पदार्थ इन तीन गुणोंकरके ९। १०। ११ सि० कि जो * मायासे उत्पन्न हुए हैं १२ सि० इन करके * रहित १३ हो १४सो

१५ नहीं १६ है १७ तात्पर्य एक शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप, नित्यमुक्त आत्मा स्थूलसूक्ष्मकारण शरीरोंसे पृथक् तीनों अवस्थाका साक्षी, त्रिगुणरहित ऐसा है. उससे पृथक् सब पदार्थ इसलोकपरलोकके जो जो देखने सुननेमें आते हैं, वे सब मायामात्र हैं, इस मायाने सबको भ्रान्त कररक्खा है देवता सतोगुणमें भ्रांत है, मनुष्य रजोगुणमें भ्रांतहैं पशु तमोगुणमें भ्रान्तहैं, जो मनुष्य सत्वगुणमें भ्रांत है,वो देवताके सदृशहै,जो तमोगुणमें भ्रान्त है वो पशुके बराबर है.

मू०-ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचपरंतप ॥
कर्माणिप्रविभक्तानिस्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

परतंप १ ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् २ च ३ शूद्राणाम् ४कर्माणि५ गुणैः ६स्वभावप्रभवैः ७ प्रविभक्तानि ८ । ४१ ॥ अ०—उ० यह गुणोंकी भ्रान्ति कि जो पीछे कही वो बिना ब्रह्मविद्याके दूर नहीं होती और बिना अज्ञान दूर हुएपरमानन्दस्वरूप आत्माका साक्षात्कार नहीं होता इसवास्ते अज्ञानकी निवृत्तिके लिये ब्राह्मणादि अपने अपने धर्मका अनुष्ठान करें, कि जो धर्म ब्राह्मणादिका आगे कहना है-हे अर्जुन ! १ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके २ और ३ शूद्रोंके ४ कर्म ५ जिनकी प्रकृतिसे उत्पत्ति है ६ गुणोंकरके ७ पृथक् पृथक् ८ सि० हैं अज्ञानकी निवृत्तिके लिये उनका अनुष्ठान करना चाहिये, इसवास्ते मैं कहता हूं ❀ तात्पर्य ब्राह्मणादिके कर्म गुणोंके अनुसार पृथक् पृथक् हैं, सोई दिखाते हैं, सत्वगुण जिसमें प्रधान सो ब्राह्मण रजोगुण जिसमें प्रधान और सत्वगुण उससे कमहो, तम सत्वसे भी कम हो सो क्षत्रिय, रजोगुण प्रधान है जिसके तमोगुण कर्म हो सत्व उससे भी कम हो सो वैश्य, तमोगुण प्रधान है जिस

में सो शूद्र स्पष्टार्थ होनेके लिये एक यंत्र लिख देते है, जिस गुणके

ब्राह्मण			क्षत्रिय			वैश्य			शूद्र		
सत्व ३	रज २	तम १	रज २	सत्व २	तम १	रज ३	तम २	सत्व १	तम ३	रज २	सत्व १

नीचे तीनका अंक उसको प्रधान जानना जिसके नीचे दोका अंक उसको उससे कम जानना, जिसके नीचे एकका अंक उसको उससे भी कम जानना जैसे क्षत्रिय वैश्य ये दोनों रज प्रधान हैं, भेद इन दोनोंमें यह है कि क्षत्रियमें तत्त्व कम है, परमार्थ में तो यही चार विभाग हैं। और लौकिक व्यवहार में अनेक जाति हैं उनमें ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी हैं, इस द्वीपमें हिन्दू लोगों की यह रीति है कि, ब्राह्मणको जातिके अपेक्षा में बड़ा समझते हैं, क्षत्रियको उससे कम; वैश्यको उससे कम और फिर अनेक जाति हैं, शूद्र व्यवहार में किसीका नाम नहीं, कोई कोई कायस्थों को शूद्र कहते हैं, परन्तु समस्त ब्राह्मणादि आचार्य लागोंका इसमें संमतत नहीं सिबाय इसके व्यवहारमें सब लोग उनको कायस्थ ही कहते हैं और उनका व्यवहार चालचलन क्रिया धर्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंसे कम नहीं, मद्य मांस खानेपीनेसे यह शंका नहीं आसक्ती है कि कायस्थ शूद्र हैं, क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय भी बहुत खाते हैं * बहुत कायस्थ मद्य मांसको छूते भी नहीं, जैसे क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य श्रौतस्मार्तकर्म करते हैं, तैसेही ये करते हैं और जो नहीं करते तो सब ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य भी नहीं करते यह कायस्थ शब्द संस्कृत है और जो इनके जातिके भेद भट, नागर माथुर इत्यादि हैं, वे भी सब संस्कृतपद हैं, इस हेतुसे अन्त्यज भी ये नहीं होसक्ते लौकिकमें बडाई, द्रव्य, ऐश्वर्य, हुक्म, सौंदर्य, लौकिक विद्या इत्यादि करके होती है और परमार्थमें भगवद्भजनादिशुभ

कर्म करनेसे और ज्ञाननिष्ठा होनेसे बडाई है यह कोई नहीं कहसक्ता कि कायस्थ एक ऐसी जाति हैं जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जाति हैं व्यवहारमें बहुत जाति हैं परमार्थमें चार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र व्यवहारमें राजपूतादिको भी चार वर्णमें समझते हैं, जाट गूजरादिको कोई क्षत्रिय कोई शूद्र कोई अन्त्यज ऐसा कहते हैं यवनादिको म्लेच्छ कहते हैं, यह सब व्यवहारकी बोलचाल है जैसे मुसलमान वर्णाश्रमीको काफिर कहतेहैं, ऐसेही हिन्दू मुसलमानोंको म्लेच्छ कहते हैं, परमार्थदृष्टिमें सब द्वीपोंके निबासी गुणोंके तारतम्यतासे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं, क्योंकि सब त्रिगुणात्मक हैं और सब प्रजाका स्वामी एकही है. वो सम है यह बात कैसे समझ में आवे कि ऐसे स्वामीने अन्य द्वीपनिवासियोंके वास्ते परलोकका साधन न कहा हो, आगे जो श्रीभगवान् ब्राह्मणादिका धर्म कहेंगे वो ऐसा साधारण है कि अबतक उस धर्मका किसी एक भी जाति में प्रचार नहीं शमदमादि मुसलमान अंगरेजोंमें विशेष देखने में आते हैं शमदमादिधारण करने से यह लोग पापके भागी न होंगे, इस प्रकार खेती बनिज और शूरतादिका यह नियम नही कि शूरतादिधर्म क्षत्रियहीमें हो. अन्यमें नहीं, प्रत्युत जो व्यवहारमें क्षत्रिय कहे जाते हैं उनमें शूरतादि नहीं क्योंकि उनका राज्य बहुत दिनों से जाता रहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, परमार्थदृष्टि में परलोकका साधन करनेके लिये वे हैं कि जो पीछे यन्त्रमें लिखे हैं, व्यवहारमें वे कोई जाति हों, व्यवहारमें जो ब्राह्मणादि कहलाते हैं, इनकी व्यवस्था यह है कि जिसकाल में समस्त मनुष्योंके चार विभाग किये गये थे वो विभाग कोई दिन ऐसा चला कि ब्राह्मण का पुत्र सत्वप्रधान, शूद्रका पुत्र तमःप्रधान होता रहा वीर्य क्रिया में

बिगाड न हुआ अब इस समय में न वीर्य का ठिकाना है न क्रिया का और न यह नियम रहा कि ब्राह्मण जाति में सत्व प्रधान ही उत्पन्न हों ब्राह्मण तमः प्रधान देखने में आते हैं, म्लेच्छ. शूद्र सत्व-प्रधान देखने में आतेहैं,जो तमप्रधानको वेद पढाया जावेतो वो कब पढ़सक्ता है और सत्वप्रधानसे टहल कराई जावे तो कब करसक्ता है, तात्पर्य व्यवहार में तो यही समझना कि जैसा प्रचार है, अर्थात् ब्राह्मण कैसा भी कुपात्र हो इसीके जिमाने से लौकिकदृष्टि में सूतक पातक दूर होता है परमार्थ में यह समझनाकि जिसमें शमदमादि होंगे, वो मुक्ति का भागी होगा, मुमुक्षु का कल्याण भी इसी से होगा ॥ तदुक्तं महाभारते । अर्थात् सोई महाभारत में कहा है वाक्यवाद की कुछ अपेक्षा नहीं "नजातिकारणं तात। गुणाःकल्याण कारणम् । बृत्तिस्थमपिचांडालंतंदेवाब्राह्मणंविदुः" ॥ इस श्लोक का अर्थ यह है कि, भीष्मजी राजायुधिष्ठर से कहते हैं कि हे तात ! मुक्ति में जाति कारण नहीं शमदमादिगुण कारण हैं जो शमादि-गुण चांडालमें भी होंगे, तो देवता उस चांडाल को ब्राह्मण कहेंगे, जो व्यवहारिक ब्राह्मण शमदमादि साधनों करके युक्त हो तो वो सबसे श्रेष्ठ है इसमें कोई शंका नही करसक्ता । "अविद्यो व सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकीतनुः ॥ अद्यापि श्रूयते घोषाद्वारावत्याम-हर्निशम्" । इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ है कि ब्रह्म के जानने वाला विद्यावान् पढा हुआ हो वा न पढा हो, ब्रह्मवित् ब्रह्म ही है "ब्रह्म-विद्ब्रह्मैवभति" ॥ यह श्रुति है, लौकिक ब्राह्मण भगवत्स्वरूप होना तो बहुत कठिन है, दस रुपैये महीने की नौकरी भी उनको मिलना कठिन है सिवाय इसके ऐसे वाक्यों में हठ करने से शास्त्रसे विरोध बडा आता है, मूर्खों को मूर्ख ही पसन्द करता है, इस देशमें जो अन्य द्वीप निवासियों का राज्य हुआ, ब्राह्मणादिवर्ण उनके दास

(गुलाम) बने उसमें कारण ऐसे ही ऐसे मूर्ख हुए शास्त्र का पढना सुनना छोड दिया मूर्खों के कहने पर चलने लगे, जो पुरुष काम क्रोध लोभादि में फंसा हुआ है उसके कहने को समझना कितनी बडी मूर्खता है यह कब समझ में आवेगा कि ऐसे आदमी धोखा न दें और जो पोथी बहुत दिनों से उनके ही पास रही हैं क्या आश्चर्य है कि पोथियों में कुछ का कुछ न बना दिया हो बिशेष क्या लिखें इसीको वारम्बार बिचारना चाहिये ॥ ४१ ॥

मू-शमोदमस्तपःशौचंक्षांतिरार्जवमेवच ॥
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यंब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥४२॥

शमः १ दमः २ तपः ३ शौचम् ४ क्षांतिः ५ आर्जवम् ६ एव ७ च८ज्ञानम्९ विज्ञानम् १० आस्तिक्यम् ११ ब्रह्मकर्म १२ स्वभावजम् १३ ।४२॥अ०-उ० ब्राह्मणोंका कर्म कहते हैं जिसमें शमादि गुण होंगे सोई ब्राह्मण है, दुनियां के व्यवहार में वह कोई जाति हो जो ब्राह्मण बनाचाहे वो शमादिकर्मों का अनुष्टान करे-अन्तःकरण का निरोध १ इन्द्रियों का निरोध २ बिचार करना वा ब्रतादि करके शरीर का निराध करना ३ वाहर भीतर पवित्र ४ क्षमा ५ कोमलता ६ और ७। ८ सि० शास्त्राचार्यद्वारा ❋ ज्ञान ९ अनुभव १० विश्वास ११ सि० वेदशास्त्राचार्यदिवाक्य में यह❋ब्राह्मणका कर्म १२ स्वाभाविकहै, १३ अर्थात् पूर्व संस्कार के यह लक्षण ब्राह्मण का अपने आप वेयत्न होतेहैं, ब्राह्मण की निष्ठा सदा इनही कर्मोंमें रहती है, इस समय में वीर्य और क्रिया का तो ठिकाना नहीं और जो यह लक्षण भी न देखेंगे तो कहो, कैसे उसको ब्राह्मण जानकर उसके वाक्य पर निश्चय किया जावे, शमादि कर्म ब्राह्मणों के साधारण हैं और प्रतिग्रह लेना, सूतक पातक में जीमना

र सोई करना, बिवाहादि में सम्बन्धी के घर आनाजाना, इसप्रकार के कर्म असाधारण हैं. इनकर्मों में अधिकार उनही ब्राह्मणों का है कि जो लौकिकव्यवहार में ब्राह्मण कहेजाते हैं. सिवाय उनके अन्य जातिको शोभा नहीं देते ॥ ४२ ॥

मू०-शौर्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यंयुद्धेचाप्यपलायनम् ॥
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रंकर्मस्वभावजम्॥४३॥

शौर्यम् १ तेजः २ धृतिः ३ दाक्ष्यम् ४ युद्धे ५ च ६ अपि ७ अपलायनम् ८ दानम् ९ ईश्वरभावः १० च ११ क्षात्रम् १२ कर्म १३ स्वभावजम् १४ ॥४३॥ अ०-उ० क्षत्रियोंका स्वाभाविक कर्म कहते हैं. शूरता १ प्रागल्भ्य २ धैर्य ३ चतुरता ४ युद्ध में ५।६।७ पीछे को भागना नहीं ८ देना ९ अर्थात् सुपात्रों को ९ नियामक-शक्ति १०॥ ११ क्षत्रियों का कर्म १२। १३ सि० यह * स्वाभाविक है, १४ तात्पर्य विचार करो ये सब लक्षण आज काल अंगरेजों में मौजूद हैं, जैसे इन कर्मों में अधिकार उनको था कि व्यवहार में क्षत्रिय जातिहैं, उन्होंसे यह कर्म न होसके जिन्होंने वे कर्म किये, प्रत्यक्ष देखलो राज का भोग करते हैं, इसीप्रकार जो शमदमादि साधन सम्पन्न होगा, सो बेसन्देह परमानन्द ब्रह्मसुख को भोगेगा, जो कोई यह शंका करे कि ये म्लेच्छ हैं उनको राज्य का अधिकार नहीं मरकर सब नरकगामी होंगे. आप्तकाम विद्वान इस बातको कभी नहीं पसन्द करेंगे, सत्वादिगुणों के तारतम्यता से सतगति दुर्गति सब जीवों को होती है और इस लोक में सदा न पुण्यात्मा रहते हैं न पापात्मा, अधिकार की व्यवस्था में यह भी सुना जाता है कि चिकित्सा वैद्यक विद्या के पठन करने का अधिकार ब्राह्मण को ही है अब विचारो कि व्यवहारमें हिकमत वैद्यकविद्या किनकी अच्छी है और ब्राह्मणजातिसे अन्य जो वैद्यक

करते हैं उनसे रोग की निवृत्ति होती है वा नहीं इसी प्रकार सब कर्मों की व्यवस्था है ॥ ४३ ॥

मू०—कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम् ॥
परिचर्यात्माकंकर्मशूद्रस्यापिस्वभावजम् ॥४४॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् १ स्वभावजम् २वैश्यकर्म ३ परिचर्यात्मकम् ४ कर्म ५ शूद्रस्य ६ अपि ७ स्वभावजम् ८ ॥ ४४ ॥ अ०–उ० आधे श्लोक में वैश्यका कर्म,आधेमें शूद्रका कर्म कहते हैं–खेती. गौकी रक्षा, वणिज करना १ सि० यह ❀ स्वाभाविक २ वैश्यका कर्म ३ सि० है और ❀ सेवा करना, ४ सि० यह ❀ कर्म ५ शूद्र का ही ६ । ७ स्वाभाविक ८ सि० है❀तात्पर्य शूद्र वैश्यक्षत्रियों को चाहिये कि शमदमादिसंपन्न ब्राह्मणकी यथा अधिकार यथाशक्ति सेवा करे, तब सबके धर्म बने रहेंगे ॥४४॥

मू०–स्वेस्वेकर्मण्याभिरतःसंसिद्धिं लभतेनरः॥
स्वकर्मानिरतः सिद्धियथाविन्दतितच्छृणु ॥४५॥

स्वे १ स्वे २ कर्माणि ३ अभिरतः ४ नरः ५ संसिद्धम् ६ लभते ७ स्वकर्मनिरतः ८ सिद्धम् ९ यथा १० विन्दति ११ तत् १२ शृणु १३ ॥ ४५ ॥ अ०–उ० अपने अपने कर्मोंका जो जो अनुष्ठान करते हैं उसका फल कहते हैं–अपने १ अपने २ कर्म में ३ प्रीति करने वाला ४ नर ५ सि० अन्तःकरणशुद्धि द्वारा भगवत प्रसाद से❀मोक्ष को६ प्राप्त होता है ७ अपने कर्म में निरंतर प्रीति करने वाला ८ मोक्ष को ९ जैसे १० प्राप्त होता है ११ सो १२ सुन १३॥४५॥

मू०–यतःप्रवृत्तिभूतानांयेनसर्वमिदंततम् ॥
स्वकर्मणातमभ्यर्च्यसिद्धिंविन्दतिमानवः ॥४६॥

यतः १ भूतानाम् २ प्रवृत्तिः ३ येन ४ इदम् ५ सर्वम् ६ ततम् ७ तम् ८ स्वकर्मणा ९ अभ्यर्च्य १० मानवः ११ सिद्धम् १२ विन्दति १३ ॥ ४६ ॥ अ०-उ० आधे मंत्रमें तटस्थलक्षण ईश्वरका कहकर फिर आधे श्लोकमें उसीकी भक्ति करनेका फल कहते हैं, जिससे १ भूतोंकी २ प्रवृत्ति ३ अर्थात् जिसकी सत्तासे सबजगत् चेष्टा करता है ३ सि० और ❀ जिसकरके ४ यह ५ सब ६ सि० जगत् ❀ व्याप्त ७ सि० होरहाहै ❀ तिस अन्तर्यामी ईश्वरका ८ अपने कर्म करके ९ अर्थात् अपने कर्मसे ९ आराधन करके १० प्राणी ११ सि० अन्तःकरण शुद्धि द्वारा उसी अन्तर्यामीकी कृपासे ज्ञाननिष्ठ होकर ❀ परमानन्दस्वरूप आत्माको १२ प्राप्त होता है १३. तात्पर्य समस्त जगत्में आनन्दपूर्ण होरहा है, कोई पदार्थ ऐसा नहीं कि जिसमें आनन्द न हो और वो आनन्द ही साक्षात् भगवत्का स्वरूप है, जिसकी तनकसी छायासे त्रिलोकी आनंदितहै ॥४६॥

मू०-श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वभावनियतंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ।४७॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५ स्वभावनियतम् ६ कर्म ७ कुर्वन् ८ किल्बिषम् ९ न १० आप्नोति ११ ॥ ४७ ॥ अ०-उ० अपने धर्ममें अवगुण समझकर पराये धर्मका अनुष्ठान करते हैं उनको पाप होता है. अर्थात् जो प्रवृत्ति धर्मके योग्य है, निवृत्ति धर्मको श्रेष्ठ समझकर, जो निवृत्तिका धर्म अनुष्ठान किया चाहे, तो अन्तःकरणमें रजोगुण तमोगुण भरे रहने से उस निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान कब होसक्ता है प्रवृत्तिधर्मको छोड़-कर, दोनों तर्फसे भ्रष्ट होजाते हैं और जो निवृत्ति धर्मके योग्य हैं, वे कुसंगके सामर्थ्य से सेवा और किसी संस्कारसे अपने धर्मको छोड़

प्रवृत्ति धर्मका अनुष्ठान करेंगे, तो फिर गईहुई रजोगुणी तमोगुणी वृत्ति उसके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होजावेगी, इसीको पाप कहते हैं, इस वास्ते अपनेही धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये-अ०सुन्दर१पराये धर्मसे २ अपना धर्म ३ गुणरहित ४ सि० भी ❀ श्रेष्ठ ५ सि०हैं.❀ अपने गुणके अनुसार जिसका नियम किया गया है, उसकर्मको ६ ७ कर्ता हुआ ८ पापको ९ नहीं १० प्राप्त होता. ११ तात्पर्य जैसे विषयमें रहनेवाला जीव विष खाकर नहीं मरता. इसीप्रकार अपने अनुसार कर्मकरता हुआ बन्धनको प्राप्तनहींहोतामेवा तस्मैका भोजन बहुत सुन्दर है परन्तु ज्वरवालेके कामका नहीं ॥ ४७ ॥

मू०-सहजंकर्मकौन्तेयसदोषमपिनत्यजेत्।
सर्वारंभाहिदोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४८॥

कौंतेय १ सहजम् २कर्म ३ सदोषम् ४ अपि ५ न ६ त्यजेत् ७ सर्वारम्भाः ८ हि ९ दोषेण १० आवृताः ११ धूमेन १२ अग्निः १३ इव १४ ॥ ४८ ॥ अ०-उ० कोई कर्म शुभ अशुभ ऐसा नहीं कि जिसमें कुछ दोष न हो- सि० इस वास्ते ❀ हे अर्जुन ! १ स्वभावके अनुसार जो गुण अपनेमें प्रधान हो, (सत्त्व, रज वा तम) वैसे ही कर्म शमादि वा परिचर्या. युद्ध, कृषि, इत्यादिकर्म २ । ३ दोषसहित ४ भी ५ सि० है परन्तु, यावत् अन्तःकरण शुद्ध न हो तावत् उनको ❀ नहीं ६ त्यागना ७ समस्त कर्म ८ । ९ सि० किसी न किसी ❀ दोषकरके १० मिले हुए हैं ११ धूम करके १२ अग्नि १३ जैसा, १४ तात्पर्य गुणदोषका फल कांटेके तरह संग है, बुद्धिमान्को चाहिये कि धर्ममें कंटकवत् दोषपर दृष्टि नदे, गुणग्राही रहे ॥४८॥

मू०-असक्तबुद्धिःसर्वत्रजितात्माविगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिंपरमांसंन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

सर्वत्र १ असक्तबुद्धिः २ जितात्मा ३ विगतस्पृहः ४ परमाम् ५ नैष्कर्म्यसिद्धिम् ६ संन्यासेन ७ अधिगच्छति ८ । ४९ ॥ अ०-सि० इसप्रकार कर्म करे ❀ सर्वत्र शुभ अशुभ पापपुण्य जनक किसीकर्ममें १ जिसकी बुद्धि असक्त नहीं २ जीता हुआ है कार्यकारणसंघात जिसने ३ दूर होगई है इस लोकके पदार्थोंकी इच्छा जिसकी ४ सि० सो ❀ परम् ५ निष्कामताकी अवधिको ६ सबका त्यागकरके ७ प्राप्त होता है ८ तात्पर्य आनन्दस्वरूप ऐसे निष्क्रिय आत्माकी प्राप्ति सबपदार्थोंको त्याग करनेसे होती है, सिवाय आनन्दस्वरूप आत्माके किसीके पन्थ मत सम्प्रदायमें आसक्त नहीं होना. यही परमसिद्धि है ॥ ४९ ॥

मू०-सिद्धिंप्राप्तोयथाब्रह्मतथाप्नोतिनिबोधमे ॥
समासेनैवकौन्तेयनिष्ठाज्ञानस्ययापरा ॥५०॥

यथा १ सिद्धम् २ प्राप्तः ३ ब्रह्म ४ आप्नोति ५ तथा ६ कौंतेय ७ या ८ ज्ञानस्य ९ परा १० निष्ठा ११ समासेन १२ एव १३ मे १४ निबोध १५ ॥ ५० ॥ अ०-उ० परानिष्ठा श्रीभगवान् अब आगे पांच श्लोकोंमें कहेंगे इस वास्ते अर्जुनको संबोधन करके कहते हैं, कि हे कौन्तेय ! चैतन्य हो. चित्तको एकाग्रकरके परमसिद्धान्तकोसुन-जैसा १ सि० सबकर्मोंका यथा अधिकार अनुष्ठान करके और उनके फलका त्याग करके नैष्कर्म्यके ❀ सिद्धिको २ प्राप्त हुआ ३ ब्रह्मको ४ प्राप्त होता है, तैसा ६ हे

अर्जुन ! ७ जो ८ ज्ञानकी ९ परा १० निष्ठा ११ सि० है सो ❋ संक्षेप १२ ही १३ मुझसे सुन १४ । १५ ॥ ५० ॥

मू०–बुद्ध्याविशुद्धयायुक्तोधृत्यात्मानंनियम्यच ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वारागद्वेषौव्युदस्यच ॥५१॥

विशुद्धया १ बुद्ध्या २ युक्तः ३ च ४ धृत्या ५ आत्मानम् ६ नियम्य ७ शब्दादीन् ८ विषयान् ९ त्यक्त्वा १० च ११ रागद्वेषौ १२ व्युदस्य १३ ॥ ५१ ॥ उ० सोई ज्ञान की परा निष्ठा श्रीभगवान कहते हैं–सतोगुणी बुद्धिकरके युक्त १ । २ । ३ और ४ सि० सतोगुणी ❋ धृतिकरके ५ कार्यकारणसंघातका ६ निरोधकरके ७ शब्दादि विषयोंका ८ । ९ त्यागकरके १० और रागद्वैषको १२ दूर करके १३ सि० ब्रह्मको प्राप्त होता है तीसरे श्लोकके साथ इसका सम्बन्ध है ❋ तात्पर्य शब्दादिके त्यागमें देहयात्रामात्र क्रिया का निषेध नहीं शरीका निरोध यह है, कि शोच स्नानादिके समय तो अवश्य उठना, रात्रिके बीचमें डेढपहर सोना, सिवाय इसके एकजगह एक एकान्त आसनपर बिना आश्रय सीधा बैठकर आत्माका ध्यान करना चाहिये संन्यासी एक जगे जो न रहे तो चार गौकोससे सिवाय न चले ॥ ५१ ॥

मू०–विविक्तसेवीलध्वाशीयतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरोनित्यंवैराग्यंसमुपाश्रितः ॥५२॥

विविक्तसेवी १ लध्वाशी २ यतवाक्कायमानसः ३ नित्यम् ४ ध्यानयोगपरः ५ वैराग्यम् ६ समुपाश्रितः ७ ॥ ५२ ॥ अ०— वनमें, जंगलमें, पहाड़में, नदीके किनारे इत्यादिदेशमें कि जिसजगह स्त्री चोर, बालक, मूर्ख, सिंह, सर्प इत्यादिका भयसंबन्ध

न हो ऐसे देश के सेवन करने का स्वभाव है जिसका १ सि० ऐसा हो ❀ दोभाग अन्न करके एक भाग जल से पूर्ण करके और एक भाग श्वास के आने जाने के लिये अवशेष (खाली) रक्खे तात्पर्य थोडी सी क्षुधा बनी रहै अर्थात् कम भोजन करने का स्वभाव है जिसका, उसको लघ्वासी कहते हैं २ जीते हुए हैं बाणी शरीर मन जिसके ३ अर्थात् जो लक्षण सत्रहवें अध्याय में सतोगुणी तप का लिखा है, उसी प्रकार वर्तते हैं ३ सि० आत्मध्यानी योग को अर्थात् निद्राध्यासन को परात्पर जानकर ❀ नित्य ही ध्यान योग परायण रहते हैं ५ सि० नित्य शब्द के कहने का यह तात्पर्य पढना पढाना जपपाठादिकर्मों का त्याग चाहिये ज्ञाननिष्ठ को ❀ वैराग्य का ६ बहुत अच्छीतरह आश्रय कर रक्खा है ७ सि० सिवाय परमानन्दस्वरूप आत्मा के यावत् पदार्थ इस लोक परलोक के देखे सुने हैं सबको अनित्य दुःखदायी अनात्मक धर्म वाले जानकर किसी में न कुछ प्रीति करता है, न द्वेष करता है, परमज्ञान निष्ठा का यह लक्षण है ❀ ॥ ५२ ।

मू०-अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंपरिग्रहम् ॥
विमुच्यनिर्ममःशान्तोब्रह्मभूयायकल्पते ॥५३॥

अहंकारम्१ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम्५परिग्रहम्६यत विमुच्य ७ निर्ममः ८ शान्तः ९ ब्रह्मभूयाय १० कल्पते ११ ॥ ५३ ॥ अ०-देहादि में अहंबुद्धि १ अर्थात् हम विरक्त संन्यासी ब्राह्मण जगत् के गुरु श्रीमान् विद्यावाले हैं ऐसा अहंकार १ योग के बल से किसी का बुरा भला करना, विद्याके बलसे दूसरे का मत खण्डन करना२विद्याविरक्ति धनऐश्वर्यादिका मनमें गर्व रखना

३ इस लोक परलोक के पदार्थोंकी इच्छा ४ नास्तिकादि के साथ द्वेष ५ देह यात्रा से सिवाय संचय करना ६ सि० जो ऊपर कहे इन सब अहंकारादिको मनसे ❀ त्यागकर ७ सि० सन्यासादि धर्म और अद्वैतवादमतादि में ❀ ममता रहित ८ भूतादिकालकी चिंता से रहित ९ सि० पुरुष ❀ ब्रह्म को १० प्राप्ति होता है ११ तात्पर्य परमानन्दस्वरूप नित्यप्राप्त ऐसे आत्मा को प्राप्तवत् मान-कर,यह कहा जाता है कि ब्रह्म को प्राप्त होता है, वास्तव में ब्रह्म सदा एकरस है ॥ ५३ ॥

मू०-ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मानशोचातिनकांक्षति ॥
समःसर्वेषुभूतेषुमद्भक्तिंलभतेपराम् ॥५४॥

ब्रह्मभूतः १ प्रसन्नात्मा २ न ३ शोचति ४न ५ कांक्षति ६सर्वेषु ७ भूतेषु ८ समः ९ पराम् १०मत्भक्तिम् ११ लभते १२॥५४॥
अ०-उ० ब्रह्म को जो प्राप्त होता है उसका फल निरूपण करते हैं दो श्लोकों में-ब्रह्म स्वरूप हुआ १ प्रसन्न चित्त है जिसका २ सि० सो बीतीहुई बातोंका ❀नहीं ३ शोचकरता है४सि० आगे को कुछ ❀ नहीं ५ चाहता है ६ सब भूतों में ७ । ८ सम ९ सि० है जो श्रीभगवान् कहते हैं कि वो ❀ मेरी पराभक्ति १० । ११ प्राप्त होता है, तात्पर्य सातवें अध्याय में चार प्रकार की भक्ति कही है चारों में जो पीछे परे कही उसको पराभक्ति कहते हैं ज्ञान की परानिष्ठा कहो वा पराभक्ति कहो बात एक ही है इस जगे पाषाणादि मूर्तियों का पूजनादि और रामकृष्णादि सावयव मूर्तिमान् भगवत् की भक्ति इस जगे भक्ति नही. ज्ञाननिष्ठा का नाम यहां भक्ति है यह पराभक्ति का फल है, और सेवा पूजादि

साधन हैं, प्रकरण देखकर अर्थ समझना चाहिये, इस अध्याय में पचासवें श्लोक में श्रीभगवान् ने स्पष्ट कहा है कि हे अर्जुन! ज्ञान की परानिष्ठा मुझसे सुन और वोप्रकरण अबतक समाप्त नहींहुआ पचपनवें श्लोक में समाप्त होगा,वहांतक ज्ञाननिष्ठाका वर्णनहै॥५४॥

मू०-भक्त्यामामभिजानातियावान्यश्चास्मितत्त्वतः
ततोमांतत्त्वतोज्ञात्वा विशतेतदनन्तरम्॥५५॥

तत्त्वतः १ यावान् २ च ३ यः ४ अस्मि ५ माम् ६ भक्त्या ७ अभिजानाति ८ ततः ९ तत्वतः १० माम् ११ ज्ञात्वा १२ तदनन्तरम् १३ विशते १४॥५५॥ अ०-उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि जो मेरा यथार्थ स्वरूप है वो ही इस ज्ञाननिष्ठा से (कि जो पीछे चार श्लोकों में कही) जाना जाता है. और सब वेदविधि इसका साधन है, वास्तव १ जैसा २ और ३ जो ४ मैं हूँ ५ सि० वैसा❀ मुझको ६ सि० ज्ञानलक्षणा ❀ भक्ति करके ७ भले प्रकार जानता है ८ पीछे उसके ९ सि० अर्थात् ❀ यथार्थ १० मुझको ११ जानकर १२ फिर १३ सि० मुझमें ही❀मिलजाता है १४ तात्पर्य जैसे परमानन्द स्वरूप आत्मा उपाधिसहित और उपाधि रहित है, सो ज्ञाननिष्ठा से ही जानाजाता है, जो आत्माका जानना वो ही उसमें मिलना है, पहले जानना और पीछे उसमें मिलना यह एक बोली की रीति है, ब्रह्म का जानने वाला ब्रह्मरूपही है, यह वेदार्थ है ॥ ५५ ॥

मू०-सर्वकर्माण्यपिसदाकुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः ॥
मत्प्रासादादवाप्नोतिशाश्वतंपदमव्ययम्॥५६॥

सदा १ सर्वकर्माणि २ मद्व्यपाश्रयः ३ कुर्वाणः ४ अपि ५ मत्प्रसादात् ६ अव्ययम् ७ शाश्वतम् ८ पदम् ९ अवाप्नोति १०॥५६॥

अ०–उ० ज्ञाननिष्ठा भगवत् की कृपा से प्राप्त होती है.जब प्रथम वेदोक्तनिष्कामकर्म करे, यह परम पद का मार्ग श्रीभगवान् दिखाते हैं–सदा १ सब कर्मों को २मुझभगवतका आश्रय लेकर३करताहुआ ४ निश्चय ५ भगवत्प्रसाद से ६ निर्विकार नित्यपदको७।८। ९ प्राप्त होता है, १० तात्पर्य प्रभु का आश्रय लेकर यथाशक्तिदेशकालवस्तु के अनुसार निष्कामकर्म करना चाहिये, विना आश्रय कर्मों का निर्वाह कठिन है, और इस समय सिवाय परमेश्वरके और किसी कर्म धर्म का भरोसा नहीं, केवल उसी करुणाकर की कृपा से बस अनर्थ दूर होसक्ते हैं और परमपरमानन्दस्वरूप आत्मा की प्राप्ति होना उसी की कृपा का फल समझना चाहिये, अकृत उपासना के ज्ञाननिष्ठा का कभी परिपाक नहीं होता ॥ ५६ ॥

मू०–चेतसासर्वकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्यमच्चितःसततंभव ॥५७॥

मत्परः १ चेतसा २ सर्वकर्माणि ३ अपि ४ संन्यस्य ५ बुद्धियोगम् ६ उपाश्रित्य ७ सततम् ८ मच्चित्तः ९ भव १० ॥ ५७ ॥

अ०–मुझमें परायण होकर १ चित्तसे २ सर्वकर्म को ३ मेरे विषय ४ त्याग करके ५ सि० और ज्ञानयोगका ६ आश्रय करके ७ सदा ८ मुझमें चित्तवाला ९ हो १० अर्थात् तेरा चित्त सदा मुझमें ही लगा रहे ऐसा हो १० तात्पर्य यह कि सब धर्म कर्म वास्ते अन्तःकरण की शुद्धि के हैं तब जिसका अन्तःकरण शुद्ध होजाताहै, उस पर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं. तब ज्ञान में निष्ठा होती है फिर उस ज्ञाननिष्ठा के परिपाकार्थ कर्मों का त्याग आवश्यक है. यह प्रभु की आज्ञा है, प्रभु की आज्ञा से कर्मों का त्याग करना,यही प्रभुमें कर्मोंका संन्यास करना है कर्मों का संन्यासकरके फिर निरंतर भक्ति करना

चाहिये ज्ञानयोग का आश्रय यह है कि हरिभक्ति से मुझको ज्ञान-निष्ठा अवश्य प्राप्त होगी, ऐसे ज्ञाननिष्ठा की आशा रखना यही ज्ञानयोग का आश्रय करना है. इस प्रकरण में ज्ञानयोगका आश्रय करने का यही अर्थ है । ५७ ॥

मू०—मच्चित्तः सर्वदुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथचेत्त्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनंक्ष्यसि ॥५८॥

मच्चित्तः १ सर्वदुर्गाणि २ मत्प्रसादात् ३ तरिष्यसि ४ अथ ५ चेत ६ त्वम् ७ अहंकारात् ८ न ९ श्रोष्यसि १० विनंक्ष्यसि ११ ॥५८॥ अ०—मुझमें चित्त लगाकर १ सबदुर्गमों को २ मेरे प्रसाद से ३ तर जायगा तू ४ और ५ जो ६ तू ७ अहंकार से ८ नहीं ९ सुनेगा १० सि० तो ❀ नष्ट होजायगा तू ११ तात्पर्य परमेश्वर मोक्ष मार्ग का सुगम उपाय अपनी भक्ति बताते हैं जो वर्णाश्रम के अहंकार से भक्ति का आदर न करेंगे तो उनका पुरुषार्थ भ्रष्ट होजायगा विना प्रसाद प्रभु के अपने मतलब को न पहुँचेंगे हरि की कृपा ऐसा पदार्थ है. कि कैसा ही कठिन पदार्थ हो भगवद्भक्त को सुलभ होजाता है, भगवान् की आज्ञा मानना यही भक्ति है, चतुरता का भक्ति में कुछ काम नहीं ॥ ५८ ॥

मू०—यदहंकारमाश्रित्यनयोत्स्यइतिमन्यसे ॥
मिथ्यैषव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति॥५९॥

यत् १ अहंकारम् २ आश्रित्य ३ इति ४ मन्यसे ५ न ६ योत्स्ये ७ ते ८ एष ९ व्यवसायः १० मिथ्या ११ प्रकृतिः १२ त्वाम् १३ नियोक्ष्यति १४ ॥५९॥ अ०—जिस अहंकार का १ २ आश्रय करके ३ यह ४ तू मानता है ५ सि० कि ❀ नहीं ६

युद्ध करूंगा मैं ७ तेरा ८ यह ६ निश्चय १० झूंठा ११ सि०है ❀ तेरा स्वभाव १२ तुझसे १३ युद्ध करावेगा १४ तात्पर्य-जिसका जो धर्म है उसको उसीका अनुष्ठान कराना चाहिये, अन्य धर्म का अनुष्ठान उससे नहीं हो सकेगा, जैसा अर्ज़ुन चत्रिय है भिक्षा मांगना उससे कठिन है क्योंकि चत्रिय में रजोगुणी प्रधान होता है, वो शूरतादि धर्मों में ही प्रेरता है और वोही अन्तःकरण के शुद्धि का हेतु है ॥ ५६ ॥

मू०-स्वभावजेनकौन्तेयनिवद्धःस्वेनकर्मणा ॥
कर्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशोपितत् ।६०।

कौन्तेय १ स्वभावजेन २ स्वेन ३ कर्मणा ४ निबद्धः ५ यत् ६ कर्तुम् ७ न ८ इच्छासि ६ मोहात् १० अवशः ११ तत् १२ अपि १३ करिष्यसि १४ ॥६०॥ अ०-हे अर्जुन ! १ स्वाभाविक २ अपने ३ कर्म करके ४ बँधा हुआ ५ जो ६ सि० युद्ध ❀ करने की ७ नहीं ८ इच्छा करता है तू. ६ अविवेक से १० अवश हुआ ११ सोई १२ । १३ सि० युद्ध ❀ करेगा तू १४ तात्पर्य--इस समय तेरे अन्तःकरणमें सतोगुणी बृत्तिका आविर्भाव होरहा है कि जिससे तुझको दया होरही है युद्ध अच्छा नहीं लगता, भिक्षा मांगना प्रिय प्रतीत होता है, जब यह वृत्ति तिरोभाव को प्राप्त होगी, रजोगुणी वृत्ति कि जो विशेष करके तेरे अन्तःकरणमें प्रधान रहती है उसका जब आविर्भाव होगा, उस समय यह दया तेरी सब जाती रहेगी रजोगुण के बश होकर तू अवश्य युद्ध करेगा ॥ ६० ॥

मू०-ईश्वरःसर्वभूतानांहृद्देशेऽर्जुनातिष्ठाति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया ॥६१॥

अर्जुन १ ईश्वरः १ सर्वभूतानाम् ३ हृद्देशे ४ तिष्ठति५ सर्वभूतानि ६ मायया ७ भ्रामयन् ८ यंत्रारूढानि ९ ॥ ६१ ॥ अ०-उ० प्रकृतिके वश जीव है, और प्रकृति ईश्वर के वश है सोई हे अर्जुन १ ईश्वर २ सबभूतोंके ३ हृदय में ४ विराजमान है ५ सबभूतों को ६ मायाकरके ७ भ्रमा रहा है ८. सि० कैसे हैं वे भूत कि जैसे ❀ यन्त्रमें आरूढ ९ अर्थात् काल में ऊगी हुई पुतली जैसा बाजी-गर (खिलारी) नचाता है, तात्पर्य-जीव स्वतंत्र नहीं, शास्त्र मार्ग छोड अपनी बुद्धिसे बुरे भले कर्मोंको नहीं जानसक्ता श्रुति स्मृति दो ईश्वरकी आज्ञा हैं जो दोनों को सत्य समझकर वेदोक्त मार्गपर चलता रहेगा, उसको ईश्वर सब बखेडोंसे छुडाकर परमानन्दको प्राप्त करदेंगे, जो अपनी चतुराई चलावेगा वो बेसन्देह धोखा खावेगा ॥ ६१ ॥

मू०-तमेवशरणंगच्छसर्वभावेनभारत ॥
तत्प्रसादात्परांशांतिंस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम्॥६२॥

भारत १ सर्वभावेन २ तम् ३ एक ४ शरणम् ५ गच्छ ६ तत्प्र-सादात् ७ पराम् ८ शांतिम् ९ शाश्वतम् १० स्थानम् ११ प्राप्स्य-सि १२ ॥ ६२ ॥ अ०-उ० जब कि जीव स्वतंत्र नहीं, तो उसको अवश्य परमेश्वरका आश्रय चाहिये इसहेतु से हे अर्जुन ! तूभी परमेश्वरका आश्रयले-हे अर्जुन ! सब भावकरके २ अर्थात् तन मन धनकरके २ तिस ३ ही ४ रक्षाकरने वालेको ५ प्राप्त हो ६ अर्थात् उसी अन्तर्यामीका आश्रय ले ६ उस अंतर्यामीके प्रसाद से ७ परमशांतिको ८ । ९ सि० और ❀ नित्यस्थानको १० । ११ प्राप्त होगा तू १२ ॥ ६२ ॥

मू०–इतितेज्ञानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥
विमृश्यैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ॥६३॥

इति १ मया २ गुह्यात् ३ गुह्यतरम् ४ ज्ञानम् ५ आख्यातम् ६ ते ७ एतत् ८ अशेषेण ९ विमृश्य १० यथा ११ इच्छसि १२ तथा १३ कुरु १४ । ६३ ॥ अ० यह १ मैंने २ गुप्तसे ३ अति गुप्त ४ ज्ञान ५ कहा ६ तुझसे. ७ इस ८ समस्तका ९ विचार करके १० जैसी ११ तेरी इच्छा हो १२ तैसा कर १३ । १४ तात्पर्य ग्रन्थको प्रारंभसे अन्ततक भलेप्रकार विचारना चाहिये, तब ग्रंथका तात्पर्य प्रतीत होता है, दो चार पत्र, व दोचार अध्याय के विचारनेसे वक्ताका तात्पर्य नहीं जानाजाता. प्रत्युत मूर्ख लोग पूर्वपक्षको सिद्धान्त समझ बैठते हैं. क्योंकि बहुत जगह पूर्वपक्ष कैकै पत्रोंमें होता है. इसी हेतुसे बहुत लोग साधनोंको सिद्धांत समझ बैठते हैं ॥ ६३ ॥

मू०–सर्वगुह्यतमंभूयःशृणुमेपरमंवचः ॥
इष्टोसिमेदृढमतिस्ततोवक्ष्यामितोहितम् ॥६४॥

सर्वगुह्यतमम् १ मे २ परमम् ३ वचः ४ भूयः ५ शृणु ६ अति ७ दृढम् ८ मे ९ इष्टः १० असि ११ ततः १२ ते १३ हितम् १४ ॥ ६४ ॥ अ०-उ० जो तुझसे समस्तगीताशास्त्रका बिचार न होसके, तो मैंही समस्तगीताका सार दोश्लोकोंमें कहता हूं. तू मेरा प्यारा है, तेरे हितके वास्ते वारंवार कहता हूँ. प्रथम तो कर्म मार्गही बतलाना गुप्त है और भक्तिमार्ग उससेभी गुप्ततर है और ज्ञाननिष्ठा सबसे गुप्ततम है ऐसे गुप्ततम १ मेरे २ परम ३ बचनको४

फिर ५ सुन ६ अत्यन्त ७।८ मेरा ९ प्यारा १० है तू ११ इस वास्ते १२ तेरे १३ हित के लिये कहूंगा १४ ॥ ६४ ॥

मू० -मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसिसत्यंतेप्रतिजानेप्रियोसिमे ॥६५॥

मन्मनाः १ मद्भक्तः २ मद्याजी ३ भव ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ माम् ७ एव ८ एष्यसि ९ ते १० सत्यम् ११ प्रतिजाने १२ मे १३ प्रियः १४ असि १५ ॥ ६५ । अ०-उ० इस मंत्रमें कर्मनिष्ठ का सार कहते हैं, मुझमें मनवाला १ सि० हो ❀ अर्थात् मुझ परमेश्वर में मन लगा १ सि० और ❀ मेरा भक्त २ सि० हो ❀ अर्थात् मेरी भक्ति कर २ सि० और ❀ मेरा पूजन करनेवाला ३ हो तू ४ अर्थात् मेरा पूजन कर ४ सि० और ❀ मुझको ५ नमस्कार कर ६ मुझको ७ ही ८ प्राप्त होगा ९ तुमसे १० सत्य ११ मैं प्रतिज्ञा करता हूं १२ मेरा १३ प्यारा १४ है तू १५ तात्पर्य-ज्ञाननिष्ठा का साधन कर्मनिष्ठा है, कर्मों में भगवद्भक्ति सार है, सो दो प्रकारकी है, अन्तरंग, और बहिरङ्ग, नमस्कार पूजनादि बहिरंग हैं, भगवत् में मनलगाना इत्यादि अन्तरंग, यावत् परमेश्वर के स्वरूप में भले प्रकार मन न लगे तावत पाठमंत्रों का जप भगवत्सेवा भगवद्भक्तों की सेवा, शास्त्र श्रवण इत्यादि करता रहे, यद्यपि ज्ञानके साधन बहुत हैं परन्तु सब में ये तीन सार हैं भगवद्भक्ति, साधुसेवा, शास्त्र का श्रवण और इन तीनों में भी साधुसेवा सार है कि जिसके प्रताप से सब साधन प्राप्त हो जातेहैं, ये तीनों साधन सुगम प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं और इस समय में इनका ही अनुष्ठान हो सक्ता है, यज्ञादिकर्म और वर्णाश्रमविहित धर्म का अनुष्ठान होना कठिन है, साधुसेवादि साधनोंमें जो प्रतिबन्धहै, सो दिखाते हैं, बहुतजीव भगवत् से विमुख

तो इसवास्ते हैं, कि भगवत् का निराकार, एकरस, नित्यमुक्त, शुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप उनके समझ में नहीं आता, दुराग्रह, अश्रद्धा मन्द भाग्य, कम समझ इन कारणों से और रामकृष्णादि साकार भगवद्रूप को मनुष्य समझते हैं, और उस स्वरूप में नानाप्रकार का तर्क करते हैं, भगवद्भक्तिमें यही प्रतिबन्ध है और यावत् भगवत्का स्वरूप शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, शास्त्र के रीतिपूर्वक समझ में आवे, तावत् मूर्तिमान् ईश्वरकी उपासना आवश्यक है, और शास्त्रके श्रवणसे इस हेतुसे विमुख हैं, कि ब्रह्मविद्यावेदान्तशास्त्रउपनिषद्, सांख्य, पातंजल इत्यादि शास्त्र तो उनके समझ में आते नहीं प्रत्युत बहुत लोग यह भी नहीं जानते, कि उन पोथियों में, क्या बात है और रामायण महाभारत श्रीमद्भागवतादिग्रन्थों को कहानी बताते हैं उन ग्रन्थों के तात्पर्य को इतना तो समझते ही नहीं कि जैसे समुद्रमें से एक बून्द जल होता है, यावत् वेदांत शास्त्र का अर्थ भले प्रकार समझमें न आवे, तावत् महाभारतादिग्रन्थों को श्रवण करना चाहिये और साधुसेवा से इस वास्ते बिमुख हैं कि साधुको कमजाति और बे विद्या, बे स्वरूप ऐसे मान कर संग और सेवा साधुओं की नहीं करते अपने मान बडाई अहंकारादि में फँसे रहते हैं वे जैसे आप सदोष हैं साधुओं को भी अपने ही सदृश जानते हैं, वे मन्द भाग्य हैं इस हेतुसे इनकी शुभ कर्म, पूजा जप, शमदमादि, वैराग्य, विद्या इनपर दृष्टि नहीं जाती, गुण देखने के आंखों से अन्धे हैं, कुकर्मों से कौवेके सी दृष्टि उनकी होरही है, और एक बड़ा आश्चर्य यह है कि साधुको अवश्य वेदोक्त निर्दोष तलाश करते हैं और जोरू, पुत्र, मित्र इत्यादि में हजारों दोष भरे हुए हैं उनको मोक्षका साधन समझते हैं, मूर्ख यह नहीं समझते कि निर्दोष महात्मा निर्दोषों को ही मिलते हैं मुझ

ऐसे निर्भाग्योंको दर्शन भी नहीं देते कहते हैं, कि, और बहुत लोग ऐसी साधु सेवा करते हैं, कि जहां तक उनसे होसके साधुओं की बुराई करना और साधुओं को दुःख देना, इसीको मोक्षका साधन समझते हैं। तात्पर्य—इस समय में साधु बहुत हैं. हंसके सदृश जो हैं, उनको दीखते हैं और जिनकी कौवेकीसी दृष्टि है उनको साधु न कभी मिलेंगे न शास्त्रार्थ उनके समझ में आवेगा, न भगवद्भक्ति उनसे होसकेगी, जैसे; माता अपने पुत्रको मुखपर दुष्टोंकी दृष्टि बचानेके लिये स्याहीकी बिन्दी लगा देती है, इसी प्रकार जो कदाचित् किसी साधुमें कोई दोष अपने दोषसे प्रतीत हो, तो उस दोषको स्याहीके बिन्दीवत् समझना चाहिये, भगवद्भक्ति भगवत्के पुत्रके सदृश हैं। ६५॥

मू०-सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज॥
अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः॥६६

सर्वधर्मान् १ परित्यज्य २ एकम् ३ माम् ४ शरणम् ५ व्रज६ अहम् ७ त्वा८सर्वपापेभ्यः ९मोक्षयिष्यामि १० मा ११ शुचः १२ ॥ ६६ ॥ अ०-उ० समस्तगीता में कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है कर्मनिष्ठाका सारार्थ तो पिछले मन्त्रमें कहा अब ज्ञाननिष्ठाका सार संक्षेपसे इसमन्त्रमें कहते हैं. सब धर्मोंको १ त्यागकर अकेले मुझशरणको ३।४।५ प्राप्त हो ६ मैं ७ तुझको ८ सब पापों से ९ छुड़ादूंगा १० मत ११ शोचकर १२ तात्पर्य शरीर इंद्रिय प्राण अन्तःकरणके जो जो धर्म हैं उन सब धर्मोंको त्यागकर जो आश्रय लेना चाहिये सो कहते हैं शरण और एक ये दोनों माम्शब्दके विशेषण हैं " शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः॥ अमरकोशमें शरण का अर्थ गृह है, अर्थात् आश्रय और रक्षा करनेवाला ये

दो अर्थ हैं, श्रीभगवान् कहते हैं, क मुझ को प्राप्त हो. कैसा हूं मैं, कि एक अर्थात् अद्वैतः कभी किसी कालमें जिसमें दूसरा नहीं. और फिर कैसा हूँ मैं, कि आश्रय. शरण हूँ, वा रक्षा करने वाला हूँ "द्वितीयाद्वै भयं भवति" दूसरेसे अवश्य भय होता है, यह वेदने कहा है इस वास्ते तू अद्वैतको प्राप्त हो. वो रक्षा करनेवाला है वहां भय नहीं. वोही आश्रय है, इस मंत्रका तात्पर्य बेसंदेह अभेदमें है. और कहनेमें सुननेमें इसका तात्पर्यार्थ भेद में प्रतीत होता है, जहांतक वाणी है, वहांतक व्यवहारिक द्वैत है परमार्थमें द्वैत नहीं सिवाय इसके अक्षरार्थसे भी इस श्लोकका अर्थ अद्वैतविषय है सो भी सुनो. अहम् शब्द और माम् शब्द ये दोनों अस्मत्शब्दके प्रयोग हैं श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं, कि अहं यह शब्द अर्थात् केवल माया अविद्यारहित शुद्ध अहंकार अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि (यह महावाक्यार्थ) यह निष्ठा तुझको संसारसे छुडावेगी शरीरादिके जो धर्म हैं उनके त्यागमें मत शोचकर. यह अर्थ गीता भाष्यमें बहुत विस्तार पूर्वक सिद्धान्ताभेदाद्वैतज्ञाननिष्ठामें किया है. क्योंकि सब धर्मोंका त्याग कर्मनिष्ठासे नहीं होसक्ता, ज्ञानीसे ही होसक्ता है, व्यवहारकी रीतिसे युष्मत् अस्मत् शब्दोंके अर्थको और शब्दधर्मको अर्थधर्मको जो समझते हैं वे "माम् । अहम् ॥ त्वाम् ॥ त्वम्" इन शब्दोंके अर्थको समझेंगे, और जो किसी का यह हठ और निश्चय है,किइस मंत्रका अर्थ भी भेदमें है,तो उसको उचित है कि कहे हुएका अनुष्ठान करे, हमको भगवद्भक्तिसे विरोध नहीं भेदवादीका यदि ज्ञाननिष्ठासे विरोध है, इसमें भी हमको लाभ है, क्योंकि अज्ञानी बना रहेगा तो सेवा करेगा, ज्ञानी बन बैठेगा तो हमको क्या लाभ होगा ज्ञाननिष्ठाका उपदेश तो

दूसरे के लाभार्थ है. श्रद्धा करो वा मत करो, श्रीभगवान् अश्रद्धावान् को ज्ञान का उपदेश करना निषेध करते हैं ॥ ६६ ॥

सि०—पांच श्लोकों का अर्थ अन्य प्रकार दूसरे प्रकारसे लिखते हैं उसी रीतिसे अर्थ शीघ्र समझमें आवेगा. पण्डित शंकरलाल विष्णु नागर ब्राह्मणकी बेटी बीबी जानकी ने समस्त गीता का अर्थ उसी रीतिसे लिखा है उस टीकाका नाम जानकी विनिर्मिता प्रसिद्ध है॥

१। २। ४+३। ।५+६। ।७

मू०—इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ॥

१०। ८+९। ।११। १६।१२।१४।१३+ १५।

न चाशुश्रूषव वाच्यं नचमां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

वि०	व०	पद		अर्थ
१	१	इदम्	१	यह
				गीताशास्त्र
६	१	ते	२	तु
४	१	अतपस्काय	३	जिसने तप न किया हो उस बहिर्मुख को
अ.		न	४	नहीं
				सुनाना न चाहिये
अ.		न	५	
४	१	अभक्ताय	६	अभक्तको
				जो गुरु भगवत का भक्त न हो उसको
अ.		कदाचन	७	कभी
				सुनाना न चाहिये
अ.		च	८	और
				जो
४	१	अशुश्रूषवे	९	शुश्रूषा टहल न करे अथवा जिसकी
				सुनने को इच्छा न हो उसको
अ.		न	१०	नहीं
१	१	वाच्यम्	११	कहना योग्य है
				अर्थात् पूर्वोक्तों को सुनाना न हिये
अ.		च	१२	और

वि०	व०	पद		अर्थ
१	१	यः	१३	जो
२	१	माम्	१४	मुझको
				अर्थात् मेरी
क्रि.	१	अभ्यसूयति	१५	निन्दा करता है
				उसको भी
अ.		न	१६	नहीं
				सुनाना योग्य है. यह मेरी आज्ञा है.

तात्पर्य जो मूल के अनधिकारी कहे. वही इस टीका के अनधिकारी हैं ॥ ६७ ॥

१ । २ । ३ । ४ । ५ + ६

म० य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।

६ । ७ । ८ । १० । ११+१२+१३+ १४

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

उ०—तपस्वी भक्त शुश्रूषु जिज्ञासु निन्दारहित इस गीताशास्त्र के पढने सुननेके अधिकारी हैं. ऐसे अधिकारियों को जो यह गीताशास्त्र पढाते सुनाते हैं, उनकी महिमा दो श्लोकों में कहते हैं ।

वि०	व०	पद		अर्थ
१		यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	परमम्	३	परम
२	१	गुह्यम्	४	गुह्य
				गीताशास्त्र को
७	व०	मद्भक्तेषु	५	मेरे भक्तों के विषय में
क्रि.	१	अभिधास्यति	६	धारण करावेगा
				अर्थात् गीता का अर्थ भले प्रकार प्रेमपूर्वक बिना लोभ
				जो भगवद्भक्तों को समझावेगा सो
७	१	मयि	७	मुझमें
२	१	पराम्	८	परा
२	१	भक्तिम्	९	भक्ति

वि०	व०	पद			अर्थ
अ.	कृ.	कृत्वा	१०	करके
२	१	माम्	११	मुझको
अ.		एव	१२	ही
क्रि.	१	एष्यसि	१३	प्राप्त होगा
१	१	असंशयः	१४	नहीं है संशय इसमें

तात्पर्य गीताशास्त्रको जो पढ़ते हैं वे परमभक्त महानुभाव हैं ६८

७ ३ + ६ २ +४ ५

मू०—नच तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥

८ १३ १० ६ ११ १२ १

भविता नच मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥६९॥

वि०	व०	पद		अर्थ
७	१	भुवि	१	पृथिवी के ऊपर
अ.		कश्चित्	२	कोई
५	१	तस्मात्	३	तिससे
				अर्थात् गीता पढ़ाने वाले से सिवाय
६	१	मे	४	मुझको
१	१	प्रियकृत्तमः	५	अत्यन्त प्रसन्न करने वाला
७	ब०	मनुष्येषु	६	मनुष्यों में
अ		न च	७	नहीं
क्रि	१	भविता	८	है
				और
५	१	तस्मात	९	तिससे
				अर्थात गीता पढ़ाने वाले से
६	१	मे	१०	मुझको
१	१	अन्यः	११	दूसरा अन्य
१	१	प्रियतरः	१२	प्यारा विशेष
अ		नच	१३	नहीं

तात्पर्य जो गीता का अर्थ जानते हैं उनको कुछ कर्तव्य नहीं, न वेद की विधि उन पर है, उनको इस लोकपर लोकके पदार्थों की

इच्छा भी नहीं, जो महात्मा किसी को बिना प्रयोजन दुःखविक्षेप सहकर गीताशास्त्र पढ़ावें, सुनावें तो वे सन्देह उनसे सिवाय परमेश्वर को और कौन प्यारा लगेगा, ऐसे महात्मा भगवत् का नित्य अवतार कहलाते हैं ॥ ६९ ॥

६ । ७ १ २ । ३। ५ +४
मू०-अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ॥
९ + ८ १० ११ १२ +१३। १४। १५
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टःस्यामिति मे मतिः॥७०॥

वि०	व०	पद		अर्थ
१	१	यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	धर्म्यम्	३	धर्म के मिले हुए
६	२	आवयोः	४	मेरे और तेरे
२	१	संवादम्	५	संवाद को
क्रि	१	अध्येष्यते	६	पढ़ेगा
अ		च	७	
३	१	तेन	८	तिसने
३	१	ज्ञानयज्ञेन	९	ज्ञानयज्ञ से मुझको प्रसन्न
				किया अर्थात जैसा ज्ञानयज्ञ से मैं प्रसन्न होता हूं
				वैसा ही गीता पढ़ने वाले से
१	१	अहम्	१०	मैं
१	१	इष्टः	११	प्रसन्न
क्रि	१	स्याम्	१२	होता हूं
अ	४	इति	१३	यह
६	१	मे	१४	मेरा
१	१	मतिः	१५	समझ
				है

टी० चकारः पादपूरणार्थः ७ तात्पर्य चतुर्थ अध्याय में बारह यज्ञ प्रभुने कहा सबयज्ञोंसे ज्ञानयज्ञको बड़ा कहा, क्योंकि ज्ञानमें सबकर्मों

की समाप्ति है. गीताको जो पढते हैं. उनके कर्मभी समाप्त होजाते हैं गीताका पढ़ना पाठ करना यही सबसे बड़ा कर्म है. इसी एक शुभ कर्म से भगवत्पूजा किये गये होकर प्रसन्न हो जाते हैं ॥७०॥

५। ४। २। ६।७ १ ।२

मू०—श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ॥

८।९। १०। १२ १३। १४। ११।

सोऽपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥७१

उ० जो गीताशास्त्र को श्रवण करते हैं उनकी स्तुति श्रीमहाराज अपने मुख से करते है ॥

वि०	व	पद		अर्थ
१	१	यः	१	जो
१	१	नरः	२	पुरुष
अ		च	३	
१	१	अनसूयः	४	निन्दा रहित
१	१	श्रद्धावान्	५	श्रद्धा सहित
क्रि	१	शृणुयात्	६	सुने
अ		अपि	७	भी
१	१	सः	८	सो
अ		अपि	९	भी
				सब झगड़ों से
१	१	मुक्तः	१०	छुटा हुवा
६	व०	पुण्यकर्मणाम	११	धर्मात्माओं के
२	व०	शुभान	१२	शुभ ऐसे
२	व०	लोकान	१३	लोकों को
क्रि	१	प्राप्नुयात	१४	प्राप्त होगा

टी० चकारः पादपूरणार्थः ३ ॥७१॥

मू०—कच्चिदेतच्छ्रुतंपार्थत्वयैकाग्रेणचेतसा ॥

कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्तेधनंजय ॥७२॥

पार्थ १ त्वया २ एकाग्रेण ३ चेतसा ४ कच्चित् ५ एतत् ६ श्रुतम् ७ धनंजय ८ ते ९ अज्ञानसंमोहः १० कच्चित ११ प्रनष्टः १२ ॥ ७२ ॥ अ०—उ० परमकरुणाकी खान श्रीभगवान् अर्जुन से इस श्लोकमें यह बूझते हैं. कि हे अर्जुन ! इस उपदेशसे तुम्हारे अज्ञानका नाश हुवा वा नहीं, जो अज्ञानका नाश न हुआ हो, तो फिर दूसरे प्रकार से उपदेश करूंगा सि० यह अपनी कृपा और आचार्योंका धर्म दिखाते हैं जबतक शिष्यका अज्ञान दूर न हो तवतक गुरुको चाहिये कि, फिर बारम्बार दूसरे प्रकारसे उपदेश करे. यह आचार्योंका धर्म है ❀ अर्जुन ! १ तुमने २ एकाग्र ३ चित्त करके ४ कुछ ५ यह ६ सि० कि जो मैंने उपदेश किया वह ❀ सुना, ७ सि० वह तुम्हारे समझमें आया वा नहीं और ❀ हे अर्जुन ! ८ तुम्हारा ९ तत्वज्ञानका विपर्यय अज्ञानसंमोह १० कुछ ११ नष्ट हुआ १२ सि० वा नहीं "आवृत्ति रसकृदुपदेशात्" शारीरक भाष्यका यह सूत्र है. तात्पर्य इसका यह है कि जबतक अज्ञान भलेप्रकार नष्ट न हो तबतक वारंवार वेदान्त शास्त्रका श्रवण करें श्रवण करनेसे अज्ञानका, मननसे संशयका. निदिध्यासनसे विपर्ययका नाश होता है ॥७२॥

मू०–अर्जुनउवाच ॥ नष्टोमोहःस्मृतिर्लब्धात्वत्प्रसादामन्याच्युत ॥ स्थितोऽस्मिगतसन्देहःकरिष्येवचनंतव ॥ ७३ ॥

अच्युत १ त्वत्प्रसादात् २ मोहः ३ नष्टः ४ मया ५ स्मृतिः ६ लब्धा ७ गतसंदेहः ८ स्थितः ९ अस्मि १० तव ११ वचनम् १२

करिष्ये १३ ॥७३॥ अ०-उ० अज्ञानसंशयविपर्ययरहित कृतार्थ हुआ. अर्जुन श्रीभगवान्से कहता है कि आपकी कृपासे मेरा अज्ञान संशय विपर्यय असंभावना विपरीतभावना प्रमाणगत और प्रमेयगत इन सबका नाश हुआ और आपकी कृपासे मैं कृतकृत्य हुआ. अब मुझको कुछ करनेके योग्य नहीं. मैं अक्रिय असंग ऐसा हूँ-हे अविनाशी ! १ आपकी कृपासे २ मोह ३ सि० मेरा ❀ नष्ट ४ सि० हुआ और ❀ मुझको ५ सि० अपने स्वरूपकी ❀ स्मृति ६ प्राप्त हुई ७ सि० अब ❀ सन्देह रहित ८ स्थित ९ हूं मैं, १० आपके ११ बचनको १२ करूंगा १३ टी० चौथे अध्यायमें अर्जुनने कहा था, कि आपका जन्म तो अब हुआ है और इस जगे अविनाशी कहा यह ज्ञानका प्रताप है १ मूलाज्ञान समस्त संसारका जड़ ३ स्मरण याने याद ६ कमसमझ यह समझते हैं, कि अर्जुनने यह कहा कि आपके वचनको करूंगा। अर्थात् युद्ध करूंगा और विद्वान् यह समझते हैं कि अर्जुनने यह कहा कि आपका बचन करूंगा अर्थात् जो आपने कहा उसी प्रकार अनुष्ठान करूंगा अर्थात् मैं कृतकृत्य हूँ मुझको कुछकर्तव्य नहीं यह युद्धादि अज्ञानियोंकी दृष्टिमें है. इस आपके उपदेश का अनुष्ठान करूंगा जो अर्जुनको कुछ युद्धादि कर्तव्य रहा तो कृतकृत्यका अर्थ क्या किया जावेगा ॥ ७३ ॥

मू०-सँजयउवाच। इत्यहंवासुदेवस्यपार्थस्यचमहात्मनः
संवादमिममश्रौषमद्भुतंरोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

इति १ वासुदेवस्य २ महात्मानः ३ पार्थस्य ४ च ५इमम्६अद्भुतम्७रोमहर्षणम्८ संवादम् ९ अहम्॥ १० अश्रौषम् ॥११॥७४॥

अ०--उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि इस प्रकार १ श्रीकृष्ण-चन्द्रमहात्मा २।३ और अर्जुनका ४।५ यह अद्भुत रोमका हर्ष करने वाला ८ संवाद ९ मैंने १० सुना ११ ॥ ७४ ॥

मू०-व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहंपरम् ॥
योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयम्॥७५॥

एतत् १ परम् २ योगम् ३ गुह्यम्४स्वयम् ५ साक्षात्६कथयतः ७ योगेश्वरात् ८ कृष्णात् ९ व्यासप्रसादात् १० श्रुतवान् ११ अहम् १२ ॥ ७५ ॥ अ०--यह १ परम २ योग ३ गुप्त ४ आप ५ साक्षात् ६ कहतेभए ७ योगेश्वर ८ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज से ९ व्यासजीके प्रसादसे १० सुना ११ मैंने १२ तात्पर्य यह ब्रह्मविद्या परमयोग है और गुप्त है महात्मा इसको गुप्त रखते हैं, साधन-चतुष्टयसंपन्नसे कहते हैं, पहले यह विद्या ब्रह्मलोक में ही थी मुनीश्वरोंने तप करके इसलोकमें इसविद्याका प्रचार किया है ब्रह्म-विद्या आकाशमें आकर उसने मुनीश्वरोंसे यह कहा कि मर्त्य लोकमें जब मैं आऊंगी, तब तुम मुझको पुत्रीके सदृश समझकर अधिकारीको दो, मुनीश्वरोंने इस वाक्यका अंगीकार किया तब ब्रह्मविद्या इसलोकमें आई, सिवाय इसीद्वीपके और किसी द्वीपमें नहीं और सिवाय ब्रह्मलोकके और किसीलोकमें नहीं, जो इस विद्या को लालच या आशासे अनधिकारीको पढाते सुनाते हैं वे अधम हैं क्योंकि कंगाल भी अपनी पुत्री अनधिकारीको नहीं देता, जो पुरुष इसविद्याको लालचसे सीखते हैं सो विद्या भोगके लिये है नहीं जैसे वर्णशंकरपुत्र इसलोककी शोभा है ॥७५॥

मू०-राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्यसंवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यंहृष्यामिचमुहुर्मुहुः ॥७६॥

राजन् १ इमम् २ केशवार्जुनयोः ३ पुण्यम् ४ अद्भुतम् ५ संवादम् ६ संस्मृत्य ७ च ८ संस्मृत्य ९ मुहुर्मुहुः १० हृष्यामि ११ ॥७६॥ अ०-हे राजन्! १ इस २ केशव अर्जुनके ३ पुण्य रूप ४ अद्भुत ५ संवाद का ६ स्मरण करके ७ फिर ८ स्मरण करके ९ बारंवार १० मैं आनन्दित होता हूं ११ तात्पर्य--हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन का यह संवाद पुण्यरूप है, इसके श्रवणमात्र से पुण्य होता है, इस वास्ते मुझको बारम्बार स्मरण होता है, स्मरण करने से परमानन्द होता है ॥ ७६ ॥

मू०-तच्चसंस्मृत्यसंस्मृत्यरूपमत्यद्भुतंहरेः ॥
विस्मयोमेमहान्राजन्हृष्यामिचपुनःपुनः॥७७॥

तत् १ हरेः २ अत्युद्भुतम् ३ रूपम् ४ संस्मृत्य ५ च ६ संस्मृत्य ७ मे ८ महान् ९ विस्मयः १० च ११ राजन् १२ पुनः १३ पुनः १४ हृष्यामि १५ ॥ ७७ ॥ अ० तिस १ श्रीमहाराज के २ अति अद्भुत रूप का ३।४ अर्थात् विश्वरूप का ३।४ स्मरणकरके ५ फिर ६ स्मरण करके ७ मुझको ८ बड़ा ९ आश्चर्य १० सि० होता है * और ११ हे राजन्! १२ क्षणक्षणप्रति १३ । १४ मैं हर्षित होता हूँ १५, तात्पर्य--हे राजन्! श्रीमहाराजका वो अद्भुत विश्वरूप मेरे बारम्बार याद में आता है और उसका जब मैं ध्यान

करता हूं, तब मेरे रोम खड़े होजाते हैं, मुझको बड़ा आनन्द होता है, वो रूप बड़ा आश्चर्यकारक है ।। ७७ ।।

मू०--यत्रयोगेश्वरःकृष्णोयत्रपार्थोधनुर्धरः ।।
तत्रश्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ।।७८।।

यत्र १ योगेश्वरः २ कृष्णः३यत्र ४ धनुर्धरः ५ पार्थः ६ तत्र ७ श्रीः ८ विजयः ९ भूतिः १० नीतिः ११ ध्रुवा १२ मम १३ मतिः १४ ।।७८।। अ०--जिस सेना में १ योगेश्वर २ श्रीकृष्ण-चन्द्र ३ सि० है और ❀ जिस सेना में ४ धनुषधारी ५ अर्जुन ६ सि० हैं ❀ उसी सेना में ७ लक्ष्मी ८ बिजय९ऐश्वर्य १०न्याय११ सि० है, यह ❀ निश्चययुक्त १२ मेरी १३ मति १४ सि० है. ❀ तात्पर्य संजय धृतराष्ट्र से कहता है कि, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रों की जय न होगी अपने विजय की आशा छोड़ो,जिस तरफ श्रीकृष्ण-चन्द्र महाराज हैं, उनकी विजय होगी, जिनपर कृपादृष्टि श्रीभगवान् की हैं, वे सदा इसलोक और परलोक में परमानन्द भोगते हैं यह सिद्धान्त है ।। ७८ ।।

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
मोक्षसंन्यासयोगोनामाष्टदशोऽध्यायः ।। १८ ।।

——*+* —

समस्त गीताका सार, समाप्तिका मंगलाचरण.

परमानन्दपरमात्मा जीवआतमासे अभिन्नहै. परमानन्दकी इच्छा है जिसको, वो सदा परमानन्दकी उपासना किया करे, परमानन्दमें सब का संमत है, ब्रह्मवादी, ज्ञानी, उपासक, कर्मी, बिषयी, बालक मूर्ख, पशु, सबमतवाले, पंथाई, सम्प्रदायी दिनरात आनन्द के लिये यत्न करते हैं, सब कर्म बुरे भले ईश्वरके भजनतक सबके बोलीसे साधन हैं, और आनन्द फलहै; सब यह कहते हैं, कि इसबातमें बडा आनन्द है कि जो हम कहते है, करते हैं इस हेतुसे आनन्द सबसे बडा और परात्पर पदार्थ है, सबको प्रिय है किसीका आनन्दसे वैर नहीं. बात भी वोही सच्चीहै, कि जिसको विद्वान् श्रुतियुक्ति सहित कहतेहैं और उसका अनुभव समझमें आवे, बहुतलोग तो ऐसा कहतेहैं कि, वो बात वेदशास्त्रमें तो लिखीहै, परन्तु समझमें नहीं आती इसवास्ते उसमें निश्चय नहीं होता; सबको अनुष्ठान करनेमें मन कच्चा रहताहै और बहुतलोग ऐसा कहतेहैं, कि वो बात समझमेंतो आती है, परंतु वेद विरुद्ध है, इसवास्ते वह बात अच्छी नहीं समझी जाती, इसजगे वो बात लिखी जाती है कि जो वेदोक्तभी हो और अनुभव समझमें भी आवे. जिस आनन्दके वास्ते सब यत्न करते हैं, वो आनन्द अपना आप आत्माही है, और सदा प्राप्त है, अज्ञानसे कण्ठभूषणवत् उसको अप्राप्त अपनेसे जुदा ऐसा मानकर उसीकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके (लौकिक और वैदिक) यत्न करते हैं, जो वो अज्ञान जाता रहे, तो आनन्द सदा प्राप्त है, यह बात विद्वान् वेदोक्त कहतेहैं. परंतु यह बात किसी किसीके समझ में (रजोगुण

तमोगुणप्रधान होनेसे नहीं आती वे रजोगुण तमोगुण दूर होनेके लिये उनका कारण अज्ञानका स्वरूप सुनो, अज्ञान सत्त्वरजतम इन तीन गुणोंकरके युक्त है संसारमें स्थूलसूक्ष्म जितने पदार्थ हैं सब इन तीनगुणोंके कार्य हैं परमानन्द इन तीन गुणोंसे परेहै, देवता मनुष्य पशु इत्यादि इनतीन गुणोंमें मोहित होकर तमोगुणी रजोगुणी सत्त्वगुणी इस आनन्दको (कि जिससुखका लक्षण अठारहवें अध्यायमें ३६।३८।३६ इन श्लोकों में निरूपण हुआ है) बडा समझते हैं परमानन्दको नहीं जानते; परमानंदको ज्ञानी मुक्त महापुरुष जानते हैं. रजोगुणी आनन्द दो प्रकारका है अच्छा बुरा सावयव भगवन्मूर्ति वैकुण्ठ स्वर्गादिमें जो आनन्द मानते हैं वो आनंद अच्छा है लौकिक पदार्थोंमें जो आनंद मानते हैं सो बुरा है. कोई २ मतवाले रजोगुणी आनंद कोही परात्पर मानते हैं. और कोई मतवाले सत्त्वगुणी आनंदको परेसेपरे मानते हैं. रजोगुणी आनंदको क्षणिक, तुच्छ, अल्प ऐसा समझते हैं और यह कहते हैं कि तमोगुणी आनन्दसे परलोक जन्य रजोगुणी आनंद अच्छा है, इसीवास्ते उसको अच्छा कहते हैं. इसबातमें लौकिक वैदिक दोनों पुरुषोंका सम्मत है और रजोगुणी आनन्दकी अवधिको जो परेसे परे मानते हैं, इसबातमें केवल-वैदिकमार्गवालोंका सम्मत है, यौक्तिकलोगोंका सम्मत नहीं कभी विशेषता आनन्दके. दृष्टान्तसे समझो. तमोगुणी आनन्द रजोगुणी आनन्द, सत्त्वगुणी परमानन्द ये जैसे तीनघटमें जल है. एकमें मैला, दूसरेमें सामान्य करके दिखाता है तीसरे में भले प्रकार दिखाता है ऐसेही तमोगुणमें सुख प्रतीत नहीं होता रजोगुणमें सामान्य करके प्रतीत होता है और सत्त्वगुणमें भले प्रकार होता है. तीनों गुणों में दर्पणमुखवत् आनंदकी

छाया प्रतीत होती है, जिसकी वो छाया है, वास्तव में परमानन्द वोही है और सो नित्य है, जितना जल निर्मल ठहरा हुआ होगा, उतनाही मुख अच्छा दिखेगा, इसी प्रकार जितनी अन्तःकरण की वृत्ति निर्मल और स्थिर होगी, उतनाही सुख सिवाय अच्छा प्रतीत होगा, आनन्दको प्राप्तिमें अन्तःकरण की निर्मलता और स्थिरता कारण है, कोई पदार्थ सावयव इस लोक परलोक का कारण नहीं वृत्ति पदार्थ के सम्बन्ध से स्थिर होती है, और विचार ज्ञानसे भी स्थिर होती है, परन्तु पदार्थ के सम्बन्ध से जो होती है, वो स्थिरता क्षणक्षण में नष्ट होती रहती है, इस हेतु से, पदार्थजन्य आनन्द क्षणिक है, एक रस नहीं, थोड़ी देर रहता है, विचार ज्ञानयोग से जो वृत्ति स्थिर होती है, उसमें आनन्द ठहरता है, परमानन्द के ज्ञानसे जब मूलअज्ञान का नाश होजावे तब ये तीनों वृत्ति नष्ट हों, फिर केवल परमानन्दकी प्राप्ति सदाको होजाती है, इसीपरमानन्द के वास्ते सब इसलोकपरलोक के झगडे हैं, समस्त वेदों के विधि निषेधों का विचार करके देखो, सबका तात्पर्य दुःखकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति इसमेंही है, शरीर इन्द्रिय मनसे बुरे भले जितने कर्म यत्न और बिना यत्नके होते हैं सबमें दुःख सुख है, किसी में दुःख बहुत सुख थोड़ा, किसी में सुख बहुत दुःख थोड़ा, जिसकर्ममें ४६ भाग दुःखहै और ५१ भाग सुख है, वेदमें उसकी भी स्तुति है जिसकर्म में सुख बहुत है, उसके आदिमें दुःख तनिक है और पीछे सुख बहुत है, और जिसकर्म में ५१ भाग दुःख है और ४६ भाग सुखहै, उसकी निन्दाहै, जिसकर्ममें सुख कम है, उसके आदि में ही सुख प्रतीत होता है, अन्त में दुःख होता है, यह व्यवस्था यहां तक है कि १००में६६ या ६८या

९७ भाग किसी किसी कर्म में सुख है और १या२या३भागदुःखहै, और किसी किसी कर्ममें १०० मेंं९९या९८-९७ भाग दुःख है और १ या २ या ३ भाग सुखहै इसी प्रकार ६०।४०।७०।३०।८०।२०। ९०।१०इत्यादि भागसे कल्पना करलेना परमानन्द पूर्ण सुख एक-रस है, कर्म करने से वो नहीं प्राप्त होता, क्रिया के अभाव में प्राप्त होता है, जिसकर्म में ५१ भाग दुःख है उसकी वेदमें किसी जगे स्तुति होगी और ५२ भागके अपेक्षा से किसी जगे उसकी निंदा होगी, इसी प्रकार परमानंद की अपेक्षासे सब कर्मोंकी निंदा है, जो परमानंद प्राप्त है, तो सतोगुणी सुख उसके सामने तुच्छ है, और सतोगुणी सुखके सामने रजोगुणी सुख तुच्छ है, रजोगुणी सुखके सामने तमोगुणी सुख तुच्छहै, मूर्ख वेदोंके तात्पर्यको न समझकर सिद्धांतकी श्रुतियोंका प्रमाण देदेकर मूर्तिमान् परमेश्वर श्रीकृष्ण-चन्द्रादि और पाषाणादि मूर्तियों की और तीर्थव्रतों की निंदा करने लगते हैं, यह नहीं समझते कि यह उपदेश कैसे पुरुषों के लिये है, आप तो मलमूत्र के पात्रोंमें आसक्त होकर नीचोंके सामने बंद-रकी नांई नाचते हैं और पुत्रस्त्रीमित्रादि के साथ ममता करके उस-के लिये दिनरात तेली के बैलकी नांई घूमते हैं, वहां यह नहीं सम-झते कि इन अनित्य दुःखदायी दुर्गन्ध रूप ऐसे कुपात्रों के संबं-धसे मुझको क्या प्राप्त होगा, बहुत लोग तो ज्ञाननिष्ठ हैं जिनमें ऐसी जो श्रुति स्मृति हैं, उनका अर्थ सीख सीख कर्मों की निंदा करने लगते हैं, और बहुत लोग ज्ञाननिष्ठाके महत्त्वको न जानकर अपनी मूर्खता से ज्ञान निष्ठा से और ज्ञानियों से बैर बांध कर दोनों की निन्दा करने लगते हैं, यह सब निन्दक पापात्मा वृथा पाप और दुःख के भागी होते हैं, उनसे अनजान अच्छे हैं

सब मतवाले आपसमें लड़ते झगड़तेहैं जैसे होसके दूसरे की निन्दा करना यही उनकी कर्मनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा और भक्ति है. विद्वान परमानन्दका जाननेवाला (परमानन्ददेवके उपासकका) जीवते ही परमानन्दको भोगता है, परमानन्ददेवके उपासकका किसीसे वैर नहीं क्योंकि सबको आनन्दका उपासक जानता है, वास्तवमें सबका इष्टदेव परमानन्ददेव है, कर्म. भक्ति, ज्ञान और ईश्वरादि ये उसके साधन हैं. आनन्दका उपासना सब कर्मों-में अपने इष्टदेव परमानन्दको ही देखता है कोई कर्म ऐसे नहीं कि जिसमें कुछ आनन्द न हो और जो कोई कर्म करता है वो यही समझकर करता हैं, कि इसमें आनन्द मिलेगा, यद्यपि कर्म में यथार्थ परमानन्दकी प्राप्ति नहीं परन्तु जैसे मित्रके सदृश अन्य को देखकर. वा उसके एक अंगके सदृश देखकर. वा उसकी छाया देखकर वा उसकी तसबीरको देखकर बा उसके वस्त्रादिको देख-कर या सुनकर उस वास्तवसे मित्रका स्मरण होता है ऐसे ही सब कर्ममें परमानन्ददेवका उपासक अपने इष्टदेव परमानन्दका ही स्मरण ध्यान करता है, सब बिषयी मतवालोंसे उसका सम्मत है, जो कोई किसी मतवाला उससे बूझे कि तुम किसके उपा-सक हो तुम्हारा क्या मत है, परमानन्दका उपासक यह उत्तर देता है कि जिसके तुम उपासक हो उसी का मैं हूं, जो तुम्हारा मत और इष्टदेव है वोही मेरा मत और इष्टदेव है, फिर वे लोग अपना मत रामकृष्णादि इनको बताते हैं, तब परमानन्दका उपासक कहता है कि इष्ट फल होता है, साधन इष्ट नही जिस परमानन्दके लिये तुम भक्ति कर्मपूजा पत्री करते हो, वो तुम्हारा परमानन्द इष्टदेव है चर्चा करते करते पीछे फलमें संमत होजाता है

ऐसा कौन मूर्ख है, कि परमानन्दको फल और पूर्णब्रह्म परात्पर न कहे इसी प्रकार बालक बिषयी और मूर्ख इनके साथ भी उसका संमत है, क्योंकि परमानन्दको सब चाहते हैं परमानन्द सबका उपास्य है इसजगे परमानन्द अपने स्वामी इष्टदेवका निरूपण और माहात्म्य संक्षेपकरके कहा है आनंदामृतवर्षिणीमें और इस परमानन्दप्रकाशिका टीकामें भी किसी किसी जगह परमानंदकी प्राप्तिका साधन और कहीं २ साक्षात् परमानन्दका स्वरूप और महात्म्य निरूपण किया हैं आनन्दगिरिने पढ़ने सुननेवालोंको परमानन्दकी प्राप्ति हो ॥ परमानन्दाय नमोनमः ॥

इति श्रीस्वाम्यानन्दगिरिविरचितायां श्रीभगवद्गीता-
भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्लोक-पदच्छेदःपदार्थोक्तिविग्रहोवाक्ययोजना ॥
आक्षेपोऽथसमाधानं षड्विधं स्मृतम् ॥१॥

ॐ तत्सत् ॐ सत्सत ॐ तत्सत् ।

॥ समाप्त ॥